परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[२१, २२, २३ भाग]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

सम्पादक :

पं० देवचन्द जी शास्त्री, सहारनपुर

●

प्रबन्ध-सम्पादक :

बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

यादगार बडतला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

मुद्रक :

पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'

साहित्य प्रेस, सहारनपुर

●

सन् १९६६]

[न्योछावर ५ रु.

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक महानुभाव—

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ, संरक्षिका

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभाव—

१	श्रीमान् लाला	लालचन्द जी जैन सर्राफ	सहारनपुर
२	,,	सेठ भंवरीलाल जी जैन पाण्ड्या	झूमरीतिलैया
३	,,	कृष्णचन्द जी रईस	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जैन	गिरीडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन प्रेमपुरी	मेरठ
८	,,	सलेकचन्द लालचन्द जी जैन	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन	ज्वालापुर
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन	जगाधरी
१३	,,	गेंदामल दगडू शाह जी जैन	सनावद
१४	,,	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन सर्राफ	सदर मेरठ
१७	,,	मंत्री दिगम्बर जैन समाज	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन रईस	सहारनपुर
२०	,,	हरीचन्द ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेम देवी शाह सु० बा० फतेहलाल जी जैन संघी	जयपुर
२२	,,	मंत्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज	खण्डवा
२३	,,	नागरमल जी जैन पाण्ड्या	गिरीडीह
२४	,,	गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी जैन	गिरीडीह
२५	,,	राधेलाल कालूराम जी जैन मोदी	गिरीडीह
२६	,,	फूलचन्द बैजनाथ जी जैन नई मण्डी	मुजफ्फरनगर
२७	,,	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ	बड़ौत
२८	,,	गोकुलचन्द हरकचन्द जी जैन गोधा	लालगोला
२९	,,	दीपचन्द जी जैन सुपरिटेन्डेन्ट इन्जीनियर	कानपुर

३०	श्रीमान् लाला	मन्त्री दि० जैन समाज नाई की मण्डी	आगरा
३१	”	सचालिका दि० जैन महिलामण्डल नमककी मण्डी	आगरा
३२	”	नेमिचन्द जी जैन रुडकी प्रेस	रुडकी
३३	”	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन चिलकाना वाले	सहारनपुर
३४	”	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	”	मोल्हडमल श्रीपाल जी जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	”	शीतलप्रसाद जी जैन	सदर मेरठ
३७	”	ꙮ जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबडा	झूमरीतिलैया
३८	”	ꙮ इन्द्रजीत जी जैन वकील स्वरूपनगर	कानपुर
३९	”	ꙮ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या	जयपुर
४०	”	ꙮ दयाराम जी जैन आर. ए डी. ओ.	सदर मेरठ
४१	”	ꙮ मुन्नालाल यादवराम जी जैन	सदर मेरठ
४२	”	+ जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन	सहारनपुर
४३	”	+ जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन	शिमला
४४	”	+ बनवारीलाल निरञ्जनलाल जी जैन	शिमला

नोट—जिन नामोके पहिले ꙮ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आये हैं, शेष आने हैं। तथा जिनके पहिले + ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है।

●

सम्पादकीय

जैन न्यायके महान् प्रतिष्ठापक कुशाग्रबुद्धि तार्किकशिरोमणि वादीभकेशरी श्री समन्तभद्र श्री अकलङ्कदेव आदि महापुरुषोंने जैन न्यायके मौलिक तत्त्वोंकी समीचीन विवेचना आप्तमीमासा, प्रमाणसग्रह, न्यायविनिश्चयादि कारिकात्मक रचनाओंके द्वारा की। जैनदर्शनके प्रणेता भगवान उमास्वामीके दार्शनिक शास्त्र श्री तत्त्वार्थसूत्रके सदृश जैन न्यायका सूत्रबद्ध करने वाली "जैन न्याय सूत्र ग्रन्थ" जैन परम्परामें नहीं बन पाया था। इसी कमीका आचार्यप्रवर श्री माणिक्यनन्दीने आचार्य स्मृति-परम्परासे आये हुए जैन न्यायरूप सागरको परीक्षामुखसूत्ररूप गागरमे पूर्ण करके जैन न्यायका गौरव बढाया है। यह जैन न्यायका प्राथमिक सूत्रग्रन्थ है जो कि भारतीय न्याय विषयक कृतियोमें अद्वितीय है।

यह ग्रन्थ ६ परिच्छेदोमें विभाजित है। इसके सूत्रोंकी सख्या २१२ है। ये सूत्र सरल, विशद एव नपे-तुले हैं। वस्तु विचारमें अति गम्भीर अन्तस्तलस्पर्शी तथा अर्थ-गौरवसे ओत प्रोत हैं। सभी सूत्र सस्कृत गद्यमें हैं, किन्तु उनके आदि अन्तमें एक २ श्लोक हैं :—

प्रमाणादर्थससिद्धिस्तदाभासाद्विपर्यय ।
इतिवक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयस ।
परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयो. ।
संविदे मादृशो बाल परीक्षादक्षवद् व्यधाम् ॥

आद्य श्लोकमे ग्रन्थ प्रयोजन तथा उसकी रचनाकी प्रतिज्ञा की है । और प्रतिज्ञानुसार ग्रन्थ रचना की है । सूत्रकारने हेय-उपादेय तत्त्वका यथार्थ बोध कराने के लिए परीक्षकके समान दर्पण कृतिवत् बनाई ।

प्रतिपाद्य विषय —प्रथम परिच्छेदमें १३ सूत्रो द्वारा प्रमाणका स्वरूप तथा प्रमाणके प्रामाण्यके स्वतस्तत्व परतस्तत्वका निर्णय किया है। द्वितीय परिच्छेदमें प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष दो भेद बताये हैं। प्रत्यक्षके साव्यवहारिक तथा मुख्य भेदोको १२ सूत्रोंसे प्रतिपादन किया है । तृतीय परिच्छेदमें परोक्ष प्रमाणके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगमका १०१ सूत्रोंमें कथन है। चतुर्थमें ६ सूत्रों द्वारा प्रमाणके विषय सामान्यविशेषात्मकको समझाया है । सामान्य विशेषके भेद भी दर्शाये हैं। पांचवें परिच्छेदमें ३ सूत्रो द्वारा प्रमाणका फल साक्षात्, अज्ञाननिवारण, परम्परा दान-उपादान उपेक्षा कहकर उसे प्रमाणसे कथचित् भिन्न अभिन्न सिद्ध किया है। छठे परिच्छेदोंमे प्रत्यक्षाभास परोक्षाभासका स्वरूप बताकर जय-पराजय व्यवस्था बताई है। इसमें ७४ सूत्र हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थमें जैन न्यायके सभी मौलिक ग्राह्य विषयोका पूर्ण व्यवस्थित चयन हुआ है ।

न्याय विषयके ऐसे कठिन दार्शनिक विषयका आध्यात्मिक सम्बन्ध दिखाकर न्यायादि अनेक विषयके पारखी, मनीषी विद्वान् श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराजने परीक्षामुखसूत्रप्रवचन द्वारा सरल सुबोध स्पष्ट किया है। समयसारादि अनेक ग्रन्थोपर प्रवचन करने वाले विद्वान्के प्रौढ़ ज्ञानने इसे दुरूहतासे बचाया है जो कि न्याय विषयक गम्भीर अध्ययन चिन्तन एवं सुयोग्य विद्वत्ताका ही सुन्दर मधुर फल है। न्यायविषयक क्षेत्रमें तत्त्व निर्णयका आधार प्रमाण ही होता है। इसलिये प्रमाण और प्रामाण्यकी परीक्षा करना अत्यावश्यक है । इन प्रवचनों द्वारा लोकमें प्रमाणविषयक विपरीत धारणायें दूर होगी ।

मुझे इन प्रवचनोंका प्रूफ शोधनका अवसर मिला है। मैं आशा करता हू कि आध्यात्मिक तत्त्वके विज्ञ रसिक जन इनके स्वाध्याय द्वारा लाभ उठायेंगे ।

—देवचन्द जैन, एम० ए०

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[एकविंश भाग]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

प्रमाणादर्थससिद्धिस्तदाभासाद्विपर्यय ।
इतिवक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्प लघीयसः ।

●

सर्व पदार्थोंके स्वरूपनिर्णयकी प्रारम्भिक पद्धति—दुनियामे क्या-क्या है ? और किस प्रकारका पदार्थ है ? उसका निर्णय करना विश्रामसे रहने की इच्छा वाले पुरुषोंके लिये अति आवश्यक है, क्योंकि जिनके बीचमें हम रह रहे हैं उनका यथार्थ भान हो तो विपरीत कल्पनायें जगती हैं और उस अज्ञान अन्धकारमे उठने वाली विपरीत कल्पनाओंसे परेशान हुआ करते हैं। इस कारण यह आवश्यक है कि हम जगतके पदार्थोंका भली भाँति स्वरूप समझें, पदार्थोका हम स्वरूप समझें। इससे पहिले हमको शुरुवात इस ढगसे करनी होगी कि जिससे हम ऐसी विशेषताओंको बतायें, ऐसे धर्मोंको, चिन्होंको, लक्षणोंको बतायें कि जो लक्षण सबमें घटित हो और फिर उससे सकुचित हो होकर ऐसा विशेष लक्षण निरखें कि जिसमें अन्य द्रव्य छुट जायें और विवक्षित द्रव्य आये। इस प्रणालीसे सहित स्वरूपकी जानकारी करना धोखेसे बाहर होता है। जगतमें जो कुछ भी पदार्थ है, इतना तो सबसे पहिले मानना होगा कि वे सत् हैं। है के बिना किसीके बारेमे कुछ कहना वेतुकी बात है। सबसे पहिले यह मानना है कि 'है' इसे कहते हैं अस्तित्व, पर पदार्थ है है, इतना ही माना जाय तो उसका अर्थ यह हो जायगा कि है जो कुछ भी है। जिस किसी एक पदार्थ को हम जब जानना चाहेगे और है ही मात्रसे जानेंगे तो यह अमुक है, तमुक है, सब

कुछ है तब क्या व्यवस्था बनी ? इससे मानना होगा कि जो है वह अपने स्वरूपमे है, परके स्वरूपसे नहीं है। इसमें है की बात कुछ अधूरे रूपसे पूरी हो गयी, लेकिन वह है' रह नही सकता जिस 'है' का कोई व्यक्त रूप न हो। आकार परिणमन अवस्था कोई व्यक्तरूप रूप न हो तो वह है चीज क्या है? इससे यह समझना होगा कि पदार्थ का व्यक्तरूप नियमसे हुआ करता है। ऐसा कोई पदार्थ नही कि जिसकी अवस्था तो न हो और पदार्थ हो, कुछ सिद्धान्त हैं ऐसे जो व्यक्तरूप कुछ नही मानते। अवस्था, दशा, परिणति स्वीकार नहीं करते। उसे माया आदिक शब्दोसे कह देते हैं और पदार्थोंको अपरिणामी स्वीकार करते हैं। लेकिन परिणाम न हो, व्यक्तरूप न हो, अवस्था न हो तो उसका 'है' जीवित नही रह सकता। इसलिए मानना होगा कि 'है' अपने स्वरूपसे है, परस्वरूपसे नहीं है और निरन्तर वह अपनी किसी न किसी अवस्था मे रहता है अर्थात् परिणमता रहता है। परिणमता तो रहता है पर इतना ही मात्र माननेसे कि परिणमता रहता है। अब कोई किसीरूप परिणम जाय, अन्यरूप परिणम जाय तो फिर वस्तुव्यवस्था नही रह सकती। अतः मानना होगा कि अपने ही स्वरूपमे परिणमता है दूसरे स्वरूपमें नही परिणमता। इतना माननेके बाद यदि उसका कोई आकार बुद्धिमें न आये तो वस्तुके बारेमे हम कुछ भी कल्पना तक नही कर सकते। नकशोके द्वारा भी जब भूगोलमें अमेरिका, जापान आदिक देश बनाये जाते हैं, नगर, पर्वत, नदियाँ आदि बनायी जाती हैं तो यद्यपि देखा नही है उन्होने मगर समझने वाले विद्यार्थी उनका कुछ न कुछ आकार दिमागमें रखते हैं तब उनको समझमें आता है। पदार्थमे आकार होता है, पदार्थ प्रदेशवान होता है। इतना सब कुछ होनेपर भी सत् ही ज्ञेय होता है, असत् ज्ञेय नही होता। ऐसा देखा जाता, जिससे सभी सत् प्रमेय होते हैं।

साधारण गुणोकी असाधारण गुणके साथ अविनाभाविता—उपरोक्त प्रकारसे सर्व पदार्थोंमें सामान्य गुण बराबर मौजूद हैं। इतना होनेके बाद काम क्या चला ? अर्थक्रिया कुछ नही हुई। प्यास लगी है, पानी पीना है, तो इन ६ साधारण गुणोसे क्या काम हो जायगा ? अथवा व्यापार रोजिगार आदिके कार्य करना है तो केवल ६ साधारण गुणोसे अर्थक्रिया न बनेगी। यद्यपि इन ६ साधारण गुणोके माने बिना असाधारण गुण कुछ महत्व न रखेगा, न काम बन सकेगा। लेकिन मात्र ६ साधारण गुणोंसे भी बात नही बनती। प्रत्येक पदार्थमे, प्रत्येक सत्मे अपना-अपना कोई असाधारणपना अवश्य है। असाधारण मायने विशेष गुण। तो देखो! पदार्थ मे सामान्य गुण भी है, विशेष गुण भी है और फिर जब ये पदार्थ परिणमते हैं तो जो परिणमन है वह उसका विशेष है। तो यों समस्त पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं, इस दृष्टिसे सभी पदार्थोंमें सामान्य गुण भी है विशेष गुण भी है। सामान्य गुण न मानें तो काम न चलेगा। सामान्यविशेषात्मक सर्व पदार्थ हैं। अब उससे और मोटे रूपमें निरखें तो अनेक पदार्थ जिस धर्मकी दृष्टिमें समान जच रहे हैं वह तो है सामान्य

गुण और जिन धर्मोंमें यह इससे न्यारा है, यह इससे विलक्षण है ऐसा जचे, उसे कहते हैं विशेष गुण। तो यो पदार्थ सभी सामान्यविशेषात्मक होते हैं।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थको छिन्न कर करके छिन्न करनेका प्रयास- मूल प्रकरण इस प्रसंगमें यह चल रहा है। पदार्थकी सामान्य विशेषात्मकता न मानकर विशेषवादी अपना यह सिद्धान्त रख रहे हैं कि सामान्य स्वयं एक पदार्थ है विशेष स्वयं एक पदार्थ है। फिर वहाँ रहा क्या? वहाँ द्रव्य रहा, गुण रहा, क्रिया रही। फिर यह सामान्य विशेष अथवा कोई गुण क्रिया द्रव्यमें कैसे लग बैठेगी? तो एक सम्बन्ध है जिसका नाम समवाय है, इस तरह ६ पदार्थोंकी व्यवस्था करते हुए वे द्रव्यको ९ प्रकारका बता रहे हैं-जिसमें पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, आकाश काल, दिशा इन ७ पदार्थोंके सम्बन्धमें विवेचन हुआ, जो उसमें तथ्य था उसकी पुष्टि की और जो उनमें अतथ्य था उसका निराकरण किया। दिशा नामका कोई द्रव्य है ही नहीं। इसलिए उसका सर्वप्रकार निराकरण हुआ। उसके बाद अब आत्म द्रव्यका वर्णन आ रहा है। विशेषवादमें बताया गया है कि एक आत्मा सर्वव्यापी नित्य निरंश चैतन्यमात्र है, उसमें गुण नहीं क्रिया नहीं, सामान्य नहीं, विशेष नहीं। ये तो उसमें समवाय सम्बन्धसे थोपे जाते हैं। चैतन्य मात्र भी यो कहना पड़ता कि कदाचित् ऐसा प्रश्न हो उठे कि जब आत्मा बिल्कुल निराला है गुण कर्म सामान्य विशेष ये बिल्कुल निराले हैं तो ज्ञानगुण, सुखगुण ये आत्मामें ही क्यों चिपकते हैं अन्य पदार्थोंमें क्यों नहीं चिपक जाते? निरालेकी तो यही स्थिति होती है। तो उसका कुछ थोड़ा बहुत उत्तर बतानेके लिए चिन्मात्र मानना पड़ा है। आत्माके चित्स्वरूप होनेसे यह ज्ञान स्वरूप आत्मामें ही चिपकेगा अन्यथा इसके भी माननेकी जरूरत नहीं है।

स्याद्वादका लोकप्रसिद्ध प्रतीक- स्याद्वाद भेदवादके आधारपर हैं। जैसे कि लोकमें एक गणेशमूर्ति बनती है। चूहेकी तो सवारी और हाथीका मस्तक शरीरमें अभेद रूपसे फिट है। ये दो विशेषतायें गणेशमूर्तिमें मानी जाती हैं। तो कल्पना करो कि क्या कोई ऐसा महापुरुष हुआ है जो चूहेपर तो बैठता था और हाथी जैसा मुंह था, कल्पनामें यह बात समाती नहीं है। कोई साधारण जन भी यह नहीं करते हैं कि चूहेकी सवारी किया करें और न किसीका अब तक ऐसा मस्तक हुआ है कि हाथी जैसा मस्तक लगे और फिर सूंडसे ही लड्डू उठाकर मुंहमें देकर खाया करें। तब तथ्य की बात क्या थी? यह है एक स्याद्वादका प्रतीक। स्याद्वाद कहते हैं अपेक्षा लगाकर वस्तुका निर्णय करना जैसे पूछा जाय कि बतलावो आत्मा नित्य है या अनित्य है? तो आत्मा चूंकि अनादिसे है अनन्त काल तक है, कभी मिटेगा नहीं, आत्मा ही क्या कोई भी पदार्थ अनादिसे है अनन्तकाल तक है, कभी मिटेगा नहीं, इस दृष्टिसे आत्मा और आत्मा ही क्या सभी पदार्थ नित्य हैं, लेकिन आत्मामें भी सभी पदार्थोंमें भी प्रतिक्षण परिणमन होता रहता है। अवस्था उसकी कुछ न कुछ व्यक्त रहेगी ही। तो जब यो

परिणमन चलता है कभी कम ज्ञानी कभी ज्यादा ज्ञानी कभी सुखी कभी दुःखी तब इससे आत्मा अनित्य निर्णीत है। कभी सुखी आत्मा था वह न रहा अब दुःखी हो गया। आत्मा वही है, यों अपेक्षासे अनेक धर्मोंका निर्णय होना यह स्याद्वाद पद्धतिका काम है तो इस गणेश प्रतीकने हमको यह बताया कि देखो जगतके सभी पदार्थ भेदाभेदात्मक होते हैं। जो भी ध्यानमें आये, समझमें आयें वे परस्पर भिन्न-भिन्न हैं, और भिन्न-भिन्न जचकर भी किसी निगाहसे वे सब एक हैं और विश्वके पदार्थ सब एक भी हैं और नाना भी हैं। विवक्षित एक पदार्थ एक भी है और उसमें नाना धर्म भी हैं। यह बात यह गणेश मूर्ति बताती है। किस तरह ? देखो चूहेका जो इतना लगाव रखा जा रहा है यह तो भेदक प्रतीक है। जैसे चूहेकी यह प्रकृति है कि वह कागज अथवा कपड़ेके टुकड़े कुतर कुतर कर इस तरहके छोटे कर देता है कि जैसे टुकड़े कैंची अथवा अन्य किसी औजारसे नहीं किये जा सकते, यह प्रकृति चूहेमें है और यह हाथीका सिर जो कलेवरपर फिट है यह बतलाता है कि देखो ! यहाँ कोई भेद नजर नहीं आता। इसी प्रकार ये सब पदार्थ अभेदरूप हैं। इससे क्या निकला ? जैसे मानलो एक आत्मा ही है। इस आत्मामें हम विश्लेषण जब करें तो देखो आत्मामें ज्ञान गुण है, दर्शन गुण है, सुख गुण भी है। इसमें पुण्यभाव भी है, पाप भाव भी है। इसमें अनेक धर्म नजर आये। तो कौन अलगमें ज्ञेय बना ? स्वरूपकी दृष्टि बनी। इससे तो ये भिन्न-भिन्न हैं लेकिन ज्ञान कभी आत्मासे अलग रहा हो या कभी वह अलग रह सकेगा ऐसी स्थिति तो नहीं बन सकती। तो ज्ञान स्वरूप है इसलिए अभेद है, इन दो बातोंमेसे चूहेकी प्रकृतिका एकान्त करने वाले विशेषवादी यह कह रहे हैं कि आत्मा तो आत्मा ही है। उसमें ज्ञान गुण नहीं, सुख दुःख नहीं धर्म अधर्म नहीं, सामान्य नहीं, विशेष नहीं। और वह है एक नित्य सर्व व्यापक। ऐसे आत्मद्रव्यके सिद्ध करने वाले वैशेषिक सिद्धान्तवादियोंसे कहा जा रहा है कि एक अपरिणामी सर्वगत आत्म द्रव्य भी प्रमाण सिद्ध नहीं है।

आत्मद्रव्यकी मीमासाका प्रकरण– यह प्रकरण चल रहा है आत्मद्रव्यकी सिद्धिका, जिसके सम्बन्धमें हम ततकी बात जानना चाहते हैं और अनादिसे हम गैर ततोंमें लग रहे हैं तो ततकी बात परखनेके लिए हमें उसका बहुत विस्तारसे वर्णन चाहिए। इसी कारण इस विस्तारको सुनकर अपनी बुद्धिमे थकान न लाना चाहिए। कारण यह है कि जिन-जिन असत्योंमें हम आज तक बस रहे हैं, कुछ बुद्धि पाई तो उसका भी उपयोग असत्योमें लगाया है उन सब असत्योंमें यह ज्ञान करना होगा कि यह बात सत्य नहीं है। जब यह परिज्ञान होता तो जो रहस्यकी बात है उसपर कोई दृढ़तासे टिकाव होगा। इस समय आत्माके सम्बन्धमें माने गए अनेक कल्पित धर्मोंमेसे यह आत्मा सर्वगत है, इस विषयपर विचार चल रहा है। विशेषवादी आत्माको एक ओर सर्वव्यापक कह रहे हैं जितना आकाश है, उस सारे आकाशमें व्यापक है। कुछ थोड़ा बहुत पढ़े-लिखे लोग आत्माके विषयमें ऐसी कल्पना करते हैं पर जनसाधारण

ऐसी कल्पना नही करते कि आत्मा एक है और सर्वव्यापक है। धर्मके आवेशमे आकर जनसाधारण लोग कम पढे-लिखे लोगोकी बात सुनकर कहें यह बात अलग है, पर प्रतीति इसको स्वीकार नही करती कि एक मैं आत्मा सर्वव्यापक हूँ, क्योकि प्रत्यक्ष होनेसे विरोध आ रहा है। देखो ! प्रत्यक्षसे यह आत्मा इस तरहसे जाना जाता है— मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हू, मैं अमुकको जानता हूं आदिक सबको अपने आपके अन्दर प्रथक रूपसे अह अह प्रत्ययके द्वारा स्वय ज्ञात हो रहा है। इससे सिद्ध है कि आत्मा व्यापक नही है, किन्तु अपने ही देहमें सुख आदिक स्वभावसे उपस्थित है, ऐसी प्रतीति होती है। मैं आत्मा जरा बाह्य विकल्प छोड़कर अपने आपकी ओर जाकर इस आत्म तत्त्वकी दृष्टि करूँ। अपने आपके बारेमे कुछ समझना चाहू तो एक अस्त. आल्हादको लेकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह हूँ मैं और वह अनुभव देह प्रमाण निजक्षेत्रमे होता है। तो यह बात सब लोगोको अपने अपने सम्वेदनसे और प्रत्यक्षसे सिद्ध है किसीको भी ऐसा प्रतीत नही होता कि यह मैं आत्मा अन्य देहमे हू। जब कि आत्मा व्यापक है और मैं भी उसका अश हू तो एक अखण्ड व्यापक आत्माके बाहेमें यदि मैं अश ज्ञान करूँ तो ऐसा हो सकेगा क्या कि उस आत्माके इतने अशको तो मैं जान रहा हू और बाकी अशोको मैं नही जान रहा ? क्योकि वह अखण्ड है। जानकारी होगी तो समस्त वस्तुमे होगी।

एक वस्तुकी अखण्डता व व्यापिताके परिचयका उपाय—एक वस्तु उतनी कहलाती है कि एक परिणमन जितना पूरेमें होना ही पडे और जिससे बाहर कभी न हो। जैसे यह एक बेन्च है, इसके यदि एक कोनेमें आग लग जाय तो सारी बेन्चको एक साथ एक ही समयमे जल जाना चाहिए, पर ऐसा तो नही होता इससे सिद्ध है कि बेन्च एक चीज नही है। इस शरीरकी बात देखो ! यदि शरीरके किसी अगमें फोड़ा हो गया तो सारा शरीर तो नही सड जाता। इससे मालूम होता है कि यह शरीर एक नही है। तब फिर क्या है ? बेन्चोमें जो अविभागी परमाणु हैं वे केवल एक चीज है, और ऐसे ऐसे अनन्त अविभागी परमाणुवोका यह पुञ्ज हो गया है और बेन्चकी सकलमे है। एक जो होगा उसका परिणमन उस एकमे पूरेमे एक ही समयमे होगा। उस एक परमाणुमें जो बात बनेगी, रूप, रस गध, स्पर्श जो भी परिणमन बनेगा वह पूरेमें बनेगा। तो इस तरह जैसे कि अभी हम देह प्रमाण आत्मा हैं तो ज्ञान बनता है, तो ऐसा नही है कि नीचे पैरसे लेकर और नाभि तककी आधी आत्मामे तो ज्ञान परिणमन न होता हो और नाभिसे लेकर शिरतकके आधे आत्मामे ज्ञान परिणमन होता हो। अथवा आधी आत्मामें सुख परिणमन हो रहा हो और आधी आत्मामे दुख परिणमन न हो रहा हो, ऐसा नही है। यह मैं आत्मा देह प्रमाण हूँ। मेरा सुख होगा तो पूरेमें और दु ख होगा तो पूरेमे। वहाँ यह सम्भव नहीं है कि आधे आत्मामे सुख परिणमन हो और आधेमे ज्ञान परिणमन हो।

एक आत्माके ज्ञानपरिणमनका उस आत्मामे पूरेमे सद्भाव — यहाँ एक प्रश्न किया जा सकता है कि लगता तो है ऐसा कि शिर दिमागकी जगहके आत्मामें ज्ञान हो रहा है और पूरेमें रहने वाले आत्मामे ज्ञान नही हो र । है । तो ऐसा लगने का एक कारण निमत्तत्व है, वस्तुत यह बात नही है इस परिस्थितिमे, जब कि हम परतत्र हैं, कर्मबन्धनमे हैं, शरीरमे बंधे फँसे हैं, रागादिक विकारोंमे चल रहे हैं। ऐसी स्थितिमे यह आत्मा ऐसा परतत्र है कि यह ज्ञान करेगा तो इन्द्रिय आदिक निमित्तस ज्ञान करेगा। जैसे कि हम जब आँखें खोलकर देखते हैं तो हमे पदार्थोंका ज्ञान होता है और देखते समय लगता भी ऐसा है कि ये सब ज्ञान हम आँखोसे कर रहे हैं आखो मे कर रहे हैं, सब कुछ इनका सार आँखमें है, लेकिन आँखें तो पदार्थके जाननेके मात्र वाह्य साधन हैं। विवेक विचारसे आप परखेंगे तो यह ज्ञात होगा कि यह तो एक जाननेका साधन मात्र है। जानने वाला तो यह आत्मा है। पर साधन होनेके कारण हमारी जानकारीका सारा निचोड आँख तक ही प्रतीत हो रहा है, इसी प्रकार मानसिक ज्ञान मनके निमित्तसे होते हैं और मन अनवस्थित है। इस मनका विस्तार कहाँ तक है जहाँ तक कि उसका प्रभाव है। मन कहो, अथवा दिमाग कहो, एक ही बात है। उसके निमित्तसे हमको ज्ञान हुआ करता है। तो ऐसा लगता है कि साधनसे उद्भव होनेके कारण कि हमको ज्ञान यहाँ हो रहा है, पूरे आत्मामे नही हो रहा। आत्मा एक है, अखण्ड है और उस समस्त आत्मामें ज्ञान हो रहा है।

एक आत्माके सुखादि परिणमनका उस आत्मामे पूरेमे सद्भाव—सुख अथवा दुःखके बारेमे भी यह शका की जा सकती है। देहमें किसी जगह दुःख हुआ, दर्द हुआ तो लोग कहते कि देखो इस जगह जो आत्मा है उसमें दर्द है, सारे आत्मामे दर्द का अथवा दुःखका परिणमन नही है, ऐसा लग रहा है। तो ऐसा लगनेका कारण यह है कि उस दुःख अथवा दर्दकी वेदनाकी उत्पत्तिका साधन वह फोडा है। फोडा है शरीरके किसी एक जगह। तो जो साधन है वहाँ ही दृष्टि जाती है, अतएव ऐसा मालूम होता है कि यहाँ हमको दुःख है। वस्तुत आत्मामे दुःख परिणमन होगा तो समस्त आत्मामें होगा, सुख परिणमन होगा तो पूरेमें और ज्ञान परिणमन होगा तो पूरेमे।

आत्माको सर्वगत माननेपर देहान्तरमे व अन्तरालमे सुखाद्यनुभवनका प्रसग—अब यदि परिणामी सर्वव्यापक मान लिया जाय तो परसम्बन्धित जो देह है जिस देहमे दूसरा आत्मा रह रहा है स्वयके जान लेनेसे उस आत्मासे इतना बोध तो नही होता कि यह मैं हूँ अथवा मैंने जो जाना सो ये अन्यदेहस्थ जाना जावे मैंने जो सुख दुःख पाया सो ये भोग लूँ ऐसा नही होता है। जैसे देहान्तरमें स्वयके आत्माकी प्रतीति नही होती है इसी प्रकार एक देहके अपने देहमें अन्य देहके बीच जो खाली जगह पडी हुई है, अन्तराल उसमें आत्मारूपसे चिन्तन नही होता है। ऐसे भिन्न-भिन्न

देहोमे आत्माकी जुदा जुदा प्रतीति हो रही है। यदि ऐसा न हो याने सबका आत्मा अपने अपने देह प्रमाण न हो तब सब लोगोको सब ही जगहमे आत्मारूपसे प्रतीति हो जानी चाहिए क्योकि आत्मा एक सर्वव्यापक मान लिया गया है एकका लक्षण ही यह है कि जो भी परिणमन हो वह पूरेमे हो। ज्ञान हो तो मुझे सबके आत्मा सम्बन्धी ज्ञान हो जाने चाहिएँ, सबको हो जाना चाहिए, सबके ज्ञानका मुझे ज्ञान हो जाना चाहिए, एक बात, फिर दूसरे सबने खाया तो हमे भी तृप्त हो जाना चाहिए। जैसे लोग कहते भी हैं कि आइये साहब भोजन कीजिए तो वह आगतुक-पुरुष कह देता है कि ठीक है आपने खाया तो हमने खाया। तो यह बात अब सगत बन जाना चाहिए। तो भोजन आदिकका जो व्यवहार चल रहा है भिन्न-भिन्न रूपोसे तृप्तिका, सुख, दुःखका, इन सबमे सकरता आ जायगी, सब कुछ एक रूप बन जायगा। तो आत्मा सवगत नही है, आत्मा देह प्रमाण है यह बात अपने अपने अनुभवसे सिद्ध है। ऐसा जानकर हम अपने आपके ही अपने आपके रहस्योको खोजें, समझें। यद्यपि अपने अन्त. स्वरूपकी समझ बनानेसे हम देह प्रमाण हैं यह भी ख्याल भूल जायगा। केवल एक गुण दृष्टि ही रहेगी। स्वरूप दृष्टि ही रहेगी। सो ऐसी स्वरूप दृष्टि पालेना हमारे सर्वज्ञानोका प्रयोजन है, तो ऐसा अपने-आपमे ततको जाननेके लिए अर्थात् अमूर्त प्रतिभास मात्र निर्विकल्प यह मैं हू ऐसी प्रतीति बनानेके लिए आत्मतत्त्वकी जानकारी अति आवश्यक है। उस ही आत्मतत्त्वके सम्बन्धमे भिन्न-भिन्न सिद्धान्त वाले क्या क्या अपने विचार बनाते हैं और किस तरहसे उनकी समस्यायें सही अथवा गलत बैठती हैं, इन सबका विचार यहाँ चल रहा है। इस प्रसंगमे एक यह बात भी विचारणीय रख लीजिये कि आत्मा सर्वव्यापक है, यह भी किसी दृष्टिसे सही है, इसको अन्तमे बतलॉंगे। अभी तो प्रदेशापेक्षासे, वस्तु अपेक्षासे आत्माकी बात कही जा रही है कि आत्मा सवव्यापक नही किन्तु वर्तमानमे देह प्रमाण है।

"आत्माका अणुपरममहापरिमाणानधिकरणत्व सिद्ध करने वाला प्रथम अनुमान — विशेषवादी आत्माको सर्वव्यापक मानते हैं। आत्मा एक है और वह सर्वव्यापक है। सवगतत्व धर्मका प्रयोग अनुमान विशेषसे भी सिद्ध होता है, जैसे कि अनुमान है कि आत्मा परम महापरिमाणका अधिकरण नही होता, अर्थात् जिसमे उत्कृष्ट महान परिमाणसे इस तरहका आत्मा नही है क्योकि अन्य द्रव्योमे न पाये जाने वाले सामान्यसे युक्त होकर अनेक पाये जाते हैं आत्मा, जैसे कि घट पट आदिके घटका सामान्य पटमे नही है, और फिर अनेक हैं, इस कारण घटका परिमाण परम महान नही हो सकता, इसी तरह आत्माका सामान्य अन्यमे नही पाया जाता। आत्मा मे जो सदृश धर्म है चैतन्य, चैतन्य ज्ञान दर्शन, यह सामान्य अन्य द्रव्योमें नही है, विशेषवाद सम्स्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, मन इन ८ द्रव्योमें आत्मामे पाया जाने वाला सामान्य गुण नही है तो अन्य द्रव्योमे न पाने वाला सामान्य गुण नही है। ता अन्य द्रव्योमे न पाया जाय ऐसा सामान्य है आत्मामे और तिस

पर यह अनेक है, अतः आत्मा परममहापरिमाण वाला नहीं है। इसका सीधा निष्कर्ष यह है कि आत्मा अनेक हैं क्योंकि सबका अपने आपमें अनुभव चल रहा है।

स्वभावदृष्टिसे आत्माके एकत्व व व्यापकत्वका दिग्दर्शन—आत्मा किसी दृष्टिसे एक व व्यापक भी सिद्ध हो जाता है, किन्तु वह है भावदृष्टि। आत्माको किस स्वरूपसे एक माना है, व्यापक माना है? वह स्वरूप है आत्मामें पाया जाने वाला चैतन्यस्वरूप, जो एक है क्योंकि एकका अर्थ सख्या नहीं, किन्तु समान है, एक शब्द समान अर्थमें भी बोला जाता है और सख्यामें भी बोला जाता है जैसे—दो कपड़े एकसे हैं तो कहते हैं कि ये दोनों एक ही चीज हैं। अरे दो एक कैसे हो गए? हैं तो दो ही हैं लेकिन समान हैं ये। उनकी डीजाइन, मजबूती, भाव आदिक सब एक बराबर हैं अतएव कहते हैं कि ये दोनों एक ही कपड़े हैं। इसी प्रकार जितने आत्मा हैं हम आप सब इन सबका स्वरूप पूर्णतया एक है। रंच भी फर्क हो इतनी भी गुंजायस नहीं है। यद्यपि इन सब आत्माओंमें अनेक जीव भव्य हैं अनेक जीव अभव्य हैं, अर्थात् जो मुक्तिके पात्र हैं वे भव्य हैं और जो मुक्तिके पात्र नहीं वे अभव्य हैं, इतना अन्तर होनेपर भी स्वरूपकी दृष्टिसे देखो तो उन दोनों जीवोंके स्वरूपमें रच मात्र भी अन्तर नहीं है याने वे एक समान हैं। अब ऐसा जो यह चैतन्य स्वरूप है जो कि एक है वह एक व्यापक है। ऐसा चैतन्यस्वरूप जिस उपासककी दृष्टिमें रहता है उस उपासककी दृष्टिमें क्या उस स्वरूपकी सीमा भी रहती है कि यह चैतन्यस्वरूप और इतना बड़ा? चैतन्य आत्मामें तो सीमा होती है पर आत्माके स्वरूपमें सीमा नहीं होती। जैसे जल का स्वभाव ठंडा लोक रूढ़िमें कहते हैं तो जलकी तो सीमा है आधा सेर जल, सेर भर जल, लेकिन जलके स्वभावकी सीमा नहीं है। जलका स्वभाव ठंडा है। तो ठंडे की क्या सीमा आकाररूपमें, इसी प्रकार आत्माकी तो सीमा है, आत्मा व्यापक नहीं है, पर आत्माके स्वभावकी सीमा नहीं है जिस उपासककी दृष्टिमें आत्म स्वभाव आया हुआ है उसे यह ख्याल नहीं कि यह स्वभाव यहाँ तक है इससे आगे नहीं है, उसका तो स्वभावमय उपयोग चल रह है। तो स्वभावमें सीमा नहीं है इस दृष्टिसे व्यापक है। और समस्त आत्माओंका स्वरूप पूर्णतया समान है इस दृष्टिसे एक है। अब कोई पुरुष इस रहस्यको जल्दी जाननेके लिए उस स्वभावका तो नाम रखे आत्मा और इस चैतन्य पदार्थका नाम रखे जीव तो यह उसके समझनेका एक चुनाव है, पर वाच्यको तत्त्वको जाननेका प्रयोजन है। शब्द चाहे कुछ भी कहें यदि स्वभावका नाम आत्मा रखकर कहें कि आत्मा एक और व्यापक है ठीक है, मान लिया जायगा, और जो जीव है वे अनेक हैं और अव्यापी हैं, लेकिन इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि जो चैतन्य पदार्थ है वह पदार्थ तो अनेक है और मावान्तर प्रमाण वाला है अर्थात् न परिमाणुकी तरह एक प्रदेशी है और न आकाशकी तरह सर्वगत है, किन्तु मावान्तर परिमाण वाला है। हां उसमें जो स्वभाव है चैतन्य, वह एक है और व्यापक है। लेकिन यह व्यापकपना क्षेत्रकी अपेक्षासे नहीं है। स्वभावका परिज्ञान क्षेत्र दृष्टिसे

होता ही नही है तब फिर स्वभावको व्यापक समझनेके लिए क्षेत्र जैसी दृष्टि दौड ये तो यह बेतुकी बात होगी। स्वभाव भाव दृष्टिसे ही जाना जाता है। तब चेतनका जो भाव है, जो स्वरूप है उस ही स्वरूपपर उपयोग रखा जाय, एक प्रतिभास स्वरूप तो इस प्रतिभास स्वरूपपर दृष्टि होनेपर दृष्टाके उपयोगमे स्वभाव ही बसा हुआ है अथवा उसका उपयोगमे उस कालमे स्वभावमय है, वहाँ सीमा नही है। इस रहस्यको न मानकर सीधा ही चेतन्य पदार्थको एक और सर्वव्यापक माना जाय तो उसमें ये आपत्तियाँ बतायी जा रही हैं।

आत्माका अणुपरम महापरिमाणानधिकरणत्व सिद्ध करने वाले प्रथम अनुमानके हेतु विशेषणोकी सार्थकता – आत्मा अनेक हैं, चेतन पदार्थ अनेक हैं, चेतने वाले समझने वाले, यो उन्हे जीव शब्दसे कह लीजिए तो वे सब अनेक हैं, क्योंकि इनमे जो सामान्य पाया जाता वह अन्य द्रव्योमे नही है और ये जीव अनेक हैं, ये जीव इस कारणसे सर्वगत नही हैं। तब सिद्ध यह किया जा रहा है कि आत्मा परम महापरिमाण वाला नही है। परम मायने उत्कृष्ट, महान मायने विशाल, उत्कृष्ट विशाल परिमाण वाला नही है आत्मा किन्तु आवान्तर परिमाण वाला है, क्योंकि द्रव्यान्तरमे न पाये जाने वाले सामान्यसे युक्त होकर अनेक होनेसे। यहा हेतु विशेषण सहित है, हेतु तो मुख्य है 'अनेक होनेसे'। जो अनेक होता है वह सर्वगत नही होता, लेकिन इतना ही मात्र हेतु कहते कि अनेक होनेसे आत्मा सर्वगत नही है। तो अनेक तो सामान्य भी है। जैसे—मनुष्यमे क्या पाया जाता है? मनुष्यत्व। और घटमे घटत्व। इसी प्रकार जितने भी पदार्थोंके नाम लोगे उनमे उतने ही सामान्य बताते जावो। तो सामान्य अनेक हो गए ना, सदृश धर्मको सामान्य कहते हैं। सामान्य अनेक होनेपर भी सामान्य व्यापक है ना, जितने उस जातिके पदार्थ हैं उन सब पदार्थों में व्यापक है सामान्य। यहाँ तो यह कहा जा रहा कि जीव व्यापक नही है, क्योंकि अनेक होनेसे। तो अनेक होनेसे इतना ही मात्र कहनेपर सामान्यके साथ विरोध आता है सामान्य है तो व्यापक मनुष्यत्व। क्या एक मनुष्यमें ही नियमित रह गया मनुष्यत्व यहाँके मनुष्य जैसे मनुष्य जहाँ भी बसते हो वे सब मनुष्य उन सबमे मनुष्यत्व पाया जाता है तो सामान्यके साथ अनेकान्त दोष नहीं हो, इसके अर्थ याने अनेकान्त दोषके परिहारके लिए इसमे विशेषण दिया है। जो सामान्य वाला होकर अनेक हो वह नही है सर्वव्यापक। सामान्य वाला नही है, सामान्य। सामान्य खुद सामान्य है। जैसे मनुष्यमे क्या सामान्य है? मनुष्यत्व तो मनुष्यत्वमे क्या सामान्य है? क्या कोई कहेगा यो मनुष्यत्व त्व? कोई लोग भूलसे यो बोल जाते हैं, मनुष्यत्वपना, अरे पना और त्व इन दोनोका एक अर्थ है। सामान्यमें सामान्य नही हुआ करता। इस कारण डबल त्वका प्रयोग गलत है। सामान्य हो जाय तो वह सामान्य नही रह सकता, वह विशेष हो जायगा, तो यहाँ हेतुके साथ एक विशेषण यह दिया गया है कि सामान्य वाला होकर अनेक है। यदि सामान्य वाला, इतना कहें तो आकाशके साथ व्यभिचार

आता है। देखो ! आकाश तो सामान्य वाला है ना, आकाश द्रव्य है और जो द्रव्य होता है वह सामान्य विशेषात्मक हुआ करता है। आकाश अमूर्तिक पदार्थ है इस कारण हम उसमे सामान्य विशेषका स्पष्ट विश्लेषण नही कर सकते। लेकिन द्रव्यके नाते उसमे सामान्य धर्म है और विशेष धर्म है, थोडा समझ भी लें—सामान्य धर्म तो उसमे अनेक हैं अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व ये सब पदार्थोंमें ६ साधारण गुण पाये ही जाते हैं, सो सामान्य आकाशमें है ही और विशेष भी है, देखो, आकाश सबके सब द्रव्योके अवगाहका कारण बन रहा है। आकाशमें समस्त द्रव्य समा जाते तो आकाश विशेष वाला भी है और सामान्य वाला भी हुआ ना। सामान्य वाला होकर भी आकाशमे सर्वगतत्वका अभाव नही है, इस कारण इस हेतुके साथ एक विशेषण और दिया गया है द्रव्यान्तरमें न पाये जानेवाले सामान्यसे युक्त होकर। जब हेतु इतना ही माना जाय "सामान्य वाला होकर" इससे आत्मा सर्वव्यापक नही है तो इसमे व्यभिचार दोष आता है आकाशके साथ। तो उसमें एक विशेषण और लगाया कि द्रव्यान्तरमे न पाया जाने वाला सामान्य वाला होना। अर्थात् विवक्षित द्रव्य है आत्मा उससे भिन्न द्रव्य है आकाश उस आकाशमे न पाया जाय ऐसा सामान्य वाला हो तो वहाँ यह हेतु लगेगा, पर आत्मामे जैसा सत्त्व द्रव्यत्व है वैसा आकाश मे भी सामान्य है। अत असाधारणत्व विशेषण वाला हेतु आकाशमे नही रहा अनेक पना नही है इससे दोष निवृत्ति हो जायगी। प्रयोजन यह है कि आत्मा सर्वगत नही है अर्थात् एक ही आत्मा हो और सारे आकाशमे फैला हुआ हो ऐसा नहीं है।

आत्माका अणुपरममहापरिमाणानधिकरणत्व सिद्ध करने वाला द्वितीय अनुमान—इस प्रकरणमे जिन भाइयोने यह सुन रखा है या निश्चय कर रखा है कि आत्मा सर्वगत है और एक है, उन्हें यह स्मरण कर लेना चाहिए कि इस प्रसंग मे कि आत्माका स्वभाव एक है और वह व्यापक है। आत्मद्रव्य जिसमें कि परिणमन होता है, गुण हुआ करता है अर्थक्रिया हुआ करती है वह आत्मा नामक पदार्थ एक और सर्वगत नही है। अब आत्माको असर्वगत सिद्ध करनेके लिए दूसरा हेतु देते हैं कि आत्मा सर्वगत नही है, परम महान परिमाणका आधार नही है, क्योकि दिशा, काल, आकाशसे भिन्न होकर द्रव्य होनेसे। यह समझाना हो रहा है वैशेषिकोंके लिये जिनके आशयमे ६ प्रकारके द्रव्य माने गये हैं जिनमें दिशा आकाश काल और आत्मा इन चार द्रव्योको तो माना है सर्वव्यापक। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन इन ५ द्रव्योको माना है अव्यापक। उनके प्रति यह सब कहा जा रहा है। अतएव हेतुमे दिशा शब्द भी कहा, काल शब्द भी कहा। यद्यपि दिशा नामका कोई द्रव्य नही है और काल नामका द्रव्य तो है, किन्तु वह अणुप्रमाण है, एक प्रदेशी है। हाँ, आकाश नामक द्रव्य सब एक है और सर्वव्यापक है, किन्तु वैशेषिकोको समझानेके प्रसगमें हेतु दिया जानेसे दिशा आकाश, काल इनसे भिन्न होकर द्रव्य है यह आत्मा इस कारण वह सर्वगत नही है यो कहना पडा। आत्मा सर्वगत नही है क्योकि द्रव्य होनेसे।

इतना म त्र कहनेसे आकाशमे दोष पहुचता है । द्रव्य तो आकाश भी है पर वह सर्व व्यापक है और वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार दिशा और कालमे भी दोष पहुचता है। देखो ! दिशा भी द्रव्य है पर वह अव्यापी तो नही, इससे यह कहा कि जो न दिशा है, न आकाश है न काल है फिर भी द्रव्य है, अतएव आत्मा सर्वगत नही है । व्यापक सामान्य भी होता है लेकिन सामान्य द्रव्य नही कहलाता, किन्तु सामान्य धर्म है इस कारण सामान्यके साथ दोष न आयगा । दिशा, आकाश, कालके साथ भी दोष नही है, क्योकि उससे अन्य है यह हेतुका विशेषण दिया गयाहै । तब पूर्व हेतु हुआ यह कि दिक्कालाकाशमे अन्य होकर द्रव्य है आत्मा, इस कारण आत्मा सर्वगत नहीं ।

अनुभूतिसे आत्माकी अनेकताकी सिद्धि -आत्मा आवान्तर परिणाम वाला है । हम अपने अपने आपको देखें तो देह प्रमाण आकारमे देखें ! स्वभावदृष्टिसे देखे तो देहप्रमाणका भी बन्धन तोड दें विकल्प आकारका विचार ही नही, किन्तु एक भावमात्रको निरखें । आत्माको दो दृष्टियोसे तका जा रहा है, एक तो आकारकी दृष्टिसे और एक स्वभावकी दृष्टिसे, जितना परिमाण आकाशका है उस समस्त आकाश में फैला हुआ है ऐसी सर्वगतपनेकी सिद्धि आकारसे की जा सकती है । लेकिन आकार की अपेक्षासे आत्मा सर्वगत नही है । एक आत्मा यदि सर्व देहियोमें ही रहने वाला है तो जैसे कि पहिले कहा गया कि एक कुछ विचार करे तो वह विचार सबके बने, दूसरा कोई भी एक विचार बनाये तो वह विचार सबके बने । एक बाँस होता है, उसका एक कोना हिलाया जाय तो केवल एक ही कोना हिले, बांस न हिले, ऐसा कभी देखा है क्या ? वह तो सारा ही बाँस हिलता है । एक कहते ही उसे हैं जिसमें जो एक परिणमन हो वह पूरेमे हो । तो मैं जो विचार करूँ वह सबका न बने, कोई विचार करे वह मेरा न बने । यह प्रतीतिमे सबके है । इससे आत्मा अनेक हैं सबके अनुभव,जुदे-जुदे हैं । और फिर आत्मा एक होनेपर व्यवहारका भी विभाग न रहेगा भोजन किया एक ने तो इसके मायने है कि सबने कर लिया, तब फिर कई लोग ऐसे हैं कि जो बहुत खाया करते हैं, तब किसी भी आत्माको दुःख न रहना चाहिए तो इन सब अनुभवोसे यह जाना जाता है कि आत्मा पदार्थ तो आवान्तर परिमाण वाला है अणुपरिमाण वाला भी नही है, परमाणुका परिमाण है, एक प्रदेश । सूईकी नोक यदि कागजपर गाड दी जाय तो उसपर जितना गड्ढा हुआ है, उतनेमे अनगिनते प्रदेश हैं अर्थात् जगहका अविभागी अश । जैसे एक हाथ परिमाण डडा है तो उसके विभाग हो सकेंगे ना ! दो विलस्तका होगया फिर एक विलस्तके १२ अगुल हो गए । एक अगुलमें ४-५ सूत हो गए, एक सूतमे भी अनेक विभाग हो जाते हैं । यो विभाग करते-करते अविभागी अश तो न बनेगा, किन्तु विभाग होते-होते जो आखिरी अवि भागी अश हो उसे कहते हैं एक प्रदेश । तो उस एक प्रदेशमात्र है परमाणु और परमाणुमात्र आत्माको मानने वाले भी कुछ लोग हैं । जो अणुपरिमाण आत्माको मानते हैं उनसे कोई यह प्रश्न करे कि हमको तो आत्मा बहुत विशाल मालूम होता है, देह

प्रमाण लग रहा है। जब हम सुखी होते हैं तो इतने परिमाणमे सर्वत्र आनन्द छा जाता है। और, आत्मामें जो आनन्दके सम्पर्कसे देहके सारे रोम खड़े हो जाते हैं, आत्मा अणुप्रमाण कैसे है ? तो उनका उत्तर यह है कि आत्मा इतनी तीव्र गतिसे निरन्तर चक्कर लगाता रहता है देहमें कि लोग यह भ्रम कर बैठते हैं कि आत्मा इतना बड़ा है, यह भी एक सिद्धान्त है। इसकी भी चर्चा आयगी। प्रकरणमे यह कहा जा रहा है कि आत्मा न तो परमाणु परिमाण एक प्रदेशी है और न आकाशके समान सर्वगत है किन्तु आवान्तर परिमाण वाला है।

सदेह परम आत्माकी एक समयके लिये लोकपूरणकी स्थिति—आत्मा आकाश बराबर व्यापक तो कभी भी नही हो सकता, केवल लोकाकाश बराबर आत्मा एक समयके लिए किसीका एक ही बार हो सकता है। जो साधु ऋषी संत स्वभाव दृष्टिसे आत्माका परिचय पाकर स्वभावमें ही रत हो गए वहाँ स्वभावलीनताविशेषके कारण आत्मामे भव-भवके बँधे हुए कर्म स्वय झड़ जाते हैं। देखिये ! इसमें रच भी सन्देह नही है। आत्मा जब अपने स्वभावको दृष्टिमे लेता है और स्वभावमे उपयोग रम जाता है तो यह निमित्त नैमित्तिक विधि ही ऐसी है कि वे कर्म सब गड़बड़ा जाते हैं, शिथिल हो जाते हैं और झड़ने लगते हैं और उनमे विचित्र परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तनका कोई अन्य विधिसे कर नही सकता। अष्ट कर्मोंका ध्वंस तेज अग्नि जलाकर, उसमे दशांग धूप डालकर कोई करना चाहे तो वह न होगा। कोई अपने अष्ट कर्मोंपर दोष करके जैसे कि कहते हैं कि पुण्य पापने बेडी डाल दी है, हमको हैरान कर दिया है, उन कर्मोंपर रोष करके और यह जानकर कि यहाँ बड़ा बन्धन है स्त्री, पुत्र, वैभव आदिकके रागसे तो उन कर्मोंसे छूटनेके लिए इन स्त्री पुत्रादिकको छोड़कर कही भग जाये, तो ऐसा करनेपर भी वे कर्म न खिरेंगे। यह काम तो उसने रागवश और द्वेषवश किया है। कर्मोंके खिरनेका उपाय स्वरूप दर्शन, स्वरूपरमणके सिवाय अन्य कुछ नही है। जो ऋषीसत एक आत्म स्वभावकी धुन रखते हुए स्वरूप दर्शन करके स्वभावमें ही लीन हो गए उनके घातिया कर्म, विकट कर्म दूर हो जाते हैं। तब देहमें रहते हुए भी वे ऋषि परम आत्मा बन जाते हैं। इस आत्मामे यह परमपना आनेसे ऐसा एक चमत्कार होता है कि वह शरीर भी स्फटिक मणिकी तरह शुद्ध और स्वच्छ कान्तिमान हो जाता है और फिर यह शरीर छायाका कारण नही बनता। प्रभुके शरीरकी छाया नहीं होती। तब वह शरीर ऐसा स्थिर होता है कि उनके आँखोंके पलक भी नही गिरते उठते। हम आपके तो ये पलक गिरते उठते ही रहते हैं कुछ पता भी अपनको नही पड़ता। तो इसमे रागका, अपनी कमजोरीका असर है। हम आपमें राग चल रहा है, इस कारण पलकोंका गिरना उठना हो रहा है। प्रभु तो अब वीतराग सर्वज्ञ हो चुके अतएव अब उनके पलक गिरते उठते नही हैं। इतनी धीरता उनमे होती है। कुछ लोग मानते हैं कि भगवान लोगोसे मिलते भी हैं, बातचीत भी कर लेते हैं। लेकिन, वे प्रभु इस पृथ्वीपर नही चलते हैं, स्वभावत

भी गतिशील हैं वे न तो अणु बराबर हैं और न आकाशवत् सर्वव्यापक है यद्यपि अणु एक प्रदेशी होकर भी क्रियावान अवश्य है, तथापि प्रसगमें एक व्यवहारिक साध्य है अणुकी गतिशीलता पुरुषकी चाहके अनुकूल नहीं है न प्रयोगाश्रित है, वह स्वयं अपने आप ही अपने निमित्तसे गमन कर रहा है। जैसे वाण आदिक जिस किसी भी दिशा से छोड़े जायें तो वे क्रियावान हैं, आवान्तर परिमाण वाले हैं इसी प्रकार यह आत्मा भी सर्वत्र जा रहा है अत क्रियावान है। मैं एक योजन चला, मैं एक कोश चला, इस प्रकारके गमनागमनकी जो प्रतीति हो रही है इससे भी सिद्ध है कि आत्मा क्रियावान है। और जब क्रियावान है आत्मा तो यह आवान्तर परिमाण वाला है। आवान्तरका अर्थ है परम महान परिमाणके भीतर व अणु परिमाणके ऊपर कुछ हो परिमाण वाला। यहाँ शकाकार कहता है कि मन और शरीर ये भी तो आते जाते हैं तो उनमें यह शरीर तो आवान्तर परिमाण वाला है यह तो बात प्रसिद्ध है लेकिन मन तो अणु परिमाण वाला क्रियावान होरहा है मन आया मन गया तब तुम्हारा हेतु सदोष होगया उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। मनके बारेमें किसीको अह प्रत्ययकी मुद्रा नहीं उठती। मैं आया, मैं गया ऐसा मैं के द्वारा जो वाच्य हो रहा है वह आत्मा है मन नहीं है। यदि मनको ही मान लिया जाय आत्मा और फिर मन अणु परिमाण है ऐसा मानकर दोष दिया जाय तो इ मे लौकिकमतका प्रसग आ जायगा। अर्थात् मन ही जीव बन गया। चारुवाक् सिद्धान्त आ जायगा, फिर जीव कुछ नहीं रहा। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके सयोगसे चेतनकी उत्पत्ति होती है, फिर इस सिद्धान्तमे और मनको आत्मा माननेमें जिसमें कि हेतुका दोष देते तो उस सिद्धान्तमें और इसमें फिर फर्क न रहेगा। यह आत्मा क्रियावान है, इसमें प्रत्यक्ष काम देता है और अनुमानसे भी सिद्ध होता है कि जो जो क्रियावान हो वह वह आवान्तर परिमाण वाला हुआ करता है। आत्मा क्रियावान है इस कारण यह अणु प्रमाण व आकाशवत् महान नहीं है अर्थात् आकाशवत् सर्वव्यापक नहीं है। इसी बातको अब चतुर्थ अनुमानस सिद्ध करते हैं।

चतुर्थ अनुमानसे आत्माके अणुपरममहापरिमाणानधिकरणत्वकी सिद्धि

आत्मा परम महान परिमाणका अधिकरण नहीं है अर्थात् आवान्तर परिमाण वाला है चेतन होनेसे। जो-जो आवान्तर परिमाण वाले नहीं होते वे चेतन भी नहीं हैं। जैसे आकाश और परमाणु आदिक। जहाँ द्रव्यकी ये ६ जातियाँ मानी हैं—जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। वहाँ भी आप व्यापकताका माध्यम लोकाकाश मानकर यह परखलेंगे कि आवान्तर परिमाण वाला कोई जीव पदार्थ ही होता है उन छह द्रव्योंमेंसे। पुद्गल एक प्रदेशी है। स्कधको देखकर सख्यात असख्यात् अनन्त प्रदेश कहना यह उपचरित कथन है। शरीरमें भी यह परमाणु ही पुद्गल है। तो पुद्गल एकप्रदेशी है। धर्मद्रव्य महापरिमाण वाला है। यह लोकाकाशके बराबर है, इसका महा परिमाण लोकाकाशके बराबर समझना। अधर्म द्रव्य महापरिमाण

वाला है। आकाश परम महापरिमाण वाला है और कालद्रव्य एक प्रदेशी है। केवल जीवद्रव्य ही ऐसा है कि जिसका अवान्तर परिमाण है। चेतन होनेसे भी यह सिद्ध होता है कि आत्मा अवान्तर परिमाण वाला है। यह चर्चा वैशेषिक सिद्धान्त वालोसे की जा रही है। वैशेषिक सिद्धान्तवाले धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको मानते ही नही। तो उनकी दृष्टिसे आकाश और परमाणु दो ही उदाहरण दिये जा सकेंगे। आत्मा एक प्रतिभासस्वरूप पदार्थ है, जिसका कार्य जानन है। और प्रकाशमात्र जो पदार्थ होता है वह पदार्थ उपाधिका निमित्त पाकर सकोच और विस्तार धर्मको लिए हुए हुआ करता है। जैसे दीपक घडा आदिक आवरणका निमित्त पाकर दीपक, घडे परिमाण वाला रहता है। यदि कोई वडी सीमाका पदार्थ आवरणमे हो, कमरेमे रख दिया तो कमरा प्रमाण प्रकाश है, बाहर रख दिया तो कुछ और अधिक प्रकाश है। यो ही समझिये कि आत्मा है प्रकाशस्वरूप। इसमें विकास है चैतन्य जातिका, तो जब जब जिस जिस देहमे वसता है उस देह प्रमाण इस आत्माका परिमाण होता है।

आत्माके अणुपरममहापरिमाणानधिकरणत्वके विरुद्ध शङ्काकारकी शङ्का—शङ्काकार कहता है कि जो यह प्रतिज्ञा की गई है कि आत्मा उत्कृष्ट महान् परिमाणका अधिकरण नही होता। यह प्रतिज्ञा अनुमानसे बाधित है। उसका बाधक यह अनुमान है कि आत्मा व्यापक है, अणुपरिमाणका अनधिकरण होनेपर नित्य द्रव्य होनेसे आकाशकी तरह। जैसे कि आकाशका अणुपरिमाणका अनधिकरण है अर्थात् अणु बराबर उसका परिमाण नही है और फिर नित्य द्रव्य है अतएव व्यापक है। इसी प्रकार आत्मा परमाणु बराबर तो है नही और है नित्य द्रव्य, इस कारण व्यापक हो जायगा। यह आत्मा अणुप्रमाण परिमाणका अधिकरण नही है, यह बात हम लोगोके प्रत्यक्ष विशेष गुणका आधार होनेसे सिद्ध है घट पट आदिककी तरह। जैसे घट आदिक हम लोगोके प्रत्यक्षमे आ रहे हैं और अणुपरिमाण भी नही है। अब आत्माके नित्यत्वका परिचय करलें आत्मा नित्य द्रव्य है, क्योकि अस्पर्शवान द्रव्य होनेसे। जैसे कि आकाश अस्पर्शवान द्रव्य है इस कारण नित्य है। यो शकाकारने आत्माको परम महापरिमाणका अधिकरण सिद्ध करनेके लिए हेतु दिया है।

अणुपरिमाण प्रतिषेधके परममहापरिमाणरूप पर्युदास अर्थमे हेतुकी साध्य समताका दोष—इस शकाका अब समाधन करते हैं कि इस शकाकारने जो हेतु वनाया है कि अणु परिमाणका अनधिकरण होकर भी नित्य द्रव्य होनेसे तो आत्मा में जो अणु परिमाणका निषेध किया है सो क्या यह पर्युदास रूप है या प्रसज्यरूप ? पर्युदास कहते है एकका अभाव अन्यके सद्भाव रूपसे बतानेको और प्रसज्य कहते हैं कि उस अभावके अन्दर कुछ भी न समझना, केवल तुच्छ अभाव। तो इन दोनो भावोमेंसे यदि पर्युदासरूप प्रतिषेध मानते हो तो पर्युदास होता है अन्य भावोके स्वीकार पूर्वक। यहाँ कर रहे हो अणु परिमाणका निषेध, जिसका अर्थ होता है कि

अणु परिमाण रूप तो नही है, किन्तु अणु परिमाणसे भिन्न परिमाण वाला है तो अणु परिमाणमे जो भिन्न परिमाण वाला पर्युदासमें सिद्ध हो रहा है तो वह भिन्न परिमाण क्या है ? क्या परममहापरिमाण वाला सिद्ध कर रहे हो या आवान्तर परिमाण वाला याने अणु परिमाण नही, महा परिमाण नही किन्तु उसके बीचके परिमाण वाला। यदि अणु परिमाणके प्रतिषेधको पर्युदास रूप मानकर परम महा परिमाण रूप मानना चाहते हेतुमें कहकर तो यह तो हेतुका विशेषण साध्यसम हो गया। अर्थात् साध्य सिद्ध करना चाहते हो परम महा परिमाण और हेतु भी दे रहे हो परम महा परिमाणका, क्योंकि अणु परिमाणका प्रतिषेध करके परम महा परिमाणको तो विवक्षित बना रहे हो। जैसे कोई कहे कि शब्द अनित्य है अनित्य होने पर बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे। तो साध्यमे भी अनित्यपना सिद्ध कर रहे हो और हेतुमे भी अनित्यपना ही बता रहे हो तो यहाँ भी जैसा ही तुम साध्यको सिद्ध करना चाहते वैसा ही तुम हेतु बना रहे हो तो यह हेतु साध्यसम होनेसे साध्य साधक नही बनता, इस प्रकार शंकाकारने जो अनुमान बनाया कि आत्मा व्यापक है अणु परिमाण वाला न होनेपर नित्य द्रव्य होनेसे। तो अणु परिमाण वाला नही, इसका अर्थ ने लिया परम महापरिमाण वाला, तो सीधा यही तो निष्कर्ष निकला कि आत्मा व्यापक है व्यापक होनेसे। तो साध्यसम हेतु भी क्या हेतु कहला सकता है ? इस कारण अणु परिमाण प्रतिषेधका पर्युदास रूप अर्थ करके परम महापरिमाण हेतुमें नही कह सकते।

अणुपरिमाण प्रतिषेधका आवान्तर परिमाणरूप पर्युदास अर्थ हेतुकी विरुद्धता—यदि दूसरा पक्ष लेते हो कि अणुपरिमाणका प्रतिषेध करके हम आवान्तर परिमाण ले रहे हैं तब तो यह विरुद्ध हेतु हो गया। शंकाकार के लिए विरुद्ध हेतु हो गया। जैसे कि कभी कोई कहे कि शब्द नित्य है अनित्यत्व होनेपर बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे। तो हेतु दे रहे हो अनित्यपनेका और सिद्ध करना चाहते हो नित्य पना। अनित्यपनेकी व्याप्ति अनित्यसे ही तो होगी। तो अनित्यत्व हेतु देकर सिद्ध तो होगा साध्यका विपरीत अर्थात् साध्य यदि है नित्य और होगा अनित्य ही सिद्ध तो इसी तरह इस हेतुमें कि आत्मा व्यापक है अणुपरिमाणका अनधिकरण होनेपर अर्थात् आवान्तर परिमाण वाला होनेपर नित्य द्रव्य होनेसे। तो जब आवान्तर परिमाण वाला यह हेतु कहकर ही स्वीकार करलिया तो फिर उससे व्यापक मानना यह विरुद्ध हो गया। इससे अणुपरिमाण प्रतिषेधका पर्युदासरूप अर्थ ठीक नही बैठता।

अणुपरिमाणप्रतिषेधके प्रसज्यरूपत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि अणु परिमाणप्रतिषेधको प्रसज्यरूप मानेंगे। प्रसज्य कहते हैं तुच्छाभाव को। तो तुच्छ स्वभाव वाला अभाव प्रमाणका विषयभूत नही है। ऐसा अभाव जिसमें कुछ भी न समझा जाय वह प्रमाणका विषय नही हो सकता। और, यदि प्रमाणका विषय हो

जाय तो फिर यह बतलावो कि यह तुच्छ स्वभावरूप अभाव क्या साध्यका स्वभाव है अथवा कार्य है ? साध्य हुआ व्यापकत्वविशिष्ट आत्मा। इस अनुमानमे शकाकार आत्माको व्यापक ही तो सिद्ध कर रहा है तो व्यापकताके सहित आत्माका स्वभाव है क्या तुच्छाभाव ? अथवा व्यापकत्व विशिष्ट आत्माका कार्य है ? यदि कहो कि यह स्वभाव है साध्यका तुच्छाभाव व्यापकत्वविशिष्ट आत्माका स्वभाव है, तो इसका अर्थ यह हुआ ना, कि साध्य भी तुच्छाभावरूप हो गया। तो यो तुच्छाभावको साध्य का स्वभाव नही कह सकते। यदि कहो कि वह तुच्छाभाव, तो साध्यका कार्य है-तो यह भी बात युक्त नही, क्योकि तुच्छ स्वभावरूप अभावके कार्यपनेका योग हो ही नही सकता, क्योंकि कार्यपना नाम है किसका ? पहिले यह ही निर्णय करो। क्या अपने कारणमे सत्ताके समवाय होनेका नाम कार्यपना है या 'कर दी गयी' इस प्रकारकी बुद्धिका विषय बनना कार्यपना है। पहिला पक्ष तो युक्त नही है अर्थात् अपने कारणमे सत्ताका समवाय होना इसका नाम कार्यपना है, यह बात यो युक्त नही कि यहाँ अभाव माना है तुच्छाभाव और उस तुच्छाभावका अपने कारणमे सत्ताका समवाय हो नही सकता। स्वय वैशेषिक सिद्धान्तवादियोने भी नही माना, अन्यथा अर्थात् अभाव अपने कारणमे सत्ताका समवाय करदे तो अर्थ हुआ कि वह अभाव भावरूप हो गया फिर तो अभावकी भावरूपता ही हो गई। तुच्छाभाव तो न रहा। यदि कहो कि कार्यपने का अर्थ हम कृतबुद्धि विषयत्व अर्थात् किया गया इस प्रकारकी बुद्धिका विषयपना होना यह है कार्यपना, तो यह बात यो युक्त नही है कि तुच्छ स्वभावरूप अभाव बुद्धि का विषय नही बन सकता, क्योकि जब अभाव प्रमाणका विषयभूत नहो है तब फिर अभावमे कृतबुद्धिविषयता कैसे सम्भव हो सकती है अर्थात् "यह किया गया" इस प्रकारकी बुद्धिका विषय तुच्छाभाव बन जाये, यह कैसे सम्भव है ? साथ ही इस हेतुमे अनैकांतिक दोष भी आया है। यहाँ शकाकार द्वारा अभिमत अनुमान यह बन गया कि अणुपरिमाण प्रतिषेध रूप तुच्छाभाव रूप कार्य है कृतबुद्धि विषय होनेसे। तो देखो कि खान खोदनेके अनन्तर आकाशमें भी कृतबुद्धि विषयता तो बन जायगी पर कार्यपना नही बनता। यहाँ यह अनुमान बनाना अवान्तर कि जो जो कृतबुद्धि विषय होता है वह कार्य होता है, तो देखिये कि आकाशमे कृतबुद्धिता तो हो गई, खानके खोदनेसे जैसे यह व्यवहार बनता है कि आकाश बडा हो गया, अब आकाशका यह आकार बन गया तो इस प्रकार कृतबुद्धि विषयता तो हुई पर उस आकाशमे कार्यपना नही आया। इस कारण यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है।

परमहापरिमाण सिद्ध करनेके लिये अणुपरिमाणप्रतिषेध सिद्धिमे दिये गये हेतुमे मिथ्यात्वकी मीमांसा—अणुपरिमाण प्रतिषेधमें दिये गये हेतुमें जो नित्य द्रव्यपना बताया गया है सो नित्य द्रव्यत्व क्या कथचित् कह रहे हो या सर्वथा कह रहे हो ? यदि कहते हो कि कथचित् नित्य है तो घट आदिक पदार्थोंके साथ अनेकान्त दोष आता है। देखो ! घट आदिक पदार्थ कथचित् नित्य द्रव्य तो हैं और अणु

अणु परिमाण रूप तो नही है, किन्तु अणु परिमाणसे भिन्न परिमाण वाला है तो अणु परिमाणसे जो 'भिन्न परिमाण वाला' पर्युदासमें सिद्ध हो रहा है तो वह भिन्न परिमाण क्या है ? क्या परममहापरिमाण वाला सिद्ध कर रहे हो या आवान्तर परिमाण वाला यांने अणु परिमाण नही, महा परिमाण नही किन्तु उसके बीचके परिमाण वाला। यदि अणु परिमाणके प्रतिषेधको पर्युदास रूप मानकर परम महा परिमाण रूप मानना चाहते हेतुमे कहकर तो यह तो हेतुका विशेषण साध्यसम हो गया। अर्थात् साध्य सिद्ध करना चाहते हो परम महा परिमाण और हेतु भी दे रहे हो परम महा परिमाणका, क्योकि अणु परिमाणका प्रतिषेध करके परम महा परिमाणको तो विवक्षित बना रहे हो। जैसे कोई कहे कि शब्द अनित्य है अनित्य होने पर बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे। तो साध्यमें भी अनित्यपना सिद्ध कर रहे हो और हेतुमे भी अनित्यपना ही बता रहे हो तो यहाँ भी जैसा ही तुम साध्यको सिद्ध करना चाहते वैसा ही तुम हेतु बना रहे हो तो यह हेतु साध्यसम होनेसे साध्य साधक नही बनता, इस प्रकार शकाकारने जो अनुमान बनाया कि आत्मा व्यापक है अणु परिमाण वाला न होनेपर नित्य द्रव्य होनेसे। तो अणु परिमाण वाला नही, इसका अर्थ ले लिया परम महापरिमाण वाला, तो सीधा यही तो निष्कर्ष निकला कि आत्मा व्यापक है व्यापक होनेसे। तो साध्यसम हेतु भी क्या हेतु कहला सकता है ? इस कारण अणु परिमाण प्रतिषेधका पर्युदास रूप अर्थ करके परम महापरिमाण हेतुमे नही कह सकते।

अणुपरिमाण प्रतिषेधका आवान्तर परिमाणरूप पर्युदास अर्थ हेतुकी विरुद्धता—यदि दूसरा पक्ष लेते हो कि अणुपरिमाणका प्रतिषेध करके हम आवान्तर परिमाण ले रहे हैं तब तो यह विरुद्ध हेतु हो गया। शकाकार के लिए विरुद्ध हेतु हो गया। जैसे कि कभी कोई कहे कि शब्द नित्य है अनित्यत्व होनेपर बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे। तो हेतु दे रहे हो अनित्यपनेका और सिद्ध करना चाहते हो नित्यपना। अनित्यपनेकी व्याप्ति अनित्यसे ही तो होगी। तो अनित्यत्व हेतु देकर सिद्ध तो होगा साध्यका विपरीत अर्थात् साध्य यदि है नित्य और होगा अनित्य ही सिद्ध तो इसी तरह इस हेतुमें कि आत्मा व्यापक है अणुपरिमाणका अनधिकरण होनेपर अर्थात् आवान्तर परिमाण वाला होनेपर नित्य द्रव्य होनेसे। तो जब आवान्तर परिमाण वाला यह हेतु कहकर ही स्वीकार करलिया तो फिर उससे व्यापक मानना यह विरुद्ध हो गया। इससे अणुपरिमाण प्रतिषेधका पर्युदासरूप अर्थ ठीक नही बैठता।

अणुपरिमाणप्रतिषेधके प्रसज्यरूपत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि अणु परिमाणप्रतिषेधको प्रसज्यरूप मानेंगे। प्रसज्य कहते हैं तुच्छाभाव को। तो तुच्छ स्वभाव वाला अभाव प्रमाणका विषयभूत नही है। ऐसा अभाव जिसमें कुछ भी न समझा जाय वह प्रमाणका विषय नही हो सकता। और, यदि प्रमाणका विषय हो

जाय तो फिर यह बतलावो कि यह तुच्छ स्वभावरूप अभाव क्या, साध्यका स्वभाव है अथवा कार्य है? साध्य हुआ व्यापकत्वविशिष्ट आत्मा। इस अनुमानमे शकाकार आत्माको व्यापक ही तो सिद्ध कर रहा है तो व्यापकतासे सहित आत्माका स्वभाव है क्या तुच्छाभाव? अथवा व्यापकत्व विशिष्ट आत्माका कार्य है? यदि कहो कि यह स्वभाव है साध्यका तुच्छाभाव व्यापकत्वविशिष्ट आत्माका स्वभाव है; तो इसका अर्थ यह हुआ ना, कि साध्य भी तुच्छाभावरूप हो गया। तो यो तुच्छाभावको साध्य का स्वभाव नही कह सकते। यदि कहो कि वह तुच्छाभाव, तो साध्यका कार्य है तो यह भी बात युक्त नही, क्योकि तुच्छ स्वभावरूप अभावके कार्यपनेका योग हो ही नही सकता, क्योकि कार्यपना नाम है किसका? पहिले यह ही निर्णय करो। क्या अपने कारणमें सत्ताके समवाय होनेका नाम कार्यपना है या 'कर दी गयी' इस प्रकारकी बुद्धिका विषय बनना कार्यपना है। पहिला पक्ष तो युक्त नही है अर्थात् अपने कारणमे सत्ताका समवाय होना इसका नाम कार्यपना है, यह बात यो युक्त नही कि यहाँ अभाव माना है तुच्छाभाव और उस तुच्छाभावका अपने कारणमे सत्ताका समवाय हो नही सकता। स्वय वैशेषिक सिद्धान्तवादियोने भी नही माना, अन्यथा अर्थात् अभाव अपने कारणमे सत्ताका समवाय करदे तो अर्थ हुआ कि वह अभाव भावरूप हो गया फिर तो अभावकी भावरूपता ही हो गई। तुच्छाभाव तो न रहा। यदि कहो कि कार्यपने का अर्थ हम कृतबुद्धि विषयत्व अर्थात् किया गया इस प्रकारकी बुद्धिका विषयपना होना यह है कार्यपना, तो यह बात यो युक्त नही है कि तुच्छ स्वभावरूप अभाव बुद्धि का विषय नही बन सकता, क्योकि जब अभाव प्रमाणका विषयभूत नही है तब फिर अभावमें कृतबुद्धिविषयता कैसे सम्भव हो सकती है अर्थात् "यह किया गया" इस प्रकारकी बुद्धिका विषय तुच्छाभाव बन जाये, यह कैसे सम्भव है? साथ ही इस हेतुमे अनैकातिक दोष भी आया है। यहाँ शकाकार द्वारा अभिमत अनुमान यह बन गया कि अणुपरिमाण प्रतिषेध रूप तुच्छाभाव रूप कार्य है कृतबुद्धि विषय होनेसे। तो देखो कि खान खोदनेके अनन्तर आकाशमे भी कृतबुद्धि विषयता तो बन जायगी पर कार्यपना नही बनता। यहाँ यह अनुमान बनाना आवान्तर कि जो जो कृतबुद्धि विषय होता है वह कार्य होता है, तो देखिये कि आकाशमें कृतबुद्धिता तो हो गई, खानके खोदनेसे जैसे यह व्यवहार बनता है कि आकाश बडा हो गया, अब आकाशका यह आकार बन गया तो इस प्रकार कृतबुद्धि विषयता तो हुई पर उस आकाशमें कार्यता नही आया। इस कारण यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है।

परमहापरिमाण सिद्ध करनेके लिये अणुपरिमाण प्रतिषेध निमित्तक दिये गये हेतुमे मिथ्यात्वकी मीमासा—अणुपरिमाण प्रतिषेधक [illegible] हेतुमें जो [illegible] नित्य द्रव्यपना बताया गया है सो नित्य द्रव्यत्व क्या सर्वथा [illegible] कह रहे हो? यदि कहते हो कि कथंचित् नित्य है तो घट आदिक पदार्थोंसे अने- [illegible] कान्त दोष आता है। देखो! घट आदिक पदार्थ कथंचित् नित्य द्रव्य तो हैं और अणु [illegible]

परिमाणके अनधिकरण भी हैं अर्थात् आपका हेतु इनमें पूरा पाया गया फिर भी व्यापिपना नहीं है पर कहाँ है सत्त्वपना यदि कहो कि हम सर्वथा नित्यपना सिद्धकर रहे हैं तो यह असिद्ध है, सर्वथा नित्य वस्तु कुछ होती ही नहीं है। सर्वथा नित्य वस्तु अर्थक्रियाको नहीं कर सकती। अतएव अश्वविषाणकी तरह असत् है, और फिर दूसरी बात यह है कि हम लोगोंके प्रत्यक्ष विशेष गुणका अधिकरण होनेसे जो अणुपरिमाण का प्रतिषेध किया जा रहा है तो उससे अणुपरिमाणका प्रतिषेध मात्र ही सिद्ध होगा घट आदिककी तरह। सो यह बात तुम्हें इष्ट ही है। आत्मा अणुपरिमाण वाला नहीं है, अस्पर्शवान द्रव्यपना होनेसे जो आत्माको नित्य सिद्ध किया जा रहा है वह भी क्या कथंचित् नित्य सिद्ध किया जा रहा है या सर्वथा नित्य सिद्ध किया जा रहा है? यदि कथंचित् नित्य सिद्ध कर रहे हो तो हेतु अन्वय रहित हो गया। अर्थात् इस प्रकारके साध्यसे व्याप्त हेतुका दृष्टान्तमें सत्त्व नहीं रहता, क्योंकि आकाश आदिक भी सर्वथा नित्य नहीं है। ऐसा पहिले बता दिया गया है इस कारण आत्मा परम महापरिमाण का अधिकरण नहीं है। इस प्रतिज्ञामें जो शंकाकार अपने अनुमानसे बाधा दे रहा है वह बाधा इस प्रतिज्ञामें नहीं रहती।

देहान्तर व अन्तरालमें भी एक ही आत्माको सिद्ध करनेका शंकाकारका अनुमान—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि समाधानकारने जो यह कहा कि आत्मा यदि सर्वव्यापक होता तो दूसरे देह में आत्माकी प्रतीति होनी चाहिये थी और एक देह व दूसरे देहके बीचमें जो अन्तराल पड़ा है पोल, वहाँपर भी आत्माकी प्रतीति होनी चाहिये थी, किन्तु होती नहीं है। मैं जो विचार करता तो अपने ही विचारोंका ज्ञाता होता हूँ, दूसरेका ज्ञाता नहीं होता। अथवा दूसरा कोई मेरे विचारों का ज्ञाता नहीं बनता, और अन्तरालमें भी हमको आपको, भी सुख दुःख आदिककी प्रतीति नहीं होती। इससे आत्मा सर्वव्यापक नहीं है। इस तरह समाधानकारने जो बात कहा वह अयुक्त है। अनुमानसे आत्मामें सब जगह आत्माकी सत्ताकी प्रतीति होती है। अर्थात् आत्मा एक है, सर्वव्यापक है, दूसरे-दूसरे सब देहोंमें भी वही एक आत्मा है। देहोंके बीचके अन्तरालमें भी बराबर वही आत्मा है। उसका अनुमान सुनो! जैसे कोई देवदत्त नामका पुरुष है, उसका उदाहरण देकर अनुमान प्रयोग करेंगे। देखिये! देवदत्तको किसी देशकी सम्पदा मिलती है, किसी देशकी स्त्री मिलती है अर्थात् जैसे सम्बन्ध विवाह होता है तो देवदत्तका जिस कन्यासे सम्बन्ध हुआ तो उस जगह हुआ क्या कि उस स्त्रीका अङ्ग या वह पिण्ड देवदत्तके गुणपूर्वक है क्योंकि कार्य होनेपर उपकारक होनेसे।

देहान्तर और अन्तरालमें एक आत्माको सिद्ध करने वाले शंकाकारके अनुमानमें आद्य ज्ञातव्य—इस सम्बन्धमें वैशेषिक सिद्धान्तका अभिमत जान लीजिए आत्मा एक है सर्वव्यापक है और आत्माके साथ भाग्य भी लगा है, जिसका नाम

अदृष्ट है । तो देवदत्तका भाग्य कहाँ तक फैला है ? जहाँ तक आत्मा है वहाँ तक भाग्य भी फैला हुआ है । तो जैसे मान लीजिये कि ५० मील दूर रहने वाले प्राप्य पदार्थके पास इस देवदत्तका भाग्य है क्योंकि आत्मा है सर्वव्यापक । आत्माके साथ भाग्य भी लगा है तो उस ५० मील दूर रहने वाले भाग्यने उस स्त्रीको खोजा और देवदत्तके पास वह भाग्य ले आया । या जो वैभव मिलता है देवदत्तको, १०० मील दूरकी सम्पदा देवदत्तके पास आ गयी तो किस तरह कि देवदत्तका भाग्य जो १०० मील तक फैला हुआ है वह भाग्य उसे देवदत्तके पास हाजिर कर देगा । तो देखो ! वह भाग्य क्या ? अदृष्ट ही तो है । तो देवदत्तके गुणपूर्वक देवदत्तकी सम्पदा स्त्री आदिक ये सब कार्य हैं ना, और देवदत्तके उपकारक हैं । उस सम्पदाका, स्त्रीका जो जो कुछ भी उसके पास वैभव आयगा उसका वह मौज ही तो मानेगा, कल्पना ही तो करेगा, राजी ही तो होगा । तो देवदत्तने उपयोग किया । जो जो देवदत्तका उपकार करने वाले हैं वे वे सब देवदत्त के गुणपूर्वक हुए हैं । यहाँ गुणसे मतलब पुण्य पाप, पुण्य पाप भी आत्माका गुण है । धर्म अधर्म ये भी गुण माने माने गए हैं वैशेषिक सिद्धान्तमें । तो यहाँ वैशेषिकवादी यह सिद्ध कर रहा है कि देवदत्तको ये सारी चीजें तभी मिलती हैं जब कि आत्मा सर्वव्यापक है और उसका भाग्य भी उतनी दूर तक उसके साथ फैला हुआ है । जैसे-ग्रास भोजन । लोग कहते हैं ना, कि दाने दानेपर मोहर लगी हुई है । यह आत्मा सर्वव्यापक है और भाग्य भी सब जगह फैला हुआ है । तो जब जो दाना इसका उपकारक बनेगा तब भाग्य उस दानेको खींचकर लायगा और उसका वह देवदत्त उपभोग करेगा । तो इस बातसे सिद्ध हुआ ना, कि आत्मा सर्वव्यापक है । जहाँ कार्यपना है उस जगह कारण होगा तभी तो उस कार्यकी उत्पत्ति हुई है । देवदत्तकी जो सम्पदा बनेगी अथवा आकर्षित होकर आया जैसे देवदत्त रह रहा है मुजफ्फरनगरमें और सम्पदा बन रही है उसकी अहमदाबादमे औ अहमदाबादमे जो देवदत्तका काम बना उस जगह कामका कारण अवश्य होगा । तब तो वहाँ कारण बना । कार्य देशमे कारण हो तब ही कारणका कार्यकी उत्पत्तिमे व्यापार हुआ करता है तो वहाँ भाग्य मानना पढा ना । तो आत्मा सर्वव्यापक है और उसके साथ लगा हुआ है भाग्य और उस भाग्यके कारण वह देवदत्तकी सम्पदा बन गई, देवदत्तका काम बन गया । इससे सिद्ध है कि आत्मा सर्वव्यापक है ।

दूरदेशमे अदृष्टकी सिद्धि करके अदृष्टाश्रय आत्माके सद्भावकी सिद्धि का शकाकारका प्रयास—अच्छा, उस सम्बन्धमें तुम और ज्यादा बात नही मान सकते तो इतना तो मानना ही पडेगा कि जहाँ स्त्री, सम्पदा उस देवदत्तकी होती है वहाँपर देवदत्तका भाग्य तो मौजूद है तो उसकी चीज कैसे बन जायगी ? क्या कहीं देखा है ऐसा कि कामकी जगह कारण न हो और काम बन जाय ? जब १०० मील दूर देवदत्तका काम बन रहा तो लोग कहते हैं जब बहुत वैभव होता है कि इतना बडा काम इसका बन रहा है तो वह काम बिना कारणके नही बनता । वहाँ कारण क्या

परिमाणके अनधिकरण भी है अर्थात् आपका हेतु इसमें पूरा पाया गया फिर भी व्यापिपना नही है पर कहीं है सर्वव्यापक यदि कहो कि हम सर्वथा नित्यपना सिद्धकर रहे हैं तो यह असिद्ध है, सर्वथा नित्य वस्तु कुछ होती ही नहीं है। सर्वथा नित्य वस्तु अर्थक्रियाको नही कर सकती। अतएव शशविषाणकी तरह असत् है, और फिर दूसरी बात यह है कि हम लोगोंके प्रत्यक्ष विशेष गुणका अधिकरण होनेसे जो अणुपरिमाण का प्रतिषेध किया जा रहा है तो उससे अणुपरिमाणका प्रतिषेध मात्र ही सिद्ध होगा पट आदिककी तरह। सो यह बात तुम्हें इष्ट ही है। आत्मा अणुपरिमाण वाला नही है, अस्पर्शवान द्रव्यपना होनेसे जो आत्माको नित्य सिद्ध किया जा रहा है यह भी क्या कथंचित् नित्य सिद्ध किया जा रहा है या सर्वथा नित्य सिद्ध किया जा रहा है ? यदि कथंचित् नित्य सिद्ध कर रहे हो तो हेतु अन्वय रहित हो गया। अर्थात् इस प्रकारके साध्यसे व्याप्त हेतुका दृष्टान्तमें सत्त्व नही रहता, क्योंकि आकाश आदिक भी सर्वथा नित्य नही है। ऐसा पहिले बता दिया गया है इस कारण आत्मा परम महापरिमाण का अधिकरण नही है। इस प्रतिज्ञामें जो शंकाकार अपने अनुमानसे बाधा दे रहा है वह बाधा इस प्रतिज्ञामें नही रहती।

देहान्तर व अन्तरालमें भी एक ही आत्माको सिद्ध करनेका शंकाकारका अनुमान—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि समाधानकारने जो यह कहा कि आत्मा यदि सर्वव्यापक होता तो दूसरे देह में आत्माकी प्रतीति होनी चाहिये थी और एक देह व दूसरे देहके बीचमें जो अन्तराल पड़ा है पोल, वहाँपर भी आत्माकी प्रतीति होनी चाहिये थी, किंतु होती नही है। मैं जो विचार करता तो अपने ही विचारोंका ज्ञाता होता हूँ, दूसरेका ज्ञाता नही होता। अथवा दूसरा कोई मेरे विचारों का ज्ञाता नही बनता, और अन्तरालमें भी हमको आपको, भी सुख दु:ख आदिककी प्रतीति नही होती। इससे आत्मा सर्वव्यापक नही है। इस तरह समाधानकारने जो बात कहा वह अयुक्त है। अनुमानसे आत्मामें सब जगह आत्माकी सत्ताकी प्रतीति होती है। अर्थात् आत्मा एक है, सर्वव्यापक है, दूसरे-दूसरे सब देहोंमें भी वही एक आत्मा है। देहोंके बीचके अन्तरालमें भी बराबर वही आत्मा है। उसका अनुमान सुनो! जैसे कोई देवदत्त नामका पुरुष है, उसका उदाहरण देकर अनुमान प्रयोग करेंगे। देखिये! देवदत्तको किसी देशकी सम्पदा मिलती है, किसी देशकी स्त्री मिलती है अर्थात् जैसे सम्बन्ध विवाह होता है तो देवदत्तका जिस कन्यासे सम्बन्ध हुआ तो उस जगह हुआ क्या कि उस स्त्रीका अङ्ग या वह पिण्ड देवदत्तके गुणपूर्वक है क्योंकि कार्य होनेपर उपकारक होनेसे।

देहान्तर और अन्तरालमे एक आत्माको सिद्ध करने वाले शंकाकारके अनुमानमे आद्य ज्ञातव्य—इस सम्बन्धमे वैशेषिक सिद्धान्तका अभिमत जान लीजिए आत्मा एक है सर्वव्यापक है और आत्माके साथ भाग्य भी लगा है, जिसका नाम

अदृष्ट है। तो देवदत्तका भाग्य कहाँ तक फैला है ? जहाँ तक आत्मा है वहाँ तक भाग्य भी फैला हुआ है। तो जैसे मान लीजिये कि ५० मील दूर रहने वाले प्राप्य पदार्थके पास इस देवदत्तका भाग्य है क्योंकि आत्मा है सर्वव्यापक। आत्माके साथ भाग्य भी लगा है तो उस ५० मील दूर रहने वाले भाग्यने उस स्त्रीको खोजा और देवदत्तके पास वह भाग्य ले आया। या जो वैभव मिलता है देवदत्तको, १०० मील दूरकी सम्पदा देवदत्तके पास आ गयी तो किस तरह कि देवदत्तका भाग्य जो १०० मील तक फैला हुआ है वह भाग्य उसे देवदत्तके पास हाजिर कर देगा। तो देखो ! वह भाग्य क्या ? अदृष्ट ही तो है। तो देवदत्तके गुणपूर्वक देवदत्तकी सम्पदा स्त्री आदिक ये सब कार्य हैं ना, और देवदत्तके उपकारक हैं। उस सम्पदाका, स्त्रीका जो जो कुछ भी उसके पास वैभव आयगा उसका वह मौज ही तो मानेगा, कल्पना ही तो करेगा, राजी ही तो होगा। तो देवदत्तने उपयोग किया। जो जो देवदत्तका उपकार करने वाले हैं वे वे सब देवदत्त के गुणपूर्वक हुए हैं। यहाँ गुणसे मतलब पुण्य पाप, पुण्य पाप भी आत्माका गुण है। धर्म अधर्म ये भी गुण माने माने गए हैं वैशेषिक सिद्धान्तमे। तो यहाँ वैशेषिकवादी यह सिद्ध कर रहा है कि देवदत्तको ये सारी चीजें तभी मिलती हैं जब कि आत्मा सर्वव्यापक है और उसका भाग्य भी उतनी दूर तक उसके साथ फैला हुआ है। जैसे–ग्रास भोजन। लोग कहते हैं ना, कि दाने दानेपर मोहर लगी हुई है। यह आत्मा सर्वव्यापक है और भाग्य भी सब जगह फैला हुआ है। तो जब जो दाना इसका उपकारक बनेगा तब भाग्य उस दानेको खींचकर लायगा और उसका वह देवदत्त उपभोग करेगा। तो इस बातसे सिद्ध हुआ ना, कि आत्मा सर्वव्यापक है। जहाँ कार्यपना है उस जगह कारण होगा तभी तो उस कार्यकी उत्पत्ति हुई है। देवदत्तकी जो सम्पदा बनेगी अथवा आकर्षित होकर आया जैसे देवदत्त रह रहा है मुजफ्फरनगरमें और सम्पदा बन रही है उसकी अहमदाबादमे तो अहमदाबादमें जो देवदत्तका काम बना उस जगह कामका कारण अवश्य होगा। तब तो वहाँ कारण बना। कार्य देशमें कारण हो तब ही कारणका कार्यकी उत्पत्तिमे व्यापार हुआ करता है तो वहाँ भाग्य मानना पडा ना। तो आत्मा सर्वव्यापक है और उसके साथ लगा हुआ है भाग्य और उस भाग्यके कारण वह देवदत्तकी सम्पदा बन गई, देवदत्तका काम बन गया। इससे सिद्ध है कि आत्मा सर्वव्यापक है।

दूरदेशमें अदृष्टकी सिद्धि करके अदृष्टाश्रय आत्माके सद्भावकी सिद्धि का शंकाकारका प्रयास—अच्छा, उस सम्बन्धमें तुम और ज्यादा बात नही मान सकते तो इतना तो मानना ही पडेगा कि जहाँ स्त्री, सम्पदा उस देवदत्तकी होती है वहाँपर देवदत्तका भाग्य तो मौजूद है तो उसकी चीज कैसे बन जायगी ? क्या कहीं देखा है ऐसा कि कामकी जगह कारण न हो और काम बन जाय ? जब १०० मील दूर देवदत्तका काम बन रहा तो लोग कहते हैं जब बहुत वैभव होता है कि इतना बडा काम इसका बन रहा है तो वह काम बिना कारणके नही बनता। वहाँ कारण क्या

है ? देवदत्तका गुण । तो देवदत्तका गुण इतनी दूर भागता ही पड़ेगा, और जब मान लिया गया तो विशद है कि जहाँ गुण है वहीं गुणी अवश्य है । गुणीके आधार बिना गुण कैसे रह सकता है ? इस तरह यह सिद्ध है कि आत्मा सर्वव्यापक है और सर्वव्यापक होनेपर ही यह सब आत्माकी व्यवस्था बनती है, नहीं तो आत्माकी मुक्ति भी व्यवस्था नहीं ।

ज्ञानदर्शनसुखादिगुणपूर्वक स्त्रीरत्नादिकार्योंकी असिद्धि—शंकाकार के इस वक्तव्य पर समाधान करते हैं कि ऐसा सोचना कि देवदत्तको जो कुछ मिल रहा है दूर गांवकी सम्पदा, दूरकी अच्छी कमाई सम्पत्ति, यह सब देवदत्तका भाग्य उसको दूर भेज देता है और वहाँसे वह खींचकर लाता है अथवा वहींसे वही यह काम बना देता है, इससे सिद्ध है कि वहाँ भाग्य भी मौजूद है । यह कहना और इस कहनेसे यह बात सिद्ध करना कि ये सब दूर देशके काम देवदत्तके गुणपूर्वक होते हैं, यह कथन अनर्थ है, क्योंकि देवदत्तकी स्त्री सम्पदा आदिक आपके कारण माने गए जो गुण हैं वे गुण क्या हैं सो बतलावो ? क्या ज्ञान, दर्शन, सुख आदिक हैं अथवा धर्म अधर्म है । जो यह कहा कि दूर देशकी सम्पदा स्त्री जो देवदत्तको मिली सो देवदत्तको मिली तो देवदत्तके गुणके कारण मिली । देवदत्तका गुण वहाँ मौजूद था तब मिली । तो वह गुण क्या चीज है ? क्या पुण्य पापका ही नाम गुण कह रहे हो ? या ज्ञान दर्शन सुख आदिकका नाम गुण कह रहे हो ? यदि ज्ञान दर्शन सुख आदिक का नाम गुण कहते हो कि इन गुण पूर्वक स्त्री सम्पदाका काम बना है तो यह बात तो स्पष्ट अयुक्त है । देखो ? देवदत्तका ज्ञान, देवदत्तका दर्शन, देवदत्तका सुख ये तो स्वसंवेदन गम्य हैं स्वसंवेदनसे अनुभव आते हैं और ये यहीं बाहरमें स्त्री सम्पदाके कार्य की उत्पत्तिके व्यापार करते हों यह सम्भव नहीं है । अपने अनुभवसे विचार लो । मेरा ज्ञान दर्शन गुण जो भी काम करता, वह यहाँ ही करेगा जहाँ कि अनुभव चल रहा है, हमारा ज्ञान दूर देशकी सम्पदा स्त्रीको खींचकर नहीं लाता, या ही ज्ञान और सुख आदिक कोई भी देवदत्तके गुण दूर पर सम्पदा कार्य है ऐसा कहनेमें जिस गुणको कारण बताया है वह गुण ज्ञान दर्शन सुख आदिक नहीं सिद्ध होता। यदि कहो कि वीर्य अथवा शक्ति नामका गुण है, देवदत्तकी शक्ति इतनी दूरसे खींचकर लाती है या वहीं कार्यको बना देती है तो भाई शक्ति भी देहमें ही अनुमित होती है । देहमें ही शक्ति कारणकी क्रिया ही प्रतीत होती है, इससे यह सिद्ध न हो सका कि देवदत्तके ज्ञान दर्शन सुख आदिक गुणपूर्वक दूर देशके काम हुआ करते हैं और फिर जब प्रत्यक्षसे इसमें बाधा आ गयी कि देवदत्तके देहमें ही जो कि दूर देशकी सम्पदा, स्त्री आदिकके कार्यसे विमुख है उन कार्यकी ओर ज्ञान दर्शन सुखका कोई रुझान नहीं है । ऐसा जब प्रत्यक्षसे प्रतीत हो रहा है उसमें बाधा आ रही है और फिर ज्ञान दर्शन सुख आदिक गुणपूर्वक स्त्री सम्पदा आदि कार्य बताओ तो प्रत्यक्ष बाधित है । इसलिए यह हेतु देकर कि कार्य होनेपर देवदत्तको यह क्रिया काय उपकार है इस कारण वह कार्य

देवदत्तके गुणपूर्वक है, यह अनुमान सही नही बैठता।

पुण्य पाप याने अदृष्टमे चेतनगुणत्वका अभाव होनेसे अदृष्टके माध्यमसे आत्माके सर्वगतत्वकी सिद्धिका अभाव—यदि कहो कि देवदत्तके जिम गुणके कारण दूर देशकी सम्पदा देवदत्तके पास खिचती चली आई है या वही ठहरकर देवदत्तका काम बन गया है सो वह गुण है धर्म अधर्म पुण्य पाप। अब शकाकार कुछ ठिकानेके विकल्पोपर आया। यद्यपि यह भी पूर्णतया सिद्ध नही होता, लेकिन ज्ञान आदि गुणोसे तो एकदम स्पष्ट बाधा आती है। और, ये लोग कुछ ऐसा अदाज करते हैं कि भाग्य इस जीवका बहुत विशाल है और भाग्यसे ही सारी चीजें मिलती है। यों समझकर यह कहा कि पुण्य और पाप उस सम्पदा और वैभव समागमका कारण है, सो इसके समाधानमे कह रहे हैं कि तुम्हारी बात तो हमे भी इष्ट है कि देवदत्तको जो कुछ भी वैभव प्राप्त हो रहा है वह देवदत्तके भाग्यके निमित्तसे हो रहा है, अदृष्ट निमित्त है, यह हम लोगोको भी इष्ट है, लेकिन वह अदृष्ट आत्माका गुण है यह बात असिद्ध है, पर आत्माका गुण नही कहलाता भाग्य। भाग्य क्या चीज है? लोग जिसे कर्म तकदीर आदिक शब्दोसे कहते हैं वह है भाग्य! भाग्यके कहने वाले लोग तो हैं अनेक, पर भाग्यका क्या स्वरूप है? क्या मुद्रा है? क्या आकार है? क्या प्रकृति है? इसके जानने वाले लोग विरले ही हैं। यह जीव जिस कालमें शुभ अथवा अशुभ भाव बनाता है, कषाय करता है तो उस कषाय परिणामका निमित्त पाकर यहाँ ही फैली हुई जो सूक्ष्म कार्माण वर्गणायें हैं, सूक्ष्म आवरण है, वातावरण है, वे सब कषायोंका निमित्त पानेसे पहिले अन्य स्थितिमें थीं और कषायोका निमित्त पानेसे पहिले अन्य स्थितिमें थी और कषायोका निमित्त पाकर वे कर्मरूप बन गए। वह ही भाग्य कहलाने लगा। तो वह भाग्य अचेतन है, चेतन भी नही है चेतनके जो गुण हैं वे सब चेतन होगे। तो धर्म अधर्म आत्माके गुण नही हैं अचेतन होनेसे। जो-जो अचेतन हैं वे आत्माके गुण नही हो सकते। अथवा जो जो गुण हैं आत्माके वे चेतन स्वरूप ही होगे।

सुखकी चेतनगुणता होनेसे पुण्य पापमे आत्मगुणत्वाभाव सिद्ध करने वाले हेतुकी अबाधितता—अब शकाकार कहता है कि जो जो अचेतन होते हैं वे आत्माके गुण नही हैं, सो यह हेतु बाधित है। देखो! इस हेतुमें सुख आदिकके द्वारा व्यभिचार आ गया, याने सुख अचेतन है फिर भी आत्माका गुण है। तुम्हारा जो यह कहना था कि जो जो अचेतन होते हैं वे आत्माके गुण नही होते, लेकिन यह सुख अचेतन है। सुखमे कहाँ चेतना बसी है? सुख कहाँ समझदार है और देखो! सुखके गुण, सो बराबर हैं। उत्तरमें कहते हैं कि यह दोष देना ठीक नही है। सुख अचेतन नही है। अचेतनका विरोधी स्वसम्वेदन लक्षण चेतनके साथ सुखकी व्याप्ति है अर्थात् सुख चैतन्यात्मक है। यद्यपि सुखका स्वरूप, स्वय सुखका लक्षण चैतन्यधर्मात्मक नही

है, याने सुख ज्ञानके द्वारा अनुभवमें आता है। सुख स्वयं अपनेको सुखरूपसे अनुभव नही करता, लेकिन ज्ञानका अधिकरण है, आत्मा और सुखका भी अधिकरण है, आत्मा अर्थात् ज्ञान कहाँ है ? आत्मामें ! सुख कहाँ है ? आत्मामें ! तो सुख और ज्ञान इन दोनोंका एकाधिकरण है चेतन आत्मा। तो चेतनाका ही आधार आत्मा है, तो उस आत्मामें जो जो कुछ भी आधेय है, जो जो कुछ भी गुण है वे चेतन हैं ही, तो गुण कहलायेगा। अचेतन पदार्थके गुण तो नही हैं और जो चेतनके गुण हैं वे चेतनात्मक हैं। जिस पदार्थके जो गुण होते हैं वे गुण उस पदार्थके स्वभावात्मक ही होंगे। भेदकी बात एक लक्षण दृष्टिसे फर्क करनेकी है, पर इतने मात्रसे सुखको चेतन का गुण तो नही कहा जा सकता। चेतनका गुण चेतन होता है, अचेतनका गुण अचेतन होता है। यह लक्षण विवेचनाकी बात है उसे रहने दिया जाय, यहाँ तो गुण गुणीकी चर्चा चल रही है। तब यह अनुमान बनाया गया कि धर्म अधर्म अर्थात् पुण्य और पाप आत्माके गुण नही हैं अचेतन होनेसे।

पुण्य पापमें चेतनगुणत्वका अभाव—इस अनुमानमें अचेतनत्व हेतु असिद्ध नही है अर्थात् पुण्य और पाप अचेतन हैं क्योंकि यह अपने ग्रहणसे विधुर है अर्थात् पुण्य पाप अपने आपका सम्वेदन करनेसे रहित हैं पट आदिककी तरह। जैसे ये घट, पट, चौकी, दरी, बेंच आदिक। ये अपने आपको ग्रहण तो नही कर सकते, अपने आपमें अपने स्वरूपका ग्रहण नही कर सकते इस कारण अचेतन हैं। यहाँ यह शका न करना चाहिए कि बुद्धि तो देखो, अपना ग्रहण नही करती और फिर है चेतनका गुण, ये शकायें न करना चाहिए कि बुद्धि अपना ग्रहण करती है, बुद्धि परपदार्थों को भी जानती है और अपने आपको भी जानती है। बुद्धि कहो, ज्ञान कहो, ये सब अनर्थान्तर हैं। आत्माके निकटका ज्ञान हो उसे लोग ज्ञान शब्दसे कहते हैं और बाहरी पदार्थोंमे सुख दु ख भोगने वाला ज्ञान हो उसे लोग बुद्धि शब्दसे कहते हैं। है परिणति दोनो ही आत्माकी। तो यों ये पुण्य पाप अचेतन हैं, इस कारण आत्माके गुण नही हैं तो ये पुण्य पाप १००-५० मील तक फैले हैं और स्त्री, सम्पदा आदिक खोजकर लाते हैं, उतनी दूर तक भाग्य गुण रहा और गुण रहनेसे आत्मा गुणी हुआ, यों आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करना युक्त नही है।

पुण्य पाप कर्मके पौद्गलिकत्व होनेसे चेतनगुणत्वका अभाव—धर्म और अधर्म, जिनका दूसरा नाम है पुण्य और पाप जो कि दोनो ही कर्म होनके कारण एक कर्म नामसे कहे जायेंगे वे कर्म पौद्गलिक हैं, आत्माके गुण नही हैं। अतएव यह कहना कि आत्मा सर्वव्यापक है, क्योंकि जैसे देवदत्तके अन्य देशमें रहने वाले गुणके द्वारा वैभव सम्पदा स्त्री आदिक ये सब आकर्षित होकर देवदत्तके पास आ जाते हैं। तो देखो ! अदृष्ट रहा ना, उतनी दूर। सो वहाँ उसका आत्मा भी है। इस तरह आत्माको व्यापक सिद्ध करना युक्त नही है। कर्म पौद्गलिक हैं, क्योंकि यह आत्माके

स्वभावमें बाधा डालता है। आत्माके स्वभावका बाधक आत्माकी जातिसे विलक्षण कोई उपाधि होनी चाहिए। आत्माके ही समान किसी चेतनके द्वारा आत्माके स्वभाव मे बाधा नही आ सकती। तो कर्म अचेतन है, उस हीका नाम है पुण्य पाप अथवा धर्म अधर्म। तो जब वे देवदत्तके गुण ही नही हैं तो यह अनुमान बनाना कि देवदत्त की अङ्गना आदिके अग देवदत्तके गुणसे आकृष्ट होते हैं अयुक्त बात है।

कार्यदेशमें कारणके रहनेका अनियम होनेसे अदृष्टके व्यापकत्वकी असिद्धि—अथवा मान लो कि धर्म अधर्म देवदत्तके गुण हैं। जिस गुणके द्वारा अन्य देशमें रहने वाले पदार्थ देवदत्तके पास खिचते चले आते हैं, ऐसा जो मानते हैं उसमें इतना अश मान भी लो कि पुण्य पाप देवदत्तके गुण हैं, लेकिन देवदत्तके पुण्य पाप दूसरे नगरके वैभव स्त्री आदिकके पास ठहरते हो, रहते हों तभी उनका समागम बने, यह बात सिद्ध नहीं है। यह नियम नही है कि जितने भी कारण हो वे कार्यके स्थान मे रहकर ही कार्यकी उत्पत्तिमे लगें। कितने ही कारण ऐसे होते हैं कि कार्यके स्थान मे नही हैं और कार्यकी उत्पत्तिमें उनका व्यापार है। जैसे मत्रवादी सर्पविष दूर करनेका मत्र पढता है तो मत्रवादी मत्रचिन्तन आदि सब कुछ अपने आपके आत्मामें कर रहा है। जिसको विष चढा है ऐसे पुरुषमें वह कुछ नही कर रहा लेकिन वहाँ विष दूर हो जाता है। अथवा कुछ सिद्ध अजन होते हैं तो साधककी आँखमें जैसा अजन लगा देनेपर जिसको वह चाहता है ऐसा पुरुष अथवा अन्य वैभव आदिक खिचे चले आते हैं। इसी तरह सिद्धतिलक, सिद्धमत्र हुआ करते हैं, जो हैं साधकके पास, कार्यदेशमे नही हैं, लेकिन वे सब कार्य आकर्षित हो जाते हैं। अथवा जैसे अयसकान्त चुम्बक होता है वह लोहेकी जगहपर नही है, लोहेसे दूर है, पर लोहेको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। तो यह नियम तो न रहा कि कार्यकी जगहमें कार्य हो तब ही उत्पत्ति होती है। तो इसी प्रकार पुण्य पाप देवदत्तके गुण मान भी लिए जायें, पर उससे यह सिद्ध नही किया जा सकता कि देवदत्तका पुण्यपाप, गुण अदृष्ट कार्यदेशके निकट हैं जहाँसे वस्तु आती है, क्योंकि अनेको कारण ऐसे हैं कि वे कार्यकी जगह नही हैं और कार्यकी निष्पत्तिमें कारण बन जाते हैं। इसी प्रकार जीवका अदृष्ट पुण्य पाप कार्यकी जगह नही है, अपने आपके आत्मामें है और वहीं ही रहकर वे अनेक समागम लाभके कारण बन रहे हैं।

शकाकारके उपकारकत्व हेतुमे कार्यत्व विशेषणकी निरर्थकता—शकाकारने आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करनेके लिए अनुमान बनाया था कि देवदत्तकी सम्पदा स्त्री आदिक देवदत्तके गुणपूर्वक है। क्योंकि कार्य होनेपर वे वैभव सम्पदा देवदत्तके उपकारक हैं अर्थात् ये वैभव स्त्री आदि कार्य हैं और देवदत्तके उपकारक हैं, इस अनुमानमे जो हेतुका विशेषण दिया है 'कार्य होकर' देवदत्तके उपकारक होनेसे इसमें "कार्यत्व" यह विशेषण देनेकी क्या जरूरत थी ? क्या कोई वैभव आदिक कार्य

देवदत्तमें भाग्य विना भी हो जाते हैं ? यदि देवदत्तके भाग्य विना कोई देवदत्तका काम बन जाय, ऐसी स्थिति आ सकती होती तब तो कार्यत्व विशेषण देना सार्थक था। क्योंकि विशेषण दिया जाता है अन्य व्यवच्छेदके लिए जैसे नील कमल। कमल नीले भी होते हैं, सफेद भी होते हैं और लाल भी होते हैं इस कारण नील यह विशेषण देने की जरूरत है। अब जैसे कोई कहे काला कोयला, तो कोयलामें काला विशेषण देने की जरूरत तो नहीं, क्योंकि कोयले सभी काले होते हैं, विशेषण दिया जाता है अन्य व्यवच्छेदके लिए। जैसे एक ही नामके दो पुरुष हों जिनेश्वरदास तो अब कौनसे जिनेश्वर दास। दूसरेका व्यवच्छेद करना और एकको ग्रहण करना, तब उसमें कहा जायगा कि डालडा वाले या आदर्श वाले। विशेषण जो भी दिया जाता है वह अन्य व्यवच्छेद के लिए है, किन्तु जब जगतमें कोई सो भी ऐसा कार्य नहीं है जो भाग्य विना हो जाय, और भाग्य विना उपकारक हो जाय तब केवल उपकारकत्वात इतना ही हेतु देना था, उससे यह काम बनता, फिर "कार्यत्व होकर" यों तुम्हारा विशेषण देना व्यर्थ है।

उपकारकत्व हेतुके कार्यत्व विशेषणकी सार्थकता सिद्ध करनेका विफल प्रयास—यदि कहो कि विशेषण देना सार्थक यों है कि समय और ईश्वर ये दो भी तो देवदत्तके उपकारक हैं। कहते हैं ना, कि जब समय आयगा तब काम बनेगा। तो काम बननेका समय भी तो उपकारक है, अथवा जब ईश्वरकी मर्जी होगी तब काम बनेगा लोग यों भी तो कहते हैं, तो ईश्वर भी तो उपकारक हुआ, लेकिन समय और ईश्वर ये उपकारक तो हैं पर कार्य नहीं हैं। देवदत्तके भाग्यके कार्य नहीं हैं इसलिए "कार्यत्व" यह विशेषण दिया है। कार्य होनेपर जो देवदत्तका, उपकारक हो सो ही देवदत्तके गुणपूर्वक अर्थात् भाग्यपूर्वक कहा जायगा। ऐसा कहनेपर काल और ईश्वर ये दो बच जाते हैं। उत्तरमें कहते हैं कि तुम्हारी बात मान भी ली जाय कि "काल देवदत्तका उपकारक है, समय आयगा तो देवदत्तका काम बनेगा, ईश्वरकी कृपा होगी तो देवदत्तका काम बनेगा। और, ईश्वर, काल देवदत्तके उपकारक तो हो गए, पर देवदत्तके गुणपूर्वक नहीं है देवदत्तके भाग्यपूर्वक नहीं हैं। तो यही दोष आ गया कि अनेक ऐसे भी होते हैं कि देवदत्तके भाग्य पूवक तो नहीं और देवदत्तका उपकार करने वाले होते हैं। जैसे कोई यह हेतु दे कि कहीं भी कोई सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि वक्ता होने से। जो जो बोलते हैं वे वे सर्वज्ञ नहीं हैं तो यह हेतु क्यों दूषित है कि वक्ताका सर्वज्ञ अभावके प्रति नियायकत्व नहीं है वक्ता सर्वज्ञ भी हो सके, वक्ता असर्वज्ञ भी हो सके तो इसी प्रकार उपकारकदेवदत्तके भाग्य पूर्वक भी हो सकते और उपकारक देवदत्तके भाग्यपूर्वक न हों ऐसे भी हो सकते।

नित्य द्रव्यमे उपकारकत्वकी असगतता—प्रथम तो यही सिद्ध करना मुश्किल है कि काल देवदत्तका उपकार करता है अथवा ईश्वर देवदत्तका या किसीका भी उपकार करता है। यह सिद्ध क्यों न होगा कि काल माना है शंकाकारने नित्य।

एक। इसी प्रकार ईश्वरको भी माना है शंकाकारने एक और नित्य । तो जो नित्य होगा वह किसीका उपकारक नही बन सकता, क्योकि यदि कोई नित्य पदार्थ किसीका उपकारक बने तो यही तो कहना होगा कि उस उपकारसे पहिले वह पदार्थ अनुपकारक है। तो देखो ! अब इस पदार्थमे अनुपकारकत्ता और उपकारकत्ता ये दो अवस्थायें हुई कि नही, और अवस्थाओके होनेके मायने है अनित्य हो गया। अनित्य कहते किसे हैं कि जिसमे अवस्थायें बदलती रहे। तो काल ईश्वरमे देखो कि ये इस अनुपकारक अवस्थाका परित्याग करके अब देवदत्तकी उपकारकत्व अवस्थामे आया है तो नित्य कहाँ रहा ? इस कारण ईश्वर काल, नित्य द्रव्यको कालका उपकारक नही कह सकते। यहाँ व्यावहारिक समस्या यह सुलझाई जा रही है कि इस जीवको जो वैभव सम्पदा आदिक प्राप्त होती है वह किस प्रकार प्राप्त होती है ? क्यो यहाँ भेद पडा है कि कोई श्रीमान है, कोई दरिद्र है ? उस समस्याको शंकाकार अदृष्टपूर्वक सुलझा रहा है और उस अदृष्टको बहुत दूर तक फैला हुआ मान रहा है ताकि वह भाग्य जिस किसी चीजको खीच खीचकर इस देवदत्तके पास हाजिर करता रहे। यो अदृष्टको विशेषवादी व्यापक मानता है और अदृष्ट गुणको व्यापक मानकर फिर उसके आश्रयभूत आत्माको व्यापक सिद्ध करना चाहता है लेकिन कारणको यह आवश्यक नहीं है कि वह कार्यकी जगहपर रहे तब ही काम बन सकता है।

शंकाकारके उपकारकत्व हेतुमे कार्यत्व अव्यापिता – और, भी देखिये ! जगलमे किसी जगह नेवला सॉप रह रहे हैं तो नेवले और सॉपका तो परस्पर विरोध है, वैर है। वहाँ कदाचित नेवलेके शरीरका प्रध्वस हो जाय, नेवला मर जाय तो नेवलेके शरीरका जो प्रध्वसाभाव हुआ वह सर्पका उपकारक हुआ ना। नेवला गुजर गया तो अब सर्प सुखसे रहता है, सुखसे घूमता है, तब नेवलेके शरीरका अभाव हो जाना सर्पके गुणपुर्वक हुआ ना, सर्पके भाग्यसे हुआ ना ? सर्पके पुण्यका उदय आया कि उसका वैरी जो नेवला है उसके शरीरका प्रध्वस हो गया लेकिन अभाव कभी कार्य नही कहलाता। शंकाकारके सिद्धान्तमे अभाव दो अर्थ हुआ करते हैं अभाव है इसका, मायने अन्य कुछ है, यह भी अभावका अर्थ है और कुछ भी होना यह भी अभावका अर्थ है। स्याद्वाद दर्शनमें तो अभावका अर्थ माना गया है अन्य कुछ हो, किन्तु विशेषवादमें, शंकाकारके सिद्धान्तमे अभावका अर्थ है कुछ न होना, तुच्छस्वभावरूप, तो जो तुच्छ अभाव है, असत् होना, कुछ न होना, वह तो कार्य नही बन सकता। तो जब तुच्छाभावमें कार्यत्व सम्भव नही है तब इस प्रसगमे सविशेषण हेतु न रहा, अर्थात् "कार्यत्वे सति उपकारकत्वात्" यह हेतु भागासिद्ध हो गया। नेवलेके शरीरका प्रध्वस होना सॉपके भाग्यपूर्वक है, क्योकि कार्य होकर वह सांपका उपकारक बन गया। प्रध्वस, नेवलेके शरीरका प्रध्वस सर्पका उपकारक तो बना किन्तु यहाँ कार्य भी है यह बात नही सिद्ध होती क्योकि तुच्छ स्वभावरूप अभाव कार्य नही हुआ करता। तब यह हेतु एक जगह तो लगा, एक जगह न लगा। किसी दृष्टान्तमे हेतु तो लग

गया और किसी जगह हेतु अधूरा ही रह गया, तब यह भागासिद्ध नामका दोष हेतुमें आया। तुच्छाभाव कार्य नहीं होता, इसपर विशेष विवेचन पहिले भी कर दिया है, जबकि परोक्ष प्रमाणके भेदोंमें एक अभाव प्रमाण भी किसी शंकाकारने रखा था। तब यह घटना सिद्ध न होगी कि नेवलेके शरीरमें प्रध्वंसाभाव सर्पके भाग्यपूर्वक हुआ। यदि कहोकि नेवलेके शरीरमें प्रध्वंसाभाव अतदगुणपूर्वक है, उसमें भाग्यकी कोई बात नहीं है, बिना भाग्यके ही हो गया। तो लो अब एक जगह एक घटना ऐसी भी मिल गई कि बिना भाग्यके भी काम हो जाता है, तब फिर सभी जगह देवदत्तकी स्त्री सम्पदा आदिककी घटनामें भी देवदत्तके अतद्गुण पूर्वक मानलो अर्थात् वह भी भाग्य पूर्वक नहीं है फिर भी देवदत्तका उपकारक बन रहा है ऐसा वहाँ क्यों नहीं मान लेते? जैसे कि नेवलेके शरीरका प्रध्वंसाभाव सर्पके भाग्यपूर्वक नहीं होता है फिर भी शरीरका प्रध्वंस सर्पका उपकारक तो बन ही रहा है।

अदृष्टका निमित्तत्व —जब तीर्थंकर प्रभुका जन्म होता है तब स्वर्गमें घंटा बजता है और व्यन्तरोंके स्थानपर सिंहनाद होता है, इन्द्रके आसन कम्पित हो जाते है। उतनी दूर तक जहाँ कि असंख्याते कोशोंका अन्तर है वहाँ तीर्थंकरका भाग्य जा जाकर ठोकर मार रहा है व्यवहारमें अचानक लोग कह तो यह बैठेंगे कि देखो! तीर्थंकरके भाग्यने कहाँ कहाँ ठोकर लगाया कि सिंहनाद हो गया, घंटानाद हो गया। लेकिन यह बात गलत है कि तीर्थंकरके पुण्यके परमाणु दौड़ दौड़कर जगह-जगह ठोकर लगाते हों, अथवा कहीं से कुछ खींचकर लाते हों यह बात युक्त नहीं है तीर्थंकर का अदृष्ट पुण्य तीर्थंकरके आत्मप्रदेशोंमें रहकर ही दूर दूरकी बड़ी बड़ी व्यवस्थाओंका कारण बन रहा है। कारणको यह आवश्यक नहीं है कि वह कार्यके प्रदेशमें जाकर कार्यको करे। सिद्ध अंजन, तिलक मन्त्र, अयस्कान्त आदि कारण कहाँ कार्यदेशमें रहते हैं?

सपक्ष साध्यविकलत्व होनेसे आत्मव्यापकत्व साधनमें सदोषताकी मीमांसा - शंकाकारने आत्माको व्यापक सिद्ध करनेके लिए जो यह अनुमान बनाया था कि देवदत्तकी स्त्री सम्पदा आदिक देवदत्तके भाग्यपूर्वक हैं कार्य होकर देवदत्तका उपकारक होनेसे और वह अदृष्ट आत्माके आश्रय हैं। अतएव आत्मा व्यापक है। इसमें दृष्टान्त दिया ग्रास आदिकका। अर्थात् जैसे भोजन देवदत्तके प्रयत्न पूर्वक है, देवदत्तने हाथसे ग्रास उठाया और खींचकरके मुहमें रख लिया तो दृष्टान्तमें शंकाकार ने यह बताया कि देखो! हाथका जो प्रयत्न है वह देवदत्तका गुण है ना। वैशेषिक सिद्धान्तमें २४ गुण माने हैं, उनमें एक प्रयत्न भी गुण है तो देवदत्तके प्रयत्न पूर्व गुण पूर्वक ग्रास मुखमें आया, इसी प्रकार भाग्य भी गुण माना गया है उन २४ गुणोंमें, तो जैसे हाथके प्रयत्नने ग्रासको खींचकर मुहमें रख दिया तो इसी तरह देवदत्तके भाग्यने भी पूरमें रहने वाली चीजोंका खींचकर देवदत्तके पास हाजिर कर दिया। सो देखिये!

इस प्रसगमे जो ग्रासका दृष्टान्त दिया है वह साध्यविकल है। अर्थात् देवदत्तके गुण पूर्वक नही है। ग्रासका मुखमे पहुचना यह देवदत्तके गुण पूर्वक नही है। कैसे ? अच्छा बतलावो जो ग्रास खिचकर मुखमे पहुचा और उसे मानते हो गुणपूर्वक तो वह गुण क्या है ? क्या पुण्य पाप आदिक है या प्रयत्न है ? यदि कहो कि वह गुण पुण्य पाप है तो यह साध्यसम हेतु हो गया। जैसे कि साध्य प्रसिद्ध है इसी प्रकार यहाँ हेतु भी असिद्ध हो रहा है। यदि कहो कि प्रयत्नपूर्वक है, और दृष्टान्तमे शकाकाका मुख्यभाव था एक यह कि ग्रास जो आकृष्ट हुआ है वह देवदत्तके प्रयत्नपूर्वक हुआ है, तो वह प्रयत्न कहलाता क्या है। क्या आत्मामें परिस्पद होना। आत्मामे प्रयत्न होना आदिक या हस्तपाद आदिक अवयवोमे क्रिया होना। प्रयत्नके मायने क्या है ? क्रिया होना। जैसे–हाथमे ग्रास उठाया, मुखमे दिया तो हुआ क्या ? क्रिया हुई। क्रियाका नाम है प्रयत्न। और, उसे तुम कह रहे हो गुण, तो इसका अर्थ यह हुआ कि चलनात्मक क्रियाको तुम गुण बता रहे हो और यदि चलनात्मक क्रियाका नाम गुण रख दिया जाय तो चलनेका ही नाम गुण बता दो। गमन कर रहा है कोई। क्या कर रहा है ? गुणकर रहा है फिर क्रिया क्या रही ? और, जब क्रिया कुछ न रही तो यह कहना कि द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य विशेष, समवाय ये ६ जातिके पदार्थ हैं यह सख्या गलत हो गई अब तो क्रियाकी बात ही कट गई। क्रिया कुछ न रही। क्रियाकी वार्ता करना भी बेकार है, इस कारण फिर यह कहना भी अयुक्त है कि द्रव्यका लक्षण है क्रियावत्त्व। जिसमे क्रिया पायी जाय उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्यका लक्षण भी यह माना है वैशेषिक सिद्धान्तने कि जो क्रियाका आश्रयभूत हो उसे द्रव्य कहते हैं। अब क्रिया तो कुछ रही नही, जितनी भी क्रियाये हैं, चलना, फिरना, गोल गोल फिरना, ऊँचे नीचे आना जाना, आदिक ये सब क्रियायें गुण कहलाने लगी तो फिर द्रव्यकी सख्याका विघात होता है और फिर द्रव्यका लक्षण भी खतम हो गया। जब क्रिया कुछ न रही तो क्रियावानको द्रव्य कहते हैं, इस प्रकारका लक्षण बनाना भी अयुक्त हो गया। इस कारण यह बात सिद्ध नही हो सकती कि आत्मा इस कारणसे व्यापक है कि दूरकी चीजको इस आत्माके निकट देवदत्त आदिकके निकट भुगे जानेके लिए आना पडता है। जहा तक आत्मा है वहाँ तक भाग्य फैला है और वहाँसे वस्तुवें आती हैं।

देहप्रमाणात्माश्रय अदृष्टकी कारणरूपता होनेसे अदृष्ट हेतुसे आत्माके सर्वव्यापकत्वकी असिद्धि— सत्य तो यह है कि भाग्यमे, अदृष्टमे ऐसा निमित्तपना है कि भाग्यका उदय होते ही स्वय इष्ट पदार्थोंका समागम मिलता है। पापका उदय होते ही इष्ट वियोग अनिष्ट समागम प्राप्त होता है। साथ ही कुछ ऐसा भी है कि इष्ट अनिष्ट बाहर कहाँ ढूंढना ? सब जगह पञ्चेन्द्रियके विषय मौजूद हैं। जहाँ ही कल्पना हुई और इसके साथ कर्मका उदय हुआ जिससे इन्द्रिय आदिककी समर्थता बनती है उस कालमे पदार्थका सयोग तो है ही। यह उनमे साता रूप परिणाम कर लेता है और फिर अदृष्टका सम्बन्ध अधिकतर इस आत्माके भावोके साथ है, किसीके

पास धन कम है लेकिन साताका उदय अधिक है, सन्तोष है, चिन्ता रहित है, और किसीके पास धन अधिक है तो वही असाताका कारण बन जाता है। धनके कारण चोर डाकू आदिक उसका आघात भी कर डालते हैं। अदृष्ट है और वह भी कार्यमें कारण है लेकिन अपने ही स्थानपर रहता हुआ अदृष्ट अनेक कार्योंका कारण बनता है। यो आत्मा देह प्रमाण है और देह प्रमाण इस आत्माके सर्व प्रदेशोंमें धर्म अधर्मका सद्भाव है अर्थात् पुण्यकर्म और पापकर्मका सद्भाव है। उस पुण्य और पापके उदयके निमित्तसे इष्ट समागम अनिष्ट समागम, इष्ट वियोग अनिष्ट वियोग ये सब हो रहे हैं। कहीं कर्म कारण कार्यदेशमे व्यापक हो तभी यह व्यवस्था बने यह आवश्यक नही है। तब सिद्ध हुआ कि आत्मा न परमाणुकी तरह अणुपरिमाण वाला है और न आकाशकी तरह सर्वव्यापक है किन्तु जब जिस देहमें रहता है तब उस देह प्रमाण है, और जब देहसे मुक्त हो जाता है तो जिस आकारमें रहता हुआ वह मुक्त होता है, मुक्त होनेपर फैलनेका, सिकुड़नेका कोई कारण न रहनेसे उस ही प्रमाण रहता है, इस तरह आत्मा अणु प्रमाण और आकाश प्रमाण नही, किन्तु मावान्तर परिमाण वाला है। विशेष प्रमाण तो इसका यही है कि सबको स्वसवेदन प्रत्यक्षसे देह प्रमाण स्वमें ही स्वका, सुख दुखका, सवेदनका, सामर्थ्यका अनुभव होता है। यह ज्ञानकी स्वच्छता का परिणाम है कि सभी पदार्थ अतीता-नागत पर्याय सर्व तत्त्व निरुपाधि केवल ज्ञान में ज्ञात हो जाते हैं। उस ही स्थितिमें सदाके लिये सकल सकट समाप्त हो जाते हैं। इस पावन आत्मरमणके लिये कर्तव्य है कि हम देहपरिम ण आत्मामें देहका भी भान छोडकर अपना सहज स्वरूप विषयक ज्ञान सम्पुष्ट करें हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम।

अदृष्ट स्वाश्रया सयुक्त आश्रयान्तरमे क्रियात्वका विवेचन—शकाकार ने जो यह कहा है कि अदृष्ट स्वाश्रयासयुक्त आश्रयान्तरमे क्रिया करता है क्योंकि एक द्रव्य वाला होनेपर क्रियाका हेतुभूत गुण स्वरूप होनेसे प्रयत्नकी तरह। जैसे कि प्रयत्न अपने आश्रयसे सयुक्त आश्रयान्तरमें क्रिया करता है क्योंकि प्रयत्न एक द्रव्यका है और वह क्रियाका हेतुभूत गुण स्वरूप है। जैसे हाथसे ग्रास उठाया, खाया तो हाथका प्रयत्न अपने आश्रयभूत जो शरीर उससे सयुक्त ग्रासमें क्रियाका करता है अर्थात् हाथ का प्रयत्न हाथसे अलग न होकर ग्रासके साथ सम्बन्ध होता है और उसमें क्रिया करता है ऐसे ही अदृष्ट अपने आश्रयसे याने आत्मासे सयुक्त है और आश्रयान्तर अर्थात् प्राप्य स्त्री सपदाके देशमे फैला हुआ है बहुत दूर तक और वह अदृष्ट आत्माके द्रव्यका है और वह अन्य द्वीपमे रहने वाले पदार्थोंमें कर्मको कर देता है क्योंकि अदृष्ट भी एक द्रव्य वाला है, एक द्रव्यका गुण है और क्रियाका हेतुभूत गुण है, उसका काम ही क्रिया करना है। जैसे कि हाथः प्रयत्नका काम दूसरे पदार्थको आकर्षित करके उठा लेना है इसी प्रकार अदृष्टका भी काम अन्य द्वीपमें रहने वाले पदार्थान्तरका आकर्षण करना है। इस अनुमानमे जो हेतु दिया है उसमे क्रियाहेतुत्व असिद्ध नही

है। अर्थात् अदृष्ट क्रियाका कारणभूत है। जैसे कि अग्निका ऊपर ज्वलन होना अर्थात् अग्निकी ज्वालाका उठना, वायुका तिरछा बहना, अणु और मनका शरीरकी उत्पत्तिके प्रदेशकी ओर गमन करना ये सब बातें देवदत्तके विशेष गुणके द्वारा करायी गई हैं, क्योंकि क्रिया होनेपर देवदत्तके उपकारक होनेसे। जैसे कि हस्त आदिकका परिस्पंद देवदत्तके विशेष गुणके द्वारा कराया गया है और उस परिस्पदसे देवदत्तका उपकार हुआ है, जो कुछ भी हाथने किया उस क्रियासे देवदत्तको लाभ पहुँचा है इस कारण क्रिया हेतुत्व प्रयत्नमे है वहाँ असिद्ध नही है, इसी प्रकार अदृष्टमें भी एक द्रव्यपना है और क्रियाहेतुत्व एवं गुणत्व है। अदृष्टमें एक द्रव्यत्व है यह बात असिद्ध नही है, क्यो कि अदृष्ट एक द्रव्यवान है विशेषगुण होनेसे शब्दकी तरह। जैसे शब्द विशेष गुण है तो वह एक द्रव्य वाला है अर्थात् शब्दका आश्रयभूत द्रव्य है आकाश। इसी प्रकार अदृष्ट भी विशेष गुण है तो उसका आश्रयभूत भी कोई विशेष द्रव्य होता है, वह है आत्मा। तो एक द्रव्यत्व भी असिद्ध नही है। अब इस हेतुमें यदि इतना ही कहते कि एक द्रव्यवान होकर गुण होनेसे अथवा एक द्रव्यका गुण होनेसे तो इतना कहनेपर रूप आदिकके साथ व्यभिचार दोष आता है। वह किस तरह कि देखो! रूप आदिक एक द्रव्यका गुण तो है, पुद्गल रूप, एक द्रव्यका गुण है रूपादिक, लेकिन वे आश्रयान्तरमें क्रिया नही करते हैं। तो इस दोषकी निवृत्तिके लिए ही प्रकृत हेतुमे क्रिया हेतु गुणत्व यह विशेषण दिया गया है। रूपादिक यद्यपि एक द्रव्यके गुण हैं लेकिन रूपादिक क्रियाके हेतुभूत गुण नही हैं। रूपसे कही क्रिया नही चल बैठती है। अब उस हेतुमे केवल इतना ही कहते कि "क्रिया हेतु गुणत्व" मायने क्रियाका हेतुभूत गुणवानका पाया जायना तो वह समवाय सयुक्त आश्रयान्तरमे क्रिया करने लगता है। तो इतना मात्र कहनेपर हस्त और मूसल आदिकके सयोगसे व्यभिचार दोष आता है माने हस्त और मूसलका सयोग हुआ और वह स्तम्भ आदिककी क्रियामे कारण भी बन गया, लेकिन अपने आश्रयसे असयुक्त स्तम्भ आदिकके पीडनेमें कारण बन गया। जसे किसी पुरुषने मूसल उठाकर घट फोड दिया तो घटकी हनन क्रियामें कारण तो बना लेकिन वह हस्त मूसलका सयोग हस्त मूसलमे ही तो रहा। जिसका हनन किया गया उसमें तो सयोग न रहा। तो इस अनेकान्तकी निवृत्तिके लिए इसमे विशेषण दिया है एक द्रव्यत्वे सति अर्थात् एक द्रव्यवान होकर फिर क्रियाका हेतुभूत होतो वह स्वाश्रय सयुक्त पदार्थान्तरमे क्रिया करता है। अब केवल इतना ही हेतु कहते कि एक द्रव्यत्व होनेपर क्रिया हेतु होनेसे, तो इतना कहनेपर फिर चुम्बकके साथ अनेकान्त आता है। देखो? चुम्बक एक द्रव्य है, और, चुम्बकका जो स्पर्श है वह क्रियाका हेतु भी है लेकिन वह अपने आश्रयसे असयुक्त लोह आदिकमे क्रिया करता है तो अपने आश्रयका असयुक्त लोह आदिककी क्रियाका हेतुभूत चुम्बक पदार्थसे अनेकान्त दोष आता। उस दोषको दूर करनेके लिए हेतुमें गुणत्व शब्द दिया है। चूंकि वह अयस्कान्त गुण रूप नही है अतएव वहाँ हेतु नही घटित होता। इस तरह शंकाकार यहाँ पुष्ट कर रहा है कि

पास धन कम है लेकिन साताका उदय अधिक है, सन्तोष है, चिन्ता रहित है, और किसीके पास धन अधिक है तो वही असाताका कारण बन जाता है। धनके कारण चोर डाकू आदिक उसका आघात भी कर डालते हैं। अदृष्ट है और वह भी कार्यमें कारण है लेकिन अपने ही स्थानपर रहता हुआ अदृष्ट अनेक कार्योंका कारण बनता है। यो आत्मा देह प्रमाण है और देह प्रमाण इस आत्माके सर्व प्रदेशोंमें धर्म अधर्मका सद्भाव है अर्थात् पुण्यकर्म और पापकर्मका सद्भाव है। उस पुण्य और पापके उदयके निमित्तसे इष्ट समागम अनिष्ट समागम, इष्ट वियोग अनिष्ट वियोग ये सब हो रहे हैं। कहीं कर्म कारण कार्यदेशमे व्यापक हो तभी यह व्यवस्था बने यह आवश्यक नहीं है। तब सिद्ध हुआ कि आत्मा न परमाणुकी तरह अणुपरिमाण वाला है और न आकाशकी तरह सर्वव्यापक है किन्तु जब जिस देहमें रहता है तब उस देह प्रमाण है, और जब देहसे मुक्त हो जाता है तो जिस आकारमे रहता हुआ वह मुक्त होता है, मुक्त होनेपर फैलनेका, सिकुडनेका कोई कारण न रहनेसे उस ही प्रमाण रहता है, इस तरह आत्मा अणु प्रमाण और आकाश प्रमाण नहीं, किन्तु अवान्तर परिमाण वाला है। विशेष प्रमाण तो इसका यही है कि सबको स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे देह प्रमाण स्वमें ही स्वका, सुख दुखका, संवेदनका, सामर्थ्यका अनुभव होता है। यह ज्ञानकी स्वच्छता का परिणाम है कि सभी पदार्थ अतीत-नागत पर्याय सर्व तत्त्व निरुपाधि केवल ज्ञान में ज्ञात हो जाते हैं। उस ही स्थितिमें सदाके लिये सकल संकट समाप्त हो जाते हैं। इस पावन आत्मरमणके लिये कर्तव्य है कि हम देहपरिम ण आत्मामे देहका भी भान छोडकर अपना सहज स्वरूप विषयक ज्ञान सम्पुष्ट करें हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम।

अदृष्ट स्वाश्रया संयुक्त आश्रयान्तरमे क्रियात्वका विवेचन—शंकाकार ने जो यह कहा है कि अदृष्ट स्वाश्रयासंयुक्त आश्रयान्तरमे क्रिया करता है क्योंकि एक द्रव्य वाला होनेपर क्रियाका हेतुभूत गुण स्वरूप होनेसे प्रयत्नकी तरह। जैसे कि प्रयत्न अपने आश्रयसे संयुक्त आश्रयान्तरमे क्रिया करता है क्योंकि प्रयत्न एक द्रव्यका है और वह क्रियाका हेतुभूत गुण स्वरूप है। जैसे हाथसे ग्रास उठाया, खाया तो हाथका प्रयत्न अपने आश्रयभूत जो शरीर उससे संयुक्त ग्रासमें क्रियाको करता है अर्थात् हाथ का प्रयत्न हाथसे अलग न होकर ग्रासके साथ सम्बन्ध होता है और उसमे क्रिया करता है ऐसे ही अदृष्ट अपने आश्रयसे याने आत्मासे संयुक्त है और आश्रयान्तर अर्थात् प्राप्य स्त्री सम्पदाके देशमें फैला हुआ है बहुत दूर तक और वह अदृष्ट आत्माके आश्रय है और वह अन्य द्वीपमें रहने वाले पदार्थोंमे कर्मको कर देता है क्योंकि अदृष्ट भी एक द्रव्य वाला है, एक द्रव्यका गुण है और क्रियाका हेतुभूत गुण है, उसका काम ही क्रिया करना है। जैसे कि हाथके प्रयत्नका काम दूसरे पदार्थको आकर्षित करके उठा लेना है इसी प्रकार अदृष्टका भी काम अन्य द्वीपमें रहने वाले पदार्थान्तरका आकर्षण करना है। इस अनुमानमे जो हेतु दिया है उसमें क्रियाहेतुत्व असिद्ध नहीं

है। अर्थात् अदृष्ट क्रियाका कारणभूत है। जैसे कि अग्निका ऊपर ज्वलन होना अर्थात् अग्निकी ज्वालाका उठना, वायुका तिरछा बहना, अणु और मनका शरीरकी उत्पत्तिके प्रदेशकी ओर गमन करना ये सब बातें देवदत्तके विशेष गुणके द्वारा करायी गई हैं, क्योंकि क्रिया होनेपर देवदत्तके उपकारक होनेसे। जैसे कि हस्त आदिकका परिस्पद देवदत्तके विशेष गुणके द्वारा कराया गया है और उस परिस्पदसे देवदत्तका उपकार हुआ है, जो कुछ भी हाथने किया उस क्रियासे देवदत्तको लाभ पहुँचा है इस कारण क्रिया हेतुत्व प्रयत्नमें है वहाँ असिद्ध नहीं है, इसी प्रकार अदृष्टमे भी एक द्रव्यपना है और क्रियाहेतुत्व एवं गुणत्व है। अदृष्टमे एक द्रव्यत्व है यह बात असिद्ध नहीं है, क्योंकि अदृष्ट एक द्रव्यवान है विशेषगुण होनेसे शब्दकी तरह। जैसे शब्द विशेष गुण है तो वह एक द्रव्य वाला है अर्थात् शब्दका आश्रयभूत द्रव्य है आकाश। इसी प्रकार अदृष्ट भी विशेष गुण है तो उसका आश्रयभूत भी कोई विशेष द्रव्य होता है, वह है आत्मा। तो एक द्रव्यत्व भी असिद्ध नहो है। अब इस हेतुमे यदि इतना ही कहते कि एक द्रव्यवान होकर गुण होनेसे अथवा एक द्रव्यका गुण होनेसे तो इतना कहनेपर रूप आदिकके साथ व्यभिचार दोष आता है। वह किस तरह कि देखो ! रूप आदिक एक द्रव्यका गुण तो है, पुद्गल रूप, एक द्रव्यका गुण है रूपादिक, लेकिन वे आश्रयान्तरमें क्रिया नहो करते हैं। तो इस दोषकी निवृत्तिके लिए ही प्रकृत हेतुमे क्रिया हेतु गुणत्व यह विशेषण दिया गया है। रूपादिक यद्यपि एक द्रव्यके गुण हैं लेकिन रूपादिक क्रियाके हेतुभूत गुण नही हैं। रूपसे कहीं क्रिया नहो बन बैठती है। अब उस हेतुमे केवल इतना ही कहते कि "क्रिया हेतु गुणत्व" मायने क्रियाका हेतुभूत गुणवानका पाया जायगा तो वह समवाय सयुक्त आश्रयान्तरमे क्रिया करने लगता है। तो इतना मात्र कहनेपर हस्त और मूसल आदिकके सयोगसे व्यभिचार दोष आता है माने हस्त और मूसलका सयोग हुआ और वह स्तम्भ आदिककी क्रियामे कारण भी बन गया, लेकिन अपने आश्रयसे असयुक्त स्तम्भ आदिकके पीडनेमें कारण बन गया। जसे किसी पुरुषने मूसल उठाकर घट फोड दिया तो घटकी हनन क्रियामे कारण तो बना लेकिन वह हस्त मूसलका सयोग हस्त मूसलमे ही तो रहा। जिसका हनन किया गया उसमें तो सयोग न रहा। तो इस अनेकान्तकी निवृत्तिके लिए इसमे विशेषण दिया है एक द्रव्यत्वे सति अर्थात् एक द्रव्यवान होकर फिर क्रियाका हेतुभूत होतो वह स्वाश्रय सयुक्त पदार्थान्तरमे क्रिया करता है। अब केवल इतना ही हेतु कहते कि एक द्रव्यत्व होनेपर क्रिया हेतु होनेसे, तो इतना कहनेपर फिर चुम्बकके साथ अनेकान्त आता है।

देखो ? चुम्बक एक द्रव्य है, और, चुम्बकका जो स्पर्श है वह क्रियाका हेतु भी है लेकिन वह अपने आश्रयसे असयुक्त लोह आदिकमे क्रिया करता है तो अपने आश्रयका असयुक्त लोह आदिककी क्रियाका हेतुभूत चुम्बक पदार्थसे अनेकान्त दोष आता। उस दोषको दूर करनेके लिए हेतुमें गुणत्व शब्द दिया है। चूँकि वह अयस्कान्त गुण रूप नही है अतएव वहाँ हेतु नहो घटित होता। इस तरह शंकाकार यहाँ पुष्ट कर रहा है कि

अदृष्ट अपने आश्रयसे संयुक्त आश्रयान्तरमें क्रियाको करता है।

आत्माकी सर्वगतता और अदृष्टकी कार्यकारिताके सम्बन्धमें शंकाकार द्वारा प्रस्तुत पक्षका संक्षिप्त स्पष्टीकरण—यहाँ शंकाकारका अभिप्राय यह है कि आत्मा एक सर्वव्यापक है। उस एक आत्माके कुछ प्रदेश हमारे शरीरमें हैं कुछ प्रदेश दूसरेके शरीरमें हैं और शरीरोंके बीच जो खाली अन्तराल है उसमें भी उस ही एक आत्माके कुछ प्रदेश हैं। तो जब आत्मा सर्वत्र एक व्यापक है तो आत्माके आश्रय रहने वाला भाग्य भी सर्वत्र व्यापक है, अब देवदत्तके प्रदेश अलग हैं और जहाँसे कोई चीज आकर देवदत्तको मिलेगी पुण्यके उदयसे उस जगहके आत्म प्रदेश दूसरे हैं, आत्मा एक है। तो देवदत्तका भाग्यका सम्बन्ध देवदत्तके शरीरके आत्म प्रदेशमें है और जहाँसे चीज आयगी उस जगहकी जो आत्मा है उससे भी संयुक्त है। तो जैसे हाथका प्रयत्न जो ग्रासको उठाकर मुखमें रखता है तो उस प्रयत्नका संयोग हाथमें भी है या कहिये देवदत्तमें है और उस प्रयत्नका संयोग ग्रासमें भी है तब वह प्रयत्न ग्रासको मुखमें रख देता है इसी प्रकार जो अदृष्ट, जो भाग्य, जिस भाग्यका सम्बन्ध उस चीजसे है, वैभव सम्पदा स्त्री आदिक सो उस भाग्यका संयोग देवदत्त शरीरस्थ आत्म प्रदेशमें है और उस भाग्यका सम्बन्ध आकृष्यमाण वैभवदेशस्थ आत्मप्रदेशमें भी है, इस कारण वह चीज देवदत्तके पास आती है। ऐसा होता क्यों है कि वह अदृष्ट भाग्य एक आत्म द्रव्यका है और वह अदृष्ट निष्क्रिय गुणोंकी भाँति नहीं है, किन्तु क्रियाका हेतु रूप गुण है। कई गुण होते हैं क्रियाके अहेतु और कई गुण होते हैं क्रियाके कारण। यह सब वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार कहा जा रहा है, जैसे हाथमें जो रूप है वह गुण तो क्रिया का हेतुभूत नहीं। रूप क्या क्रिया कर सकता है? और हाथमें जो प्रयत्न नामका गुण है वह क्रियाका कारण बनता है। तो भाग्य नामका जो गुण है वह क्रिया हेतुभूत है इस कारण बाहरकी चीजें आत्मासे मिल जाती हैं, इससे सिद्ध है कि आत्मा सर्वव्यापक है। तभी तो अदृष्ट जो आत्माके आश्रय है वह चीजोंको खोज खोजकर ला देता है।

अदृष्टके आत्मगुणत्वकी असिद्धि होनेसे शंकाकारके अभीष्टकी असिद्धि—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारकी बात सुनते ही तुरन्त बड़ी सुहावनी लगती है सो जब तक उसपर विचार न किया जाय तब तक ही वह बात सुहावनी, भली लगती है। विचार करोगे तो जितनी बात कही है उसकी एक एक बातका निराकरण हो जायगा। पहिले तो यह निराकृत होता है कि अदृष्ट आत्माका गुण है, भाग्य आत्माका गुण है ही नहीं। यहाँ शंकाकारने हेतुको पुष्ट बनानेके लिए तीन बातें रखी हैं एक द्रव्यकी चीज है भाग्य अर्थात् जो आत्मा सर्वत्र फैला हुआ है उस ही आत्माके कुछ प्रदेश देवदत्तके शरीरमें हैं पर उसका जो अदृष्ट है वह तो आत्मा का कहलायगा। तो वह अदृष्ट एक आत्मद्रव्यका है। दूसरी बात कहा है यह कि अदृष्ट गुण है, तीसरी बात कही है यह कि वह अदृष्ट गुण क्रियाका हेतु है। इन तीनों

मे विशेष्य तो है "गुण" अर्थात् मुख्य हेतु यह है "गुण होनेसे," और, गुणके विशेषण हैं दो। क्रियाका हेतुभूत है और एक द्रव्यके आश्रय है। नो इसमे विशेष्य तो गुण कहलाया मुख्य, सो यही सिद्ध नही हो रहा तो अन्यकी तो बात ही क्या कहे। फिर विशेषणपर चलो।

अदृष्ट और आत्मामे सयोता असिद्ध होनेके कारण अदृष्टके एक द्रव्यत्वकी असिद्धि होनेसे शकाकारके अभीष्टकी असिद्धि—एक द्रव्यका है वह अदृष्ट यह भी सिद्ध नही होता। वह भाग्य एक आत्माके आश्रय है, एक आत्माका है वह अदृष्ट यह कैसे सिद्ध करोगे ? क्या अदृष्टका एक आत्मामे सयाग है इस कारणसे यह कहोगे कि भाग्य एक द्रव्यमें रह रहा है अथवा भाग्यका इस एक आत्मामे समवाय सम्बन्ध है इस कारण कहेगे कि भाग्य एक द्रव्यमे है, अथवा किसी अन्य कारणसे कहोगे ? यहाँ सयोग और समवायका कुछ अर्थ सयभः लीजिये। सयोग तो कहलाता है वह सम्बन्ध जा पहिले न्यारे-न्यारे हो, फिर भी न्यारे-न्यार हो सकेंगे। ऐसे सम्बध को कहते हैं सयोग। जैसे बेन्चसे इस पुस्तकका सयोग है, पहिले न था यह सयोग और शास्त्र पढनेके बाद उठा लिया जायगा तो बेन्चसे इस पुस्तकका सयोग न रहा। तो स्वतत्र भिन्न-भिन्न दो द्रव्योमे जो कोई सम्बन्ध बनता है उसका नाम है सयोग सम्बन्ध और समवाय सम्बन्ध उसे कहते हैं कि उसका सम्बन्ध तो जब रहा, पर यह हालत कभी नही हुई कि उसका सम्बन्ध न था। यह हालत कभी न होगी कि उसका सम्बध न रहेगा। जैसे आत्मामे ज्ञानका समवाय सम्बन्ध है, आत्मा कभी ज्ञान रहित न था द्रव्यमे आत्मा कभी ज्ञान रहित न होगा। कदाचित् वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार आत्मा ज्ञानरहित भविष्यमे तो हो जायगा पर पहिले कभी न था ज्ञानरहित। ऐसे घनिष्ट सम्बन्धको कहते हैं समवाय। तो यह बतलावो कि उस भाग्यका तो एक आत्मा मे सम्बन्ध बन गया है तो क्या सयोग सम्बन्ध है या उसमे समवाय सम्बन्ध है। सयोग सम्बन्ध ता कह नही सकते, क्योकि सयोग भी स्वय एक गुण माना गया है वैशेषिक सिद्धान्तमे। जैसे भाग्य भी आत्माका गुण है ऐसे ही सयोग भी एक गुण है। तो सयोग जब गुणरूप है तो वह गुणमें कैसे रहे सयोगका तो यह लक्षण है कि जो द्रव्य द्रव्योंमे सम्बन्ध रहा करे। जैसे बेन्च द्रव्य है, पुस्तक द्रव्य है तो इसका सयोग बन जाता मगर भाग्य तो द्रव्य नही। आत्मा द्रव्य है, अदृष्ट, भाग्य गुण माना गया है वैशेषिक सिद्धान्तमे तो द्रव्य और गुणके सम्बन्धका नाम सयोग बताया ही नही। द्रव्य द्रव्यके सम्बन्धका सयोग कहेंगे। यदि कहो कि होने दो सयोग अदृष्टका और आत्मा का, तो इसके मायने है कि अदृष्ट गुणवाला हो गया सयोग वाला हो गया, द्रव्य जितने होते हैं वे गुण वाले हुआ करते हैं द्रव्याश्रय निर्गुण गुणः। जो लक्षण स्याद्वादमे गुणका किया गया है विशेषवादी वे भी मानते हैं कि द्रव्य गुणके आश्रय रहता है तथा गुणमें और गुण नही रहा करते, क्योकि जिसमे गुण रहते हैं उसका नाम है द्रव्य। यदि गुणमे गुण रहे तो उस गुणका नाम हो जायगा द्रव्य। तो जब अदृष्टका

और आत्माका सयोग सम्बन्ध हो गया तो आत्मा भी द्रव्य कहलायेगा और भाग्य भी द्रव्य कहलायेगा । भाग्यका हो नाम अदृष्ट है । तब यह कहना कि अदृष्ट क्रियाका हेतु-भूत गुण है अब गुण ही न रहा तो अनुमान गलत हो गया ।

अदृष्ट और आत्मामे समवाय असिद्ध होनेके कारण शकाकारकी अभिष्ट सिद्धिका अभाव—यदि कहो कि भाग्यका उस एक आत्माके साथ समवाय सम्बध है तो पहिले समवायको ही तो सिद्ध कर लो । समवाय नामका कोई सम्बध भी हुआ करता है क्या ? इसका निषेध आगे बडे विस्तारसे किया जायगा । प्रसगम यह बात मान लो कि सम्बध तो दो तरहके होते हैं एक सयोग सम्बध दूसरा तादा-त्म्य सम्बध । तो तादात्म्य कहते हैं उसे कि उस ही रूप वह चीज है । केवल समझने के लिये भेद किया है । जैसे आत्माका ज्ञान । आत्माका ज्ञान किसी सम्बसे आत्मामें रहे, सो बात नही, किन्तु ज्ञानमय ही आत्मा है, वहाँ सम्बध कुछ नही है । वही एक है तद्रूप । तादत्म्य कहो या तद्रूप कहो एक ही अर्थ है । अब उस तद्रूप और तादात्म्य के समझनेके लिए उसका भेद लोग कर देते हैं कि देखो जिसमे ज्ञान रहे उसे कहते हैं आत्मा, पर ऐसा तो नही है—आत्मा अलग हो, ज्ञान अलग हो उसका सम्बध बने, तब तो स्पष्ट रूपसे यह कहो कि जिसमें ज्ञान पाया जाय वह है आत्मा । जिसमें घी भरा है वह है घीका डिब्बा, यह तो बात बन जायगी । घी अलग है, डिब्बा अलग है, पर आत्मा और ज्ञानको यह सम्बध कहना मिथ्या है क्योंकि आत्मा और ज्ञान स्व-भाव न्यारा है नही, और न्यारा करके समझा सकेंगे, इसके अलावा उपाय कुछ सम झानेका है नही । तो सम्बध तो एक ही है, सयोग । कभी होता कभी विघटता है । समवाय नामका कोई सम्बध नही है । सयोग, समवाय दो के अतिरिक्त अन्य कोई सम्बध माना नही गया । तो उस अदृष्टका एक द्रव्यमें सम्बन्ध बन कैसे गया ? तो यह भी सब गलत हो गया कि अदृष्ट एक द्रव्य वाला है अर्थात् एक ही आत्मामें रह रहा है । जो आत्मा सर्वव्यापक है, देवदत्तमे जो आत्मप्रदेश है उसमें वही एक आत्मा है और बाहर जहाँ वैभव सम्पदा रखे हैं उस जगह भी उस ही आत्माके प्रदेश हैं । अदृष्टका सम्बध उस एक आत्मामें है ये सारी बातें गलत हो जायेगी ।

अदृष्टके क्रियाहेतुत्वके निराकरणमे तीन विकल्प—अब जरा क्रिया हेतुत्वपर भी विचार करिये । शकाकार यह मानता है कि अदृष्ट क्रियाका हेतुभूत याने भाग्य बाहरके पदार्थोंकी क्रियाका कारण है अदृष्ट सपदाको खींच खींचकर ला देता है भाग्यवान आत्म प्रदेशके पास, यह भी बात गलत है, क्योंकि यहाँ यह एक विचार करो कि जिस भाग्यको द्वीपान्तरमें अन्य द्वीपमें रहने वाली चीजको खींचकर ला देने की बात कहते हो यह अदृष्ट क्या देवदत्तके शरीरमें रहने वाले, आत्म प्रदेशमें रहता हुआ अदृष्ट अन्य द्वीपमें रहने वाले वैभवको देवदत्तके प्रति भेजता है या अन्य द्वीपोमें रहने वाला जो अदृष्ट है, भाग्य है वह वहाँकी चीजको देवदत्तके पास भेजता है,

परमाणुवोका उस अदृष्टके द्वारा उत्पन्न होना नही बन सकता, क्योकि देवदत्तके शरीर को रचने वाले परमाणु हैं नित्य और जो नित्य चीज होती है वह किसीके द्वारा उत्पन्न नही की जा सकती अन्यथा नित्य क्या रही ? और जब देवदत्तके शरीरको रचने वाले परमाणु भाग्यके द्वारा रचे नही गए और फिर उन परमाणुवोंका आकर्षण अदृष्टके द्वारा ही माना जाय तो जो नही रचे गए उन्हें भी भाग्य खींचने लगा। देवदत्तके शरीरके परमाणु रचे नही गए और उन्हें भी भाग्य ही तो खीचकर लाता है। सो भी ठीक और रास्तेमे जो पदार्थ मिलेंगे उन्हे उस भाग्यने रचा नही, फिर भी आजाने चाहियें, क्योकि अब तो बिना रची हुई चीज भी आने लगी। जैसे शरीरके परमाणु बिना रचे हैं, भाग्यने नही रचा, लेकिन आने वाला भाग्य ही है तो भाग्यके द्वारा नही रचे गए ५ हजार मीलके भीतरके सारे वैभव भी भाग्यके द्वारा खिचकर आ जाने चाहियें, पर यह बात नही बन सकती कि देवदत्तके शरीरके आत्मप्रदेशमें रहने वाला भाग्य ही दूर दूरके द्वीपोमे रहने वाले वैभवोको खींचकर लाता है।

द्वीपान्तरस्थ अदृष्टके द्वारा देवदत्तके प्रति वैभवको उत्सर्पण किये जानेकी असिद्धि शकाकार कहता है—तब फिर हमारी दूसरी बात मान लो ! अर्थात् उन ४–५ हजार मीलकी दूरीपर रहने वाले वैभवोके पास भाग्य रखा हुआ है और वह भाग्य दूरकी चीजोको देवदत्तके पास भेजता रहता है, तो इस सम्बन्धमें भी दो बातें पूछी जारही हैं एक तो यह कि जैसे हवा देवदत्तके पास स्वय भाग रही है और बीचमें जितने भी तृण, हल्की धूल कचडा, हल्के कागज वगैरहको भी तो भेज रही है देवदत्तके पास, तो देवदत्तके समीप उन कण आदिकके सरकानेका कारण बन रही है हवा, क्या अदृष्ट भाग्य देवदत्तके प्रति स्वय भागता है, सरकता है और अन्य पदार्थोंको भी सरका रहा है ? देखो ना ! हवा स्वय सरककर देवदत्तके पास नही आये तो बीचके तृण भी कैसे आयें ? केवल तृण ही आ जाय देवदत्तके पास और हवा न आये, ऐसा नही होता। हवा भी आ रही है और उसके साथ तृण आदिक भी आ रहे, क्या इस तरहसे ५ हजार मील दूरपर रहनेवाला भाग्य स्वय सरककर देवदत्त के पास आता हुआ वैभवको साथमे सरकाकर ला रहा, क्या यह बात है अथवा उस दूसरे द्वीपमे रहने वाले द्रव्यसे सयुक्त जो आत्मप्रदेश हैं वहाँ ही रह रहा, ठहर रहा भाग्य और वहीं रहकर उन पदार्थोंको सरका देता है। यहाँ दो बातें पूछी जा रही हैं, एक तो यह कि हवाकी तरह भाग्य स्वय सरकता हुआ आ रहा है और वैभवको सरकाकर ला रहा है, दूसरी बात यह कि वह भाग्य सरककर नही आ रहा है वह तो एक मुनीमकी तरह वहाँ ही बैठा हुआ है। वहाँसे चीजोको सरकाकर देवदत्तके पास भेजता है, इन दोनो बातोमे आप कौनसी बात पसद करते हो ? यदि कहो कि हमारी बात पहिली रख लीजिये अर्थात् वायुकी तरह भाग्य सरकता हुआ चीजको सरकाकर लाता है तो यह बतलावो कि भाग्य क्या स्वय सरक रहा है ? या किसी अन्य भाग्य के द्वारा सरक रहा है ? जैसे चीजके सरकनेमें भाग्य कारण है तो उस भाग्यके सरकने

बतलाओ ? वहा कहना चाहिए कि उनका निमित्तकारण अनन्तरित पूर्व पूर्व भाग्य है जैसे तीसरे भाग्यको सरकानेका निमित्त कारण दूसरा भाग्य है । दूसरे भाग्यको सरकानेका निमित्तकारण दूसरा भाग्य है, दूसरे भाग्यको सरकानेका निमित्तकारण पहिला भाग्य है । तो पहिले भाग्यका सरकानेका कारण और उससे पहिले क्या ? तो यो अनवस्था दोष आयगा । यदि कहोगे कि भाग्यकी नवीन नवीन उत्पत्ति होती जाती है, पर उनमे पहिले भाग्य निमित्त नही हैं, तो यों शब्दमे भी पहिले शब्द निमित्त न बने । यदि कहो कि पहिला ही भाग्य जो सरका किसी एक दूसरे भाग्यके द्वारा सरका और वह भाग्य सीधा आ गया । वीची तरंग न्यायसे नया-नया भाग्य बन-बनकर नहीं आया । सिर्फ दो भाग्य हम मानते हैं एक तो वह असली भाग्य जो सरककर चीजोंको लाता हुआ देवदत्तके पास आये और एक उस भाग्यको सरकाने वाला दूसरा भाग्य । तो उत्तरमे कहते हैं कि तो यह प्रश्न खडा ही रहेगा कि भाग्यको सरकानेवाले भाग्यको किसने सरकाया ? इसलिये अनवस्था दोष वहीका वही बराबर रहता है ।

द्वीपान्तरवर्ती भाग्यसे वैभवोत्सर्पणके सिद्धान्तकी मीमासा—अब अब शकाकार कहता है कि इसमे सरकने सरकानेकी कोई बात नही है । ५ हजार मील दूरपर रहने वाले भाग्यने वहाँसे ऐसा प्रयत्न किया कि वहाँसे वैभव स्त्री, सम्पदा आदिक स्वय सरकते हुए आ गए । देखो भैया ! शकाकारका विकल्प आपको ध्यानमें आया ना, जैसे कि बाण चलाने वालेने अपनी जगहमे बाण चलाया तो वह बाण एक मील दूर तक चला गया । प्रयत्न करने वाले पुरुषको यह आवश्यक नही है कि वह प्रयत्न या वह पुरुष बाणके साथ ही सरकता हुआ जाय तब बाण पहुँचे । इसी तरह ४-५ हजार मील दूरपर रहने वाले भाग्यने ऐसी क्रिया की कि वहाँसे स्त्री सम्पदा आदिक स्वय भगते हुए देवदत्तके पास आ गए । समाधानमें कहते हैं कि यह कहना सगत नही है, क्योंकि दूसरी जगह हो प्रयत्न अर्थात् दूसरी जगहके आत्मप्रदेशमें रहने वाला तो हुआ अदृष्ट, उसका प्रयत्न और उस जगहके प्रयत्नके होनेपर यहांके आत्मगुणोमे कोई खासियत हो जाय, सो नही हो सकता । जैसे शकाकारका यह दृष्टांत था कि थालीमें रखा हुआ ग्रास मुखमें पहुँच कैसे जाता है ? देवदत्तके हाथके प्रयत्न गुणसे ! तो वहाँ भी मानना पडेगा कि ग्रास जहाँ रखा है वहाँ भी आत्मप्रदेश है, सो यहाँ देख लो ! उन आत्मप्रदेशोमे रहने वाला जो प्रयत्न है वही ग्रासको देवदत्तके मुखमें नही रख देता । अगर थालीकी जगह रहने वाला प्रयत्न गुण ही मुखमे ग्रास धरदे तो बीचके और प्रयत्न करनेकी जरूरत न रही । जैसे बाण चलाने वालने अपनी जगहसे बाण छोड दिया और वह बाण १ मील दूर चला गया तो उसे बीचमे प्रयत्न करनेकी जरूरत नही रही । इसी तरह ग्रासको जगह रहने वाले आत्मप्रदेशमे प्रयत्न होनेसे ग्रास मुखमे यदि पहुँच जाय तो बीचके जो हाथके प्रयत्न हैं ग्रासकी जगहसे लेकर मुख तक सारे प्रयत्न हुए ना ! एक हाथ दूरसे लेकर मुख तक हाथ क्रम क्रमसे प्रयत्न करता हुआ गया सो गो तब फिर बीचके प्रयत्नोंकी जरूरत न रहनी चाहिए । इससे

यह कहना बेकार है कि जहांसे जो चीज आती है देवदत्तके पास उस जगह आत्मप्रदेश में गुण होते हैं, भाग्य होता है और वह वहां ला देता है।

प्रयत्नकी विचित्रताकी शका और उसका स्वयमुक्त समाधान—अब समझ लीजिये यहाँ दो आपत्तियां आयी ना ! यह भी नही कह सकते कि हजार मील पर रहने वाला भाग्य वही रहेगा वहींसे ऐसी ठोकर लगाता है सम्पदामे कि सम्पदा खिचकर चली आती है। तथा यह भी नही कह सकते कि भाग्य भी स्वय सरकता हुआ आता है। और साथमे सम्पदाको ले आता है। जब दोनो बातें शकाकार सिद्ध न कर सका अलग-अलग तो शंकाकार कहता है कि भाई प्रयत्न नाना प्रकारके हुआ करते हैं। कोई प्रयत्न ऐसा होता है कि बीचके सभी देशको लगातार जगह छूता हुआ ठिकानेकी जगहपर आता है जैसे ग्रासका मुखमे पहुँचना। देखो ना, ग्रास स्थानसे मुख स्थानतक लगातार पूरी जगहमे प्रयत्न करता हुआ हाथ आता है तब ग्रास मुखमे आता है। और, कोई प्रयत्न ऐसा होता कि लगातार सारी जगहमें गुजरनेकी जरूरत नही। एक ही जगह प्रयत्न हुआ कि चीज खिचती चली गई। जैसे कि वाणके स्थानपर प्रयत्न हुआ और वह सीधा १ मील दूर वेध्य लक्ष्यपर पहुँचा तो इसके समाधानमें कहते हैं कि ऐसी ही विचित्रता तुम भाग्यमें क्यो नही मानते ? उसमे भी रहो कि वह एक द्रव्य वाला भाग्य है और क्रियाका हेतुभूत गुण है, और अपने आश्रयमे सयुक्त हो अथवा असयुक्त हो सब क्रियावोका हेतु होता है। सो लो, अब आत्माको सर्वव्यापक माननेकी जरूरत नही। क्योकि जैसे एक प्रयत्न तो ऐसा होता कि लगातार सारे देशमें सरकता हुआ गया। उसमे तो शायद सर्वव्यापक जैसी माननेकी बातका जरा स्वप्न देख सकते हो, पर एक प्रयत्न ऐसा होता कि वहींसे चोट लगाकर चीजको फेंक दे तो बीचमे आत्मा माननेकी क्या जरूरत ? और, ये दो तरहकी विचित्रतायें क्रियाके हेतुमे देखी भी जाती हैं। जैसे जो नकली चुम्बक है उसपर लोहेके टुकडेका स्पर्श करा दिया जाय तब उसको खींचता है, जैसे कई चुम्बक वाली चाकू ऐसी होती हैं कि सूईको दूर से ही खीच लेती हैं और चुम्बक वाली चाकू ऐसी होती हैं कि जो सूईको चाकूका स्पर्श करा देनपर सूईको अपनी ओर खीचती है। तो ये दो तरहके चुम्बक हो गए। जो नकली चुम्बक है वह तो लोहेका स्पर्श करानेपर अपनी ओर खीचता है और जो असली चुम्बक है वह एक हाथ दूरसे ही लोहेको अपनी ओर खीचता है, ऐसे ही आत्माके अदृष्टमे, भाग्यमे भी दो तरहकी बातें मानो। तो यह तो सिद्ध हुआ कि आत्मा शकाकार की एक निगाहमे शायद व्यापक बनता हो, परतु वस्तुत एक निगाहमे व्यापक नही रहता।

गुणवान द्रव्यकी क्रियाहेतुताका निर्णय—यहां दृष्टान्त दिया है नकली और असली चुम्बकका। असली चुम्बक तो लोहेको दूरसे हीं खीच लेता है और नकली चुम्बक लोहेका स्पर्श करा देनेपर अपनी ओर खीचता है। इस पर शकाकार कहता है

कि स्पर्शगुण आकर्षणका कारण नही है किन्तु द्रव्य है आकर्षणका कारण। चुम्बक पिण्ड आकर्षणका कारण है। इसका सबूत यह है कि अगर चुम्बक न हो, द्रव्य न हो तो खाली स्पर्शगुण भला खींच ला दे किसीको। सो चुम्बकका स्पर्शगुण नही खींचता, किन्तु चुम्बक द्रव्य लोहेको खीचता है। शकाकारके इस कथनपर समाधानमें उलहना देते हैं–तब तो तुमने जो यह कहा है कि वेग क्रियाका कारण है तो वेग तुम्हारा गुण है कि द्रव्य है ? बताओ। वह तो गुण है। तुमने यहाँ स्पर्शगुणको क्रिया हेतु माननेस इनकार किया तो वेगका क्रिया हेतु न बन सकेगा साथ ही यह भी कहा कि क्रिया सयोगका कारण है। जैसे–दो हाथ अलग–अलग हैं। अब इनका सयोग कैसे बने ? जब इसके हाथोमे क्रिया हो। तो क्रिया तो द्रव्य नही लेकिन देखो ! वह क्रिया सयोग का कारण बन गया। सो यह न बनेगा फिर क्योंकि तुम मानते हो कि द्रव्य ही क्रिया का कारण होता है। इसी तरह सयोग गुण द्रव्यका भी कारण न होगा। याने जो बिखरे हुए एक–एक परमाणु हैं वे तो कारण द्रव्य हैं और परमाणु मिल करके काय द्रव्य बने हैं। तो परमाणु तो कार्य द्रव्य नही। द्रव्य माना है स्कधको, काय द्रव्यको। परमाणुको तो सिर्फ कारणरूप माना है शकाकारने, तब फिर स्कधकी उत्पत्ति न होगी। द्रव्य ही यहाँ कारण रहा इस प्रसगमे मुकाबलेक प्रश्नोत्तर करनेके लिए दो बातें हैं सामने। चुम्बकका स्पर्शगुण लोहेके खींचता है यह नही मानना चाहता है शकाकार। और, मान रहा है यह कि वेग क्रियाका कारण होता है आदिक। तो यहाँ तो गुणको क्रियाका कारण नही मान रहा और वेग आदिककी जगह गुणको क्रियाका कारण मान रहा। तो विपत्ति देनेके बाद शकाकार कहता है कि वेग जिसमे होता है उस द्रव्यको यदि तुम क्रियाका कारण मान लोगे, वेगको कारण न मानोगे तो वेग रहित द्रव्य क्रिया तो करदे, जिसमे वेग नही हो रहा, ऐसा खाली द्रव्य क्रियाका कारण तो बन जाय ? नही बनता। इससे सिद्ध है कि क्रियाका कारण तो वेग है। समाधान में कहते हैं तो यही बात यहाँ घटा लो कि स्पर्श रहित चुम्बक लोहेको तो खींच दे ? नही खींच सकता। तो जैसे वेग गुणको क्रियाका कारण यहाँ मानते हो ऐसे ही चुम्बक कोमें स्पर्शगुणको क्रियाका कारण मान लो। यदि कहोगे कि चुम्बकमे तो यह बात नजर आती तो चलो ठीक है। अब यहाँ एक समन्वयपर आ जावो कि न केवल स्पर्श गुण, न केवल वेग गुण क्रियाका कारण है और न केवल गुणरहित द्रव्य क्रियाका कारण है किन्तु स्पर्शवान चुम्बक जैसे क्रियाका हेतु है ऐसे ही सर्वत्र मानना कि गुण सहित द्रव्य क्रियाका कारण है। तो जब ऐसा मान लिया तो वह हेतु दूषित हो गया कि "एक द्रव्यवाला होकर क्रियाका हेतुभूत गुण होनेसे'। यहाँ निष्कर्ष यह है कि आत्मा आकाशवत् सर्वव्यापक नही हैं किन्तु देह प्रमाण है। देह प्रमाण रहकर ही यह आत्मा अपने आपमें सम्बन्धित भाग्य द्वारा अपने आप इष्ट समागम अनिष्ट वियोग आदिक समस्त अभीष्टको पाता रहता है।

आत्माको नित्य एक निरश सर्वगत मान डालनेकी उपजकी हेतुभूत

बुद्धिकी सभवता—भैया यह पता नही कि सीधी सादी बात न मानकर जो बात अनुभवमे नही आती प्रत्यक्षसे नही आती, ऐसी बातोकी कल्पना करनेको दार्शनिको को क्या जरूरत रही थी ? समझमे आ रहा—जितना देह है उतना आत्मा है। सबका अनुभव अपने आपमें अलग अलग है इतना प्रत्यक्ष सिद्ध आत्माका समाधान है और उसे न स्वीकार करके आत्मा एक सर्वव्यापक है, भाग्य भी उतनी दूर फैला है, और और भी सारी व्यवस्थायें बनाना इसकी क्या आवश्यकता थी ? यह एक सामने प्रश्न है। अब सोचो इस प्रश्नके कारण क्या हम सभी इन दार्शनिकोको बिल्कुल मूढ़ कह देंगे ? उनमें कुछ ज्ञान न था, वे कुछ दिमागसे सोचते न थे ? नही, नही उनके मित्र बनकर विचार करिये सोचते थे वे, उनमे ज्ञान था, कुछ तथ्य उन्होने परखा था, मगर उस परखमे थोडी सी चूक हो जानेके कारण इतनी विरुद्ध वार्ताको मुख्य करके उपस्थित कर दिया। तथ्य क्या था ? एक चित्रण करो ऐसा कि एकान्त वन उपवनमे किसी जगह बहुतसे विद्वान साधु बैठे हुए थे। उनमे कोई मुख्य आचार्य आत्माके शुद्ध स्वरूपका वर्णन कर रहे थे। आत्माका सहज स्वरूप क्या है ? नारक मनुष्य देव, पशु पक्षी आदिक होना यह आत्माका स्वरूप नही है। क्रोध, मान, माया, लोभ विषय कषाय परिणाम होना आत्माका स्वरूप नही है। विकल्प वितक विचार होना आत्मा का स्वरूप नही है। विशुद्ध प्रतिभास, केवल चैतन्य स्वरूप, और उस चैतन्य स्वरूपका बोध होगा चैतन्यके ही स्वरूपको जाननेसे। गुण पर्यायका पिण्ड आत्मा है, उसमे ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं, उन सबकी प्रतिसमय परिणतियाँ होती हैं इस तकके वर्णनसे भी तो आत्माके चैतन्यस्वरूपका स्पष्ट परिचय नही होता। अतएव पिण्ड दृष्टिसे आत्मत्व को देखनेके उपायको ढीला कर दो। वह तो विशेषतायें जाननेका उपाय है। आत्मा इतने आकारमे रहता है, इस तरह क्षेत्रकी दृष्टिसे आत्माका परिचय करने चलोगे तो आत्माके सहज स्वरूपका परिचय न बन सकेगा। इस कारण आत्माके आकारको देख करके आत्माका अनुभव करनेका उपाय ढीला कर दो। वह तो जानकारीका अग है और परम्परया सहयोगी है। आत्मामे जो परिणतियाँ होती हैं विषय कषाय आदिककी उन परिणतियोके द्वारा भी निरख करके हम आत्माके शुद्ध चितस्वरूपका परिचत न कर पावेंगे इस लिए काल दृष्टिसे भी आत्माके परखनेका उपाय ढीला करो। आत्मामें कितने गुण हैं कितनी शक्तियाँ है, ऐसी गुणोकी दृष्टि करके भी चूँकि वह भेदपरक है तो आत्माके अभेद शुद्ध चित्स्वरूपका अनुभव न कर पावोगे। इसलिए भेद भावकी दृष्टिसे भी ढीला करो। एक अभेद भाव चैतन्य स्वरूपकी दृष्टिको मुख्य करके निरखने चलो तो आत्माके विशुद्ध चैतन्य स्वरूपका अनुभवकर लोगे। इस तरहके वन उपवनमें व्याख्यान हो रहे हो और वहाँ सुनने वाले कोई विद्वान सयासी इसमें लाभ जानकर इसी तत्त्वपर आग्रह करके रह गये कि आत्मा तो बस यही है। यदि हम परिणतिकी दृष्टिसे आत्माको जानते हैं तो उसका अनुभव ही नही होता। अत आत्मा नित्य है। यदि कुछ उसे आकारकी दृष्टिसे निरखने चलते हैं उसकी सीमा रखकर, तो उस शुद्ध

स्वरूपका अनुभव ही नही होता। अत आत्मा व्यापक एक है। हम यदि आत्माकी सीमा करके न्यारे न्यारे आत्मा अनेक सख्यावोमे निरखते हैं तो उस शुद्ध स्वरूपका अनुभव ही नही जगता अत. आत्मा एक है। श्रम किया, ईमानदारीसे चले और वे इस दर्शनतक पहुँचे कि आत्मा एक है, नित्य है, सवव्यापक है। परख करते हुएमे भूल कहाँ हुई? स्याद्वादको छोड दिया। तो यहाँ शकाकार आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करनेके लिए अपनी युक्तियाँ रख रहा है और समाधानमें उन युक्तियोमें दोष देकर सवव्यापकताकी असिद्धि की जा रही है।

सर्वत्र भाग्य माननेपर भाग्यमे सर्व वैभवोकी क्रियाकी हेतुता आनेका प्रसग—शकाकार कहता है कि वैभव, सम्पदा आदिकके आकर्षणका हेतु अदृष्ट याने भाग्य है। इस सम्बन्धमे जो यह पूछा गया था कि क्या यह अदृष्ट देवदत्तमें शरीरमे रहता हुआ क्रियाका हेतु है अथवा द्वीपान्तरमे सम्पदाके पास रहता हुआ अदृष्ट सम्पदाकी क्रियाका हेतु है, अथवा यहाँ वहाँ बीच सब जगह रहता हुआ भाग्य वैभव सम्पदाके ग्रहणका हेतु है। सो इन तीन विकल्पोमें से दो विकल्प तो सफल न हो सके अब हमारा तीसरा विकल्प मान लीजिये कि देवदत्तके देहमें और द्वीपान्तरवर्ती वैभव सम्पदाके निकट तथा बीचमे सर्वत्र भाग्य रहता है और वह वैभव सम्पदा आदिकके ग्रहणका हेतु है। समाधानमे कहते हैं कि ऐसा माननेपर तो वह भाग्य समस्त पदार्थोंकी क्रियाका कारण बन जायगा। जब भाग्य विश्वमे सर्वत्र उपस्थित है तो जितनी सम्पदा है विश्वमे समस्त सम्पदाकी क्रियाका हेतु बन जायगा। वह भाग्य यदि कहो कि जो अदृष्ट जिस द्रव्यको उत्पन्न करता है वह अदृष्ट उस ही द्रव्यमें कार्यको करता है तो ऐसा माननेपर भी यह दोष बराबर रहता है कि शरीरका आरम्भ करने वाले, शरीरको रचने वाले परमाणुवोमें फिर क्रिया न होगी, क्योकि शरीरको रचने वाले परमाणु तो नित्य माने गए हैं, कारण द्रव्य नित्य माने गए हैं। तब उन्हें अदृष्टने तो उत्पन्न किया नही, और जिसको भाग्य उत्पन्न करे उसमे ही क्रिया बननेकी बात कर रहे हो तब उन परमाणुवोंमे क्रिया नहीं हो सकती। फिर शरीरके परमाणु कैसे बने?

शकाकारके हेतुमे कालात्ययापदिष्ट दोष—और भी सुनो! भाग्यका आश्रभूत है आत्मा अर्थात् आत्माके आधारमे भाग्यको माना है और आत्मा है हर्ष विषादात्मक। सो वह आत्मा द्वीपान्तरमें रहने वाले वैभवोंसे वियुक्त होता हुआ ही अपने आत्माको स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे जानता है, अर्थात् प्रत्येक आत्मा ऐसा ही अपने आपको समझ रहे हैं कि द्वीपान्तरमें रहने वाले वैभव सम्पदा आदिकसे रहित अपने आपमे मैं हूँ। सो प्रत्यक्षसे यह आत्मा अपने देहमे ही द्वीपान्तर वर्ती वैभवसे रहित ही जान रहा है फिर क्रियाका प्रत्यक्षसे विरोध है। तो प्रत्यक्ष बाधित क्रिया बतानेके बाद फिर तुमने यह अनुमान दिया तो यह कालात्ययापदिष्ट हेतु हो गया।

देखो ! द्वीपान्तरवर्ती वैभवोसे रहित आत्माकी प्रतीति हो रही है, तिसपर भी अपना आत्मा और द्वीपान्तरमे रहने वाला वैभव उन सबके साथ सयोग मानते हो तो हम यह भी कह बैठेंगे कि यहांके कपडोका भी मेरु पर्वत आदिकसे सयोग है। देखो है तो ऐसा नही, किन्तु जब प्रटपट हो सब कुछ जाना जा रहा है तो हम कह सकते कि यह जो कपडा है यह इतना ही बडा नही है, यह मेरु पर्वत तक फैला हुआ है। और कदाचित कोई मानले कि चलो यह भी बात सही तो समे साख्य दर्शन आ जायगा। यह सिद्धान्त मानता है कि सब कुछ सब जगह मौजूद है। सब चीजें व्यापक हैं। यदि कहो कि पटादिका मेरु आदिकसे सयोग माननेमें प्रमाणसे बाधा आती है तो प्रमाणसे बाधा आनेकी बात दोनो जगह समान है तुम्हारे कथनमे भी और हमारे कहे हुए प्रसग मे भी। इससे सब जगह भाग्य रहता और वह द्रव्यकी क्रियाका कारण है, यह बात नही बन सकती।

आत्माको सावयव व अनित्य माने विना आत्माके साथ पुण्य पापके सयोगकी असिद्धि - और फिर देखिये ! पुण्यपापका व द्रव्यान्तरके सयोगका एक ही तो आत्मा आश्रय कहा गया है, जो द्वीपान्तरसे वैभव आनेको है वहाँ भी वही एक आत्मा है। देवदत्तके शरीरमे भी वही एक आत्मा है यो कह रहे हो सो देखो आपके मतमे तो आत्मा निरश है निरवयव है। सो अब पुण्य पापका जो आत्मामे सयोग हो रहा वह सर्वात्मपना हो गया। तो जब समस्त आत्मामे पुण्य पापका सयोग या प्रवेश मान लिया तो उसका नाम सयोग कहाँ रहा ? सयोग होता है पदार्थके कुछ अवयवो मे, सर्वावयवोमें सयोग सम्बन्ध नही हुआ करता। जैसे बेन्चपर पुस्तक रखी तो बेन्च जितनी मोटी है, उसके भीतरके जितने प्रदेश हैं सबमे तो नही पहुँची, तो निरश आत्मा के साथ धर्म अधर्मका सयोग नही बन सकता। यदि कहे कि वह सयोग पुण्य पापसे आलिङ्गित आत्माके स्वरूपको छोडकर अन्य स्वरूपमे रहता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि घट पट आदिककी तरह आत्मा सावयव बन गया। जैसे घट पटमे कह सकते हैं कि अभी इस जगह सयोग है, घटका पटसे इस जगह सयोग नही है तो यो दो तरह के स्वरूप बननेसे सावयवता सिद्ध हो जाती है और फिर आत्मा अनित्य भी हो गया। एक पुण्य पापसे आलिगित स्वरूपको छोडकर अन्य स्वरूपके साथ जब धर्म अधर्ममे सयोग किया तब आत्मा नित्य भी हो गया। इस तरह आपका वह हेतु सिद्ध नही होता कि भाग्य एक द्रव्य वाला होनेपर क्रियाका हेतुभूत गुण है इस कारण भाग्य वैभवको खीचकर देवदत्तके पास उपस्थित करता है। और ऐसा सिद्ध करके आत्माको सर्वव्यापक मानना चाहते हो सो भी सिद्ध नही होता।

अदृष्टमे क्रियाहेतुत्व न बननेके कारण पश्वादिकी देवदत्तगुणाकृष्टताका भी निराकरण—जब अदृष्ट क्रियाका हेतुभूत गुण सिद्ध न हो सका द्रव्य ही क्रियाका हेतु सिद्ध हो सकता है तब शकाकारका यह कहना भी निराकृत हो जाता है

देवदत्तके प्रति सरकने वाले, आने वाले पशु आदिक देवदत्तके गुणसे आकृष्ट हुए हैं क्योंकि वे पशु आदिक देवदत्तके प्रति उत्सर्पण वाले हैं जैसे ग्रास आदिक, यह सब कैसे निराकृत हो जाता है सो सुनिये ! जैसे कि देवदत्तके प्रयत्न नामक विशेष गुणके द्वारा आकृष्ट हुआ ग्रास देवदत्तके प्रति उत्सर्पित होता है इसी प्रकार नेत्राञ्जन आदिकके द्वारा जो कि द्रव्यविशेष है उस द्रव्य विशेषके द्वारा आकृष्ट हुए स्त्री आदिक देवदत्तके प्रति आते हुए पाये जाते हैं। तब यहाँ उत्सर्पणके कारणमें दो बाते आयी—एक तो यह कि कुछ पदार्थ नेत्राञ्जन आदिक द्रव्य विशेषके द्वारा आकृष्ट हुए। जैसे कि उक्त विवरणमे बताया है कि आहार ग्रास तो प्रयत्न नामक विशेष गुणसे आकृष्ट हुए और स्त्री आदिक नेत्राञ्जन आदिक द्रव्य विशेषके द्वारा आकृष्ट हुए। तब यहाँ यह सदेह हो जाता है कि पशु आदिक क्या प्रयत्नकी तरह वाले किसी गुणके द्वारा आकृष्ट हुए हैं ? कोई भी पुरुष ऐसा कह सकता है कि विवादग्रस्त पशु आदिक जो देवदत्तके प्रति आये हैं वे प्रयत्न जैसे गुणके द्वारा आकृष्ट होकर आये हैं या कभी यह भी कह सकता है कि अजन आदिककी तरह किसी द्रव्यविशेषके द्वारा आकृष्ट होकर आये हैं क्योंकि आये हैं ना ! तो यहाँ यह सन्देह किया जा सकता है, और फिर इससे अनुमानका बल नष्ट हो जाता है।

प्रयत्न अञ्जन आदि पूर्वक ग्रास पश्वादिके उत्सर्पणमे दिये गये हेतुमे दोषाधायक प्रश्नोत्तर—शङ्काकार कहता है कि अञ्जन आदिककी तरह द्रव्यविशेष का अभाव होनेपर भी प्रयत्न आदिकसे ग्रास आदिकका आकर्षण देखा जाता है, तब वहा अनेकान्तिक दोष हो गया। उत्तरमे कहते हैं तो प्रयत्न आदिकी तरह किसी गुण का अभाव होनेपर भी अजन आदिकसे स्त्री आदिकका आकर्षण देखा गया है तो आप के हेतुमे भी अनेकान्तिक दोष आ जायगा। यदि कहो कि यहाँ अनुमान किए गए प्रकृतमे जिसमें कि प्रत्ययकी तरह गुणके द्वारा आकर्षण बताया गया है उसका ही हेतु बताया है कि उत्सर्पणका कारण होनेसे। सो इस हेतुमें अनेकान्तिक दोष नही आता। तब अन्य जगहका जहाँ कि अजन आदिककी तरहके गुणोका अनुमान किया जा रहा है उसमें भी स्त्री आदिकके आकर्षणमे जो हेतु दिया है उसमे भी अनेकान्तिक दोष न होगा। शङ्काकार कहता है कि ग्रास आदिकके आकर्षणमें तो प्रयत्नका ही सामर्थ्य है, इस कारण वहाँ द्रव्यविशेषके द्वारा आकर्षणकी बात कहना निष्फल है। समाधानमे यह भी कहा जा सकता है कि स्त्री आदिकके आकर्षणके प्रसङ्गमे भी अजन आदिकका ही सामर्थ्य है, इस कारण अन्य गुणके द्वारा आकर्षणकी बात कहना विफल क्यो न हो जायगा ? अब शङ्काकार कहता है कि अजन आदिकको भी स्त्री आदिकके आकर्षणका कारण माननेपर सभी पुरुषोके अजन आदिक लगा देनेपर स्त्री आदिकका आकर्षण हो जाना चाहिए, किन्तु अजन आदिक समानतया लगाये गए हैं दो पुरुषोमें या अनेक पुरुषोमे, फिर भी उन दोनोंके या सबके अर्थात् अजन लगाने वाले सभी पुरुषोके पास स्त्री आदिकका आकर्षण नही होता। इससे सिद्ध है कि अजन आदिककी

अविशेषता होनेपर भी जिसके न होनेसे आकर्षण न हो वह कारण है। अजन आदिक मात्र कारण नही है, अर्थात् अदृष्ट भाग्य मुख्य कारण सिद्ध होता है। उत्तरमे कहते हैं कि यह भी बात आपकी खण्डित हो जाती है, क्योंकि प्रयत्नके कारणमे भी वही उत्तर समान हो जायगा। हम भी यह कह देंगे कि समस्त प्रयत्न करने वाले पुरुषोंके प्रति आहार मुखमें नहो आ जाया करता, क्योंकि कभी किसीके ग्रासका अपहार भी देखा जाता है। कोई ग्रास उठाकर खा रहा हो और दूसरा आदमी या बन्दर उसे छीन ले जाय तो प्रयत्नमे भी नियमित कारणता न रही कि प्रयत्न करनेसे ग्रास मुखमे आ ही जायगा। तब उस ग्रासके भी मुखमे आनेका कोई अन्य कारण मानो। केवल स्त्री सम्पदा आदिकके आकर्षणमे नेत्रांजन आदिक हो कारण न मानकर जैसे किसी अदृष्टको कारण मानते हो तो ग्रासके आहार करनेके सम्बन्धमे भी मात्र प्रयत्नको ही कारण न मानो, किन्तु अन्य कारणका भी अनुपात करो नहीं तो तुम्हारे प्रकृतमें भी यह बात न बन सकेगी। तब यह कहना निराकृत हो जाता कि देवदत्तके प्रति आये हुए पशु आदिक देवदत्तके गुणसे आकृष्ट हुए हैं।

पशु, स्त्री सम्पदा, ग्रास आदिके आकर्षणोके कारणपर प्रश्नोत्तर—शंकाकार कहता है कि स्त्री आदिके आकर्षणके प्रति अजन आदिक कारण नही होते हैं। समाधान मे कह रहे हैं कि यदि स्त्री आदिकके आकर्षणमे अञ्जन आदिक कारण नही हैं तब फिर स्त्री सम्पदा आदिक के चाहने वाले पुरुषोको फिर अञ्जन आदिक ग्रहण करनेका यत्न, उपादान न बन सकेगा, क्योंकि जब अञ्जन आदिक स्त्री सम्पदा आदिक की प्राप्तिके कारण ही नहीं हैं ता फिर अञ्जन आदिकको कौन ग्रहण करेगा, कारण न होनेपर भी यदि अञ्जन आदिकको कोई ग्रहण करने लगे तो जैसे बालू से तैल नही निकलता इसीप्रकार अञ्जन आदिक के ग्रहणसे फिर कभी भी स्त्री आदिकका आकर्षण नही हो सकता है क्योंकि जो कारण नही है उससे कभी भी कार्य बनता ही नही। ऐसा भी नही कह सकते कि जिसमे सामर्थ्य देखी जा रही है ऐसे अञ्जन आदिकको तो कारण न मानो और उसके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थमे कारणपनेकी कल्पना करो तब तो अनवस्थासे कभी मुक्ति हो ही नहीं सकती। अर्थात् जो भी कारण मानोगे उसमे भी यह कह बैठेंगे कि अब इस कारण को तो छोड दो अब दूसरा कारण मानो फिर बात न बनेगी और कहोगे कि इस कारण को भी छोड दो, अन्य कोई कारण मानो तो इस तरह अनवस्था दोष से मुक्ति नही हो सकती।

अञ्जनादिको अदृष्टसहकृत कारण माननेपर घटनाओमे कारणोंका सन्देह—शंकाकार कहता है कि अञ्जन आदिक कारण तो हैं मगर भाग्यकी सहकारिता लेकर अञ्जन आदिक स्त्री सम्पदा आदिकके आकर्षणके कारण है, केवल अञ्जन आदिक ही कारण नही हो सकते। समाधानमें कहते हैं—तब तो इस तरह

कहनेसे भाग्यकी तरह अञ्जन आदिके भी कारणपना आ गया। तो जैसे भाग्य कारण है ऐसे ही अञ्जन कारण है और इसी तरह प्रयत्न आदिक भी कारण हैं तब तो यह सदेह हो ही जायगा कि पशु आदिक जो देवदत्तके प्रति आते हैं वे क्या ग्रास आदिककी तरह प्रयत्न सदृश किसी गुणसे आकृष्ट होकर आता है या स्त्री आदिककी तरह अञ्जनादिवत किसी गुणके द्वारा आकृष्ट होकर आता है। अथवा भाग्य सयुक्त अञ्जनादिक के द्वारा या आत्माके ही द्वारा ये पशु आदिक देवदत्तके प्रति उत्सर्पित होते हैं। जब यह सदेह हो गया तो कारणोमें अब बल तो न रहा। सब निर्बल कारण रहे। किसी कारणके होनेपर भी कार्य हो ही जाय अब यह विश्वास न रहा।

वैभवोकी तदगुणाकृष्टता सिद्ध करनेके लिये दिये गये हेतुके दृष्टान्त में साध्यविकलता—और, भी देखिये कि आपके दृष्टान्तमें साध्य विकलता है। शकाकारका अनुमान है कि पशु आदिक देवदत्तके प्रति उत्सर्पित होते हैं, ये देवदत्तके गुण के द्वारा आकृष्ट हैं क्योकि देवदत्तके प्रति ये आ रहे हैं ग्रास आदिककी तरह। तो दृष्टान्त दिया है ग्रासका और साध्य बनाया गया है देवदत्तके गुणसे आकृष्ट होता है। अब यहाँ परिस्पद करने वाले आत्म प्रदेशको छोडकर ग्रास आदिकके आकर्षणका कारणभूत प्रयत्न नामका विशेष गुण भी असिद्ध है। जिसको यह अनुमान समझाना चाहते हो वे लोग तो नही मानते हैं कि आत्म प्रदेशको छोडकर अन्य कोई प्रयत्न विशेष इस ग्रासके आनेके कारण हैं या उनम आकृष्ट हुए हैं। मूलमे तो आत्म प्रदेशका परिस्पद ही कारण बन रहा है फिर आत्म प्रदेशके परिस्पदका निमित्त पाकर शरीरमें वायुका परिस्पद होता है और वायुके परिस्पदका निमित्त पाकर जिस प्रकारकी इच्छा की उस प्रकारसे हस्तादिक अवयवोमे परिस्पद होता है तो इस तरह दृष्टान्तमें साध्य विकलता आती है अर्थात् ग्रास आदिक देवदत्तके गुणसे आकृष्ट नही हैं, किन्तु आत्म प्रदेशके परिस्पदकी परम्परासे ये सब आकृष्ट हुए हैं। यो शकाकारके द्वारा दिये गए अनुमानमे प्रत्येक अगकी असिद्धि है और, इसी कारण ये समस्त पदार्थ देवदत्तके भाग्यसे खिचे हैं यह सिद्ध नही होता। और यह जब सिद्ध नही होता तो आत्मा सर्वव्यापक है यह भी सिद्ध नही हो सकता।

देवदत्त शब्दके वाच्य अर्थकी मीमामामे पृष्टव्य छह विकल्प— शकाकार ने यह कहा था कि वैभव सम्पदा पशु आदिक जो देवदत्तके प्रति उत्सर्पित होते हैं, वे देवदत्तके गुणसे आकर्षित होते हैं क्योकि उत्सर्पण होनेसे। जिस चीजका भी उत्सर्पण होता है वह गुणसे आकर्षण होता है। जैसे ग्रासका ग्रहण हुआ तो देवदत्तके प्रयत्न गुणसे हुआ। इस सम्बन्धमें केवल इतने अशपर विचार करिये अभी। देवदत्तके प्रति सरकते हैं ये सब तो वहाँ देवदत्तका अर्थ क्या है? ये सारी सम्पदायें देवदत्तके पास आ रही हैं तो इसमे केवल यह बता दीजिए कि देवदत्तका अर्थ क्या है? वैसे तो देवदत्त एक आदमीका नाम है, पर ये उसके गुणोसे खिचते हुये आ रहे हैं सब, यह जो

कहा है तो देवदत्तकी जानकारी करना जरूरी हो गया। देवदत्तका अर्थ क्या है जिसके कि गुणसे खिंचे हुए पदार्थ आते हैं ? क्या देवदत्त शब्दके द्वारा वाच्य शरीर है याने शरीरका नाम देवदत्त है क्या ? अथवा आत्माका नाम देवदत्त है ? या आत्मा और शरीरके सयोगका नाम देवदत्त है ? अथवा आत्म सयोगसे सहित शरीरका नाम देवदत्त है या शरीरमे सयुक्त आत्माका नाम देवदत्त है या शरीरमे सयुक्त आत्म प्रदेशका नाम देवदत्त ? ये छः विकल्प किए गए।

देवदत्त नाम वाच्यताके सम्बन्धमें शकाकारसे पृष्टव्य उक्त ६ विकल्पो का स्पष्टीकरण —उक्त विकल्पोका और भी खुलासा जान लो। पहिले विकल्पमें यह पूछा कि देवदत्तका जो शरीर है क्या वह देवदत्त है अथवा जैसे कि आपका जो शरीर है क्या यही आप हैं ? सीधा सा विकल्प हैं। जो लोगोको एकदम दिखता है देवदत्तके कहनेपर वह क्या है ? शरीर दूसरे विकल्पमे पूछा गया है कि क्या आत्माका नाम देवदत्त है ? भले ही लोगोको शरीर दिखे, पर देवदत्त नाम किसका धरा गया ? शरीरमे जो आत्मा रह रहा है क्या उस आत्माका नाम देवदत्त है ? तीसरे विकल्पमे यह पूछा कि न तो शरीरका नाम देवदत्त कहो, और न आत्माका नाम देवदत्त कहो, किन्तु शरीर और आत्माके सयोगका नाम देवदत्त है क्या ? इस तीसरे विकल्पमें आत्माको व शरीरको भी नही कहा जा रहा देवदत्त, किन्तु इन दोनोके सयोगको कहा जा रहा। वैसे मोटे रूपमें किसी किसी प्रसगमे लगता है ना यह। जैसे—कपूर पिपरमेन्ट और अजवाइनका सत ये मिल करके एक धारा बन जाते हैं, प्रवाह बन जाते हैं। तो वह जो प्रवाह रूप प्रभाव है, चमत्कार है वह न केवल कपूरका है, न अजवाइन सत् का है न पिपर मेन्टका है तो क्या तीनोंका है ? तीनोका भी नही, एक एकका भी नही दोका भी नही, उनके सयोगका प्रभाव है। मोटे रूपसे जैसे कहा जाता है ना, असलमे तो वहाँ भी सयोगका प्रभाव नही, सयोगमें आये हुए उन तीनोका ही प्रभाव है लेकिन रूढिमें मोटेरूपसे जैसे कि लोग कहते हैं उस हीके अनुसार यह विकल्प चल रहा है कि न तो शरीरका नाम देवदत्त है न आत्माका नाम है किन्तु दोनोके सयोगका नाम देवदत्त है। चौथे विकल्पमें यह पूछा गया है कि क्या आत्माके सयोगसे सहित शरीरका नाम देवदत्त है ? इस विकल्पमें मुख्यता किसकी रही ? शरीरकी। और, सहोक्त रहा शरीरका विशेषण। आत्माके सयोगसे विशिष्ट शरीरका नाम देवदत्त है, आत्माका नाम देवदत्त नही, उनके सयोगका नाम देवदत्त नही, किन्तु आत्माके सयोग से सहित शरीरका नाम देवदत्त है, इसका अन्तर भी निहारते जाइये कि एक विकल्पसे दूसरे विकल्पमे क्या अन्तर है ? जहाँ यह कहा कि आत्मा और शरीरके सयोगका नाम देवदत्त है वहाँ दोनो छूट गए। और, एक सयोग गुणका नाम देवदत्त रखा। और, जहाँ यह कहा कि आत्माके सयोगसे सहित शरीरका नाम देवदत्त है तो शरीरका नाम देवदत्त रहा। किस शरीरका नाम ? सो उसका वह विशेषण बन गया। पाचवें विकल्पमे पूछते हैं—क्या शरीरके सयोगसे सहित आत्माका नाम देवदत्त है ? यहाँ मुख्यता

किसकी की ? आत्माकी। किस आत्माका नाम देवदत्त रखा ? शरीर संयोगसे सहित आत्माका नाम देवदत्त रखा। इसमें भी न आत्माको कहा गया न शरीरका कहा गया न संयोगको कहा गया न आत्म सयोग विशिष्ट शरीरको कहा गया किन्तु शरीर सयोग से सहित आत्माको देवदत्त कहा गया। छठवें विकल्पमें पूछा गया है कि क्या शरीरसे सयुक्त आत्म प्रदेशका नाम देवदत्त है ? यहाँ न शरीरको देवदत्त कह रहे न आत्माको, न शरीर आत्माके सयोग गुणको, न आत्माके संयोग गुणसे सहित शरीरको, न शरीर के सयोग सहित आत्माको। इन सब विकल्पोंमे तो आत्मा जहाँ जहाँ नाम लिया पूरा पूरा आत्मा है। आत्माका मानते हैं वैशेषिक लोग सर्वव्यापक (सवगत) सारे विश्वमे फैला हुआ एक आत्मा है। तब देवदत्त किसका नाम रखा है ? वह क्या सारा फैला हुआ आत्मा ही है ? सा तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। एक आत्माके उतनी जगहके प्रदेश जितनेमे कि देवदत्तका शरीर समाया है उस शरीरसे सयुक्त उन आत्म प्रदेशोंका नाम है देवदत्त। ऐसे ६ विकल्पोमें देवदत्तकी व्याख्या पूछते हैं कि आखिर देवदत्त नाम किसका है जिसके लिए दूर दूरसे वैभव सम्पदा आदि खिचते हुए चले आरहे हैं ?

देवदत्तनाम वाच्यताके सम्बन्धमे शकाकारके प्रथम विकल्पका निराकरण—यदि कहो कि शरीरका नाम हम देवदत्त मानते है अब उन ६ विकल्पोंमेसे क्रमसे एक एक विकल्पको पूछ पूछकर उसका निराकरण किया जा रहा है। यदि शरीरका ही नाम देवदत्त रख दिया तो ये वैभव सम्पदा स्त्री आदिक जो जो कुछ देवदत्तको मिलते हैं सो देवदत्तके गुणसे खिचे आ रहे हैं यहाँ गुणका अर्थ भाग्य लिया है। दृष्टान्तमें प्रयत्न लिया है, अथवा तिलक, अञ्जन, मन्त्र तन्त्र आदिक लिया। प्रकृत बात को सिद्ध करनेके लिए गुणका अर्थ भाग्य लिया। देवदत्तके भाग्यसे खिचे चले आ रहे है। अब यहाँ देवदत्त मान लिया शरीरको तो सीधा कहो ना कि वे सब शरीरके गुण से खिचे हुए चले आ रहे हैं, वैभव सम्पदा सब कुछ सरकते आ रहे हैं देवदत्तके गुणके कारण, इसका अर्थ अब यह हुआ इस प्रथम विकल्पमें कि शरीरके गुणके कारण खिचे आ रहे हैं। तब देखो कि इतना अनुमान और हेतुवोके कथनका परिश्रम करके सिद्ध तो करना चाहते थे आत्माके विशेष गुणसे खिचे आते हैं यह, और सिद्ध क्या हो बैठा कि शरीरके गुणसे खिचे आ रहे हैं, तो सारा मामला विरुद्ध हो गया, हेतुने विरुद्ध बात सिद्ध कर दिया। चले तो हेतुसे यह सिद्ध करने कि ये सब वैभव सम्पदा स्त्री आदिक आत्माके गुण विशेषसे खिच जाते हैं और सिद्ध क्या हो बैठा कि शरीरके गुण से खिच आये हैं, तो विरोध हो गया। तुम जो सिद्ध करना चाहते उससे उल्टी बात सिद्ध हो गयी। इससे प्रथम विकल्पकी बात सही नही उतरी कि शरीरका नाम देवदत्त है और देवदत्तके गुणसे ये सब खिचे चले आते हैं, और, यह सिद्ध करके फिर आत्माको सवव्यापक सिद्ध करना चाहते हैं, वह सब अयुक्त है।

देवदत्तनाम वाच्यताके सम्बन्धमे द्वितीय विकल्पका निराकरण—

शरीर और आत्माका सयोग कहना भी गलत है। यदि शरीर और आत्माके सयोगका नाम देवदत्त है तो देवदत्तके प्रति सब खिचे चले आ रहे हैं, देवदत्तके गुणमे आकृष्ट हो रहे हैं, इसका अर्थ यह हुआ ना, कि इन दोनोके सयोगके प्रति सरक रहे है और सयोग के गुणसे आकृष्ट हो रहे हैं। अब शरीरका नाम न रहा, आत्माका नाम न रहा, किंतु सयोगका नाम रहा। सयोगको ये देवदत्त मानते हैं। तो सीधा अर्थ रहा कि सयोगके गुणसे खिचे आ रहे हैं ये सब वैभव, लेकिन सयोग खुद गुण माना गया है। वैशेषिक सिद्धान्तमें २४ गुण माने हैं, उनमे सयोग भी गुण है और संयोगमें एक और गुण मान रहे हो कि सयोगके गुणसे खिचे हुए आ रहे हैं सब, तो गुणमें कहीं गुण रहा करते हैं ? अरे गुण तो निर्गुण हुआ करते हैं। गुणोंमें गुण नही रहता। गुणवानको तो द्रव्य कहते हैं। तब यह कहना गलत हो गया कि देवदत्तके गुणमे वैभव आकृष्ट हैं। देवदत्त नाम है अब सयोगका। सयोगमें अन्य गुण रहते नहीं, इस कारण साध्य गलत हो गया।

देवदत्त नामवाच्यताके सम्बन्धमे चतुर्थ विकल्पका निराकरण - शकाकार कहता है तो हमारा चौथा विकल्प मान लो, क्योकि आत्माके सयोगसे सहित शरीरका नाम देवदत्त है। समाधानमे कहते कि इस विकल्पमे भी वही दोष है, विरुद्धत्व दोष है। आखिर ऐसा कहकर भी देवदत्त तो माना है शरीरको होना, आत्मसयोगसे सहित शरीरको देवदत्त कहो तो देवदत्तके गुणसे आकृष्ट हैं सब वैभव, सिद्ध तो कर रहे थे कि आत्माके गुण विशेषसे आकृष्ट है तभी आत्माको व्यापक मान सकते थे। लेकिन अब सिद्ध हो बैठा कि शरीरके गुणसे आकृष्ट है तब यह हेतु विरोधको सिद्ध कर लेगा, इस कारणसे यह चौथा विकल्प भी समीचीन नही है।

देवदत्त नामवाच्यताके सम्बन्धमें पञ्चम विकल्पका निराकरण—शङ्काकार कहता है कि हमारी ५ वी बात मान लो याने शरीरके सयोगसे सहित आत्माका नाम देवदत्त है, शरीरका नाम नही, क्योकि उसमें तुम दोष दे रहे कि हेतु विरोधको सिद्ध कर देगा, सयोगका नाम नही क्योंकि उसमें दोष दे रहे कि गुणमे गुण कहाँ आया करता है ? तो यह ५ वीं बात ही सही मानलो कि शरीरके सयोगसे सहित आत्माको देवदत्त कहते हैं। समाधानमें कहते हैं कि इसमे भी मुख्य तो आत्मा रहा ना ! और आत्मा है नित्य व्यापक। तो नित्य और सर्वगत होनेके कारण जो दोष अभी आत्मा नामक द्वितीय विकल्पमे दिया था वे सारे दोष यहाँ आते हैं, क्योकि आत्मा सर्व जगह है, सब समय है, कहीं उसका निवारण नही हो सकता। तब फिर उत्सर्पणकी बात ही क्या ? देखो ! तुम कह रहे हो शरीरसमुक्त आत्मा ! रहे सयुक्त आत्मा किन्तु आत्मा तो सर्वगत और नित्य है ना, वैशेषिक सिद्धान्तमें। जैसे कि कोई कहे—घटसयुक्त आकाश ! तो यह बतलावो कि घटसयुक्त आकाश सब जगह है कि नहीं ? सब जगह है। घटसयुक्त आकाश मेरु आदिक पर्वतमे भी है। आकाश एक है

और उसका किन्हीं प्रदेशोमे घट रखा तो आकाशसे घटका सयोग तो होगया। होनेदो मगर घटसयुक्त आकाश तो स्वव्यापक है। जैसे —आपसे हो पूछें कि पुस्तक सयुक्त वेन्च, तो आप वेन्चको कितनी बडी कहोगे? उतनी, जितनी है। ४ फिटकी लम्बी वेन्च है। तो पुस्तकसयुक्त वेन्च कहनेपर कहीं ४ फिटका परिमाण घट न जायगा। इसी तरह शरीरसयुक्त आत्माको देवदत्त कहनेपर वह देवदत्त अर्थात् आत्मा सर्वगत नित्य हो गया और फिर द्वितीय विकल्पमे जो दोष दिया था यही दोष रहा कि फिर कोई चीज सरक ही नही सकती आ ही नही सकती। यह दोष बराबर उपस्थित ही रहेगा।

देवदत्त नामवाच्यताके सम्बन्धमे षष्ठ विकल्पकी मीमासा—अब शङ्काकार कहता है कि हमारी अब आखिरी बात मानलो कि शरीरसे सयुक्त आत्म प्रदेशका नाम देवदत्त है। बात कुछ-कुछ ठिकाने तो आ रही। यदि प्रत्येक शरीरमे रहने वाले आत्मा सब जुदे-जुदे ऐसे आत्माको अनेक मानकर फिर यदि कहा जाता कि शरीरसे सयुक्त आत्माका नाम तुमने देवदत्त रखा तब तो ठीक था, वैसा तो माना ही नही। आपका जो नाम है और नाम कहकर पुकारते हैं तो किसको पुकारते हैं? क्या केवल शरीरको? क्या केवल आत्माको? नही, किन्तु शरीरसयुक्त आत्माको पुकारते हैं। देखिये! कोई कहे कि आत्मासे सयुक्त शरीरको पुकारते हैं तो इन दोनो मे अन्तर है। आत्मसयुक्त शरीरको पुकारते हैं यह बात व्यवहारमे ठीक नही बनती, क्योकि शरीर जड है, उसे हम क्या समझायें क्या पुकारें? और जब कहते हैं कि शरीरसयुक्त आत्माको हम सम्बोध रहे हैं और उन्हीका नाम ये सब हैं जो आपके हैं तो यह बात ठीक बैठती है व्यवहारमे, किन्तु यहाँ कहा जारहा है यह कि शरीरसयुक्त आत्मप्रदेशका नाम है देवदत्त! तो यहाँ पूछा जा रहा है कि शरीरसयुक्त जो आत्माके प्रदेश हैं जैसे कि घटसयुक्त आकाशप्रदेश! आकाश एक है और जहा घडा रखा है वह घट सयुक्त आकाश प्रदेश इस भाँति शरीरसयुक्त आत्मप्रदेश, तो यह बतलावो कि वह आत्मप्रदेश काल्पनिक है या वास्तविक?

शरीरसयुक्त काल्पनिक आत्मप्रदेशोमे देवदत्त शब्दकी वाच्यताका अभाव—यदि कहो कि वह आत्मप्रदेश काल्पनिक है जहा देवदत्तका शरीर रह रहा है और शरीर सयुक्त जिस आत्मप्रदेशका नाम देवदत्त रख रहे हो वह आत्मप्रदेश काल्पनिक है। तो जब यह कहा जा रहा है कि ये वैभव सम्पदा स्त्री आदिक देवदत्त के गुणसे आकृष्ट हो रहे हैं इसका अर्थ यह निकला कि काल्पनिक आत्मप्रदेशसे आकृष्ट हो रहे हैं क्योकि यहाँ तुमने शरीर सयुक्त काल्पनिक आत्मप्रदेशका देवदत्त नाम रखा है। तो यह भद्दी और बेतुकी बात कहनेमे आयगी कि यह सम्पदा काल्पनिक आत्मप्रदेशके गुणसे आकृष्ट हो रही है, क्योकि काल्पनिक आत्मप्रदेशके गुणसे सरक रहे हैं और जैसे आत्मप्रदेश काल्पनिक मान लिया तो आत्मप्रदेश के गुण भी

काल्पनिक हो गए जिस गुणके कारण ये सब आकर्षित हो रहे हैं। तब फिर जब वह भाग्य ही काल्पनिक हो गया तो उस भाग्यके द्वारा अब जन्मान्तर भी होगा, पर शरीर मिलेगा तो वह भी परमार्थ न रहेगा याने शरीर भी अब काल्पनिक हो गया। तो शरीर भी काल्पनिक और शरीरका सयोग भी काल्पनिक और गुण भी काल्पनिक हो गया। शरीर सयुक्त आत्मप्रदेश भी काल्पनिक, दूसरे यह खिचते आना भी काल्पनिक। फिर तो आपका कुछ सिद्धान्त ही न रहा। काल्पनिक चीजमें कोई क्रिया नही बना करती। काल्पनिक गुणमे वास्तविक रूप हो सकता है क्या? काल्पनिक अग्नि से ठढ मिट जायगी क्या? ठढ लग रही हो, ४–५ आदमी किसी जगह गोल-गोल बैठ जायें और यह तय करलें कि समझलो यहाँ आग जल रही है खूब धधकती हुई तो उस कल्पित आग से ठढ तो नहीं मिट सकती, अथवा अन्य कोई काम तो नहीं बन सकता। यदि कल्पित चीज से भी काम बनने लगे तब तो फिर यही भोग भूमि बन जायगी कल्पना कर लिया कि यह है हलुवा और हाथ से उठाया, खाया तो भर गया क्या पेट? तो कल्पित हो गया जब भाग्य और उस भाग्यके कारण मिलता है नया शरीर तो नया शरीर भी कल्पित हो गया सब गुण कल्पित हो गए। तब यह सिद्ध नही हो सकता कि शरीर सयुक्त काल्पनिक आत्मप्रदेशका नाम देवदत्त है।

शरीर सयुक्त पारमार्थिक आत्मप्रदेशोमे देवदत्त शब्दकी वाच्यताका अभाव – शकाकार कहता है तो पारमार्थिक आत्मप्रदेश मानलो शरीरसे सयुक्त वास्तविक आत्म प्रदेशका नाम है देवदत्त, तो जरा यह तो बतलावो कि वह वास्तविक आत्म प्रदेश आत्मासे अभिन्न है या भिन्न है? यदि कहो कि अभिन्न है तो माना आत्मा ही हुआ। फिर आत्मा नामक द्वितीय विकल्पमे जो दोष दिये गये है वे दोष यहाँ बराबर आयेगे। अर्थात् फिर कोई वैभव उस आत्माके प्रति उत्सर्पण न कर सकेंगे। यदि कहो कि वह वास्तविक आत्मप्रदेश आत्मासे भिन्न है और देवदत्तके गुण से आकृष्ट हुआ है सो यो पारमार्थिक उनने आत्मप्रदेशोसे आकृष्ट होता है तो उसके मायने है वही पूरा आत्मा बन गया और उससे ही सारा काम निकल आया, फिर अन्य व्यापक एक आत्माके माननेकी जरूरत क्या है? और मानोगे तो सावयव भी साथ–साथ मान लो। आत्मा एक बडा है और उसके अवयव असख्यात हैं। इन अवयवोंमे रह रहा है तो सावयव मानना पडेगा। और सावयव माना तो कार्य मानना पडेगा और अनित्य मानना होगा इस तरह देवदत्त ही सिद्ध नही होता कि देवदत्त नाम है किसका फिर उसके गुणसे आकृष्ट होता है पदार्थ यह कहना तो बेतुकी बात रही।

नवीन अनुमानसे आत्माके सर्वगतत्वकी सिद्धिकी शका और उसका समाधान अब शकाकार कहता है कि हमारे इस नवीन अनुमानसे आत्मा सर्वगत सिद्ध हो जायगा, वह अनुमान प्रयोग यह है कि आत्मा सर्वगत है, क्योकि इसके गुण

सभी जगह उपलभ्यमान होते हैं आकाशकी तरह। जैसे आकाशका गुण आकाशका स्वरूप, आकाशकी बात सब जगह पायी जाती है इस कारण आकाश सर्वव्यापक है. इसी तरह आत्माके गुण भी सब जगह पाये जाते हैं इस कारण आत्मा सर्वगत है समाधानमें पूछते हैं कि एक अपने शरीरमें ही सब जगह आत्माके गुण पाये जाते हैं यह आपके हेतुका मतलब है या अपने शरीरकी तरह दूसरे शरीरमें और अंतरालमें सब जगह आत्माके गुण पाये जाते हैं यह आपके हेतुका मतलब है ? यदि कहो कि अपने ही शरीरमें सब जगह आत्माके गुण पाये जाते हैं उसके कारण आत्मा सर्वव्यापक है तो यह तो विरुद्ध हेतु हो गया। अपने ही शरीरके आत्मामें सर्वगुण पाये जाते हैं इसमें आत्मा शरीरमें ही व्यापक कहलायेगा बाहर व्यापक नहीं कहला सकता। यदि कहो कि अपने शरीरकी तरह दूसरे शरीरमें और अन्तरालमें आत्माके गुण पाये जा रहे हैं तो यह असिद्ध है ऐसा देखा नहीं जाता। अन्तरालमें तो आत्मगुण जरा भी नहीं पाये जाते और पर शरीरमें उसके सम्बन्धित गुण नहीं पाये जाते, इस कारण यह भी नहीं कह सकते कि अपने शरीरकी तरह दूसरे शरीरमें और अन्तरालमें भी आत्मा के गुण पाये जाते है। बुद्धि आदिक हैं आत्माके गुण। वे सब जगह नहीं पाये जाते। यदि बुद्धि आदिक गुण सब जगह पाये जायें तो प्रत्येक प्राणी सवज्ञ बन जायगा। एक दुखी हुआ तो प्रत्येक प्राणी दुखी हो जायगा क्योंकि अब तो तुम यह मान रहे हो कि आत्माके गुण सब जगह पाये जाते हैं तब सर्वज्ञता सब प्राणियोंमें क्यों नहीं पायी जाती ? दुख किसी महन्तमें ऋषिमें क्यों नहीं पाये जाते ? जब आत्मा सर्वव्यापक है और आत्माका गुण सब जगह पाया जाता है तब फिर सभीमें सब कुछ बन जायेंगे।

जन्म जन्मान्तरकी अपेक्षा भी सर्वगतत्वकी सिद्धिका अभाव—अब शंकाकार यह कहता है कि जैसे कोई पुरुष किसी गाँवसे दूसरे गाँवमें जन्म लेता है, एक गाँवसे दूसरे गाँवमें गमन करता है तो देखो ! वह मनुष्य सब जगह उपलभ्यमान हो गया ना। उस गाँवमें था, इस गाँवमें आ गया, इसी तरह जब जन्मान्तर होता है, एक जीव मरकर एक जगहमें दूसरी जगह जन्म लेता है तो जन्मान्तरमें भी आत्माके गुण पाये गए यह अर्थ करेंगे जिससे सिद्ध होगा कि सब जगह आत्माके गुण पाये जाते है इस लोकमें भी और पर लोकमें भी, सभी जगह आत्माके गुण पाये जा रहे हैं इस कारण आत्मा सवव्यापक है। शङ्काकारकी इस शंकामें क्षेत्रदृष्टि ही मात्र नहीं रही। अब इसमें कालका भी सम्बन्ध जोड दिया गया। मरकर दूसरी जगह जन्म ले तो वहाँपर भी आत्माके गुण ही तो पायेंगे। बुद्धि सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म ये सारे आत्माके गुण हैं और जन्मान्तरमें भी ये पाये जाते हैं, इससे आत्मा सर्वव्यापक है। क्षेत्रमें भी व्यापक बन गया, कालमें भी व्यापक बन गया। इस शंका के समाधानमें पूछते हैं कि एक जन्मसे दूसरे जन्ममें आत्माके गुण पाये गए तो क्या एक साथ पाये गए या क्रमसे ? एक साथ पाये जाते यह तो कह नहीं सकते। प्रसिद्ध है। मरे इस जन्ममें आज हैं, दूसरे जन्ममें जायेंगे १० वर्ष बाद। तो एक साथ कैसे वे

गुण दोनों जगह पाये गए ? वहाँ तो पर्यौका, दिनोंका अन्तर हो जाता है। यदि कहो कि क्रमसे तो गुण पाये जायेंग जो गुण इस भवमे आत्माके हैं अगले भवमें जानेपर वे गुण वहाँ पाये जायेंगे। इस तरह आत्माके गुण सवत्र पाये गए और आत्मा सर्वव्यापक बन गया। समाधानमे कहते हैं कि इस तरहस यदि सवगत माना जाय क्रमसे पहुँच पहुँचकर तो इन सारी चीजोंको सर्वव्यापक कह बैठेंगे। घडा भी आज यहाँ है कल दूसरी जगह रख देंगे, फिर तीसरी जगह रख देंगे, तो यो मानलो सारी दुनियामें रख देंगे, फिर तो घटा भी सवव्यापक हो गया, क्योंकि घडेके आकार, ढाँचा सब जगह पाये गए। शकाकार कहता है कि यह पटनर देना ठीक नही है। घडा तो देशान्तरमें गमन कर रहा अर्थात् एक देशसे दूसरे देशमे घडेको रख दिया गया है इस कारण घडे में क्रमसे उपलभ्यमान गुण होकर भी घड़ा व्यापक न माना जायगा, क्योंकि वह गमन करता है, एक जगहसे दूसरी जगह जाता है। उत्तरमे कहते तो इसी तरह आत्मामें भी देशान्तर गमन होनेस सवत्र उपलभ्यमान गुण होनेसे आत्मा सवगत न माना जायगा, क्योंकि घट पट आदिककी तरह आत्मा भी सक्रिय है। देखो ! जीवित अवस्थामें जब हम चलते हैं तो आत्मामे भी क्रिया होती है, शरीरमें भी क्रिया होती है। मरणके बाद शरीर कही मिल जायगा। और आत्मामे क्रिया होती है, वह जन्म स्थानपर पहुँचता है और आत्माके साथ रहने वाला जो सूक्ष्म शरीर है उसका भी गमन होता है। प्रत्यक्षसे सब लोग जानते हैं कि एक देशमे दूसरे देशमें आत्मा पहुँचता है और सभी लोग ऐसा कहते भी हैं कि मैं एक योजन तक आ गया। मैं इतने मील आ गया तो गमन सिद्ध हुआ ना, आत्मामे क्रिया सिद्ध हुई ना ? क्रिया हुए बिना यह कैसे कहा जा सकता कि मैं दो कोश आ गया? शकाकार कहता है कि जो आ या वह मन है और शरीर है। आत्मा नही आ गया, यह बात ठीक नही है, क्योंकि मैं आ गया इसमे शब्दके द्वारा वाच्य जो कुछ हुआ सो किसके लिए मैं कहा गया ? मैं आ गया, मायने मन आ गया, मैं आ गया, मायने शरीर आ गया। तो मन और शरीरको मैं शब्द द्वारा कहा गया, उस हीको मैं कहा जा रहा है, ऐसा यदि मान लोगे तो चार्वाक मतका प्रसग आता है, अर्थात् चेतन आत्मा कुछ नही रहा। मन, शरीर, शरीरके रचने वाले परमाणु, मनके रचने वाले परमाणु बस इनका जो पिण्ड है उस हीका नाम आत्मा रखा। आत्मा फिर अलगसे कुछ न रहा। जब मैं शब्दसे मन और शरीरको कहने लगे तब तो आत्माका अस्तित्व न रहा।

आत्माके निष्क्रियत्व और सक्रियत्वकी मीमांसा—देखो भैया ! अब इसके आगे यह प्रसग जुड गया कि शकाकार तो कहेगा कि आत्मा निष्क्रिय है और सिद्ध किया जा रहा है कि आत्मा सक्रिय है। इस सम्बन्धमें थोडा दृष्टियोसे यह समझलें कि आत्मा निष्क्रिय भी है और सक्रिय भी। जब हम आत्माको भेददृष्टिसे निरखते हैं, चैतन्यमात्र आत्मा प्रतिभास स्वरूप आत्मा तो उस प्रतिभास स्वरूपमे कुछ क्रिया न नजर आयगी। तो स्वभाव स्वरूपकी दृष्टिसे आत्मा निष्क्रिय है किन्तु

क्षेत्रदृष्टिसे वह आत्मा इतने मावान्तर परिमाण वाला है, और यह एक देशसे दूसरे देश तक पहुँच गया, इस तरह प्रदेशदृष्टिसे निरखेंगे तो आत्माकी सक्रियता ज्ञात होगी। लेकिन सर्वथा यह कहना कि आत्मा निष्क्रिय है, और निष्क्रियताका इतना बढ़ावा देना कि एक देशसे दूसरे देश गमन करनेकी बात तो दूर रही, उसमें परिणमनकी भी क्रिया, अर्थात् परिणति नहीं होती। इस तरह आत्माको निष्क्रिय माना जा रहा है शंकाकार द्वारा, और उस सम्बन्धमे यह समीक्षा चल रही है।

आत्माको सक्रिय माननेपर मूर्तिसम्बन्धकी आशंका और उसका समाधान—शंकाकार कहता है कि आत्माको सक्रिय माननेपर मूर्तियो के साथ सम्बन्ध बन जायगा, जैसे ढेला पत्थर। ढेला पत्थर क्रियावान हैं। ढेलाको फेंका तो एक जगहसे दूसरी जगह पहुच गया। तो जो क्रियावान होता है उसकी किसी दूसरे मूत पदार्थके साथ भिडत बन सकती है। देखो ना—जब ढेला फेंकते हैं भीटमें या जमीनमे तो उसका भिडाव हो जाता, सम्बन्ध बन जाता। यदि आत्माको सक्रिय मानोगे तो यह दोष आयगा कि आत्माको मूर्तियोके साथ सम्बन्ध बन जाना चाहिए। इसके उत्तरमे शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि मूर्तिका अर्थ क्या है ? आत्माको सक्रिय माननेपर मूर्तियोके साथ सम्बन्ध बननेका जो दोष दिया जा रहा है उस मूर्ति शब्दका आपने अर्थ क्या लगाया ? क्या मूर्तिका यह अर्थ है कि अव्यापी द्रव्यके बराबर रहना। असर्वगत द्रव्य हैं शरीर। और उस शरीरके परिमाणमें आत्माका रहना इसका अर्थ मूर्ति है क्या ? या रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाला हो जाना, यह मूर्तिका अर्थ करते हो ? यदि प्रथम पक्षकी बात कहोगे अर्थात् आत्मा असर्वगत द्रव्य के परिमाणमे रहता है, शरीरप्रमाण रहता है इसका नाम मूर्ति है तो यह तो कोई दोषकी बात नही है। यह तो इष्ट है, यह तो सिद्धान्त की बात है। जो चीज इष्ट हो वह दोषके लिए नही बना करती। आत्मा देह प्रमाण है और देहप्रमाण होनेका ही नाम अगर मूर्ति धरते हो तो नामसे इसका क्या विवाद ? नाम तो कुछ भी रख दो ! आत्माको जैसे कोई चेतन स्वीकार करके उसका नाम पुद्गल धरदे, भौतिक धरदे, तो धरदे, पर उसका यथार्थ ज्ञान आ गया, फिर उसमे दोष नही है। तो शरीर प्रमाण आत्माके होनेका नाम यदि मूर्ति है तो रहा आये, उसमें कोई दोष नही है। तो शरीरप्रमाण आत्माके होनेका नाम यदि मूर्ति है तो रहा आये, उसमे कोई दोष नही है। शङ्काकार कहता है कि असर्वगत देहपरिमाण आत्माके रहनेसे मूर्तिक नही बनता तो दूसरी बात मानो कि रूप, रस, गध, स्पर्शवानको मूर्तिक कहते हैं और मूर्तिकका यह स्वरूप माननेपर यह दोष आता है कि आत्मा यदि सक्रिय है तो लोष्ठ बाण आदिककी तरह आत्माका मूर्तिकोके साथ सम्बन्ध बन बैठेगा। समाधानमे कहते हैं कि यह दोष देना असङ्गत है, क्योंकि सक्रिय होनेका और रूपादिवान मूर्तिक बननेका अविनाभाव नही है। यह व्याप्ति नही बन सकती कि जो-जो सक्रिय हो, क्रियावान हो वह रूपादिमान मूर्ति वाला हुआ करता है अर्थात् रूप, रस, गध, स्पर्श वाला हुआ

करता, यह व्याप्ति नही बन सकती । देखो ! मन भी सक्रिय माना गया, पर मूर्त नही माना गया । शङ्काकारके सिद्धान्तमे मनको क्रिया वाला तो माना गया, पर मनके रूप रस आदिक नही माने गये, तो व्याप्ति तो न बनी । और इसी कारण तुम यह भी युक्ति नही दे सकते कि आत्मा रूप आदिक वाली मूर्तिमे युक्त है अर्थात् रूप, रस, गध, स्पर्श वाला है सक्रिय होनेसे, बाण आदिककी तरह । जैसे बाण सक्रिय है गमन करता है तो वह रूपादिमान है । यो आत्माको सक्रिय माना जाय तो रूपादिवाला बन बैठेगा, यह दोष यो नही दिया जा सकता कि व्याप्ति ही ऐसी नही है कि जो-जो सक्रिय हो वह रूपादिमान हो । मन तो सक्रिय है, पर रूपादिमान नही माना गया । शङ्काकार कहता है कि हम रूपादिमान मान लेंगे, इसको भी पक्षमें डाल लेंगे तो कहते हैं कि प्रसङ्गमे कह दिया कुछ, इससे क्या सिद्ध होता है ? आपके सिद्धान्तमें तो मनको रूपादिमान नही माना । वैशेषिक सिद्धान्तमे यह कथन है कि रूपादिक विशेष गुणका आधार न होकर मन पदार्थको प्रकाशित करता है तो यह व्याप्ति न बनी कि जो-जो सक्रिय हो वे-वे मूर्ति हो, अतएव आत्मा सक्रिय है तो मूर्तिक बन ही जाय यह बात न बनेगी ।

आत्माको सक्रिय माननेपर अनित्यत्वके दोषकी आशङ्का और उसका समाधान—अब शङ्काकार कहता है कि अब दूसरा दोष सुनो ! आत्माको सक्रिय माननेपर । यदि आत्मा क्रियावान है, एक देशसे दूसरे देशमे गमन करता है तो आत्मा अनित्य बन जायगा घट पट आदिककी तरह । जैसे—घड़ा कपड़ा, ये एक देशसे दूसरे देशमे जाया करते हैं तो अनित्य हैं कि नही ? आत्मा भी अगर जाया करे, सक्रिय बन जाय तो वह भी अनित्य बन जायगा । समाधानमे कहते हैं कि यह केवल बात ही बात कहनेकी है । देखो ! परमाणु सक्रिय है कि नही ? सक्रिय है, पर वह अनित्य तो नही माना गया । यह नियम तो नही कि जो-जो सक्रिय हो वह अनित्य ही हो । सक्रिय पदार्थ नित्य भी होते हैं । देखो ! परमाणु सक्रिय है, देशसे देशान्तरमें गमन करता है, लेकिन अनित्य नही है । मन भी सक्रिय है, किन्तु अनित्य नही माना गया है । और, फिर यह बतलावो कि सक्रिय माननेके कारण आत्मामे जो अनित्यपनेका दोष देते हो तो कथचित् अनित्यपनेकी बात बताते हो या सर्वथा अनित्यकी बात बताते हो ? याने आत्मा सक्रिय है इस कारण आत्मा कथचित् अनित्य है यह बात कहते हो या आत्मा सक्रिय है इस कारण आत्मा सर्वथा अनित्य है यह आपका मतव्य है ?

आत्माको सक्रिय माननेपर कथचित् अनित्यत्वकी सिद्धसाधनता—यदि कहो कि कथचित् अनित्य है यह हमारा मतव्य है, तो कहते हैं कि यह तो सिद्ध साधन है अर्थात् सही बात है । आत्मा कथचित् अनित्य है ही । देखिये ! जो भी पदार्थ होता है वह है कब रह सकता है ? जब उसमें कोई व्यक्त रूप हो, उसकी कोई अवस्था बने, उसकी परिणति बने । किसीकी परिणति कुछ नही, आकार कुछ नही, दिशा

कुछ नही, अनुभवन कुछ भी नही, और है मान लिया जाय यह बुद्धिमे नही आसकता, जो भी पदार्थ है वह नियमसे उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। शुद्ध पदार्थ है कोई तो उस का उत्पादव्यय हमारी मोटी समझमें नही आ पाता। जैसे आकाश शुद्ध पदार्थ है, पर उसका उत्पादव्यय हमारी समझमे नही आ पारहा कि आकाश किस तरह तो उत्पन्न हो रहा है प्रतिसमय और किस तरह आकाशका व्यय होरहा है प्रतिसमय यह हमारी बुद्धिमें नही आ रहा लेकिन भगवान सर्वज्ञकी आज्ञा है आगमका कथन है और युक्तिका तगादा है कि जो–जो है वह नियमसे ध्रौव्यात्मक होनेकी भाँति उत्पादव्ययात्मक भी है। यो तो कोई बिजलीका लट्टू जल रहा है आधा घटा तक जला, हम उसमे भी यह नही परख कर पाते कि पहिले मिनटमे जैसी यह बिजली थी देखो, लगातार २६ मिनट तक वही तो है इसने उत्पाद क्या किया ? अपने आपमे नवीन बात कौनसी पैदा की ? और कौन सी बात इसकी बिगड गई ? कौन सा व्यय हो गया ? यो मोटे रूपसे यहाँ कुछ समझमे नही आता, लेकिन पहिले मिनटमे जो उजेलारूप उसका कार्य है दूसरे मिनटमे उजेलारूप कार्य करनेमे क्या उसकी शक्ति नही लगी ? वह दूसरे मिनटका दूसरा पुरुषार्थ है दूसरी क्रिया है, इस तरह प्रति सेकेण्डमे, सेकेण्डके भी अनेक हिस्से करके प्रतिभागमे प्रतिसमयमे वह अपना नवीन–नवीन परिणमन कर रहा है। तो जब दीपक कोई शुद्ध पदार्थ नही, वहाँ भी एक समान कार्य होनेके कारण उत्पादव्यय समझमे नही आता तो शुद्ध पदार्थमे एक समान परिणमन होनेके कारण उत्पादव्यय एकदम बुद्धिमे नही आये तो न आये, लेकिन यह अकाट्य नियम है कि जो भी पदार्थ हैं वे नियमसे उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं। तो आत्माको सक्रिय मानकर आत्माको कथचित् अनित्यका दोष देना, यह दोष नही, यह तो गुणकी बात कही जा रही है। आत्मा कथचित् अनित्य है। वैसे तो देखो, हम आप आत्मा हैं ना ! कभी दु खका अनुभव कर रहे कभी सुखका अनुभव कर रहे कभी अज्ञानमय परिणाम रहे, कभी ज्ञानप्रकाशमे आ गए, ऐसी जो इसमे नाना अवस्थायें बन रही हैं यहाँ तो उत्पाद-व्यय है। शुद्ध दशामे अर्थात् शरीर कर्मविकारसे रहित आत्मा हो वहाँ क्या परिणमन करता है ? वह विशेष अन्तर्दृष्टिसे गम्य हो सकता है। साधारणरूपतया निरखनेसे शुद्धका उत्पादव्यय नही जाना जा सकता है। शुद्ध आत्मा प्रतिसमय विशुद्ध परिपूर्ण ज्ञानरूप परिणम रहा है और विशुद्ध आनन्दरूप परिणम रहा है। तो आत्मा कथचित् अनित्य है, यह बात युक्त ही है।

सक्रिय माननेपर भी आत्माकी सर्वथा अनित्यताका अप्रसग—यदि कहो कि हम सर्वथा अनित्यपनेका दोष दे रहे हैं कि आत्मा सक्रिय होनेपर सर्वथा अनित्य बन जायगा घट आदिककी तरह तो भाई, तुम्हारा दृष्टान्त भी सर्वथा अनित्य नही है, घट पट भी सर्वथा अनित्य नही है, फिर किसीको सर्वथा अनित्य ही क्या सिद्ध करोगे ? देखो घडा जिन परमाणुवोसे रचा गया है वह है उसका मूल द्रव्य। वह तो सवथा अनित्य नही है, क्या उन सतोका असत्त्व हो जाता है ? वे कुछ न रहें, उनका

समूल विनाश हो जाय क्या ऐसा हो सकता है ? घडा फूट गया, घडेकी पर्याय मिट गई, मगर जिन स्कधोसे, जिन परमाणुवोंसे घडा बना था वे स्कध और परमाणु नही मिटे। कभी उन खपरियोका बारीक चूरा भी कर दिया जाय तो वे खपरियाँ परिणति मे मिट गई, चूरा बन गया लेकिन उनका मूल स्कध परमाणु यह नही मिटा। हवा चले, बिखर जाय वह चूरा उसमें कुछ नजर न आवे लेकिन उनके सूक्ष्म स्कध और परमाणु बराबर उतनेके ही उतने हैं, उनमें कुछ घटेगा नही, उनमें कुछ बढेगा नही। तो देखो ! घट पट आदिक ये सारे पदार्थ भी सर्वथा अनित्य नही हैं।

आत्माको निष्क्रिय माननेपर ससारके सद्भावकी सिद्धिकी अशक्यता

यहाँ अब सिद्धान्तकी बात कही जा रही है कि आत्माको निष्क्रिय माननेपर अर्थात् देशसे देशान्तरमें गमन नही होता, आत्माको ऐसा माननेपर ससारका अभाव होजायगा ससार तत्त्वकी सिद्धि न की जा सकेगी, क्योकि बतलावो अच्छा ससारी नाम किसका है ? ससार किसका होता है ? क्या शरीरका ससार चलता है या यह सारा ससार मनका है ? या आत्माका है ? यो तीन विकल्प किए। यह ससार अर्थात् परिभ्रमण जन्म जन्मान्तरका ग्रहण, क्रोधादिक विषय कषायोका परिणमन, यह सब ससार है किसका ? शरीरका, या मनका या आत्माका ? शरीरका तो कह नही सकते, क्योकि मनुष्य लोग जिस शरीरको जला देते हैं, वह शरीर जलकर राख हो गया, अब वह शरीर स्वर्गोंमे थोडे ही गमन करता है। वह तो यहाँ राख हो गया। जब शरीर यहाँ से मरकर स्वर्गमें नही गमन कर सकता, अन्यत्र नही जाता शरीर तो ससार शरीरका न रहा। जन्म जन्मान्तरका होना ये शरीरमें तो न रहे। एक ही शरीर मरकर स्वर्गादिकमें चला जाय यह नही बनता, अतएव ससार शरीरका सिद्ध नही होता। यदि कहो कि ससार मनका है मनका परिभ्रमण है। मनका गमन है। मनमें विषय कषाय हैं तो उत्तरमे पूछते हैं कि यह बतलावो कि मन निष्क्रिय है या सक्रिय ? ससार यदि मनका बताते हो, मनने ही दूसरा जन्म लिया, मनका ही यह सारा ससार बन रहा है तो वह निष्क्रिय है या सक्रिय ? उत्तर दो ! यदि कहो कि मन निष्क्रिय है तो अब ससार नही बन सकता। जब एक देशसे दूसरे देशमें न जायगा मन तो जैसे शरीर राख बनकर नही जा सकता तो मन निष्क्रिय होनेके कारण नही जा सका, फिर मन का ससार कहाँ रहा ? यदि कहो कि मन सक्रिय है, मनमें क्रिया होती है तो मन और क्रिया ये जो दो बातें हुई वे दोनो परस्परमें भिन्न हैं या अभिन्न ? मनसे मनकी क्रिया भिन्न है या अभिन्न है ? यदि कहो कि मनकी क्रिया मनसे अभिन्न है तो अब मन और क्रिया एक ही चीज कहलाने लगे, अभिन्नका अर्थ ही यह है कि वहाँ दो बातें नही हैं। मन है सो क्रिया, क्रिया है सो मन, और क्रिया है अनित्य तो मन भी अनित्य बन जायगा। तब फिर मन क्षणमात्र भी न ठहर सका। फिर उसका ससार ही क्या बना ? यदि कहो कि मनकी क्रिया मनसे भिन्न है तो जब मनका काम, मनकी गति मनसे जुदी है तो उसका सम्बन्ध कैसे माना जाय कि गति मनकी है। जैसे ! वेन्च

जुदी चीज है, दरी जुदी चीज है। सम्बध तो नही कहा जा सकता कि बेन्चकी दरी है, दरीकी बेन्च है, भिन्न–भिन्न चीजें हैं दोनो। इसी प्रकार मनकी क्रिया यदि मनसे भिन्न हैं तो उनमे सम्बध नही बन सकता, किसी प्रकारका सम्बध सयोग अथवा समवाय। समवायका तो निषेध किया और सयाग द्रव्य द्रव्योमे होता यह है क्रिया और द्रव्य, तो द्रव्य और क्रिया होनेमे मनका और मनकी क्रियाका सयोग सम्बध न बनेगा और समवाय सम्बध कोई चीज ही नही। उनका तो निषेध ही किया है। तो मनसे मनकी क्रियाको भिन्न माननेपर मनके साथ क्रियासे सम्बन्ध नही बन सकता। तो मायने यह हुआ कि यह ससार मनका भी नही कहा जा सकता।

अचेतन मनमे अनिष्टपरिवहारपूर्वक इष्टप्रवृत्तिकी शक्यताके सम्बन्ध मे चार विकल्प— और फिर ससार मनका माननेपर एक दोष यह है कि मन तो अचेतन है अचेतन मन अनिष्ट नरक आदिक गतिका छोडकर इष्ट स्वर्ग आदिकमे प्रवृत्त करा दे यह कैसे सम्भव है ? जिसमे चेतनता नही, ज्ञान नही वह अनिष्टसे तो हटा दे और इष्टमे लगा दे यह बात कैसे बन सकती है ? यह बात तो ज्ञानमें ही सम्भव है कि अहितका परिहार करा दे और हितकी प्राप्ति करा दे, और जो ज्ञान है सो आत्मा है। तो अचेतन मनमे यह बात न बन सकेगी कि वह अनिष्ट बुद्धिसे हटकर इष्ट स्वर्ग आदिक गतियोमें प्रवर्तादे। यदि हम अनिष्टका परिहार करके इष्टमें लगा देते हैं तो किस तरह लगाते हैं सो बताओ ? क्या स्वभावसे ही अचेतन मन स्वर्गादिक गतियोमे प्रवृत्ति करा देता है या ईश्वरकी प्रेरणा होती है मनके लिये तो ईश्वर से प्रेरित होकर मन अनिष्ट गतिको छोडकर इष्ट गतिमें लगता है, या मन सम्बन्धी आत्माकी प्रेरणासे मन अनिष्ट गतियोको छोडकर इष्ट गतिमे लगाता है या भाग्यसे प्रेरित होकर यह मन अनिष्ट गतियोसे छूटकर स्वर्गादिक गतियोमे लगाता है ? इस तरह यहाँ चार विकल्प किए कि अचेतन मन कैसे नरक आदिक गतियोका परिहार कराकर स्वर्गादिकमे प्रवृत्ति कराता है ? अब इसका क्रमसे उत्तर होगा।

स्वभावत अचेतन मनकी इष्टानिष्ट प्रवत्तिनिवृत्तिके विकल्पका निराकरण— शकाकार आत्माको निष्क्रिय मानता है अर्थात् आत्मामे हलन, चलन गमन यह कुछ नही होता। तो निष्क्रिय माननेपर आपत्ति यह दी गई थी कि फिर ससारका अभाव हो जायगा, क्योकि ससार किसका है ? क्या शरीरका ससार चल रहा है या मनका या आत्माका ? इनमेंसे द्वितीय विकल्पका विचार चल रहा है। मनका ससार यदि मानते हैं तो मन तो है अचेतन। अचेतन मन नरक आदिक गतिसे हट जाय और स्वर्ग आदिकमे लग जाय यह बात कैसे सम्भव है ? क्या स्वभावत सम्भवसे या ईश्वरकी प्रेरणासे, या मन सहित आत्माकी प्रेरणासे या भाग्यकी प्रेरणा से ? इन विकल्पोमें यदि पहिली बात कहोगे कि अचेतन मन स्वभावसे ही अनिष्ट गतिका परिहार करके स्वर्गादिकमे प्रवृत्ति कराता है तब तो सभी जगह ज्ञानके लिए जला-

ञ्जलि दे दी गयी। जलाञ्जलि कहते है काम खतम होनेको। कोई लोग तिलाञ्चलि भी कहते हैं। जैसे जब कोई विवाह आदिक उत्सवक नेगचार होते हैं तो कोई नेग समाप्त होनेपर जलकी अजलि दी जाती है अथवा कोई लोकरूढ़ि सूयपूजा आदिक होने पर उस विधिके समय जलाजलि हुआ करती है। ऐसे सब काय समाप्त होनेका नाम जलाजलि है। और, कहावतमे काम नष्ट होनेका नाम जलाजलि है। यदि स्वभावसे ही अचेतन मन सब कुछ काम करने लगे तो फिर ज्ञानका काम क्या रहा ? देखो! अब ज्ञानके अभावमे भी अचेतन मन इष्ट अनिष्ट वस्तुओमें प्रवृत्ति करने लगा है।

ईश्वरकी प्रेरणासे अचेतन मनकी इष्टानिष्ट गतिमे प्रवृत्तिनिवृत्तिके विकल्पका निराकरण—यदि कहो कि ईश्वरकी प्रेरणासे अचेतन मन इष्ट अनिष्ट वस्तुवोमें प्रवृत्ति निवृत्ति करता है तो यह बात यो युक्त नही है कि पहिले तो यह सिद्ध नही है कि ईश्वरकी प्रेरणा ईश्वरका काय है, ईश्वर सम्बन्धित बात ही सिद्ध नही है, अथवा मान लो हो इम ईश्वरका आग्रह, तो वह ईश्वरका आग्रह क्या है जिससे कि आत्मा इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रवृत्ति निवृत्ति करनेके लिए प्रेरित हो जाय, अर्थात् ईश्वरकी प्रेरणासे म । प्रेरित होना मानते हो। इसमे भला तो यह था कि तुम ईश्वरकी प्रेरणासे आत्माको प्रेरित मान लो क्योकि वैशेषिक सिद्धान्तके आगम भी यह कहा करते हैं कि "यह प्राणी अपने सुख दु खके अज्ञानी हैं, सो ईश्वरसे प्रेरित होता हुआ ही यह प्राणी स्वर्गादिकमे अथवा नरकमें जाता है।" तो मनकी बात कहाँ आयी ? क्या ईश्वरकी प्रेरणा पाकर यह मन स्वर्गमे और नरकमें जाता है ऐसा कोई मानता है ? अधिकसे अधिक परमान्यत मे चले तो जीवके लिए मानता हैं। इससे यह भी सिद्ध नहीं होता कि ईश्वरकी प्रेरणासे मन इष्ट कार्योंमे लगता है और अनिष्ट बातोसे हटता है और इस कारण सारा ससार मनका है।

मन सम्बन्धित आत्माकी प्रेरणासे एव अदृष्टकी प्रेरणासे भी मनके ससारत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि मन सम्बन्धित आत्माकी प्रेरणासे मन इष्ट अनिष्ट कार्योंमे लगता है, हटता है इसमे भी यह बात पूछने योग्य है कि ज्ञात होकर मन इष्टमें लगता है या अज्ञात होकर मन इष्टमे लगनेके लिए प्रेरित होता है ? यदि कहो कि ज्ञात होकर, सो यह बात असिद्ध है। प्रत्येक प्राणीको जतुमात्रको मनका कुछ परिज्ञान नही है। जैसे दरी, चौकी आदि चीजका ज्ञान हो जाता है, इस तरह किसीको भी मनका ज्ञान है क्या ? जैसे - यहा बेन्च है इसी प्रकार यह मन है ऐसा जतुमात्रको मनका परिज्ञान नही है और ज्ञान होकर ही मन प्रेरित होता माना है तो जतुमात्रको (अथवा विरलोको हो जाय, किन्तु सवसाधारणको) मन ज्ञात नही है, फिर मन प्रेरित न हो सकेगा, न ष्ट अनिष्टका परिहार ग्रहण हो सकेगा, फिर ससार भी नही बन सकता। यदि कहो कि यह मन अज्ञात होकर ही प्रेरित हो जाता है आत्माके द्वारा तो अज्ञात चीज कैसे प्रेरित हो सकती है ? धनुषबाण चलाने वाले

को वाग्ग ज्ञानमें है, यह है, तभी तो वाणको प्रेरित करता है। यदि मन जाना ही नही जाता है तो वह आत्माके द्वारा या अन्य किसीके द्वारा कैसे प्रेरित हो जाता है ? इसका हम दृष्टान्त देते हैं। जैसे सोया हुआ मनुष्य है और उसका हाथ चल जाता है तो देखो अज्ञात चल गया ना हाथ ! सोये हुए मनुष्यने जानबूझकर तो हाथ नही चलाया। उत्तर देते हैं कि वह चल गया हाथ मगर अहितका त्याग करके और अहितमे लगानेके ढगसे तो हाथ नही चलता स्वप्नमे ? कहो, धधकती हुई आगपर ही उसका हाथ पड जाय, तो उसे प्रेरणा न कहेंगे। वह तो चल उठा अन्यथा जलती हुई अग्निमे जो ज्वालाये उठती हैं वे भी चलती हुई पाई जाती हैं, पर वहाँ अहित परिहार हितादिक ग्रहणकी बात तो नही है। इससे यह भी नही कह सकते कि मन सम्बन्धी जीवमे प्रेरित होकर यह मन स्वर्गादिक गतियोमे प्रवृत्ति करता है और तब ससार मनका कहलाता। शङ्काकार यहाँ मनको ससारी बताकर आत्माको निष्क्रिय सिद्ध करना चाहता है। जो ससार है वह सब मनका है। मन ही बदलता है, मन ही जन्म लेता है मनमे ही क्रिया होती है। तो निष्क्रिय है ऐसा सिद्ध करनेके लिये मनके विकल्पकी बात चला रहा है। अब चौथा विकल्प लेते हो कि भाग्यसे प्रेरित होकर मन स्वर्ग आदिक गतियोमे लगता है तो यह भी असार बात है, क्योंकि भाग्य भी अचेतन है। तो अचेतन भाग्य मनका प्रेरक बन जाय यह कैसे हो सकता है ? इससे तो अच्छा यह था कि यही मान लेना कि भाग्यसे प्रेरित होता हुआ यह जीव ही प्रवृत्ति करता है, स्वर्गादिकमे जन्म लेता है चेतन होनेसे। देखा भी जाता है कि वशीकरण औषधि मत्र आदिक सयुक्त जो चेतन पुरुष है वही तो अनिष्ट गृहको छोड कर इष्ट गृहमे प्रवेश करता है। इससे सिद्ध है कि ससार मनका भी नही बन सकता।

आत्माके ससारत्वकी मीमासा—यदि कहो कि ससार आत्माका है, आत्मा को निष्क्रिय सिद्ध करनेके लिये शङ्काकारका प्रयत्न चल रहा है। निष्क्रिय माननेपर ससारके अभावकी बात बताई गई थी तो वहाँ ससार किसका है ? यही प्रश्न बहुत पहिलेसे चल रहा है। समाधान—आत्माका ससार यदि मानते हो तो देखो ! एक देहको छोडकर अन्य देशमें यह आत्मा जाय तब तो आत्माका ससार सिद्ध हो। ससार का अर्थ ही यह है कि एक भवको छोडकर दूसरे भवमे जाय ! जन्मजन्मान्तरको लेता रहे जन्म-मरणकी परम्पराका नाम ही ससार है। ऐसा आत्मा यदि एक देहको छोड कर अन्य देहम जाता है यह मान लो तो ठीक है आत्माका ससार है। और जब ऐसा मानलो कि आत्मा एक देहको छोडकर अन्य देहमे जाता है, तब दोनो ही बातें तुम्हारी सिद्ध नही हो सकती जो शङ्काकारको सिद्ध करना था, क्या ? आत्माके गुण सब जगह पाये जाते हैं। जब एक देहमे था अब उसे छोडकर दूसरे देहमे आत्मा गया, तो जब वहाँ था तब आत्माका गुण दूसरी जगह न था, जहाँ कि जन्म लेना है और जब दूसरी जगहमे आत्मा पहुचा तो उसका गुण पहिले देहकी जगह न रहा तो आत्मा का गुण बुद्धि आदिक सब जगह पाये जाते है यह बात असिद्ध हो गई। और, जब

आत्मा एक देहको छोडकर अन्य देहमें गया तो आत्मा सर्वगत है यह बात भी सिद्ध नही हुई घटकी तरह । जैसे एक घडा एक जगहसे दूसरी जगहमें गया तो इससे यह सिद्ध हुआ ना कि घटका गुण सब जगह नही है और घट सर्वगत भी नही है । तो आत्माका ससार माननेपर एक देहको छोडकर अन्य देहमे जन्म माननेपर देहान्तरका प्राप्त करना माननेपर न आत्मा सब जगह पाये जाने वाले गुण वाला रहा और न सर्वगत रहा ।

आत्माकी सर्वगतताकी सिद्धिके लिये शकाकार प्रस्तुत हेतुके दृष्टान्त मे साधन विकलता—शकाकारका इस प्रसगमें मूल वक्तव्य यह है कि आत्मा सवगत है, क्योंकि इसके गुण सब जगह पाये जाते हैं आकाशकी तरह । इस अनुमानके ढांचे का निराकरण करके अब यह कह रहे हैं कि दृष्टान्त भी जो दिया गया है आकाशकी तरह तो यह बतलावो कि आकाशका कौन सा गुण सब जगह पाया जाता है ? जो बात प्रकृतमे सिद्ध करनेके लिए कही जाय, बस जो दृष्टान्त दिया जाय उसमे साध्य और साधन तो पाये जाने चाहिएँ । आत्मा सवव्यापी है, क्योकि इसके गुण सब जगह पाये जाते हैं आकाशकी तरह भीतर । तो आकाशमें यह घटित करना चाहिये ना कि आकाशके गुण सब जगह पाये जाते हैं इस कारण आकाश सर्वगत है । भला बतलावो तो सही कि आत्माका कौन सा गुण सब जगह पाया जा रहा है ? क्या शब्द सब जगह पाया जा रहा है या महत्त्व सब जगह पाया जा रहा है ? वैशेषिक सिद्धान्तमे आकाशके दो गुण माने हैं एक तो शब्द और दूसरा महान परिमाण होना । तो शब्द सब जगह पाया जाता है यह बात असिद्ध है । प्रथम तो सब जगह पाया नही जाता और फिर शब्द आकाशका गुण ही नही है । आकाशका गुण फिर और कौन सा रहा ? यदि कहो कि महत्त्व गुण सब जगह पाया जा रहा है, मायने आकाशका महा परिमाण गुण सब जगह पाया जा रहा है सो यह बात असिद्ध है । महत्त्व तो इन्द्रिय-गम्य नही हो सकता, वह तो अतीन्द्रिय है । तो अतीन्द्रिय होनेके कारण सब जगह उसकी उपलब्धि नही हो सकती । इस लोकका आकाशका महान परिमाण सब जगह पाया कहाँ जा रहा ? इससे यह अनुमान बिल्कुल बाधित हो गया कि आत्मा सवगत है क्योकि इसके गुण सब जगह पाये जाते हैं आकाशकी तरह । इसमें एक शब्द निराकृत कर दिया गया । सवगत है यह भी ठीक नही । सवत्र उपलभ्यमान गुण है यह भी ठीक नही आकाशकी तरह यह दृष्टान्त भी नही, तो आत्मामे अनुमानसे भी सवगतपना सिद्ध न हो सका ।

आत्म सर्वगतत्व सिद्धिके लिये शकाकार प्रस्तुत हेतुकी असिद्धता-अब आत्माके सब जगह गुण नही पाये गए और सवव्यापक सिद्ध न हो सका तो आत्माके व्यापक सिद्ध करनेके लिए जो एक अन्य नवीन अनुमान दिया जा रहा है वह भी असिद्ध हो जायगा । शकाकारका अब सवगत सिद्ध करनेके लिए अन्य अनुमान है कि

बुद्धिका आधारभूत द्रव्य सर्वगत् हुआ करता है, क्योंकि नित्य होनेपर हम लोगोंके द्वारा उपलभ्यमाण गुणका अधिष्ठान है। हेतुका निष्कर्ष यह है कि आत्मा नित्य है और आत्माका गुण जो बुद्धि है वह बुद्धि गुण हम सब लोगोके द्वारा जाना जा रहा है, उस बुद्धि गुणकी हम सबको उपलब्धि हो रही है ऐसी बुद्धिका अधिष्ठान है आत्मा, इस कारण आत्मा व्यापक है। इसका सीधा संक्षिप्त मत यह हुआ कि जिसमे बुद्धि पायी जाती है वह द्रव्य सर्वव्यापी हुआ करता है। यह अनुमान भी प्रकट खण्डित् है क्योंकि दृष्टान्तमे साधन नही पाया जा रहा। दृष्टान्त दिया गया आकाशका। हेतु बताया गया है नित्य होनेपर हम लोगोंके द्वारा पाये जाने वाले गुणका आधार होने से। अर्थात् जिन गुणोको हम समझ सकते हैं उनका तो हो आधार और साथ हीं हो नित्य। तो जो नित्य हो और हम लोगोके द्वारा पाये जाने वाले गुणोका आधारभूत हो वह व्यापक हुआ करता है। दृष्टान्त दिया आकाशका, तो आकाशका कोई गुण हम लोगोको विदित नही हो रहा। तो "हम लोगोको जो जाननेमे आये ऐसे गुणोका आधार होनेसे" यह हेतु आकाशमें नही पाया जारहा।

आत्मव्यापकत्वकी सिद्धिके लिये शङ्काकारप्रस्तुत हेतुकी अनेकातिता

आत्माको सर्वगत सिद्ध करनेके लिये प्रसक्त हेतुका दृष्टान्त साधनविफल तो है ही, साथ ही यह हेतु अनेकान्तिक दोषसे दूषित है। अनेकान्त दोष उसे कहते हैं कि कुछ दृष्टान्त ऐसे मिल जायें कि जिनमे हेतु तो पाया जाय और साध्य न पाया जाय ? तो वह व्यभिचारी हेतु कहलाता है। जो बात सिद्ध करना है उसकी सिद्धि करनेके लिये जो हेतु दिया है वह हेतु अगर साध्यसे विपरीत अर्थको सिद्ध करने लगे तो व्यभिचारी कहलाता है। आपका हेतु है जो नित्य हो और जिसके गुण हम जानते हो, वह व्यापक होता है लेकिन परमाणु नित्य है। और परमाणुवोका गुण हम जानते हैं, लेकिन परमाणु नित्य है और परमाणुवोका गुण हम जानते हैं, लेकिन वह व्यापक नहीं है। हेतु पाया गया, साध्य नही पाया गया तो वह व्यभिचार कहलाता है। परमाणुका कौनसा गुण हम आप लोगोको जाननेमें आ रहा ? उस गुणको कहेंगे पाकज गुण। परमाणुवोके संयोगसे स्कधोमे जो परिणाम बनता है, बिगडना, नष्ट होना, शीर्ण होना आदिक, ये सब गुण यदि परमाणुमे न होते तो ये भी हमको कैसे दिखते ? तो उन गुणोके पाये जानेपर भी और नित्य होनेपर भी परमाणु व्यापक नही है। इससे यह अनुमान देना गलत हो गया कि जो बुद्धिका आधारभूत द्रव्य हो वह व्यापक है, क्योंकि नित्य होनेपर हम लोगोके द्वारा ज्ञान गुणका आधार होनेसे। यदि कहो कि परमाणुके पाकज गुण हम लोगोके प्रत्यक्षमे नही आ रहे तो किसी तरह साध्य इन्द्रिय द्वारा स्पष्ट तौरसे प्रत्यक्षमे न आ सके और उसे न मानोगे तो आपका यह अनुमान भी गलत हो जायगा जो अन्य प्रसङ्गमें कहते थे कि पर्वत, नदी, पृथ्वी आदिक किसी कारणपूर्वक हैं क्योंकि कार्य होनेसे। तो उनका कार्यपना या कारणकी उपलब्धि ये प्रत्यक्ष ही नहीं हैं तो व्याप्ति नही बन सकती। इससे यह दोष देना कि जो नित्य होने

पर ज्ञात गुणका आधार होता है वह व्यापक होता है, यह अनुमान गलत होगा। यदि कहो कि हम उसमे बाह्य इन्द्रिय और जोड देंगे जो नित्य होनेपर हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा ज्ञात गुणका आधार हो ? इससे परमाणुके साथ व्यभिचार मिट जायगा, क्योंकि परमाणुके गुण बाह्य इन्द्रियोसे नही जाने जाते। तो भाई ! बुद्धि भी तो बाह्य इन्द्रियसे नही जानी जाती। यो तो तुम्हारी प्रकृत बातमे ही झगडा पड गया। जब बुद्धि बाह्य इन्द्रियके द्वारा अज्ञात है तो हेतु ही नही पाया गया फिर साध्य क्या सिद्ध करोगे ? और फिर यह बतलाओ कि आत्माको जो नित्य मान रहे हो सो कथचित् नित्य कहते हो या सर्वथा नित्य कहते हो ? यदि सर्वथा नित्य कहते हो तो घट पट आदिक पदार्थोंके साथ हेतु व्यभिचरित हो जाता है। देखो ! घट आदिक पदार्थ कथचित् नित्य हैं और हम लोगोके द्वारा उसके गुण पाये जा रहे हैं, लेकिन व्यापक कहाँ है ? यदि कहो कि सर्वथा नित्य कहा है आत्माको तो सर्वथा नित्य तो कुछ होता ही नही है। तो आपका यह हेतु ही सिद्ध नही हो रहा, फिर उस हेतुके द्वारा आत्माको व्यापक सिद्ध करनेका प्रयत्न व्यर्थ है।

आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करनेका शकाकार द्वारा प्रस्तुत अन्य अनुमान—अब शकाकार कहता है कि आत्मा सर्वव्यापक है, इसका साधक हमारा अन्य और अनुमान सुनो क्योकि द्रव्य होनेपर अमूर्त है। जो जो पदार्थ द्रव्य और अमूर्त हो वह सर्वव्यापक होता है। शकाकार आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करनेके लिए यह हेतुका समर्थन कर रहा है कि देखो हमारे हेतुमे दो अग है द्रव्य होना और अमूर्त होना जिसमें द्रव्यत्व व अमूर्तत्व दोनो हो तो वह सर्वव्यापक है। यदि हम केवल उसे केवल द्रव्य कहते तो उसमें दोष आता है, यदि कहते कि आत्मा सर्वव्यापक है द्रव्य होनेसे तो द्रव्य तो घट भी है, पृथ्वी, पहाड आदिक है लेकिन ये तो सर्वव्यापक नही हैं। तो उसके साथ हमने अमूर्त शब्द लगाया। ये घट पट पर्वत आदिक अमूर्त तो नही हैं इस लिए इनके साथ दोष न लगेगा। और, यदि हम कहते कि आत्मा सर्वव्यापक है अमूर्त होनेसे, तो इसमे यह दोष दिया जा सकता था कि अमूर्त तो रूप, रस, गध, स्पर्श भी है। रूप आदिक गुण अमूर्त हैं या गमन आदिक जो कर्म है, क्रिया है वह क्रिया भी अमूर्त है, लेकिन सर्वव्यापक तो नही। इस कारण हेतुमे दो बातें कही है जो द्रव्य हो और अमूर्त हो वह सर्वव्यापक होता है। जैसे कि आकाश। आकाश द्रव्य है और अमूर्त है, इसलिए सर्वव्यापक है ना। तो यो आत्मा भी अमूर्त और द्रव्य होनेके कारण सर्वव्यापक हो जायगा।

रूपादिमत्त्वलक्षण मूर्तिके अभावको अमूर्त कहनेके विकल्पका निराकरण—अब इसका उत्तर देते हैं कि जो यह हेतु दे रहे हो कि आत्मा द्रव्य है और अमूर्त है इस कारण सर्वव्यापक है तो इसमें अमूर्त शब्दका अर्थ क्या होगा ? अमूर्तका अर्थ तो यह है कि जो मूर्त न हो। और, मूर्तका क्या अर्थ है ? जिसके निषेधको अमूर्त

कहा गया । पहिले मूर्त शब्दका ही अर्थ ठीक बना लीजिए । क्या मूर्तका यह अर्थ है रूपादिमत्त होना अथवा अव्यापी द्रव्यके परिमाण होना ? जैसे मूर्तका निषेध करके सिद्ध कर रहे हो कि आत्मा अमूर्त है तो जिस मूर्तपनेके अभावको अमूर्त कहते उस मूर्तिकपनेका अर्थ क्या है ? क्या रूपादिमान होना अथवा अव्यापी अर्थके बराबर होना? यदि कहो कि रागादिमान होनेको हम मूर्तिक कहते हैं और फिर उस मूर्तिकता के अभावको हम अमूर्त कहते हैं याने जो रूपादिक मान न हो वह है अमूर्त और अमूर्तका दिया है हेतु तो इस हेतुका मनके साथ अनैकान्तिक दोष आता है, अर्थात् देखो मन द्रव्य है और अमूत भी है याने रूपादिमान नही है, वैशेषिक सिद्धान्तमे रूप, रस, गध, स्पशके आधार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु हैं और किसी भी पदार्थमे रूपादिक नही पाये जाते, इन चार पदार्थोंके अलावा है गह मन नामका द्रव्य । इस मनमे रूपादिमयता नही है तो अमूर्त है मन और नित्य भी माना गया है, लेकिन व्यापक है नही इससे मूर्तत्वका अर्थ यह नही कर सकते कि जो रूपादिक वाले हो सो मूर्त हैं ।

असर्वगत द्रव्य परिमाणभाव लक्षण मूर्तत्वके अभावके विकल्पका निराकरण - यदि दूसरा पक्ष लोगे कि जो असर्वगत है उस द्रव्यके बराबर होना सो मूर्त है । घट पट आदिक ये असर्वगत द्रव्य हैं, अव्यापी द्रव्य हैं थोडे-थोडे क्षेत्रमे रहने वाले पदार्थ हैं । उन द्रव्योके परिमाण रहने वालेका नाम मूर्तिक है ऐसी मूर्तिक अभाव होनेका नाम अमूर्तत्व है, ऐसा यदि कहते हो तो जरा कोई द्रव्य ऐसा तो बताओ जो आपके यहाँ प्रसिद्ध हो और जिसके परिमाण होनेका नाम मूर्ति कहा जाय । शकाकार कहता है हाँ लीजिए दृष्टान्त । घट पट आदि है, देखो ना घडा असर्वगत है, छोटे बडे फिट डेढ फिटके घड़े हुआ करते हैं, तो अव्यापी है ना, सारे आकाशमे घडा फैला नही और उसके परिमाण बराबर पदार्थको हम घडा कहते हैं, तो यह तो मूर्तिक है । कहते हैं कि कैसे तुमने झट जान लिया कि घडा जो है वह अव्यापी द्रव्यके बराबर है याने प्राय फुट डेढ़ फुटके घेरेके परिमाण वाले हैं तुमने कैसे जान लिया ? शकाकार कहता है कि इसके जाननेमें कोई कठिनाई है क्या ? सामने तो दिख रहे हैं । अव्यापी है घडा और उस हीके परिमाणमे घडा है उससे दूर है नही सो यह तो स्पष्ट नजर आ रहा है । ऐसे ही उपलब्धि हो रही है कि घडा अव्यापी द्रव्यके परिमाण है, ऐसा पाया जा रहा है । तो उत्तरमें कह रहे हैं कि अब इस बातपर डटे रहना कि जिसे पाया जाय, जो उपलब्ध है, वही प्रमाण है । आपको यह मजूर है ना कि उस प्रकारकी उपलब्धि प्रमाण है । शकाकार कहता है हाँ हाँ बराबर यह बात प्रमाणभूत है । जिसे पाया जाय वह प्रमाण हुआ करता है । तो कहते हैं कि घडेकी तरह आत्मामे भी असर्वगतपना स्वसवेदन प्रत्यक्षसे सिद्ध है । आत्मा भी अव्यापी देहके प्रमाण पाया जा रहा है और इस कारण आपका अमूर्तत्व हेतु असिद्ध हो गया । क्योंकि अब आपका आत्मा मूर्त बन गया ना ? यहाँ मूर्तिका लक्षण इतना भर किया है शकाकारने कि जो अव्यापी द्रव्यके बराबर हो उसको मूर्त कहते हैं । अब अव्यापी द्रव्यके शरीरके बराबर आत्मा

पाया जाता है। सभी सम्वेदन प्रत्यक्षसे बराबर ज्ञात है सो वह मूर्त बन गया। तुम्हारा हेतु ही असिद्ध हो गया और जब मूत हेतु होनेसे असर्वगत सिद्ध होता है तो आत्मा अब सर्वगत सिद्ध नही होता, अन्यथा हम कह बैठेंगे कि घडा भी हमारा सर्वव्यापी है। जितना आकाश है समस्त आकाशमे फैला हुआ हमारा घडा है, क्योकि घडा द्रव्य है और अमूर्त है। आप कहेंगे कि तुम्हारे पक्षमे तो प्रत्यक्षसे वाधा है। घडा कहाँ है अमूर्त ? अमूर्तका यहाँ अर्थ किया जा रहा है असर्वगत द्रव्यके परिमाण न रहना। अव्यापी द्रव्यके परिमाण रहनेका नाम मर्ति है। ऐसा मूर्तिका लक्षण हृदयमे रखकर अमूर्त कहा जा रहा है सो यह जाना ही नही जा रहा। यदि घटमे वाधा आती है तो आत्मामे भी वाधा आती है। इसमें आत्माको अमूर्त सिद्ध करना ही कठिन हो रहा मूर्तिका अभाव है यह सिद्ध नही हो पा रहा। न तो रूपादिमानका नाम मूर्ति रहा और न असर्वगत द्रव्यके परिमाण रहनेका नाम मूर्तिक रहा तो आपके अनुमानमे अभी हेतु ही असिद्ध है उसे पहिले सिद्ध कीजिये।

असर्वगत द्रव्यपरिमाणरूप मूर्तत्वका निषेध करके आत्माको अमूर्त सिद्ध करनेकी शङ्काकारकी कठिनाइयाँ—शङ्काकार आत्माको आकाशकी तरह सर्वव्यापी माननेके लिये हेतु दे रहा था कि द्रव्य है और अमूर्त है इस कारण आत्मा सर्वव्यापक है। इसमे अमूत शब्दपर बहस चल रही है और बहस चलते-चलते यहाँ तक नौबत आई कि शङ्काकारको अमूर्त सिद्ध करना भी कठिन हो गया। आत्मा अमूर्त है, इसका अर्थ क्या है ? क्या अव्यापी अर्थात् थोडेसी जगहमे रहने वाले द्रव्य के बराबर रहनेका नाम अमूर्त है ? इस द्वितीय विकल्पकी मीमांसा हो रही है और इसी प्रसङ्ग मे शकाकार द्वारा घटकी तरह आत्मा अमूर्त सिद्ध नही हो पा रहा असर्व गत द्रव्यपरिमाणलक्षण मूर्तत्वके अभावके विकल्पमें जैसे घट अमूर्त नही है इस तरह आत्मा भी अमूर्त नही है, मूल विचारसे तो अमूर्त ठीक सिद्ध होता है कि वह भी देह प्रमाण है, पर देह प्रमाणके नातेसे तो अमूर्त नही कहा गया, लेकिन दार्शनिक पद्धति में तत्काल जो दोष मिले वह दिया जाता है। यहाँ शकाकार कहता है कि आत्मा सर्वगत है, सर्वव्यापी है इसलिए वहाँ अमूतपना तो बन जाता है पर घट आदिकमे अमूर्तपना नही होता। घट मूर्तिक है, क्योकि वह सर्वव्यापक नही। जो सर्वव्यापक हो वही अमूर्त होता है। अब देखिये उत्तरमे आत्माको सर्वव्यापी सिद्ध करनेके लिए तो अमूर्तका हेतु देना पडा कि आत्मा अमूर्त है इस कारण सवव्यापक है और अब आत्मा को अमूर्त सिद्ध करनेके लिए सर्वव्यापक हेतु दे रहे हो कि चूकि आत्मा सर्वव्यापक है इसलिए अमूर्त है, तो ऐसी कठिन परिस्थितिमें यह बतलावो कि आत्माके सर्वगतपना किस तरह सिद्ध है ? क्या अन्य हेतुसे या इस ही हेतुसे ? यदि अन्य हेतुसे कहीं तो उसी हेतुसे आत्माको सर्वव्यापी सिद्ध कर लोगे' फिर यह हेतु देनेकी क्या जरूरत है कि चूँकि आत्मा द्रव्य है और अमूर्त है इस कारण सर्वव्यापी है। यदि कहो कि इस हीं हेतुसे हम आत्माको सर्वगत सिद्ध करेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा। जब आत्मा

सर्वव्यापी सिद्ध हो ले तब तो अमूर्त सिद्ध हो। अमूर्तके मायने मूर्तपना नही होना। मूर्तपनाके मायने अव्यापी द्रव्यके बराबर सम्बंध बाला न होना। ऐसा अमूर्तपना तब सिद्ध हो जब आत्मा सर्वव्यापी सिद्ध हो ले। और आत्मा अमूर्त सिद्ध हो ले तब आत्मा सर्वव्यापी सिद्ध हो इस कारण यह अनुमान करना कि आत्मा सारे जहानमें एक व्यापक है क्योंकि वह द्रव्य है और अमूर्त है।

अमूर्तत्वके अर्थमे दो विकल्प शकाकारके अनुमानमें अभी अमूर्तत्वात् इस ही हेतुको छेडा जा रहा है। अमूर्त है आत्मा, इसका क्या अर्थ करोगे? जिस चीजमे पहिले अ लगा रहता है उसके दो प्रकारके भाव हो जाया करते हैं। जैसे--अमनुष्य, मनुष्य मायने तो मनुष्य और अमनुष्यके दो अर्थ हो जायेंगे मनुष्य नही किन्तु और कुछ, एक तो यह अर्थ हो जाता है और एक यह अर्थ है—मनुष्य नही। इससे आगे और कुछ नही सोचा जा रहा है। अ मायने नही, मनुष्य मायने मनुष्य, अमनुष्य मायने मनुष्य नही अर्थात् मनुष्यका असत्त्व, तुच्छाभाव अर्थात् मनुष्यका निषेध करके उसके एवजमें और कुछ न देखना, इसे कहते है प्रसज्यप्रतिषेध। याने जो बात प्रसङ्गमे थी उसका निषेध कर लिया केवल और अमनुष्यका दूसरा अर्थ यह है कि गाय, बैल, घोडा वगैरह सारी चीजें। याने मनुष्य तो नही किन्तु मनुष्यको छोड कर बाकी सारी चीजें। तो अमूर्तके भी दो अर्थ हैं—अ मायने नही, मूर्त मायने मूर्त, मूर्तिक न होना, इसके आगे और कुछ नही सोचा जा रहा। मूर्तका अत्यन्ताभाव। तो इस विकल्पमे सत् बनानेकी बात हो नही है और एक अमूर्तका अर्थ यह होता—मूर्त नही किन्तु इस प्रकार अन्य कुछ। तो तुम अमूर्तका अर्थ क्या करते हो—क्या प्रसज्य प्रतिषेध अथवा पर्युदास? प्रसज्यप्रतिषेधका अर्थ है कुछ नही, तुच्छ अभाव, मनुष्य नही। पर्युदासका अर्थ है—प्रसक्त तो नही, किन्तु और कुछ। इनमेंसे पहिली बात तो युक्त है नही, याने आत्मा अमूर्त है इसका अर्थ केवल इतना ही लगाना कि मूर्त नही। अर्थात् गाँठमे और कुछ बात नही, कोई सत्त्व नही, किन्तु अभाव।

मूर्तिके तुच्छ अभावरूप अमूर्तत्वका निराकरण यदि मूर्तिके अभावका तुच्छ अभाव अर्थ करते हो अमूर्त कहकर कि मूर्तका तुच्छ अभाव है तो पहिले तो यह जानो कि तुच्छ अभाव कोई चीज नही होती। काल्पनिक अथवा मात्र कहनेमें आरहा है जैसे गधेके सीग तुच्छ अभाव है, कुछ चीज नही है। गधेके सींगका अभाव बताओ, यह तुच्छ अभाव है ना! सींग अगर गधेके हुआ करते होते तो फिर न होनेसे मना करते! तो उसके एवजमे कोई चीज बताई जा सकती थी। अब जो चीज ही नहीं है उसका नाम लेकर उसका अभाव कहना इसका तो कुछ अर्थ ही नही। जैसे कहा—घडीका अभाव। कमरेमे देखा तो घडी मिली नही, तो कहा कि हम अच्छी तरह घडी का अभाव देख आये! अच्छा, घड़ीका अभाव आप किस नजरसे देख आये? अजी, बिल्कुल खास चक्षु इन्द्रियसे देखकर आये? अब चक्षु इन्द्रियसे घडीका अभाव दीख

बखा । यो घड़ी हुआ करती है कुछ, यह आया ज्ञानमें और उसके अभावसे विशिष्ट हमने सारा कमरा, जमीन, फर्श, बेन्च आदिक सब देख डाले, यह उसका अर्थ हुआ। घटाभाव विशिष्ट पृथ्वीका अर्थ है कि घट नही है, पर घट कोई चीज होती है तव उसके न होनेपर उसके एवजमे कुछ भाव वताया जाता है, पर जो चीज नही है उसको क्या वताया जाय ? और बताया जायगा तो पशु दोस आ जायगा। सींग तो कुछ होते ही हैं, अब उनको हम गधेपर देखना चाह रहे तो सींगके अभावसे विशिष्ट जो गधेका सिर है वहाँ ही सींगका अभाव है। तुच्छाभाव तो कुछ चीज नही है। तुच्छाभाव मान भी लें तो उसको जाननेका कोई उपाय नही है इसलिए अज्ञाता सिद्ध हेतु हो गया यह कि आत्मा सर्वव्यापक है अमूर्त होनेसे। तो अमूर्तका अर्थ क्या है ? मूर्तका तुच्छाभाव। उसका हम ज्ञान नही कर पाते तो हेतु अज्ञात रहा ना। तो अज्ञात रहनेसे हेतु असिद्ध हो गया अन्यथा बतलावो कि मूर्तके अभावके तुच्छाभावको जाननेका उपाय क्या है ? देखिये ये सब बातें अपनी चल रही हैं। आत्माके बारेमे यह पूछा जा रहा है वैशेषिकसे शकाकारसे कि तुम जो आत्माको अमूर्त कहते हो तो उस अमूर्तका अर्थ क्या है ?

अमूर्तत्वकी यथार्थ परिचयका महत्त्व – इस प्रसगमें पहिले स्याद्वाद सम्वन्धित अमूर्तका अर्थ कुछ समझ लीजिए। अमूर्तका अर्थ है रूप, रस, गध, स्पर्श आदिकका न होना, और मूर्तका अर्थ है रूप, रस, गध, स्पर्श आदिकका होना। तो रूप, रस, गध, स्पर्शका न होना यह अमूर्तपना तुच्छाभाव रूप नही है। किन्तु चैतन्य स्वरूपात्मक जो प्रदेश है वह प्रदेश है मूर्तका अभाव रूप। एक अभाव दूसरेके सद्भावरूप हुआ करता है। उस अमूर्तको हम पहिले अपने ज्ञानसे विवेकसे जान सकते हैं और आत्माको जाननेके लिए दो बातें खास महत्त्वकी सहयोगी हैं एक अमूर्तता, दूसरी–प्रतिभास मात्र। आत्माका इन दो रूपोंसे भीतर ग्रहणमे ले ज्ञान द्वारा कि मैं अमूर्त हू, रूप, रस, गध, स्पर्श वाला नही हू। इस मूर्तनासे रहित, किन्तु वास्तविक जिसमें कि जाननेकी अर्थ क्रिया हो रही है, बहुत बडा काम चल रहा है जाननेका। जानन बिना एक समय भी नही ठहरता। ऐसा जाननका आधारभूत एक परमार्थ सत् पदार्थ जिसमें रूप, रस, गध, स्पर्श नही ऐसा मैं अमूर्त आत्मा हू। यो अमूर्तपनेका ज्ञान करते हुए मोह अहकार ये सब झझट समाप्त होते हैं। देखिये अमूर्तपनेका परिचय एक बहुत महत्त्वका परिचय है। यह मैं अमूर्त हूँ इसमे रूप रस, गध, स्पर्श शब्द कुछ नही है। इसे कोई स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु श्रोत्रसे जान सकता नही। अमूर्त हूँ। जब इस मुक्त अमूर्त आत्माका किसी दूसरेसे भिडाव भी नही बन सकता लगाव भी नही बन सकता तब इस लोकमें मेरे अमूर्त आत्माका मेरे ही स्वरूपको छोडकर और क्या रखा है ? आत्माके अमूर्तत्वपर दृष्टि जाने देनेमे अहकार ममकार कैसे ध्वस्त हो जाते हैं कि इस दोषके दूर होनेमे विलम्ब नही लगता।

मूर्त देहसे निराले अमूर्त आत्माका विवेचन—मैं अमूर्त हूँ, देह भी मैं नही रहा । देह मूर्तिक है देहमे जानने देखनेकी कला नही है । देह तो हाड मास आदिक अपवित्र पदार्थोंका पिण्ड है । और, फिर इस अमूर्त मुझ आत्माके चले जानेके बाद इस देहसे कोई रच भी प्यार नही करता । खूब देख डालो—कोई शरीरसे प्रेम करता हो तो बताओ ? प्रेमकी बात तो दूर जाने दो, उस शरीरके पास पहुँचनेका भी साहस मुश्किलसे होता है । क्या हो गया ? वही तो शरीर है जिसे परिजन लोग नहलाते थे, कपडे पहिनाते थे, शैयापर सुलाते थे खाने पीनेकी बहुत पूछ करते थे ? परिचय भी शरीर ही शरीरसे था, आत्माको समझाने वाला कौन था ? क्या हो गया अब कि इस अमूर्त आत्माके निकल जानेके बाद इस शरीरके निकट भी कोई आना नही चाहता, इसे ग्लानिके योग्य समझा, भयावह समझा, विपत्तिका करने वाला समझा । देर तक पडा रहे तो रोगका फैलाने वाला समझा । कितना ही किसीसे प्रेम हो शरीरसे कोई प्रेम नही रखता । यह शरीर मुक्त अमूर्त आत्माका कुछ भी नही लगता ।

आत्माकी व्यापकतापर विचार—देखिये ! इस प्रसङ्गमे भी मोटे रूपसे यह समझ लीजिए कि आत्मा तो सर्वव्यापक है फिर मरण किसका ? जहाँ शरीर है वहाँ आत्मा रह तो रहा ही है, मरण किस चीजका नाम है ? देहप्रमाण आत्मा जब कभी आयुके क्षयमे देहको छोडकर चला जाता है उसको मरण कहते हैं, जिसे कुछ विद्वान् दार्शनिक लोग आत्माको सर्वव्यापक कहते हैं, उसे इस विधिसे देखो कि हम आप सब आत्माओमे जो स्वभाव है, स्वरूप है, चैतन्य है उसको निरखिये ! और केवल चैतन्यस्वरूप स्वरूपको ही देखते रहिये ! उस निरखनमे न तो आपका व्यक्तित्व रहेगा और न किसी अन्यका व्यक्तित्व रहेगा । एक चैतन्यस्वरूप ही दृष्टिगत होगा । तब वह व्यापक रहा कि न रहा ? जिसकी कुछ खबर ही नहीं हो सकती कि कितना व्यापक रहा ? जिसकी कुछ खबर ही नही हो सकती कि कितना व्यापक ! केवल चैतन्यस्वरूपको दृष्टिमे रखकर जो भाव बनता है, जो दर्शन होता है, केवल चैतन्य ज्योतिके उस दर्शनमे यह खबर नही है । उसकी दृष्टिमे तो चैतन्यरस ऐसा लबालब भरा पडा है कि वह तो व्यापक ही है । अव्यापक कहनेमें दोष है, क्योकि उसमे सीमा पायी जाती है । व्यापक कहनेमे हमे सीमाकी सुध लेनेकी आवश्यकता ही नहीं है । यो समाधि भावमें रहने वाले योगी ज्ञानी सम्यग्दृष्टियोंकी समझमें व्यापक है चित्स्वभाव, किन्तु उसे साधारण जनोंके प्रति सर्वथा आत्मा सर्वव्यापक है ऐसा कह दिया जाय प्रसिद्ध तो फल इसका यह होता कि जैसे लोग घट पट आदिक पदार्थोंको देखते हैं, इस तरह आत्माको भी देखकर व्यापक मानना चाहते हैं, तो आप समझ लीजिये कि अपने आपको अमूर्त सोचनेका कितना शान्तिप्रद परिणाम निकलता है ।

अमूर्तत्वकी झलकसे अनुभवमे प्रगति—मैं अमूर्त हू, इन्द्रियका व्यापार

बन्द किया, चक्षु इन्द्रियको संयत किया, बन्द किया, अन्य सब इन्द्रियोंकी रोक-थाम की और अन्त निरखा अमूर्त। किसीसे छुवा भी नही जाता, किसीसे मिला भी नही जाता, कोई उसमे पहिचान भी नही डाल सकता कि इन आत्माओंमेंसे यह आत्मा है मेरा। ऐसा सर्वसाधारण ज्ञानदर्शनसामान्यात्मक चैतन्यस्वरूप अमूर्त आत्मा हूँ इसका कहाँ सम्बन्ध है? कहाँ घर है? उसका विहार तो विकारदशामें तीन लोकमे होना। घर कहाँ चिपटेगा? मुक्त होऊँगा तो ज्ञानबलसे तीन लोकका अधिपति होऊँगा और तब सब ज्ञेयमात्र रहेगा। घर कुटुम्बका जो स्नेह है लगाव है बन्धन है, यही सारी ओट है, जिससे इस प्रभुके दर्शन नही होते, इसके लिए कि हमे अपने उस अमूर्त प्रभु स्वरूपके दर्शन हो जायें बडा पुरुषार्थ करना है, बहुत अभ्यास करना है, बहुत लगाव रखना है स्वभावमे, उपयोगको अधिकाधिक बसाना है स्वरूपमें, तब परमात्मपदका विकास होगा, सदाके लिए हम सुखी हो जायेंगे।

ज्ञानसत्सङ्गकी अत्यावश्यकता यहाँ थोडी थोडी देरको कल्पित सुखी होनेके लिए विषयप्रसगोमे अथवा पौद्गलिक ढेरके साधनोमें लगें तो इसका फल क्या है? न ये रहेंगे न हम आबाद रह सकते हैं। ये बाह्य समागम भी न रह सकेंगे और हम भी बरबाद हो जायेंगे, यह स्थिति है। तथ्यभूत अन्तस्तत्त्वके रुचिया ज्ञानी लोकमें विरले पाये जाते हैं, पर हम जब बहुत सुगम पाये जाने वाले मोहियोपे अधिक बसते हैं तो उस विकल्प कलङ्कके कारण आत्मासे लगाव रखनेकी हमारी प्रवृत्ति नही बन पाती। इसके लिये उन विरले ज्ञानी सतजनोंका अथवा परमात्मस्वरूपका परमात्म-स्वरूपके प्रति जिनप्रतिमा आदिकका स्वाध्यायका हमे आलम्बन अधिक लेना है, तब हमारा यह परमार्थ वास्तविक अन्तःप्रमाण प्रभुदर्शन दे सकेगा, इन बाह्य पदार्थों का लगाव हट सकेगा। यहाँ हम आप लोगोंका मूर्ख पर मजाक करने वाला भी कोई नही मिल रहा। मिले कैसे? जब सभी उस परतत्त्वमे वैभवमें रुचि कर रहे है तो फिर मजाक करने वाला कौन? पर मजाकके योग्य हैं ये बहुत क्योंकि जड कुछ नही, सार कुछ नही, तत्त्व कुछ नही, पर उपयोगने विकल्पमे वही सारी माया, वही सारा लोक, वही सारी मायारूप इस सब कुछ नजर आ रहे हैं। इस अध्यात्मकी जब तक प्रधानता नही होती, इसके रुचिया लोग जब तक प्राय न बन जायेंगे तब तक देशमें भी शान्ति नही रह सकती। प्रशान्त वातावरण रहेगा। तो अपने आपको अमूर्तरूपमे निरखनेका कितना जबरदस्त सुखमय (?) सामर्थ्य प्रभाव पडता है, एक झलकमे एक झटकमे सबसे छुटकर दृष्टिमे तो लें कि यह मैं अमूर्त हूँ।

चित्स्वरूपमे उपयोगकी समाईका उद्यमन इस अमूर्त अन्तस्तत्त्वके परि-चयका इतना विशेष महत्त्व है लेकिन इस अमूर्त आत्माको सर्वव्यापकमान लेनेके कारण दृष्टि हमारी उतनी लम्बी बन गयी, व्यग्र हो गई आकाररूपमे बँट गई कि उस चित्स्वरूपका लगाव मिट जाता है सुध हो नही पाती है। एक तो सर्वव्यापिनी दृष्टि

बनानेसे यह हानि है। फिर दूसरी बात हम हम ही में समा जायें, विलीन हो जायें इसका अवसर नही रहता। इसका अवसर तब होता है कि मैं अपने आपको चित्स्वरूप मात्र तकता रहूँ। कितना बड़ा है उसके प्रश्नमे हो न फसूँ केवल मैं चित्स्वरूप हूँ। अब होगा क्या ? यहाँ दो बातें रह गयी उपयोग और चित्स्वरूप। देखिये ! यहाँ भी दो बातें भिन्न–भिन्न नही है। भिन्न–भिन्न हो तो समानेकी बात त्रिकाल भी नही बन सकती। हमारा उपयोग, ज्ञान चित्स्वभावमे समा जाय यह बात कभी न बन सकेगी। क्योकि स्वभाव और उपयोग को भिन्न-भिन्न वस्तु मान लिया गया। जलमे कंकडे कहाँ समाता है ? आप उत्तर देंगे कि जलसे भरे लोटे मे कंकड डाल दिया तो कंकड जलमे समा तो गया। अरे नही समाया। वहा भी कंकड मे जल नहीं, जलमे कंकड नही। खूब परखलो। दो वस्तुवोका कितना ही घनिष्ट मेल हो जाय, पर समाना हो ही नही सकता। आप कहेंगे कि किसी कनस्तरमे खूब राख भरी है और उसमे पानी डाला जाता है तो १०–१२ सेर पानी भी समा जाता है। तो समा जाने दो, इतने पर भी राखमें राख है और पानीमे पानी है। वे दोनो एक दूसरेमे समा नहीं सकते, क्योकि वे दो पिण्ड हैं। यो उपभोग और आत्मस्वभाव दो पदार्थ होते तो स्वभावमे उपयोगके समानेकी बात बन ही नही सकती थी। अतएव चित्स्वभाव व उपयोग भिन्न पदार्थ नही, किन्तु चैतन्य स्वभावकी वृत्ति ही उपयोग है और वह उपयोग बाह्यकी ओर लगा हुआ है। उसे आत्माकी ओर अभिमुख करते हैं तब यह उपयोग स्वभावमें समा जायगा।

स्वरूपमे उपयोगकी समाईका आनन्द —उपयोग स्वभावमे समा जाय, इससे बढ़कर लोकमे कुछ काम ही नही। जैसे अन्य परिवारमे अन्य देशवासियोमे ये मेरे नही हैं, ऐसी बुद्धि बनानेसे हमें उनकी ओरसे कोई क्लेश नही। क्लेश है हमें उनकी ओरसे जिनको हम समझते हैं कि ये मेरे हैं। यदि वह उपयोगकी समाई स्वभावमे आ जाय तो जैसे हम उन गैरोको भिन्न मानकर सुखी हो रहे थे वैसे ही अब सबको भिन्न समझ गए, कुटुम्ब आदिककी भी खबर न रहे किसीके प्रति मेरेपनकी कल्पना न बने, तो उपयोगमे ऐसा समानेकी स्थितिमे संकट क्या रहा ? यह बात जिस किसी भी क्षण प्राप्त होनेको हो तो थोड़ासा और झुकाव लगावो कि एकबार तो झलकमे वह स्थिति हमारी प्राप्त हो जाय। इन सब प्रगतियोके लिए आत्माको अमूर्त चिन्तन करना कितना लाभदायक है ? सोच लीजिये ! एक बहुत बड़ा झटका लगाना है दुनियासे अलग होनेका। मैं अमूर्त हूँ, जिस किसीसे आशा लग रही हो अनेक पुरुषोसे वे अनेक पुरुष आकर उसकी सेवा करें सेवा करके हैरान करें, बोलकर हैरान करें, अपना स्नेह दिखाकर हैरान करें कोई धमकी देकर हैरान करें और जब वह पुरुष यह कहदे कि हमे अब कुछ मतलब नहीं, मैं किसीका कुछ नही हू मैं किसी की कुछ न सुनू गा, तो तत्काल ही देखो उनका सताना मिट गया। तो ये समस्त वैभव सम्पदा आदिक हम आपको सता रहे हैं। जिस कालमे सोचें कि मैं तो अमूर्त

हैं तत्काल उनका सताता समाप्त हो जाता है। ऐसा शङ्काकारने अमूर्त शब्दपर यह विवाद चल रहा कि सर्वव्यापक आत्मा मानने वाले लोग अमूर्त पहिले सिद्ध करदें। मूर्तका अभाव तुच्छाभाव उसके साथ इन्द्रियका कोई सम्बन्ध नही बनता जिससे कि वह जाना जाता है। मूर्तमें तुच्छाभावका ग्रहण करनेका कोई तरीका ही नही होता।

मूर्तिके तुच्छाभावके ग्रहणमें प्रत्यक्षकी अप्रवृत्ति– मूर्तके तुच्छ अभावको अमूर्त कहनेपर यह आपत्ति बतायी जा रही है कि मूर्तका अभाव, तुच्छाभाव किसी प्रमाणसे ज्ञात ही नही होता। प्रत्यक्षसे ज्ञात तो यो नही होता कि प्रत्यक्ष होता है इन्द्रिय और पदार्थमे सन्निकर्षसे उत्पन्न। तो यहाँ पदार्थकी जगह माना है तुच्छाभाव सो तुच्छाभाव मात्र न तो मनका सन्निकर्ष है और न अन्य इन्द्रियका सन्निकर्ष है इस कारण प्रत्यक्षके द्वारा मूर्तिका तुच्छाभाव ज्ञात नही हो सकता। शङ्काकार कहता है कि तुच्छाभावके साथ मनका सन्निकर्ष इस तरह सम्भव है कि देखो मन तो आत्मासे सम्बद्ध है ना, मन और आत्माका सयोग सम्बन्ध माना है और आत्माका विशेषण है मूर्तिका अभाव। तो अब यहाँपर तुच्छाभावके साथ मनका सम्बद्ध विशेषणभाव नाम का सम्बन्ध बन गया, अर्थात् मन तो सम्बद्ध आत्मासे और आत्माका विशेषण है मूर्ति का तुच्छाभाव। तो यो मनके साथ तुच्छाभावका विशेषणके माध्यमसे सम्बन्ध बन गया। समाधानमें कहते हैं कि तुम्हारी बात कुछ कुछ युक्त हो सकती थी जब कि यह तुच्छाभाव आत्माका विशेषण बन जाता, लेकिन तुच्छाभावमे आत्माका विशेषणपना उपपन्न नही है क्योकि विशेषण जो कुछ भी होता है वह विशेष्यमे विशिष्ट ज्ञान करने का कारणभूत हुआ करता है। जैसे दड पुरुषका विशेषण है, जो लाठी लेकर चलता है उस पुरुषका विशेषण दड क्यों हो गया कि दडके कारण यह दडी है यह पुरुष दडे वाला है, इस विशेष बातका ज्ञान बनता है तो विशिष्ट प्रत्ययका हेतु होनसे दड पुरुषमे विशेषण बन गया। पर यह तुच्छाभाव तो विशिष्ट प्रत्ययका कारण ही नही बन सकता, क्योकि तुच्छाभावमे कुछ नही ऐसे अभाव मात्रमे कोई भी शक्ति नही पायी जाती। और अगर शक्ति पायी जाय तुच्छाभावमे तो वह तुच्छाभाव कहाँ रहा। भाव-स्वरूप बन गया। जिस जिसमें शक्ति पायी जाय वह तो भावस्वरूप होता, क्योंकि शक्ति पायी गई, अर्थक्रिया होने लगी। अर्थक्रिया होना ही तो परमार्थसत्का लक्षण है, परमार्थ सद्भूत पदार्थका लक्षण अर्थक्रियाकारिताको छोडकर अन्य कुछ नही हो सकता। कोई यह कहे कि सत्ताके सम्बध होने रूप लक्षण बन जायगा। पर-मार्थ सत्मे सत्ताका सम्बध होता है सो परमार्थ सत्ताका लक्षण हुआ सत्ता सम्बध तो उसका उत्तर सुनिये, सत्ता सम्बधसे सत् होनेकी बात युक्त नही है, क्योंकि सत्ता अलग है, पदार्थ जुदा है और फिर उन दोनोका सम्बध बनता है ये सब हेतुकी बातें हैं, जो स्वय सत् नही है याने असत् है उसमें सत्तासम्बध कैसा ? यदि असत्मे सत्तासम्बध बने तो सारेविशेषण भी सत्सम्बन्धित हो जावें।

विशेष्यमे प्रवृत्तिके लिये विशेषणके ज्ञात होनेकी अनिवार्यता—और भी सुनो ! जो ज्ञात हो वही विशेषण बन सकता है, क्योंकि अज्ञात विशेषण वाली बुद्धि विशेष्यमे प्रवृत्त नही होती । जैसे कहा—नील कमल, तो नील ज्ञात हो तब तो कमलका विशेषण बनाया जाय । विशेषणका ज्ञात होना अनिवार्य है । यहाँ बना रहे हो तुच्छाभावको आत्माका विशेषण, सो ज्ञात तो होना चाहिये ना ! यदि कहो कि ज्ञात है तुच्छाभाव तो इतरेतराश्रय दोष होता है । इस तरह कि आत्मासे सम्बद्ध इन्द्रियके द्वारा, मनके द्वारा मूर्तत्वका अभाव जब ज्ञात सिद्ध होने लगे तो आत्माका विशेषण बने, यह तुच्छाभाव और जब मूर्तत्वका अभावरूप तुच्छाभाव आत्माका विशेषण सिद्ध हो ले तो आत्मसम्बद्ध मनके द्वारा तुच्छाभाव ग्रहण सिद्ध हो । यदि कहो कि आत्मा स्वयमेव असर्वगत द्रव्यके परिमाणके सम्बन्धसे रहित सिद्ध है याने आत्मा अव्यापी द्रव्य परिमाण सम्बन्धसे रहित है । तब तो स्वय ही मान लो आत्मा को सर्वव्यापक । फिर मूर्तत्वका अभाव है, अमूर्त है आदिक विशेषण देनेसे क्या फायदा ? और, यदि कहो कि असर्वगत द्रव्य परिमाणके सम्बन्धसे विकल नही है तो फिर उसका अभाव कहाँ रह सका जिससे कि विशेषण बन जाय ! प्रयोजन यह है कि आत्मामे मूर्तत्वका अभाव तुच्छाभावरूप मानो और इस तुच्छाभावको मूर्तत्वके प्रतिषेधको, प्रसज्यप्रतिषेधको आत्माका विशेषण मानो और आत्माका मनसे है सम्बन्ध, तो इस तरह मनके द्वारा यह तुच्छाभाव जान लिया गया यह बात कहो तो ये सारी बातें अयुक्त हैं ।

आत्मा और तुच्छाभावके साथ विशेषणीभाव सम्बन्धके सम्बद्धता की असिद्धि—और, भी सुनो आत्मा और तुच्छाभावका जो विशेषणी भाव सम्बन्ध माना है तो क्या आत्मा और तुच्छाभावके साथ विशेषणी भाव सम्बन्ध सम्बद्ध है या असम्बद्ध है । यदि कहो कि सम्बद्ध है तो जैसे आत्मामे अमूर्त है इस प्रकारके विशिष्ट विज्ञानका विधान करनेसे आत्माका 'मूर्तत्वका अभाव" विशेषण बन गया तो इस प्रकार विशेषणी भाव भी इस विशिष्ट प्रत्ययका जनक बन गया कि आत्मा विशेष्य है और मूर्तत्वका अभाव विशेषण है तो यो विशेषणी भाव सम्बन्ध भी विशेषण बन गया, समवाय वाला बन गया, क्योंकि गुण और गुणीके सम्बन्धको समवाय कहा है । याने अब यह परम्परा बढ गयी कि आत्माका विशेषण है मूर्तत्वका अभाव, तुच्छाभाव और और इन दोनोमे याने विशेष्य विशेषणोमें है विशेषणी भाव सम्बन्ध सो यो ही विशेष्य विशेषण और विशेषणीभावका भी अब अन्य विशेषण बनेगा क्योंकि आत्माका तुच्छाभावके साथ विशेषणीभाव सम्बन्ध है, इसमें भी विशिष्ट ज्ञान बना तब उसके लिए विशिष्ट ज्ञानका हेतुभूत कोई दूसरा सम्बन्ध मानो यो अनवस्था दोष आता है ।

आत्मा और तुच्छाभावके साथ विशेषणीभावको असम्बद्ध माननेपर अभीष्टकी असिद्धि—यदि कहो कि आत्मा और तुच्छाभावके साथ विशेषणी भाव

सम्बन्ध असम्बद्ध है तो जब असम्बद्ध है विशेषणी भावपना तो विशेषण और विशेष्य रूपसे माने गए आत्मा और तुच्छाभावमे विशेषणी भाव कैसे बन बठेगा। वह विशेषणी भाव सम्बन्ध आत्मा और तुच्छा भावका है यह कैसे मान लिया जाय ? जिससे कि उस आत्मामे विशिष्ट प्रत्ययका प्रादुर्भाव हो या सम्बन्ध हो। बतलावो कि किस विधिसे यह तुमने जाना कि यह विशेषणी भाव आत्मा और तुच्छा भावका है ? यदि कहो कि विशिष्ट प्रत्ययकी उत्पत्ति होनेसे जाना तब तो ईश्वर, काल आकाश आदिक भी विशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्तिमे निमित्त कारण रहे तो वे सब भी आत्माके और तुच्छाभावके विशेषणी भाव बन बैठे। तो जब सम्बन्ध नही मान रहे विशेषणी भावका आत्मा और तुच्छाभावके साथ तो ये सब आपत्तियाँ आती हैं। यह विशेषणी भाव आत्मा और तुच्छाभावका है, इसके जाननेका अब कोई उपाय नही रहा। यदि कहो कि यद्यपि विशेषणी भावका आत्मा और तुच्छाभावके साथ सम्बन्ध नही है तो भी कल्पनासे जाना जाना जाता है कि विशेषणी भाव आत्मा और तुच्छाभावका है। तो समाधानमे कहते हैं कि तो भावका अभाव व समवायी दो पदार्थोंका समवाय भी कल्पनासे हुआ मान लो, तब फिर विशेषणीभावकी कल्पना करना व्यर्थ है। तो यो आत्मामें मूर्तत्वके अभावरूप तुच्छाभावको जाननेका उपाय प्रत्यक्ष नही बन सकता।

मूर्तत्वके तुच्छाभावका अनुमानसे भी अग्रहण—अब प्रत्यक्षसे आत्मामें मूर्तत्वका अभाव जो कि इस विकल्पमे तुच्छाभाव माना है ज्ञात नही हो सकता, तब आत्माके मूर्ताभावको अनुमानसे भी नही जान सकते, क्योंकि जब प्रत्यक्षसे ही कुछ नही जाना गया तो अनुमान कैसे बन सकता है ? कोई बात प्रत्यक्षसे जानो जाय तब अप्रत्यक्ष साध्यकी सिद्धि भी की जा सकेगी। सो जब मूर्तका तुच्छाभाव प्रत्यक्षसे ज्ञात नही तो व्याप्ति ही न बन सकेगी, अनुमान क्या बनेगा ? शङ्काकार कहता है कि लो यह है अनुमान। आत्मा अमूर्त है, इस प्रकारकी बुद्धि भिन्न अभाव निमित्तक होती है तुच्छाभाव निमित्तक होती है, क्योंकि अभाव विशेषण वाल भावविषयक बुद्धि होनेसे जैसे भूतल अघट है, घटरहित है, यह बुद्धि भिन्न अभावनिमित्तक है। समाधान करते हैं कि यह भी असार बात है, क्योंकि तुच्छरूप अभावका विशेषणपना ही सिद्ध नहीं हो रहा। अभाव प्रमाणके विचारके समय अभावके हेतु उदाहरण आदिक सभी खण्डित कर दिये गये हैं इसलिये अभाव विषयक कुछ भी सिद्धि नही हो सकती। तो यों मूर्तत्वका अभाव प्रसज्यप्रतिषेधरूप न बन सका, जिससे कि अमूर्तत्व हेतु देकर आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध कर सको।

असर्वगत द्रव्यपरिमाण सम्बन्धरूप मूर्तत्वके अभावको पर्युदासरूप होनेकी भी असिद्धि—शंकाकार कहता है तब तो फिर अमूर्त शब्दमें मूर्तके अभाव का अर्थ पर्युदास मान लो अर्थात् मूर्तत्वका अभाव याने अन्यके सद्भाव रूप। उत्तरमें कहते हैं कि पर्युदास माननेपर भी इस विकल्पमे बात नहीं बनती, क्योंकि असर्वगत

द्रव्य परिमाण सम्बन्धरूप मूर्तपनेसे अन्य जो हो उसे कहा यहाँ अमूर्त सो उसका अर्थ हुआ सर्वगत द्रव्यके परिमाणमे, परममहत्त्वमे सम्बन्ध होना सो यह किसी भी प्रमाण स सिद्ध नही है, याने असर्वगत द्रव्यके परिमाण होना ऐसा अमूर्तपना किसी भी परमाणसे सिद्ध नही है इस कारण आपका हेतु असिद्ध है और यह अनुमान फिर इस हेतुसे बन ही नही सकता कि आत्मा सर्वगत है क्योकि अमूर्त होनेसे।

आत्माको सर्वगत सिद्ध करनेके लिये शकाकारका अन्तिम अनुमान शकाकार कहता है कि आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करने वाला अब हमारा आखिरी एक अनुमान और सुन लीजिएगा। आत्मा व्यापक है, क्योकि वह मन नही है और अस्पर्शवान द्रव्य है। यह आत्मा स्पर्शरहित द्रव्य है। जिसका स्पर्श न हो सके, जिस मे स्पर्शगुण नही है ऐसा तो है यह द्रव्य और मन है नही अत आत्मा सर्वगत है। 'केवल स्पर्श रहित द्रव्य होनेसे" इतना ही कहते तो मनके साथ व्यभिचार होता था कि स्पर्शरहित द्रव्य तो मन भी है किंतु वह व्यापक नही है इस लिए हेतुमे यह कहा है कि जो मन तो है नही और स्पर्शरहित द्रव्य है ऐसा यह आत्मा है इस कारण व्यापक है आकाशकी तरह। जैसे कि आकाश अस्पर्शवान द्रव्य है। उसमे स्पर्श नही और द्रव्य है ही तो देखो, वह व्यापक हुआ ना! तो इसी प्रकार आत्मा भी अस्पर्शवान द्रव्य होनेसे व्यापक हो जायगा।

शकाकारके हेतुमे कथित अस्पर्शवत् शब्दके अर्थकी असिद्धि—उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि यहाँ भी स्पर्श वाला नही ऐसा द्रव्य है आत्मा इस कथनमे जो अस्पर्शवान् शब्द कहा है तो जिसमे अ लगा है, न का प्रयोग है उसके तो दो अर्थ होगे ना प्रसज्यप्रतिषेध और पर्युदास। स्पर्शवाला नही क्या इसका इतना ही मतलब है कि 'नही है' तुच्छाभाव, या यह मतलब है कि स्पर्श वाला तो नही, किन्तु है कुछ और। और प्रसज्यरूप कहोगे तो जैसे अमूर्तमे प्रसज्यके प्रतिषेधका निराकरण किया है वही निराकरण यहाँ बनेगा। पर्युदास कहोगे तो अमूर्तके पर्युदास अर्थमें जो दोष दिया था वे दोष यहा आयेंगे, इस कारण तुम्हारा यह हेतु ही सिद्ध नही होता। फिर उससे तुम आत्माको व्यापक क्या सिद्ध करोगे?

शङ्काकारके कथित अस्पर्शवद्द्रव्यत्व हेतुमे अनेकान्तिकताका दोष—अब दूसरी बात देखिये! आपका हेतु सदिग्ध अनेकान्तिक है अर्थात् जो अनुमान बनाया जाय उसमे जो हेतु दिया जाय वह हेतु अगर उल्टी ही बात सिद्ध करे, तब तो रहता है वह विरुद्ध और हेतु उलटा भी सिद्ध करे, सीधा भी सिद्ध करे तो उसे कहते हैं सदिग्ध अनकान्तिक। शङ्काकारका अनुमान यह है कि आत्मा सर्वव्यापक है क्योकि वह अस्पर्शवान द्रव्य है, याने स्पर्शवान नही है और फिर द्रव्य है। तो देखिये! अस्पर्शवान द्रव्यपन आकाशमे भी है और आकाश व्यापी है, यहाँ तो सही बात घट

जायगी कि जो अस्पर्शवान द्रव्य होता है वह व्यापक ही होता है। मगर मन ऐसा है कि अस्पर्शवान द्रव्य तो है, मनका भी स्पर्श नही होता और द्रव्य है लेकिन वह व्यापी नही है आकाश की तरह सर्वव्यापक मन नही माना गया। मन तो अणुप्रमाण छोटा है, तो अब यह सदेह हो जाता है कि आत्मामें जो अस्पर्शवान द्रव्यपन पाया जा रहा है वह क्या आकाशकी भाति व्यापित्वको सिद्ध करता है या मनकी भाँति अव्यापित्व को सिद्ध करता है। अब हेतु सीधी और उल्टी दोनो बातोकी सिद्धि करनेमे सदेह डाल रहा है। शङ्काकार कहता है कि सदेहकी इसमे क्या बात है ? हमने तो पहिले ही कह दिया कि मन तो हो नही और अस्पर्शवान द्रव्य हो, तो कहते हैं कि कहनेसे क्या होता ? जब अनेकान्तिक दोष आ रहा था उससे बचनेके लिए ही तो तुमने कह दिया। कोई कुछ बात कहे और उस बातका जिस एकमे दोष आये तो उसको कहदे कि यह न होकर फिर यह बात हो, तो यह तो कपटभरी बात है, दोष बचानेकी बात है, इससे दोष तो न बच जायगा। मानलो, कहोगे कि मनसे अन्यपना जिसमे हो और अस्पर्शवान द्रव्य हो वह हेतु बनाया याने मनमे अन्यत्व विशिष्ट अस्पर्शवानको हेतु कहा, वह मनमे पाया नही जाता। मन न हो और अस्पर्शवान द्रव्य हो इतना पूरा हेतु कहा है और वह पूरा हेतु मनमे नही पाया जाता, इसलिए सदेहकी क्या गु जाइश सा समाधानमे पूछते हैं कि यदि यह बात है कि मनसे अन्यत्व विशिष्ट अस्पर्शवान द्रव्य हो तो व्यापक सिद्ध होगा तब तो निश्चित अनेकान्त होगया। पहिले तो हम सदिग्ध अनेकान्तिक कहते थे कि अस्पर्शवान द्रव्यपना होनेपर क्या आत्मा आकाशकी तरह व्यापी सिद्ध हो जाय या मनकी तरह अव्यापी सिद्ध हो जाय। पहिले तो सीधी और उल्टी सिद्धि होनेका सदेह बताते थे। अब तो बिल्कुल उल्टा निश्चित अनेकान्त हो गया, क्योकि मनसे व्यभिचार आता था, इसीलिए तुम मनको हटानेकी बात कह रहे हो कि मन तो न हो और अस्पर्शवान द्रव्य हो तो तुम्हारे ही कहनेसे यह सिद्ध होगया कि मनमे दोष आता है। जब तुम कह रहे हो कि मन तो हो नही और अस्पर्शवान द्रव्य हो, तो यहाँ निश्चित् अनेकान्तिक दोष आया, तो आप आत्माको व्यापक नही मान सकते। किसी भी प्रमाणसे आत्मा सर्वगतपनेकी सिद्धि नही होती इस कारण जैसे कि सब लोगोकी प्रतीतिमे आ रहा है सीधा स्पष्ट जान रहे हैं, मानलो कि आत्मा असर्वगत है, जिसको जिस प्रकारका देह मिला है वह आत्मा अपने देहके परिमाणमे रहता है यह प्रतीतिसिद्ध बात है। आत्मामे जो सुख दुःख आदिक उत्पन्न होते हैं वे आत्म प्रदेशमे ही परिसमाप्त हैं प्रदेशमे बाहर नहीं हुआ करते। तो स्वसम्वेदनसिद्ध बात है कि आत्मा अव्यापी है।

शरीरको अव्यापी माननेपर शकाकार द्वारा मुक्त्युपायके अभावका उपालम्भ—अब शकाकार कहता है कि आत्माको अव्यापी माननेपर कि थोडी जगह ही रहता है, आत्मा सर्वगत नही है ऐसा असर्वगत माननेपर तो बहुत बडा दोष आयगा। क्या दोष आयगा ? सो सुनो ! (शकाकार कह रहा है) आत्मा तो मान

लिया गया अव्यापी, थोडे परिमाण वाला, थोडी जगह घेरने वाला। अब उस आत्मा के साथ जिन शरीर परमाणुवोका सयोग बनाना है वे शरीरपरमाणु हैं बहुत दूर दूर, दूसरी दिशामे, दूसरे देशमे रहनेवाले परमाणुवोके साथ अब इस आत्माका एक साथ सयोग तो नही हो सकता। यदि आत्माको सवगत मानते, पूरे आकाशमे फैला हुआ है तो जहाँ भी शरीरके रचने वाले परमाणु होते उनका आत्मामे सयोग तो बनता ही। अब मान लिया आत्माको अव्यापी थोडेसे क्षेत्रमे रहने वाला तो अब उस आत्माके साथ भिन्न दशा और देशमे रहने वाले परमाणुवोके साथ एक साथ सयोग नही हो सकता। और, जब शरीरारम्भक परमाणुवोके साथ आत्माका सयोग न हो सका तो उन परमाणुवोमे आद्य कर्म न बन सकेगा। आद्य कर्म कहते हैं—शरीरको रचने वाले परमाणुवोका शरीरके उत्पन्न होनेकी जगहपर गमन करना। जिस जगह पर शरीर रचा जाना है उस जगह शरीरारम्भक परमाणुवोका गमन होना इसे कहते हैं आद्य कर्म याने पहिला काम। शरीर बननेके लिए पहिला काम यह होता है कि शरीरको रचने वाले परमाणुवोका गमन हो। सो अब आत्माको तो मान लिया तुमने अव्यापी। उसके साथ दूर देशके रहने वाले शरीर परमाणुवोका सयोग है नहीं, तो सयोगके बिना वह शरीर अणु कैसे खिचकर शरीरकी उत्पत्तिकी जगहपर आ सकेगा, तो जब उन शरीर आरम्भक परमाणुवोमें आद्य कर्म न हो सका तो अन्त्य सयोग भी नही हो सकता। अर्थात् शरीरको रचना हो रही है और हो गयी, ऐसा व्यपदेश जिस सयोगके बाद होगा उस सयोगका नाम है अन्तिम सयोग कि अब शरीर पूरा उत्पन्न हो गया। तो जब उन शरीर आरम्भक परमाणुवोमे गमन ही नही हो सक रहा तब फिर शरीरका कार्य कैसे बने ? अतिम सयोग कैसे बनेगा ? और जब अन्तिम सयोग न बन सका तो तन्निमित्तक शरीरकी उत्पत्ति कैसे होगी ? न तो शरीरके रचने वाले परमाणु आ सके, न उनका सयोग हो सका तो फिर शरीर बनेगा ही कैसे ? और, जब शरीर नही है आत्माके पास तो आत्माका और शरीरका सम्बन्ध ही न रहा। और जब आत्माका शरीरसे सम्बन्ध न रहा तो इसके मायने है कि सदा आत्मा मुक्त है। फिर तो मुक्तिका कोई उपाय करनेकी जरूरत भी न रही। बिना उपायके सहज ही आत्माका मोक्ष मान लेना चाहिए। इससे इतने बडे दोषको टालनेके लिये तुम्हें सीधा मान लेना चाहिए कि आत्मा सर्वव्यापक है। आत्मा जब सर्वव्यापक है तो जहाँ से शरीरके रचने वाले परमाणु आयेंगे वहाँ भी आत्मा है, सो उन परमाणुवोका आत्माके साथ सयोग है। उस सयोगकी वजहसे वे परमाणु खिच करके शरीर बनने की जगहमे आ जायेंगे। फिर अतिम सयोग भी बन जायगा, शरीर भी बन जायगा, सम्बन्ध भी हो जायगा, फिर उपायकी जरूरत भी महसूस होगी कि किस तरहसे मुक्ति बने ? तो आत्माको अव्यापी माननेपर यह दोष आता है कि तब तो फिर आत्माका सदा ही मोक्ष अनुपाय सिद्ध हो जायगा।

आत्माको अव्यापी माननेपर मुक्त्युपायके सिद्ध हो सकनेका समाधान

उक्त शकाके सम धानमें कहते हैं कि जो तुम दोष दे रहे हो कि फिर आत्माका सदा ही मोक्ष हो जायगा। गा यह दोष तब लगे जब कि यह नियम हो कि जो पदार्थ जिससे सयुक्त हो वह पदार्थ उसके प्रति ही गमन करता है, पर यह नियम नही है। दूर दूर भी चीज हो, फिर भी यथायोग्य जिसका जिसके प्रति गमन होनेकी बात है गमन हो जाता है। जैसे चुम्बक पत्थर लोहेसे कितना ही दूर है, लेकिन लोहेका चुम्बकके प्रति उत्सर्पण हो जाया करता है। तब यह तो नियम न रहा कि जो चीज जिसके पास जाय वह उससे सयुक्त हो तब हो जाय। इस कारण यह उपालम्भ देना कि आत्माको सर्वव्यापक न मानोगे तो इस तरह मोक्षका उपाय रचनेका अभाव हो जायगा। यह उपालम्भ अयुक्त है।

आत्माको सर्वगत माननेपर शरीरपरिमाणके अनियतत्त्व और अपटेपनका प्रसङ्ग—शकाकारको अब यह बताया जा रहा है कि आत्माको अव्यापी माननेपर यह सामने आपत्ति खडी हो जाती है कि आत्माको तो मान लिया सर्वव्यापक, पूरे आकाशमे फैला हुआ तो उस आत्माका तो सारे आकाशमें रहने वाले शरीर आरम्भक (शरीरके रचने वाले) परमाणुवोके साथ सम्बन्ध है, तब आत्मा पूर्ण व्यापक है तो परमाणु और कहाँ रहेंगे? जिन परमाणुवोसे शरीर रचा जायगा, जहाँ है वही आत्मा है। तो आत्माके साथ शरीरारम्भक परमाणुवोका एक साथ सम्बन्ध है, उसमे क्रमकी बात नही रही क्योकि आत्मा है पूरा फैला हुआ और शरीर के रचने वाले परमाणु सदा हैं, वही हैं, तब वे परमाणु शरीरकी रचनाके लिए आ रहे हैं तो सारे ही खिचकर आ जायें तब फिर नही मालूम कितना बडा शरीर बन जायगा। अभी तो विश्वास है कि मनुष्यका शरीर बनता है तो पाच या सवा साढ़े पाच फिटका बनता है फिर पता नही कि गर्भमे हो, पेटमें ही बच्चेका शरीर कहीं हाथी जैसा न बन बैठे! तब ससारकी विडम्बना हो जायगी, मनुष्योकी परख भी न हो सकेगी और फिर बनते-बनते आकाश बराबर बन जाय, पर आकाश बराबर न बने इसके लिये तो कह सकते हो कि वे परमाणु भिच-भिचकर लोहपिण्डवत् कुछ थोडीसी जगहमें आ सकते है, लेकिन यहा तो विडम्बना हो जायगी कि मनुष्यका शरीर कहीं हाथी जैसा न बन बठे! जैसे लोग इस विकल्पमें रहते कि इसके बच्चा होगा या बच्ची होगी? कोई ऐसा भी विकल्प कर सकता कि कही न बच्चा हो न बच्ची हो नपु सक ही कहो हो जाय, पर कोई ऐसा सदेह ता नहो कर बैठता कि पता नहीं मनुष्यो जैसा बच्चा होगा या हाथी जैसा? यदि ऐसा होने लगे तो फिर रचनाका कोई परिमाण ही अदाजमे न आ सकेगा। और, अब आत्मा अव्यापी है तो उसका जैसा अदृष्ट है उसके अनुसार शरीरारम्भक परमाणुका सयोग होगा और उस जातिके अनुसार जिस प्रकार जाति नामकर्मका उदय है, शरीर नामकर्मका उदय है उसके अनुसार रचना बन जायगी।

अदृष्टापेक्ष होकर शरीरारम्भक अणुओमे आद्यकर्म होनेसे विडम्बना के अभवका शङ्काकार द्वारा कथन और उसके समाधानमे तीन विकल्पोमें अदृष्टापेक्षाके अर्थकी पृच्छा—शकाकार कहता है कि आत्माको सर्वव्यापक मानने पर सभी जगह शरीरके रचने वाले परमाणुवोका सयोग होनेसे न जाने कितना वडा शरीर वन वैठे ऐसा सन्देह मत करो, ऐसा डर भी मत मानो, क्योकि उन परमाणुवो का सयोग आत्माके भाग्यकी अपेक्षा रखकर हीं अपनेमे सयोगी परमाणुवोका आद्य कर्म रचेंगे अर्थात् आत्माका यद्यपि समस्त अणुवोके साथ सयोग है फिर भी भाग्य जैसा होगा, अदृष्ट जैसा होगा उसकी अपेक्षासे ही अपने सयोगी परमाणुवोमेसे कुछ परमाणु आयेंगे, सब न आयेंगे इस कारण शरीर न जाने कितना बडा बन वैठे ? यह सदेह यह डर मत करो। तो समाधानमे पूछते है कि आत्मा और परमाणुवोका सयोग अदृष्टकी अपेक्षा रखकर आद्यकर्म रचते हैं अर्थात् परमाणुवोका गमन कराते हैं जहाँ कि शरीर बनना है वहाँपर, तो उसमे जो अदृष्टकी अपेक्षाकी वात कह रहे हो सो उसका अर्थ क्या है यह वतलावो ? आत्मा और शरीरारम्भक परमाणुवोके सयोग मे भाग्यकी अपेक्षा की, इस कारणसे उस सयोगने कुछ परमाणुवोको तो भेजा जहाँ शरीर वनता है कुछ न भेजा तो अदृष्टकी अपेक्षाका अर्थ क्या है ? भाग्यकी अपेक्षा करनेका क्या यह मतलव है कि एकार्थ समवाय होना अर्थात् एकार्थ आत्मा याने जिस आत्मामे समस्त परमाणुवोका सयोग है उस ही आत्मामे भाग्यका सम्बध होता इसे कहते हैं एकार्थसमवाय। जैसे रूप और रसका एकार्थसमवाय है, याने जिस फल मे रूप रह रहा है उस ही फलमे रस रहा है तो रूप और रस इन दोनोका आधार एक है, इसको कहेंगे एकार्थसमवाय। तो क्या अदृष्टकी अपेक्षा करनेका यह अर्थ है कि आत्माका और परमाणुवोका सयोग तो पहिलेसे ही है, अब उसी आत्म मे अदृष्ट आ जाय भाग्यका सम्बध और आ जाय तो एकार्थसमवाव हो जायगा, और तव कुछ परमाणु शरीर रचे जानेकी जगह पर आ जायेंगे। क्या अदृष्ट आत्माका यह अथ है ? अथवा आत्मा सर्वव्यापी है, इसी कारण समस्त शरीर परमाणुवोका सयोग एक साथ है, अब अदृष्ट जरा उपकार और करदे, भाग्य थोडासा कुछ इस सयोगका उपकार करदे, कोई विशेषता लादे तव फिर ये परमाणु उस शरीर रचे जानेकी जगह पर पहुँच जायेंगे। क्या अदृष्टापेक्षा अर्थ उपकार है या फिर एक साथ ही आद्य-कर्मको उत्पन्न करना यह अदृष्टापेक्षा अर्थ है। अर्थात् आत्मा है सर्वव्यापक, और इसी कारण जिन परमाणुवोसे शरीर रचा जायगा उन सब परमाणुवोके साथ आत्माका है एक साथ सयोग आद्यकर्मको उत्पन्न करना है याने जिन परमाणुमे शरीर बनता है उन परमाणुवोका गमन कराता है—जावो तुम शरीर बनो। तो सयोगने उन परमाणुवोमे आद्यक्रिया करायी, सो केवल उस सयोगने नही करायी, किन्तु साथ ही साथ भाग्यने भी उन परमाणुओमे क्रिया करायी, अर्थात् सयोगके साथ भाग्यने उन परमाणुवोका गमन कराया कि तुम जाओ और शरीर वन जावो इन तीन प्रकारके विकल्पो

उक्त शकाके सम धानमें कहते हैं कि जो तुम दोष दे रहे हो कि फिर आत्माका सदा हो मोक्ष हो जायगा। गा यह दोष तब लगे जब कि यह नियम हो कि जो पदार्थ जिससे सयुक्त हो वह पदार्थ उसके प्रति ही गमन करता है, पर यह नियम नही है। दूर दूर भी चीज हो, फिर भी यथायोग्य जिसका जिसके प्रति गमन होनेकी बात है गमन हो जाता है। जैसे चुम्बक पत्थर लोहेसे कितना ही दूर है, लेकिन लोहेका चुम्बकके प्रति उत्सर्पण हो जाया करता है। तब यह तो नियम न रहा कि जो चीज जिसके पास जाय वह उससे सयुक्त हो तब हो जाय। इस कारण यह उपालम्भ देना कि आत्माको सर्वव्यापक न मानोगे तो इस तरह मोक्षका उपाय रचनेका अभाव हो जायगा। यह उपालम्भ अयुक्त है।

आत्माको सर्वगत माननेपर शरीरपरिमाणके अनियतत्त्व और अपटेपनका प्रसङ्ग—शकाकारको अब यह बताया जा रहा है कि आत्माको अव्यापी माननेपर यह सामने आपत्ति खडी हो जाती है कि आत्माको तो मान लिया सर्वव्यापक, पूरे आकाशमे फैला हुआ तो उस आत्माका तो सारे आकाशमे रहने वाले शरीर आरम्भक (शरीरके रचने वाले) परमाणुवोके साथ सम्बन्ध है, तब आत्मा पूर्ण व्यापक है तो परमाणु और कहाँ रहेंगे? जिन परमाणुवोसे शरीर रचा जायगा, जहाँ है वही आत्मा है। तो आत्माके साथ शरीरारम्भक परमाणुवोका एक साथ सम्बन्ध है, उसमें क्रमकी बात नही रही क्योंकि आत्मा है पूरा फैला हुआ और शरीर के रचने वाले परमाणु सदा हैं, वही हैं, तब वे परमाणु शरीरकी रचनाके लिए आ रहे हैं तो सारे ही खिचकर आ जायें तब फिर नही मालूम कितना बडा शरीर बन जायगा। अभी तो विश्वास है कि मनुष्यका शरीर बनता है तो पाँच या सवा साढ़े पाच फिटका बनता है, फिर पता नही कि गर्भमे ही, पेटमे ही बच्चेका शरीर कहीं हाथी जैसा न बन बैठे! तब ससारकी विडम्बना हो जायगी, मनुष्योकी परख भी न हो सकेगी और फिर बनते-बनते आकाश बराबर बन जाय, पर आकाश बराबर न बने इसके लिये तो कह सकते हो कि वे परमाणु मिच-मिचकर लोहपिण्डवत् कुछ थोडीसी जगहमें आ सकते है, लेकिन यहा तो विडम्बना हो जायगी कि मनुष्यका शरीर कहीं हाथी जैसा न बन बठे! जैसे लोग इस विकल्पमे रहते कि इसके बच्चा होगा या बच्ची होगी? कोई ऐसा भी विकल्प कर सकता कि कही न बच्चा हो न बच्ची हो नपुसक ही कहीं हो जाय, पर कोई ऐसा सदेह तो नही कर बैठता कि पता नही मनुष्यो जैसा बच्चा होगा या हाथी जैसा? यदि ऐसा होने लगे तो फिर रचनाका कोई परिमाण ही अदाजमे न आ सकेगा। और, अब आत्मा अव्यापी है तो उसका जैसा अदृष्ट है उसके अनुसार शरीरारम्भक परमाणुका सयोग होगा और उस जातिके अनुसार जिस प्रकार जाति नामकर्मका उदय है, शरीर नामकर्मका उदय है उसके अनुसार रचना बन जायगी।

अदृष्टापेक्ष होकर शरीरारम्भक अणुओमे आद्यकर्म होनेसे विडम्बना के अभवका शङ्काकार द्वारा कथन और उसके समाधानमे तीन विकल्पोमें अदृष्टापेक्षाके अर्थकी पृच्छा—शकाकार कहता है कि आत्माको सर्वव्यापक मानने पर सभी जगह शरीरके रचने वाले परमाणुवोका सयोग होनेसे न जाने कितना बडा शरीर बन बैठे ऐसा सन्देह मत करो, ऐसा डर भी मत मानो क्योकि उन परमाणुवो का सयोग आत्माके भाग्यकी अपेक्षा रखकर ही अपनेमे सयोगी परमाणुवोका आद्य कर्म रचेंगे अर्थात् आत्माका यद्यपि समस्त अणुवोके साथ सयोग है फिर भी भाग्य जैसा होगा, अदृष्ट जैसा होगा उसकी अपेक्षासे ही अपने सयोगी परमाणुवोमेसे कुछ परमाणु आयेंगे, सब न आयेंगे इस कारण शरीर न जाने कितना बडा बन बैठे ? यह सदेह यह डर मत करो । तो समाधानमे पूछते हैं कि आत्मा और परमाणुवोका सयोग अदृष्टकी अपेक्षा रखकर आद्यकर्म रचते हैं अर्थात् परमाणुवोका गमन कराते हैं जहाँ कि शरीर बनना है वहाँपर, तो उसमे जो अदृष्टकी अपेक्षाकी बात कह रहे हो सो उसका अर्थ क्या है यह बतलावो ? आत्मा और शरीरारम्भक परमाणुवोके सयोग मे भाग्यकी अपेक्षा की, इस कारणसे उस सयोगने कुछ परमाणुवोको तो भेजा जहाँ शरीर बनता है कुछ न भेजा तो अदृष्टकी अपेक्षाका अर्थ क्या है ? भाग्यकी अपेक्षा करनेका क्या यह मतलब है कि एकार्थ समवाय होना अर्थात् एकार्थ आत्मा याने जिस आत्मामें समस्त परमाणुवोका सयोग है उस ही आत्मामे भाग्यका सम्बध होता इसे कहते हैं एकार्थसमवाय । जैसे रूप और रसका एकार्थसमवाय है, याने जिस फल में रूप रह रहा है उस ही फलमे रस रहा है तो रूप और रस इन दोनोका आधार एक है, इसको कहेंगे एकार्थसमवाय । तो क्या अदृष्टकी अपेक्षा करनेका यह अर्थ है कि आत्माका और परमाणुवोका सयोग तो पहिलेसे ही है, अब उसी आत्म मे अदृष्ट आ जाय भाग्यका सम्बध और आ जाय तो एकार्थसमवाव हो जायगा, और तब कुछ परमाणु शरीर रचे जानेकी जगह पर आ जायेंगे । क्या अदृष्ट आत्माका यह अथ है ? अथवा आत्मा सर्वव्यापी है, इसी कारण समस्त शरीर परमाणुवोका सयोग एक साथ है, अब अदृष्ट जरा उपकार और करदे, भाग्य थोडासा कुछ इस सयोगका उपकार करदे, कोई विशेषता लादे तब फिर ये परमाणु उस शरीर रचे जानेकी जगह पर पहुँच जायेंगे । क्या अदृष्टापेक्षा अर्थ उपकार है या फिर एक साथ ही आद्य-कर्मको उत्पन्न करना यह अदृष्टापेक्षा अर्थ है । अर्थात् आत्मा है सर्वव्यापक, और इसी कारण जिन परमाणुवोमे शरीर रचा जायगा उन सब परमाणुवोके साथ आत्माका है एक साथ सयोग आद्यकर्मको उत्पन्न करना है याने जिन परमाणुमे शरीर बनता है उन परमाणुवोका गमन कराता है—जावो तुम शरीर बनो । तो सयोगने उन परमा-णुवोमे आद्यक्रिया करायी, सो केवल उस सयोगने नही करायी, किन्तु साथ ही साथ भाग्यने भी उन परमाणुवोमे क्रिया करायी, अर्थात् सयोगके साथ भाग्यने उन परमा-णुवोका गमन कराया कि तुम जावो और शरीर बन जावो इन तीन प्रकारके विकल्पो

मे से भाग्यकी अपेक्षाका अर्थ क्या है ?

अदृष्टापेक्षाके अर्थके एकार्थसमवाय और उपकार इन दो विकल्पो का निराकरण—यदि कहो कि अदृष्टापेक्षाका एकार्थसमवाय अर्थ है याने जिस ही आत्माका उन परमाणुवोसे सयोग है उस ही आत्मामे भाग्यका सम्बध बन गया, इस कारणसे कुछ परमाणु जायेंगे शरीर बननेके लिए, यह विकल्प अयुक्त है, क्योंकि आत्माके साथ भाग्यका भी सदा सम्बध है और आत्माके साथ सारे विश्वभरके परमाणुवो से भी सदा सम्बध है। तब फिर वह स्थिति तो न आ पायी कि बात यह नहीं हो सकी इसलिए ये परमाणु शरीर बननेके लिए नही गए और ये ही गये ऐसा कहनेका अवकाश ही नही है। तब फिर सारे शरीर परमाणु पहुच जायें और फिर न जाने कैसा कितने परमाणु वाला शरीर बन जाय। यदि कहो कि हम अदृष्टापेक्षा का अर्थ उपकार करेंगे तो यह भी अयुक्त है। जो उपकार करना है उसे तो कहते है, अपेक्ष्य अपेक्षा किये जाने योग्य। जिसकी बाट जोही जाय, और जिसका उपकार बन गया उसे कहते हैं अपेक्षक याने बाट जोहने वाला। तो अब यहाँ दो चीजें हो गई अपेक्ष्य और अपेक्षक। अपेक्षक कौन है ? बाट जोहने वाला कौन है ? आत्मा और शरीर आरम्भक परमाणुवोका सयोग, वह बाट जोह रहा है कि मेरा भाग्य उपकार करदे तो शरीराम्भक कुछ परमाणु जाकर शरीर बन जायेंगे, और अपेक्ष्य हुआ भाग्य। बाट जोही जा रही है भाग्यकी। तो अपेक्ष्य और अपेक्षकमें सम्बन्ध क्या है ? अरे आत्मा और शरीरारम्भक परमाणुका सयोग है एक अलग पदार्थ और अदृष्ट है एक अलग पदार्थ। तो इसका सम्बन्ध न बननेसे उपकार सम्बध नही हो सकता। अन्यथा यह बतलावो ! मान भी लो कि उपकार बना देगा भाग्य आत्मा और शरीरारम्भक अणुके सयोगका, तो भाग्यको जो आत्माणु सयोगका उपकार किया वह उपकार अणुसयोगसे भिन्न है कि अभिन्न ? यदि कहो कि अणु सयोग ही कर दिया यह अर्थ हुआ। अगर कहो कि भिन्न है तो उपकारका भी उससे सम्बन्ध बतावो किस तरह हुआ ? यदि कहो कि अन्य भाग्यसे, तो अनवस्था दोष आता है। यदि कहो कि उस हीसे, तो इतरेतराश्रय दोष आता है। और, फिर जब सयोगकी अपेक्षा करने लगा आत्मा व अणुसयोग कि भाग्यका उपकार जरा हमें मिल जाय तो हमारा व हम शरीर बन जाय, तो आत्मामें फिर नित्यता नही रहती है।

अदृष्टापेक्षाके सहाय्यकर्मजननरूप अर्थका निराकरण और देहरचनाविधिका सक्षिप्त दर्शन—अब यदि तीसरा विकल्प कहोगे कि आत्मा और परमाणुवोका सयोग यह एक पदार्थ है और भाग्य, यह दूसरा पदर्थ है, ये दोनों मिल करके परमाणुवोका गमन कराते हैं कि तुम जावो और शरीर रूप बन जाओ। तो यह बात भी अयुक्त है क्योंकि उन दोनोमे आत्मा और शरीर आरम्भक परमाणुका सयोग एक बात, और भाग्य दूसरी बात, इन दोनोमे एकमें भी अगर शरीररचनाकी सामर्थ्य

है, आद्यकर्म करानेकी सामर्थ्य है तो दूसरेकी अपेक्षा नही वन सकती एकमे ही सामर्थ्य है, फिर दूसरेकी वाट जोहनेकी जरूरत ही क्या है ? यदि कहो कि अपने हेतुसे ही भाग्य और सयोग इन दोनोमे मिल करके आद्य कर्म करनेकी सामर्थ्य आती है तब फिर उसमें ही अपने आपके हेतुसे सयोगकी अपेक्षा किये विना भाग्यको ही क्यो न शरीरके रचनेकी सामर्थ्य वाला मान लो। देखो ! जैसे कोई पुरुष हाथमे चुम्बक पत्थर लिए है और लोहा पडा है दो फिट दूर और लोहा आकर्षित हो जाता है तो हाथके सहारे रहने वाले चुम्बकके द्वारा देखो वह पदार्थ दूसरा जो कि न हाथके आश्रयमे है, न चुम्बकके आश्रयमे है, दूर पडा हुआ है और उसका आकर्षण हो जाता है इसी तरह आत्मा तो है अव्यापी, थोडे प्रदेशमें रहने वाला और उसमे रखा हुआ है भाग्य, क्यो कि भाग्य कर्म मायने और कर्मका एक क्षेत्रावगाह बनता है आत्माके साथ हो इस अव्यापी आत्मासे सम्बद्ध है अदृष्ट और उस अदृष्टमें यह सामर्थ्य है कि बहुत दूर दूरके रहने वाले शरीरारम्भक परमाणुवोंसे सयोग हो सकता है। तब फिर अन्य अन्य प्रकारके हेतु देकर आत्माको व्यापक सिद्ध करना सही नही वनता, वल्कि व्यापक माननेपर यह दोप आता है कि आत्मा यदि सर्वव्यापक है तो सभी जगह है परमाणुवो का सयोग, तो सब आ जायेंगे शरीर बननेके लिए। फिर कुछ निर्णय ही न रहेगा कि मनुष्यका शरीर कितना बने, कीडेका शरीर जितना बने। झट पट बन जायगा। कहो हाथीका शरीर चीटी बन जाय और कहो चीटीका शरीर हाथी बन जाय। इससे सीधी बात मानो कि आत्मा अव्यापी है, उसके साथ भाग्य बना है, ऐसे भाग्यके अनुसार शरीर रचना होती है, शरीर सम्बन्ध होता है, फिर शरीरसे रहित होनेके लिए, मुक्ति पानेके लिए मोक्षका उपाय किया जाता है।

आत्माको सावयव माननेपर शकाकार द्वारा दोपापत्तिका प्रस्ताव— शकाकार कहता है कि शरीर तो अवयवों सहित है अर्थात् भौतिक अनेक भागोका समूह शरीर है इसमे हाथ, पैर, नाक, मुख आदिक अनेक भाग हैं तब ऐसे सावयव शरीरके प्रत्येक अवयवमे प्रवेश करने वाला आत्मा भी सावयव हो जायगा। जैसे कि अनेक हिस्से। पौद्गलिक अनेक स्कधोका पिण्ड सो ही सब यह शरीर है। यो ही जो लोग देहप्रमाण मानते हैं आत्माको उनके मतमें आत्मा भी सावयव हो जायगा और जैसे घटको रचने वाले जो अवयव हैं, कण कण हैं वे समान जातीय कण हैं, इसी प्रकार यहाँ जो आत्मा बनेगा, आयगा तो वह भी समानजातीय अनेक आत्मीय अवयवोका पिण्ड हो जायगा। जैसे घडा बना तो समानजातीय अनेक कणोका समूह ही तो है। देह बना तो समान जातीय याने पौद्गलिक अनेक स्कधोका समूह ही तो है। ऐसे अवयव वाले शरीरमे प्रत्येक अवयवमे आत्मा आयगा तो उतने ही आत्मा बन जायेंगे। तो घट आदिककी तरह समान जातीय अवयवोंके द्वारा आत्माकी रचना बनेगी, उनका जुडाव बनेगा और जब आत्माके समान जातीय अवयवोंके द्वारा आत्मा की रचना बनेगी, उनका जुडाव बनेगा और जब आत्माके समान जातीय अनेक अवयव

हो गए तो इस कारण एक शरीरमे एक जीवमे, एक आत्मामे अनन्त आत्माकी सिद्धि हो गई। (शकाकारके सिद्धान्तमे) आत्माको सावयव माननेपर दोष दिया जा रहा है। आत्मा अव्यापी तभी सिद्ध होगा ना जब कि यह सावयव बने। जो अवयव सहित है, भाग सहित है वही तो कम परिमाणका मिलेगा। तो जब आत्माको सावयव मानोगे तब तो अव्यापी मान सकेंगे और सावयव मानोगे, हिस्से वाला मानोगे तो शरीरके प्रत्येक हिस्सेमे प्रवेश करने वाले आत्मा उतने ही होंगे जितने शरीरके अवयव है। तो जहाँ शरीरके अवयव हुए वहाँ आत्माके अवयव हुए। तो एक ही आत्मामे अनन्त आत्माका प्रसग हो जायगा।

आत्माको सप्रदेश माननेपर शकाकार द्वारा द्वितीय दोषका प्रस्ताव— आत्माको सावयव माननेपर एक दोष तो उपरोक्त है। दूसरा दोष यह है कि अवयवो की क्रिया होनेसे अवयवोका हो जाता है विघात, वियोग। जैसे अनेक हिस्सोसे घडा बना। मिट्टीके अनेक कण मिलकर घडा बना तो वे कण डडा मारो तो बिखर जाते हैं, न मारो तो भी बिखर जाते हैं, बहुत समयके बाद बिखरेंगे। जैसे अवयवकी क्रिया का विभाग हो जाता है तो सयोगका विनाश होनेसे घट नष्ट हो गया इसी प्रकार जब आत्माके अवयव बहुत हो गए तो उन अवयवोमे होगी क्रिया। उससे अवयवोका होगा बिछुडना, तो इस तरह आत्माका विनाश हो जायगा। तो सावयव माननेपर ये आपत्तियाँ आतीं हैं इस कारण आत्माको निरवयव मानो। अवयव कहते हैं हिस्सेको। अनेक हिस्से वाला आत्मा मत मानो। अखण्ड निरवयव निरश आत्मा मानो। और, जब निरश मानोगे तो आत्मा सर्वव्यापक सिद्ध आसानीसे हो जायगा। जैसे आकाश निरश है तो सर्वव्यापक है। परमाणु भी निरश है, लेकिन वह एक प्रदेशी ही है। निरश चीज या तो एक प्रदेश मात्र रहेगी या आकाशवत् सर्वव्यापक रहेगी। तो आत्माको अश वाला हिस्से वाला, अवयव वाला माननेपर दो आपत्तियाँ आती हैं एक तो यह कि शरीरकी भाँति नाना अवयवों वाला आत्मा हुआ तो एक ही आत्मामे अनन्त आत्मा हो गए। जैसे कि एक घडेमे अनगिनते मिट्टी कण है और फिर जब उन अवयवोका सयोग हुआ है तो कभी उन्हींकी क्रियासे उनका वियोग भी होगा। तो घट मिटनेकी तरह आत्मा भी मिट जायगा। इस कारण आत्मा निरवयव ही माना जाय तो सिद्धान्त सही होता है और निरवयव जो होता है वह सर्वव्यापक होता है। अणु मात्र तो आत्माको समाधानकारने भी नहीं माना। तब पारिशेष्य न्यायसे आकाश की तरह महान सिद्ध होगा।

आत्माको सावयव माननेपर समानजातीय भिन्नावयवारब्धत्वके प्रसङ्गकी शङ्काका समाधान— अब उक्त शकाका समाधान करते हैं कि यह जो शकाकार द्वारा कहा जा रहा है, वह बिना परीक्षा किए एकदम जल्दबाजीमें कहा जा रहा है। निष्पक्षता और विवेकके साथ विचार करोगे तो विदित होगा कि सावयव

होनेसे अनेक विभाग वाला हिस्से वाला, प्रदेश वाला होनेसे भिन्न-भिन्न अवयवो द्वारा वह रचा गया होता है, यह नियम नही बनता। औरकी तो बात क्या? अवयवसहित होनेसे भिन्न अवयवके द्वारा रचा जाना तो घटमे भी सिद्ध नही होता। घट सावयव है, अनेक अवयव हैं उसके, अनेक हिस्से हैं ऊपर नीचे अगल बगल कितने हिस्से घडेमे पडे हुए हैं, तो सावयव होनेपर भी घडा कही खपरियोके संयोगसे न बन जायगा। खपरिया समान जातीय हैं ना! मिट्टी ही तो है। तो जो बनी हुई खपरिया हैं उन खपरियोके संयोगमे घडा बनता हुआ किसीने देखा है क्या? अब रही मृत्पिण्डकी बात। सो वह मृत्पिण्ड उपादान कारण है, वही तो घटरूप परिणमेगा ना! तो उपादान कारणरूप मृत्पिण्डसे प्रथम ही अपने अवयवरूप अपने ही किसी पदार्थकी उत्पत्ति होनी है। यह एक मोटा दृष्टान्त देकर समझाया जा रहा है। जो अनेक प्रदेश वाला होता है वह भिन्न-भिन्न अवयवोको जुडाकर रचा जाय यह नियम नही बनता।

सावयवके भिन्नावयवारब्धत्वाभावका साक्षात् उदाहरण—सावयव पदार्थके भिन्नावयवारब्धत्वके अभावको साक्षात् उदाहरण रूपसे यदि कहा जाय तो आकाशको ही कह लीजिये! आकाशमे अवयव आप मानेंगे कि नही? जरूर अवयव हैं। देखो! आकाशके जिन अवयवोमे हिमालय पर्वत है विन्ध्याचल पर्वत आकाशके अवयवोमे है। अगर आकाशको सावयव नही मानते तो विन्ध्याचल और हिमालय दोनो एक चीज बन बैठेंगे! और, आकाशके अवयव तो सब जगह प्रतीत होते हैं। यह हॉल आकाशके जिन अवयवोमे है, नीचे जानेको सीढ़िया उसी जगहमे हैं क्या? सीढियाँ भिन्न जगहमे हैं? मगर क्या ऐसे अत्यन्त भिन्न पडे हुये आकाशके अवयवोको जोडकर आकाश बनाया है? आकाश अखण्ड है, निरश है। कभी ये प्रदेश अलग अलग न थे। और ये मिला जुलाकर एक बनाया हो ऐसा भी नही है। उस प्रकार का निरश कहिये। पर उसमे अनन्त प्रदेश नही, फैला हुआ नही, सावयव नही, यह बात न बनेगी। तो सावयव होनेसे वह पदार्थ भिन्न अवयवोके द्वारा रचा हुआ बने यह नियम नही बनता। यही बात आत्मकी है। जिस देहमे जो आत्मा है वह आत्मा सावयव है। देह प्रमाण फैला हुआ है ना। तो उतना फैला हुआ है, उसके प्रदेश उतने हैं उस समय कि जितने आकाशप्रदेश हैं जिसमे फैला है। और चूँकि यह आत्मा अखण्ड है, और उसके प्रदेश अवयव कोई भिन्न चीज नही है तो उससे कई हजार गुना लम्बा जोडा शरीर मिले तो आत्माके प्रदेश उतने फैल जायेंगे। तो आत्मा सावयव है तिसपर भी अखण्ड है और भिन्न अवयवोके द्वारा रचा हुआ नही है।

सावयवके भिन्नावयवारब्धत्वका अनियम— अब मोटे पुराने ही दृष्टान्त पर आइये! जो कथन पहिले चल रहा था कि घट भी सावयव होकर पहिलेसे ही बने हुए खपरियोके टुकडोके संयोगसे घटकी उत्पत्ति नही बनी। हाँ उपादान कारण-रूप मृत्पिण्डसे घटकी उत्पत्ति बनती है। सो वे भिन्न अवयव नही हैं, वे वे सब घटा-

त्मक बन गए। जो मृत्पिण्ड था, जितने उसमें मिट्टीके हिस्से थे वे सब घटात्मक हो गए हैं, इसमे भिन्न अवयवोकी बात नही है। हाँ, एक पटका दृष्टान्त कुछ शकाकार ऐसा दे सकता है कि देखो ना, ततु अलग-अलग रखे थे और उनका कर दिया गया सयोग तो देखो, कपडा बन गया। यदि ऐसे ही आत्माके अवयवोका सयोग कर दोगे तो तुम्हारा आत्मा बन जायगा। ऐसा उपालम्भ यो नही दे सकते कि अगर एक जगह पट आदिकमे अपने अवयवभूत सूतके सयोगपूर्वक पटकी उपलब्धि हो गई तो सभी जगह अपने अवयवोके सयोगपूर्वक ही उपलब्धि बने, यह नियम नही बनाया जा सकता। अगर इस तरहका नियम बनाने लगोगे कि कोई काम, कोई बात एक जगह देखी गई तो सभी जगह उसे लादें। तब तो देखो ना, काठ लोहलेख्य होता है। लोहेके चाकू या औजारसे काठपर बेल-बूटा बनाते हैं। तो काठ लोहलेख्य है, लोहके द्वारा लिखा हुआ हो जाता है काठ, तो देखो ! एक जगह हमने देखा कि काठ लोहलेख्य हो गया तो वज्रको भी लोहलेख्य मानलो ! काठ लोहलेख्य है तो फिर वज्रमे भी लोहलेख्यपना लाद दो, पर ऐसा तो नही है। इसी तरह पटमे ततुके सयोगपूर्वक पटकी उपलब्धि होती है तो आत्माको भी उसी तरह मान बैठें, यह बात युक्त नहीं है। पदार्थ हैं अनन्त और उनकी अपनी-अपनी पद्धतियाँ हैं। यदि आप कहें कि काठ और वज्रकी समानतामें तो प्रमाणसे बाधा आती है, प्रत्यक्षसे बाधा आती है, काठपर तो लोहसे निशान बना लिए जाते हैं, काट तक भी डाला जाता है, पर वज्र तो काटा भी नही जा सकता, उसपर निशान भी नही बनाये जा सकते, तो उसमे तो प्रमाण बाधा है। तो समाधानमे कहते हैं कि प्रमाणबाधा इसी तरह आत्मा और पटादिकी समानतामे भी है। पट तो अपने अवयवभूत सयोगपूर्वक बना है लेकिन आत्मा अपने सयोगपूर्वक नही बना। इससे आत्मा सावयव है लेकिन एक है और ऐसे अनन्त आत्मा हैं। यह नियम नही बनाया जा सकता कि जो सावयव हो वह समानजातीय भिन्न अवयवोके द्वारा रचा गया हो। एक पटकी मिसाल देते हो कि कपडा भिन्न अवयवोंके द्वारा रचा गया है। तो यदि कुछ गहरी दृष्टिसे देखोगे तो कपडा कोई एक चीज ही नही है, अनेक ततुओंका जो उस प्रकारका सयोग है वह है कपडा और उन मिले हुए ततुवोसे काम निकाला जा रहा है। जो एक पदार्थ होगा सावयव होगा वह भिन्न अवयवोके द्वारा रचा हुआ नही हो सकता। दृष्टान्त तुम दोगे ही क्या ? इन भौतिक पौद्गलिक पिण्डोका दोगे तो ये स्वय एक पदार्थ हैं ही नही। कोई सा भी दृष्टान्त दोगे यहाँके दृश्यमान पदार्थोंमे वे सब अनन्त परमाणुवोके द्वारा रचे गये है, उनमे जो एक परमाणु है वह निरवयव है, वह तुम्हारे दृष्टान्तमें भी न आयगा। आकाश और आत्मा ये दो ही पदार्थ ऐसे हैं कि बडे परिमाण वाले होकर सावयव हैं, लेकिन आत्माका परिमाण परम महापरिमाण नही है आकाशका परम महापरिमाण है।

आत्मामे भिन्नावयवारब्धत्वका प्रसङ्ग देनेपर आरब्धत्वके समयकी पृच्छा—अब शकाकारसे पूछा जा रहा है कि जो तुम यह आपत्ति दे रहे हो कि

आत्मा फिर समान जातीय भिन्न अवयवोके द्वारा रचा गया मानना होगा। तो यह बतलावो कि समान जातीय भिन्न आत्मारूप अवयवोके द्वारा रचे गये आत्माको तुम किस समयके लिए मनवा रहे हो ? जब आत्मा जन्म लेता है नये शरीरमे उस ठीक जन्मके समयमे याने आदि कालमे भिन्न अवयवोके द्वारा आत्माको रचा गया बतलाते हो या मध्य अवस्थामे। मोटेरूपसे यो समझिये कि जिस घडीमे बालक पैदा होता है उस घडीकी तुम बात कह रहे हो कि अनेक आत्मा जातिके अवयवोके द्वारा वह आत्मा रचा हुआ होता है या जन्म लेनेके बाद कुमार अवस्थामे, जवानीमे बुढापामे किसी भी अवस्थामे यह बतला रहे हो कि आत्मा समानजातीय आत्मारूप भिन्न अवयवो द्वारा रचा हुआ बन जायगा। शङ्काकार यह आपत्ति दे रहा था कि यदि आत्माको सावयव मानोगे तो अनेक हिस्सो वाला जैसे कि यह ५ फिटका आत्मा है, तो हिस्से तो हो ही गए आत्माके। तो जो हिस्से वाली चीज होती है वह भिन्न भिन्न हिस्सोके सयोगसे बनती है। जैसे कपडा है, घडा है, भिन्न भिन्न हिस्सोके सयोगसे बनते तो आत्मा भी जो एक यह जन्म ले रहा है वह भी भिन्न-भिन्न अनेक हिस्सोसे बनेगा सो इसका खण्डन तो कर दिया लेकिन थोडी देरको यह मानकर कि हा, भिन्न-भिन्न हिस्सोके द्वारा आत्मा बनता है तुम्हारी ओरसे मान भी लें तो यह बतलावो कि ऐसा रचाव किस वक्त हुआ ? जन्मके समय या जन्मके बाद ? जब चाहे बहुत उमर पडी है, किसी भी मध्य अवस्थामें ?

जन्म लेनेके आदिमे आत्माके भिन्नावयवारब्धत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि आदिमें ही हुआ, आत्मावयवो द्वारा आत्माका रचाव गर्भमे ही हुआ। जन्म तो असली गर्भका ही नाम है, लोक रूढिमे ऐसा कहते हैं कि जिस दिन बच्चा गर्भसे निकले कि पुत्रका जन्म हुआ, अरे जन्म तो ९ माह पहिले ही हो गया था जिस कालमें जीव गर्भमें आया। तो मनुष्यकी आदि असली तो वही है। सो यदि आदिमे मानोगे कि भिन्न-भिन्न अनेक आत्मरूप अवयवोके सयोग पूर्वक आत्मा बना है अथवा गर्भसे निकलनेके समय आदि मान लो वहाँ भी विकल्प करो सो उस कालमे यदि भिन्न भिन्न अनेक आत्मीय हिस्सोके सयोगसे बना है तो उस वक्त फिर दुग्धपानमे प्रवृत्ति बालककी न हो सकेगी, क्योकि दुग्धपानमे प्रवृत्ति होनेका कारण है इच्छा प्रत्यभिज्ञान, स्मरण, सस्कार। ये कहाँसे आ गए ? उस कालमें तो भिन्न-भिन्न अनेक हिस्सोको जोडकर बन रहा आत्मा। यह चीज तो बहुत काल बाद आया करेगी। यदि यह कहो कि जिन भिन्न-भिन्न आत्माके हिस्सोके सयोगसे आत्मा बना वे अवयव खुद जानकार थे पहिलेसे जिन हिस्सोको जुडाकर आत्मा एक बना है शरीरमे वे हिस्से भी तो चेतन हैं जानकार हैं। तो आत्माका रचने वाला जो अवयव है, समान जातीय आत्मारूप जो पहिलेसे मौजूद है और उन्होंने विषयदर्शन किया है, प्रत्यक्ष किया है स्मरण किया है, सस्कार भी उसमें पडा हुआ है तो उत्पन्न होते ही दुग्धपानकी प्रवृत्ति बन जायगी। तब तो समाधानमे कह रहे हैं कि फिर तो तुरन्त ही उत्पन्न हुए बच्चेमे भी अन्य

समस्त जीवोकी तरहकी अनेक प्रवृत्तियाँ वन जावे। केवल दुग्धपानकी बात तक ही क्यो रह गए वे अवयव ? रोजिगार भी करने लगे, रिस्तेदारोमें भी घूम आवे, और भी कर आवे, क्योंकि जिन भिन्न अवयवोंके सयोगसे आत्मा वना है वे भिन्न अवयव तो पहिलेसे ही वड़े समर्थ हैं। तो दो आपत्तियाँ आती हैं एक तो यह कि भिन्न समाज जातीय आत्मा रूप अवयवोंके सयोगसे आत्मा यदि रचा गया मानते हैं तो दुग्धपानमें तुरन्त जाये हुए वच्चेकी प्रवृत्ति नही हो सकती या फिर उन भिन्न-भिन्न सभी अवयवोमें पूरी-पूरी जा..कारी स्मरण प्रत्यभिज्ञान मान लेनेपर तुरन्त जन्म लेते ही उसे वे सारे काम कर देना चाहिए जैसे कि काम बडे पुरुष कर दिया करते हैं। इस कारण यह सिद्ध नही हो सकता कि उत्पन्न होते ही आदिमें ही समान जातीय आत्म स्वरूप भिन्न-भिन्न अवयवोके द्वारा रचा गया आत्मा है।

जन्मके पश्चात् मध्यावस्थामे भी आत्माके भिन्नवयवारब्धत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि आदि समयमे मत मानो आत्माको भिन्नावयवारब्धत्व, पर मध्य अवस्थामें, जवानीमें और अगल वगल किसी समयमें भिन्न-भिन्न समान जातीय आत्मीय अवयवोके द्वारा आत्मा रचा गया है यो मान लो ! तो समाधानमे कहते हैं कि इस वातमे तो प्रत्यक्षसे विरोध है। अरे, काम तो शुरु शुरुका था। उत्पन्न किस प्रकार होता है आत्मा ? जब एक बार वन गया आत्मा, शरीरमें आ गया और फिर मानना कि तब तो नही, किन्तु वादमें भिन्न-भिन्न समानजातीय आत्मीय अवयवोसे रचा गया मान लिया थोडी देरको, वनता तो नही, लेकिन मानलो, अन्तिम अवस्थामे घटकी तरह वे सब अवयव, जब आत्माके हिस्से बिखर जायेंगे तो आत्माका तो अत्यन्त नाश हो गया। फिर स्मरण आदिक तो रहा नही। अब वे अवयव फिर कहीं जाकर नये शरीरमें घुसेंगे और इन अवयवोंके सयोगसे आत्मा कहलायेगा। तो जिन अवयवोके सयोगसे आत्मा रचा गया मान रहे हो वे अवयव तो स्मरण रहित हैं, आखिर वे किसी जगहसे पिटकर ही तो आये हैं। सो भी दुग्धपान आदिकमें प्रवृत्ति नही हो सकती।

विभाग सयोगपूर्वक सर्वत्र उत्पाद विनाश देखे जानेका अभाव—और इस तरहके विनाश और उत्पत्ति होनेकी क्रिया किसी भी जगह नही देखी जाती। देखो ! स्वर्णका एक कडा था, उसे तोडकर वाजूबन्द बना दिया गया तो कडाका वाजूबद वना लेनेपर किसी कारणसे किन्हीं अवयवोमे क्रियाका विभाग हुआ है। सयोगका विनाश हुआ है। तो इस तरह तो कडाका विनाश हो गया और फिर वे ही अवयव खाली फिर क्रियाका सयोग करे और उस क्रमसे वाजूबद बने ऐसा नही देखा जाता। जैसे कि शकाकार यहाँ यह आपत्ति मान रहा है कि आत्माके अवयव इकट्ठे हुए सो वन गया आत्मा। अब अवयव बिखर गए सो मर गया आत्मा, फिर नये शरीर में अवयव जुड गए सो वन गया दूसरा आत्मा। इस तरहकी वात तो इन मानेके

आभूषणोंमें या लोहे आदि पर्यायोमे भी नही पायी जाती कि पहिले तो था कड़ा सो कडामें यह किया गया हो वाजूवद बनाते समय कि कडेके अवयवोमें तो पहिले सयोग का विनाश किया हो और सोना विल्कुल मिटा दिया गया हो और फिर जो अवयव अलग हो गए, विखर गए, सोना भी न रहा, फिर उन अवयवोको जोडा गया हो और फिर उनके वाजूवन्द बनाये गए हो ऐसा तो यहाँ भी नही देखा गया है। वही एक सोना है जो अभी कडा पर्याय रूपसे है और फिर उस ही कडा पर्यायमें बसते हुए द्रव्यको सुनारने अपने हस्तादिकका व्यापार होनेपर वही कडा वाजूबन्द रूप बन गया, यह देख रहे हैं। वैशेषिक सिद्धान्तमे सभी पदार्थोंके रचनेका ऐसा विधान बना रहे हैं कि पहिले तो उस पदार्थके वे अवयव विखर विखरकर विल्कुल लुप्त हो जाते हैं, फिर उनका सयोग होता है तब नई चीज बनती है, ऐसा नियम शायद किसी पदार्थमे घट भी जाय पौद्गलकमे वह भी किसीमे शायद। लेकिन पौद्गलिकमे भी प्रायः करके यह वात नही पायी जाती कि पहिले तो अवयव विखरे फिर वे अवयव जुडे तब चीज बने। तो आत्मा आदिक पदार्थोंके सम्बन्धमे तो यह कल्पना ही नहीकी जा सकती। ऐसी वात प्रत्यक्ष विरुद्ध है कि कडेके अवयव पहिले विखरे फिर वे अवयव जुडे तब मुकुट वाजूवद आदिक बने, ऐसा तो यहाँ भी नही देखा जाता। तो आत्माके विषयमें सदेह करना तो विल्कुल ही गलत वात है।

आत्माको सावयव शरीरव्यापी माननेपर आत्माके छेदके प्रसङ्गकी शङ्का और उसका समाधान—शकाकार कह रहा है कि यदि आत्माको सावयव, शरीरमे ही व्यापने वाला मानोगे अर्थात् इस अवयवो वाले देहके बराबर ही आत्मा है इस तरह मानोगे तो यह दोष आयगा कि जब कभी शरीरका कोई अङ्ग कट जाय तो आत्मा भी कट गया और इस तरह आत्माका छेद हो जायगा, भग हो जायगा, टुकडे हो जायेंगे। समाधानमें कहते हैं कि सावयव शरीरमे आत्मा व्यापकर रह रहा है और कभी कोई अग कट जाय अगुली हस्तादिक, तो आत्माके प्रदेशोका भी छेद हो जाता है यह तो इष्ट है। यह दोषके लिए नही है, मगर किस तरहसे भग होता है उस प्रक्रियाको समझो। शरीरमे सम्बद्ध जो आत्मप्रदेश हैं उनसे जो अलग हुए, छिन्न हुए, कट गए शरीर प्रदेश हैं उन उन प्रदेशोमें आत्मप्रदेशके रहनेका ही तो नाम छेद है, इतनी ही तो बात है। पर वहाँ इस तरहका छेद नही, भग नहीं कि जैसे कट गई अगुली और वह ५ हाथ दूरपर पहुँच गई तो जैसे उस बीचमे ५ हाथके अन्तराल में शरीरका कोई प्रदेश नही, अङ्ग नही है, अगुली दूर पडी है, शरीर दूर रखा है, यों कुछ आत्मप्रदेशमे यह वात नही है। अगुली कट जानेपर ५ हाथ दूर अगुलीके पहुँच जानेपर वहाँ भी आत्मप्रदेश है और अन्तरालके बीचमे भी आत्मप्रदेश है और शरीरमें आत्मप्रदेश है। आत्मा अखण्ड है सो इस सम्बन्धसे आत्मा कुछ इतना विस्तारमें पहुँच गया है, तो चूँकि इतनी दूर पहुँच गया है और कटी हुई अगुलीके प्रदेशमें आत्म प्रदेश है, इस दृष्टिसे भग कह सकते हो, उस भगमे कोई दोष नही है। अगर ऐसा

भग न हो अर्थात् कटी हुई ५ हाथ दूर पर पडी हुई अगुलीमे आत्मप्रदेश न हो तो कटनेपर अगुली भी थोडी देरको तडफती है, कम्पन होता है, वह कम्पन न होना चाहिए। छिपकलीसे पूँछ अलग होते ही पूँछमे देरतक कम्पन होता है। वह किस बातका कम्पन है कि आत्माके प्रदेश इस शरीरसे लेकर पूछ तक बराबर हैं और प्रदेशके सम्बन्धसे ही, आत्माके सम्बन्धसे ही उस पूँछमें कम्पन हो रहा है। तो इस तरहका छेद है। आत्म प्रदेशोका वहाँ तक पहुँचना न हो तो कम्पन नही हो सकता। और कम्पन पाया जात है, इससे सिद्ध है कि शरीरका अवयव कट जानेपर आत्म प्रदेशमे भी छिन्नता आ गयी, किन्तु बीचमें तांता नही टूटता है।

छिन्नावयवमे आत्मा माननेपर अनेक आत्माके प्रसगकी शका और उसका समाधान – शकाकार कहता है कि फिर तो कटे हुए अवयवोमे रहने वाले जो आत्म प्रदेश हैं वे भिन्न आत्मा कहलायेंगे। अगुली कट जानेपर ५ हाथ दूर अगुलीके हट जानेपर वहाँ भी आत्म प्रदेश मानते और शरीरमे भी आत्म प्रदेश कहते। तो अब दो आत्मा हो गए। अगुलीमें रहने वाला एक आत्मा और शरीरसे रहने वाला एक आत्मा। तो यो कई आत्मा हो जावेंगे। समाधानमें कहते हैं कि इस तरह भिन्न दो आत्मा नही बनते। कारण यह है कि भिन्न अवयवमे जो आत्म प्रदेश हैं वे वहाँसे हटकर सकुचित होकर इस ही शरीरमें तो आयेंगे। वहाँ तक भी पूरा एक आत्मा है। अवयव छिन्न हो गया और वहाँ तक आत्मा फैल गया, अब सिकुडकर आ जायगा आत्मामें ही जैसे कमल नालका (भिसका) कोई हिस्सा टूट जाय तो उसके ततु उस छोटे हिस्से तक लगे रहते हैं, लेकिन कुछ समय बाद ही वहाँसे बिछुडकर उस बडे भाग मे हो प्रवेश कर जाते हैं। इसी तरह जब शरीरका कोई हिस्सा कटता है तो कटकर दूर पहूँच गया तो आत्म प्रदेश वहाँ तक बना रहता है, पर थोडे ही समय बाद वहाँ के आत्म प्रदेश हटकर वहाँसे मूल शरीरमें पहुँच जाते हैं। इस कारण दो आत्मा मानने का प्रसग नही आता। आत्मा वह एक ही है। कहीं कहीं कथानकोंमे इतिहासमें यह भी बताते हैं कि कोइ बीर राजपुत्र तलवारसे लड रहा था, लडाईमें उसका शिर कट गया तिसपर भी बादके एक दो जवानोको उसने मार डाला। यह बात असम्भव सी नही है, क्योंकि आत्म प्रदेशका कुछ समय अवस्थान रहता है। यदि नीचेका आधा धड कट जाय और फिर तलवार चलाता रहे और फिर एक दो हाथ चला दे इसमें तो जरा भी शका नही ऐसा हो ही सकता है और, यह प्रत्यक्षमें सब देखा जा रहा है। किसी पशुका को अग कट गया तो कटे हुए अगमें कम्पन है और कुछ देर बाद कम्पन मिट जाता है। तो इससे सिद्ध है कि वह आत्मा एक ही है और उस कालमें वह फैल गया।

समुद्घातदशामे आत्मप्रदेशोंके विसर्पणका कथन– कुछ स्थितियाँ ऐसी होती हैं कि जिसमें आत्मा शरीरसे बाहर फैल जाता है। ऐसी स्थितियाँ ७ प्रकारकी

हैं जिनको समुद्घात शब्दसे कहते हैं। कषाय समुद्घात जब किसी मनुष्यको तीव्र क्रोध आता है तो क्रोधके समयमे भी शरीरके आत्मप्रदेश शरीरसे दूर-दूर कुछ फैल जाते हैं, ज्यादहसे ज्यादह तीन गुने तक फैल जाते हैं क्रोधमे। और, ऐसा कहनेकी प्रथा भी है जब कोई तीव्र क्रोध करता है कि आप आपेसे बाहर क्यो हुए जा रहे हैं ? याने शरीर परिमाण जो आत्मा है उससे आपके प्रदेश दूर फैल गए, इतना तीव्र क्रोध किया जा रहा है। एक वेदना समुद्घात होता है। जिसमे कोई तीव्र वेदना हो, शरीरमें बुखार तीव्र हो अथवा अंग कट जाय यह भी वेदनामें ही है। तो वेदनाके समय शरीरस्थ आत्माके प्रदेश कुछ बाहर फैल जाते हैं, और यहाँ तक बताया गया कि वे फैले हुए आत्म प्रदेश यदि कुछ इस विधिसे स्पर्श करने औषधी तक पहुँच जायें तो उसका राग दूर हो जाता है। कभी अनुभव किया होगा कि तेज बुखारके बाद जब एक दम बुखार शान्त होनेकी स्थिति होती है तो भीतर ही भीतर ऐसा अनुभव होता है मैं शरीरमे नही, केवल एक हाड पिंजर मात्र रह गए। शरीर सब सूख गया और वहाँ भी ढीला ढाला यह आत्मप्रदेश बना हुआ हैं। कुछ ऐसे ढगका अनुभव होता है और उसके बाद देखते हैं तो बुखार साफ हो जाता है, तो वेदना समुद्घातमे आत्माके प्रदेश शरीरसे बाहह फैल जाते हैं। किसी भी समुद्घातमें शरीरको एकदम छोडकर आत्मा नही फैलता, शरीरको छोडकर जानेका नाम तो मृत्यु हो जायगा। शरीरमें भी आत्माके प्रदेश रहते हैं और बाहर भी फैलते। वैक्रियक समुद्घात, जब विक्रिया करता है यह जीव जैसे विष्णु कुमार मुनिका हाथ फैला था, वह हाथ समुद्रान्त पहुँच गया तो उस स्थितिमे भी आत्मप्रदेश फैल जाते हैं। तैजस समुद्घातमे ऋद्धिधारी मुनियोके दाहिने कधेप तैजस शरीर बनता है तो दुनियामे आराम सुखको उपस्थित कर देता है और जब बायें कधेसे निकलता है तो नगरीको भस्म कर देता है। और स्वयको भी भस्म कर देता है, उस समय क्या है ? समुद्घात ही तो हुआ वहाँ भी आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर निकल गये। एक है मारणानिक समुद्घात। यह समुद्घात सबके हो यह नियम नही। किसी किसी जीवके होता है। जिसमे कुछ बुद्धि बल भी पडा हुआ हो और किस भवमे पैदा होना है उस भवकी बडी आकांक्षा लगा रखी हो अन्य कुछ और कारण लगाकर मरण समयमे, मरणसे पहिले जीवके प्रदेश उस जन्मस्थान तक पहुँच जाते हैं और वहाँसे फिर लौटकर शरीरमे प्रवेश कर जाते हैं, थोडी देर बाद फिर मरण हो जाता है। मरणसे पहिले अपना नया घर देख आता। देखता तो नही, छू आता, यह मारणान्तिक समुद्घातमे होता है। एक है आहारक समुद्घात प्रमत्त विरत मुनियोके कोई तत्त्वमें शका हुई और आकाक्षा हुई कि इसका क्या समाधान है, तो वह ध्यानमें बैठ जाता है एकचित्त होकर तो मस्तकसे एक आहारक पुतला निकलता है और वह तीर्थंकर महाराज जहाँ विराजे हो वहा तक पहुँचता है और प्रभुका दर्शन करके वापिस आ जाता है। उस स्थितिमे उनकी शकाका समाधान हो जाता है। उस समय आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर वहाँ तक गया जहाँ तक वह पुतला गया। एक है

केवली समुद्घात सबसे बडा समुद्घात केवली समुद्घातमे लोक पूरणके समय होता है, अन्य किसी भी समुद्घातमें यह स्थिति नही हो पाती कि जीव समस्त लोक प्रमाण बन जाय। अरहत भगवान सकल परमात्माकी आयु तो रह जाय अन्तर्मुहूर्त और तीन अघातिया कर्म रह जायें लाख वर्षकी स्थितिके तो उस समय प्रभुके आत्मप्रदेश शरीर विष्कम्भ प्रमाण ही नीचेसे ऊपर तक १४ राजू तक फैल जाते हैं, फिर अलग बगल, फिर आमने सामने, और फिर जो वातवलय शेष रह गए थे उनमें भी फैल जाता है। इसको कहते हैं लोक पूरण, जब कि वात वलयमें फैल गया उस समय लोकके एक एक प्रदेशपर आत्माका एक-एक प्रदेश अवस्थित है। इसको समवगणा कहते हैं। जितने ही लोकाकाशके प्रदेश हैं उतने ही आत्माके प्रदेश हैं और समतामे एक-एक प्रदेशपर एक-एक प्रदेश हो जाते हैं। तो इन स्थितियोमें आत्मप्रदेश बाहर निकल जाते है। इससे कहीं अनेक आत्मा नही बन गए। वे प्रदेश फिर सकुचित होकर इस ही शरीरमे प्रवेश कर जाते हैं।

छिन्न आत्मप्रदेशोके आत्मामे सघटनका वर्णन—अब शङ्काकार यह कहता है कि कुछ प्रदेश छिन्न होगए, कुछ प्रदेश अछिन्न रहे याने शरीरमे ही रहे और कुछ वियुक्त होकर दूर पहुँच गए, तो ऐसे छेदे गए और पहिलेसे ही शरीरमे मौजूद रहे आत्मप्रदेशमें सघटन कैसे हो जाता है, मिलाप कैसे हो जाता है वे प्रदेश यहाँ आ कैसे जाते हैं? समाधान—बाहर छिन्न भागमें रहने वाले आत्मप्रदेश सघटन में यों आ जाते कि मुख्यतया तो आत्मप्रदेश शरीरमें ही है ना! अब कटे हुए अङ्गमे थोडे प्रदेश बाहर गए तो जहाँ १० प्राण मौजूद हैं स्थान तो सही वही है, स्पर्शन इन्द्रियके थोडेसे अगोंका प्राण बाहर था, वे प्रदेश वापिस आ जायेंगे और फिर वह अगुली प्राणरहित हो जायगी। जैसे पद्मनाल (भिस) के ततु बाहर निकल जानेपर भी कुछ देर बाद वे भिसमें आ जाते हैं, ऐसा होना यह कर्मविपाकके वश होता है। इस प्रकारका जिस जीवके कर्मका उदय है उसका यों समुद्घात होता है। छिन्न अग तक आत्मप्रदेश पहुचते हैं फिर उनका सघटन हो जाता है, वे प्रदेश अपने ही धाममें प्रवेश कर जाते हैं। सबका ऐसा नही होता कि अग कटनेपर प्रदेश बाहर चले ही जायें सो नही। किसीके वहीं प्रदेश रहते हैं बाहर जाते नही किसीके जाते भी हैं। तो जिसका जैसा भाग्य है उसके अनुसार उसमें वैसी व्यवस्था रहती है।

देहप्रमाण आत्माका निर्वाधबोध प्रतिभास—यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि आत्मा सर्वव्यापक है या नही। वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार आत्मद्रव्य सर्वगत है, पर प्रत्यक्ष अनुमान आगमयुक्ति अनुभवके आधारपर यह सिद्ध होता है कि आत्मा देह प्रमाण है। और ऐसे ऐसे आत्मा अनन्त हैं। तो बात जिस तरहसे सत्य व्यवहार में आती है। जैसे अपने आपके रचने वाले ततुवोमें सूतोंमें एक निश्चित देश कालके आकाररूपसे प्रतिभासमान है कपडा, बस ऐसा ही है, इतना ही बडा, लम्बा चौड़ा है

इसी तरह शरीरमे ही एक नियमित देशकालके आकारसे प्रतिभासमान हुआ आत्मा उतना ही प्रतिभासमे आ रहा जितना कि शरीर परमाणु फैले हुए हैं, सबको अपना अपना अनुभव हो रहा होगा कि मैं बस इतनेमे ही सब कुछ हूँ। कभी शिरमें चोट लग जाय तो लगता कि दर्द तो सिर्फ उसी जगह हो रहा, पर ऐसी बात नहीं है। जितने शरीर प्रमाण आत्मा है उस पूरे आत्मामे सर्वत्र उस दर्दका अनुभव हो रहा है, पर हाँ, उस दर्दका जो निमित्त कारण है उस कारणपर दृष्टि होनेसे ऐसो प्रतीत होता है कि देखो दर्द यहाँ हो रहा है। तो जैसे निर्बाध ज्ञानमे प्रतिभास हो उस तरहसे ही व्यवहार बना करता है और वह समीचीन व्यवहार है। यह हेतु असिद्ध नही है। शरीरमे बाहर आत्माके प्रदेशोंका अभाव है। सुख दुःख विचार कल्पना सब कुछ शरीर के अन्दर आत्मामे ही हुआ करता है। बाहर कुछ नही होता। तब आत्माको मानो, पर मानो कि यह चैतन्यस्वरूप है ज्ञानादिक गुणमय है, देह प्रमाण है और ऐसे-ऐसे अनन्त आत्मा है। इसके विरुद्ध जो विशेषवादमें आत्मस्वरूप माना है एक नित्य सर्व-व्यापक निरश गुणरहित, प्रदेश रहित, क्रिया रहित जैसा माना है वैसा आत्म द्रव्य सिद्ध नही होता।

सामान्य विशेषात्मक पदार्थकी प्रमाण विषयताका प्रकरण—यह मूल प्रकरण इस प्रसगसे सम्बन्धित है कि ज्ञानका विषय बताया जा रहा था कि प्रमाणका विषय होता सामान्य विशेषात्मक पदार्थ इसमे सभी पदार्थ आ गए। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, सभी सामान्य विशेषात्मक हैं, और वे पदार्थ प्रमाणके विषय होते हैं इस पर वैशेषिककी यह आपत्ति थी कि सामान्य और विशेष स्वय जुदे पदार्थ हैं और उनके अतिरिक्त द्रव्य गुण कर्म भी पदार्थ हैं और ये परस्परमें सम्बधित होते हैं है समवाय नामके पदार्थसे सम्बन्धित होते हैं। इस तरह पदार्थकी व्यवस्था है और ये ही ज्ञानके विषय हैं। सामान्य रहित विशेष तथा विशेष रहित सामान्य सत् ही नहीं है अत ज्ञानका विषय नही होता। परन्तु विशेषवादकी ओरसे एक बहुत लम्बा चौडा सिद्धान्त रखा गया था कि पदार्थ ६ होते हैं द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। उनमे द्रव्य नामक पदार्थ ९ प्रकारके हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। तो आत्मासे पर्यन्त ८ द्रव्योका तो जैसा कि विशेषवादमें माना गया है उसका निराकरण किया।

विशेषवादसम्मत मनोद्रव्यकी असिद्धि—अब कहते कि मन द्रव्य भी सिद्ध नही होता। वैशेषिक सिद्धान्तमे मनको सक्रिय और नित्य माना है। मन एक अलग द्रव्य है। आत्मा अलग द्रव्य है। ज्ञान सुख आदिक गुण अलग पदार्थ हैं। ये सब अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं। एकका सत् दूसरेमे नहीं है। पर इनका सम्बध जोडनेसे फिर यह सब इज्जन चलने लगता है, ऐसा विशेषवादमे माना है। तो मनको भी एक अलग द्रव्य मान लिया। वह मन अलग क्या चीज है, और फिर अलगसे मनक

स्वरूप हैं, क्या आकार है ? कैसे आता है, कैसे आत्मासे जुटता है, इन सब बातोंपर विचार करनेसे मनकी कुछ भी सिद्धि नहीं होती। मन है, लेकिन नित्य एक निरंश कोई मन हो ऐसा नहीं है, जैसे कि शरीर रचा है और शरीरमें बाहर ये इन्द्रियाँ रची गई हैं आँख, कान, नाक, जिह्वा और स्पर्शन इसी तरह अन्दर भी एक इन्द्रिय रची हुई होती है उसे कहते हैं मन बाह्य इन्द्रियाँ ५ हैं और भीतरी इन्द्रिय एक है। इन ५ इन्द्रियोंको कहते हैं बाह्य करण और मनको कहते है अन्तःकरण। कहते हैं ना व्यवहारमें—जरा अन्तःकरणसे कहो, तो वह मन है अन्तःकरण, भीतरी इन्द्रिय। तो जैसे ये बाह्य इन्द्रियाँ शारीरक हैं, पौद्गलिक हैं, इसी तरह भीतरकी मन इन्द्रिय भी पौद्गलिक है, शारीरिक है, शरीरका ही एक अंग है। इसको कहते हैं द्रव्यमन। और जैसे इन बाहरी इन्द्रियोंके प्रयोगसे जो कुछ ज्ञान बनता है, विचार विकल्प बनता है वह कहलाता है भावेन्द्रिय, इसी प्रकार द्रव्य मनके प्रयोगसे, निमित्तसे जो विचार बनता, तर्क वितर्क होता वह कहलाता है भावमन। भावमन है चेतनका अंग और द्रव्य मन है शरीरका अंग। इस आत्मासे अतिरिक्त मन नामका कोई द्रव्य अलग हो और वह मन फिर आत्मामें संयुक्त हो ऐसी बात नहीं है।

विशेषवादसम्मत पदार्थोंकी असिद्धि—विशेषवादमें जो ६ द्रव्य माने गए हैं और जैसा उनका स्वरूप वर्णित किया गया है वह सब प्रमाणसे सिद्ध नहीं है, और तब ऐसा कहना कि पृथ्वी आदिक द्रव्य दूसरोंसे भेदको प्राप्त हैं, क्योंकि द्रव्यत्वका उनमें सम्बन्ध है अर्थात् ये द्रव्य हैं और गुण कर्म सामान्यविशेष इन सबसे न्यारे हैं, क्योंकि इनमें द्रव्यत्वका सबंध है और गुण कर्म आदिमें द्रव्यत्वका सम्बन्ध नहीं है। तो द्रव्यत्वका सम्बन्ध नामका हेतु ही गलत है, क्योंकि पहिले ये द्रव्य सिद्ध होलें पृथ्वी आदिक तब तो द्रव्यत्व कुछ होता है यह माना जायगा। और, यहाँ तुम कह रहे द्रव्यत्वका सम्बन्ध होनेसे वह द्रव्य कहलाता तो कहते कि स्वयं ही तो सिद्ध होने द्रव्य ही सिद्ध नहीं हो रहा विशेषवादमें सो यह हेतु तुम्हारा आश्रय सिद्ध है और द्रव्यत्वका कोई स्वरूप ही सिद्ध नहीं होता अतः हेतु स्वरूपासिद्ध भी है क्योंकि द्रव्यत्वका सम्बन्ध मायने समवाय वह प्रमाणसे सिद्ध नहीं है इसलिए द्रव्य पदार्थ भी घटित नहीं होता। तब ऐसा कल्पनासे माना हुआ द्रव्य न मानकर अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भव दोषसे रहित ६ जातिके पदार्थोंकी इस तरह प्रतिपत्ति करना चाहिए कि पदार्थ ६ जातिके हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। इनमें जीव धर्म अधर्म, आकाश, काल ये ५ तो अमूर्तिक हैं, इनमें रूप रस गंध, स्पर्श नहीं है। पुद्गल मूर्तिक हैं इनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श है। इन ६ प्रकारके पदार्थोंमें से धर्म, अधर्म, आकाश काल इनमें विकार विभाव परिणमन नहीं होता। बिगड़ने वाले दो ही द्रव्य हैं जीव और पुद्गल। देख लीजिए। मेरे जीवके साथ जो ये पुद्गल लगे हुए हैं मनुष्य शरीर आदिक सो देखो! इस संगतिसे दोनों ही बिगड़े रहेंगे। आत्मा भी विकारको प्राप्त हो रहा है और शरीर अणु कर्म अणु ये भी अपने अकर्मत्व और शुद्ध प्रकृतिको छोड़कर इस प्रकारकी विकार

अवस्थामे आये और सम्बन्ध छूट जाय तो आत्मा भी सुधरी अवस्थामें आ जायगा और कर्म आदिक भी सुधरी अवस्थामे आ जायेंगे ।

उपयोगमय होनेसे सुधार बिगाडकी आत्मतत्त्वपर जिम्मेदारी—देखो भैया । जीवमे तो उपयोग है, कर्म आदिकमे उपयोग नही है, अत कर्म तो कुछ अनुभव कर सकते नही, जीव अनुभव करता रहता है । जीव यदि बिगडा तो बिगडेका अनुभव करता दु खी होता और यदि सुधरा तो सुधरेका अनुभव करता शान्त होता । तो अब केवल एकपर जिम्मेदारी आयी, जीव और पुद्गल इन दो में ही बिगाड है अन्य चारमे नही । तो पुद्गलमे उपयोग नही सो बिगड होकर भी कुछ बिगडा नही । एक वेन्च जल गई तो वेन्चका क्या बिगडा ? उन स्कधोका क्या बिगडा ? बिगडा बल्कि पुरुषका जो दु खी हो रहा है कि मेरी वेन्च जल गयी । देखो ये पुद्गल मिट रहे हैं, जल रहे हैं, इनका तो कुछ बिगाड नही और यह पुरुष जो दूर बैठा है यह बिगड रहा है, हाय ! मेरा यह सब खतम हो गया । वस्तुके स्वरूपपर दृष्टि देकर सोचो तो ससारमे हम आप लोग जो कुछ भी परिणति बना रहे हैं वह सब असार परिणति है, सारभूत नही है । सारभूत पुरुषार्थ तो केवल एक ही यह है कि अपने स्वरूपमे अपना उपयोग बस जाय, रम जाय, इसीलिए सब ग्रन्थ हैं, इसीलिए सब तत्त्वोका वर्णन है, तो वर्णन इस ढगका होना चाहिए कि जिसमे सचाई भी हो, और सचाईके कारण जीवके क्लेश विकल्प आकुलतायें ये सब खतम हो जावें और यो खतम होते ही हैं । तो पदार्थ इन ६ जातियोमे हैं और वे सब सामान्यविशेषात्मक हैं । सामान्यरहित विशेष कुछ भी पदार्थ नही होता, विशेषरहित सामान्य कुछ भी पदार्थ नही होता । इस तरह प्रमाणका विषय सामान्यविशेषात्मक पदार्थ है । यहा तक वैशेषिक सम्मत ९ प्रकारके द्रव्योका जैसा कि उनमे स्वरूप बताया है निराकरण किया गया, अब विशेषवादमें माने गए गुणपदार्थकी मीमासा की जायेगी ।

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[द्वात्रिंश भाग]

●

प्रवक्ता

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

ज्ञान और ज्ञेयके परिचयकी आवश्यकता—सच्चे ज्ञानसे अर्थकी सिद्धि होती है अर्थात् सत्य ज्ञान होनेसे सत्य प्रयोजनकी सिद्धि होती है, पदार्थोके सत्य स्वरूपकी जानकारी होती है और सत्य स्वरूपकी प्राप्ति होती है और मिथ्या ज्ञानसे भ्रामक ज्ञानसे पदार्थकी सिद्धि नहीं होती, प्रयोजन भी जो वास्तविक है आत्माका सत्य शान्ति निराकुलता प्राप्त होना वह भी नहीं बनता, पदार्थके सही-सही स्वरूपकी प्राप्ति भी नहीं है, जानकारी भी नहीं है। इस कारण यह जरूरी है कि हम लोगोंको यदि पदार्थोंका सत्य स्वरूप जानना है, अपने शान्ति प्रयोजनकी सिद्धि करना है तो सच्चा ज्ञान प्राप्त करें। तो इस ग्रन्थमें पहिले सच्चे ज्ञानकी ही परिभाषा चल रही है कि सच्चा ज्ञान होता क्या है ? किस प्रकारका है ? अब यहाँ दो बातें जाननेके योग्य हो गयी—एक तो ज्ञानको जाना कि ज्ञान होता किस रूपसे ? और किस स्वरूपका है ? दूसरी बात सब पदार्थोंका स्वरूप जानो कि ज्ञानके द्वारा जो कुछ जाना जाता है उसका स्वरूप कैसा है ? इसको संक्षेपमें कहें तो ज्ञान और ज्ञेय, इन दोकी जानकारी करनी है। ज्ञानका स्वरूप क्या है ? और ज्ञेयका स्वरूप क्या है ?

ज्ञेयके परिचयके साथ ज्ञानका परिचय होनेका महत्त्व—कुछ लोग तो ऐसे होते कि इतनेमें ही तुष्ट रहते कि चीज खा लें, स्वाद आना चाहिए। और कुछ लोग इस जिज्ञासामें रहते हैं कि चीज है क्या ? कैसे बनी ? कहांसे आई किस तरह बनाई गयी ? तो जैसे दो प्रकारके रुचिया यहां भी पाये जाते हैं—एकका तो इतना ही मतलब है कि खानेका स्वाद लेना, मौज करना, और एक—खानेका स्वाद लेना, मौज करना और जिस चीजको खा रहे उस चीजका परिज्ञान करना, किस तरह बनी, कैसे बनी, कैसे बनाई जाती है ? आप किसको महत्त्व देंगे दुनियावी दृष्टिसे ? जो केवल खानेका ही स्वाद लेता है, मौज मानता है उसे आप उतना चतुर न समझेंगे जितना चतुर उसे समझेंगे कि खानेका मौज भी ले और यह खाना बना किस तरह,

उसके रग–रगकी बात भी जान जाय । तो यो समझिये कि ज्ञेय तत्वोको जानकर उनका स्वरूप पहिचानकर उस स्वरूपके जाननेमे ही व्यस्त रहता है और उससे ही अपनेको तृप्त मानता है एक तो ऐसा पुरुष, दूसरा ऐसा पुरुष कि ज्ञेय तत्त्वको सही जानकर तृप्ति मने, पर साथ ही यह भी काकाक्षा है कि जिस ज्ञानने जाना उस ज्ञान का क्या स्वरूप है । मुकाबलेतन जो दो बातें रखी हैं जैसे भोज्य और भोजन, दोनोका ज्ञान इसी तरह ज्ञेय और ज्ञान दोनोका ज्ञान । इसमे अन्तर इतना है कि भोज्य भोजन वाला तो भोजनकी बातको जरा भी न जाने और भोज्य पदार्थ स्वादिष्ट खाये तो वह मोज मान लेगा, तृप्त हो लेगा । लेकिन यहाँ केवल ज्ञेयको जाननेसे काम नही बनेगा, किन्तु ज्ञानको भी ज्ञेय बना डालें, ज्ञानका भी स्वरूप जानें तो वास्तविक तृप्ति हो सकती है । अन्तर अब इतना है कि कोई पुरुष ज्ञानके सम्बन्धमे कुछ थोडा सा ही जानकर तृप्त हो लेता है और विद्वान पुरुष उस ज्ञानके सम्बन्धमे बहुत–बहुत जानकारी करते ही रहते हैं और अघाते नही और इस ही वृत्तिसे तृप्त रहते हैं । तो यहाँ ज्ञान और ज्ञेय दोनोके स्वरूप जाननेकी बात कही जा रही है ।

ज्ञानका परिचय ज्ञान तो उसे कहते हैं जो हितकी बातमें लगादे और अहितकी बातसे हटा दे अथवा ज्ञान उसे कहते हैं जो स्व और परकी जानकारी करा दे । ये जो दो ज्ञानके लक्षण कहे हैं इनमे अन्तर भी है और नही भी है । जैसे धर्मका लक्षण कहा है जो वस्तुका स्वभाव है सो धर्म है और धर्मका लक्षण यह भी कहा है कि जो ससारके दु खोसे छुटाकर उत्तम सुखमें पहुँचा दे सो धर्म है । अब बतलावो धर्मके इन दो लक्षणोमे अन्तर है या एक बात है ? अन्तर है भी, नही भी है । अन्तर तो स्पष्ट है । जब वचन निराले निराले हो गए और उनका तात्कालिक भाव भी न्यारा–न्यारा है, जो दु खोसे छुटाकर सुखमे पहुँचा दे उसे धर्म कहते हैं यह सुनकर कुछ अर्थ और लगाया जायगा तथा वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं यह सुनकर अर्थ और लगाया जायगा । सुननेमे ये लक्षण न्यारे–न्यारे जच रहे हैं लेकिन प्रयोज्य प्रयोजक भावसे दोनोमें अन्तर नही है । अरे वस्तुका स्वभाव धर्म है । ऐसे धर्मकी जो दृढ़तासे श्रद्धा करेगा और धर्मके इस स्वरूपको निरखता रहेगा वह ही पुरुष तो दु खो से छूटकर सुखमें पहुँचेगा, तब अन्तर न रहा, इसी प्रकार ज्ञानके सम्बन्धमे जो दो बातें रखी गई हैं, जो हितमे लगा दे और अहितसे हटादे उसे ज्ञान कहते हैं, और एक इन शब्दोंमे कहना कि जो अपनी और परकी जानकारी करा दे उसे ज्ञान कहते हैं । तो सुननेमें अन्तर है लेकिन जो स्व पर व्यवसायी होगा ज्ञान उस हीमे यह सामर्थ्य है कि हितमे लगा दे और अहितसे हटा दे । इस लिए प्रयोज्य प्रयोजक पद्धतिसे इनमें अन्तर न रहा । प्रयोज्य मायने मतलबकी चीज और प्रयोजक मायने मतलब सिद्ध कराने वाली चीज । जो ज्ञानका लक्षण है, जो स्वपर व्यवसायी हो, जो अपनेको और परको जना दे उसे ज्ञान कहते हैं ।

ज्ञानके भेद और प्रत्यक्ष ज्ञानके भेदोंका स्मरण उस ज्ञानके मूलमे दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान तो विशद ज्ञानको कहते हैं, स्पष्ट ज्ञानको कहते हैं और परोक्ष ज्ञान उसे कहते है जो स्पष्ट न हो। स्पष्ट ज्ञान जिसका लक्षण है ऐसे प्रत्यक्षके दो भेद हैं— साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो व्यवहारमें स्पष्ट समझा जाता है और इन्द्रिय मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है। इसना नाम सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष इस कारण रखा कि वास्तवमें तो है यह परोक्षज्ञान, जो पराधीन ज्ञान हो उसे परोक्षज्ञान कहते हैं, इन्द्रिय और मनके सहारेसे जिस ज्ञानकी उत्पत्ति हो वह ज्ञान परोक्ष ज्ञान कहलाता है। तो इस तरहकी पराधीनता होनेपर भी जो इन्द्रियसे साक्षात् जाना जाता है वह स्पष्ट जाना जाता है। इस कारण उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। पारमार्थिक प्रत्यक्ष जो एकदम प्रत्यक्ष है, स्पष्ट भी है और इन्द्रिय मनकी आधीनता भी नही है, केवल आत्माके द्वारा ही उसका परिज्ञान हो जाता है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। यदि हम इन्द्रिय और मनसे अधिक काम न लें, इन्द्रिय और मनको विश्राम दे दें ऐसा समझकर कि हमने ससारका सारा राज जान लिया है कि यहाँ सारका नाम नही है और सांसारिक बातोंकी ही जानकारीमे इस इन्द्रिय और मनका बहुत बडा सहयोग है अथवा इन्हींका काम है। जब मुझे ससारसे प्रयोजन न रहा तो हे इन्द्रिय और मन, तुम लोग अब निवृत्त हो ! मुझे अब कुछ जाननेकी इच्छा नही रही। इन्द्रिय और मन को विश्रान्त कर दें तो यह है आत्माका एक परम तपश्चरण। और, इस ही परम तपश्चरणमें जो आत्मा रहेगा उसे त्रिलोकका ज्ञान उसके आत्मामें उत्पन्न हो जायेगा। अब फर्क यह है कि जब तक आकांक्षा है, चीजको जानने तककी भी इच्छा है तब तक वह परिपूर्ण स्पष्ट ज्ञान न होगा। और जब परिपूर्ण स्पष्ट ज्ञान है तब वहाँ किसी तरहकी इच्छा न रहेगी, जानने तककी भी इच्छा न रहेगी, ऐसा पहिले समझलें, नही तो कोई मुझे तीन लोकका ज्ञान हो जायगा इसलिये मैं इन्द्रिय और मनसे कुछ नही जानना चाहता हू, ऐसे भावसे, जानकारीसे इन्द्रिय और मनकी जानकारीको दबायें, विश्रान्त करें तो उससे सिद्धि न होगी। मूलत यह भाव आये कि मुझे कुछ भी जानने से प्रयोजन नही। अन्यकी बात तो दूर जाने दो सुख, आकांक्षा भोग, साधन ये तो दूर ही रहो, मुझे तो कुछ जानने तक की भी इच्छा हो। स्वय शान्त होकर जैसे यह रह सके सो रहे ऐसी साधनाका फल है जो पारमार्थिक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न हो रहा है। पारमार्थिक प्रत्यक्षमें अवधिज्ञान व मन पर्ययज्ञान विकल हैं केवलज्ञान सकल है ? अर्थात् कुछ ज्ञान तो अधूरे हैं, समस्त तीन लोक, तीन कालके पदार्थोंको नही जान सकते और जबकी सकलज्ञान, केवलज्ञान, परिपूर्णज्ञान है।

परोक्षज्ञानके भेदोंका स्मरण – परोक्ष ज्ञानके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान आगम ऐसे ५ भेद कहे गए हैं। पहले जाने हुए पदार्थका ख्याल आना सो स्मरण ज्ञान है पहले जाने हुए पदार्थका स्मरण होना और सामने उपस्थित पदार्थका

प्रत्यक्ष होना इन दोनोंके मेलमे उस ही से सम्बन्धित जो ज्ञान होता है वह प्रत्यभिज्ञान है। जैसे यह वही पुरुष है जिसे बम्बईमें देखा था, अथवा यह पुरुष उस ही पुरुषके समान है, यह लडका अपने बापकी तरह है ये सारे ज्ञान प्रत्यभिज्ञान हैं। तर्क ज्ञानमे तर्क वितर्क विचार चलते हैं तर्कका आधार है अविनाभाव इसके बिना यह नही हो सकता इसलिए यह है तो वह जरूर है। इस ही आधारपर सब कानून नियम धारा, सब इसके आधारपर बने हैं, कोई किसी पद्धतिसे अनुमान ज्ञान कहते हैं एक चीजको देखकर दूसरेका अनुमान बनानेका। दूसरेका सच्चा ज्ञान करना। अदाजा करनेको अनुमान नही कहते किन्तु साधन देखकर साध्यका दृढतासे ज्ञान करनेको अनुमान कहते हैं आगम है भगवत्प्रणीत शास्त्र वचन।

परिच्छेद्य वस्तुकी सामान्यविशेषात्मकता—इन सब ज्ञानोका सविस्तार वर्णन करनेके बाद ज्ञेय पदार्थका जानना भी जरूरी है इस कारण यह प्रश्न किया गया था कि उस ज्ञानके द्वारा जो कुछ जाना जाता है वह पदार्थ किस तरहका होता है, क्या होता है, ज्ञानका विषय क्या है ? तो उत्तर दिया कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ ज्ञानका विषय है। जितने भी लोकमे पदार्थ दृष्टिगत होते हैं अथवा जाननेमे आते हैं वे सब पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं। सामान्यके मायने वह धर्म जो धर्म अन्य पदार्थोमे भी मिले और उसमें भी मिले, विशेषके मायने वह धर्म जो धर्म उस हीमे मिले। ऐसी बात सब पदार्थोंमे है या नही ? सबमे है। आप कहेंगे कि आत्मा और पुद्गल इनमे तो कुछ मेल ही नही बैठता। रूप, रस, गध, स्पर्श वाले ये सारे भौतिक पिण्ड पुद्गल और कहाँ यह अमूर्त चेतन आत्मा, इन दोनोमे सामान्य धर्म कौन सा हो जायगा ? तो इसका उत्तर सुनिये ६ तो सामान्यगुण हैं ही। तत्व, वस्तुत्व, द्रव्य व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व। इनकी तो पूर्ण समानता है जीवमें पुद्गलमे। और और कुछ भी उपभेद बताये जा सकते हैं। तो सामान्य विशेषात्मक सभी पदार्थ होते हैं यह तो हुआ एक कथन विस्तार रूपसे तिर्यक रूपसे। अब आयतरूपसे भी सामान्य विशेषात्मक समझ लीजिए अभी तो अनेक पदार्थोंमें जो एक साथ मौजूद हैं उनमे सामान्य विशेषात्मककी बात कही। अब एक ही पदार्थमे सामान्यविशेषात्मक क्या है सो समझिये। एक ही आत्मा अनादि अनन्त सदा शाश्वत् वहीका वही है, उसमें जो चैतन्य आदिक शाश्वत धर्म हैं वे वहीके वही हैं। इस तरह तो उसमे सामान्य बात पाई गई, पर कभी तिर्यञ्च है, कभी नरक है, कभी मनुष्य है, कभी देव है, कभी कुछ है, कभी भगवान भी बनेगा, उसके बाद फिर दूसरा भव नही होगा पर भेद तो हुआ ये सब विशेष हैं। यह विशेष पहिलेके विशेषमें नही पाया जाया। यो सामान्य विशेषात्मक आत्मा है। यो ही सामान्य विशेषात्मक सभी पदार्थ हैं।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थमे बुद्धिभेदको वस्तुभेद मानकर विशेषवाद मे पदार्थ व्यवस्था—पदार्थोंके सामान्य विशेषात्मक पनेकी बात सुनकर वैशेषिकोसे न

रहा गया और उन्होने अपनी बात रखी कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक नही होते, किन्तु सामान्य भी एक पदार्थ है, विशेष भी एक पदार्थ है। और जिस चीजमें तुम सामान्य विशेषपना जोड रहे हो वह भी एक पदार्थ है। तुम सामान्य विशेषात्मक बात किसमे जोड रहे हो ? द्रव्यमे, पदार्थमे। लेकिन यह जानो कि इस द्रव्यमें जिसे आप समूचा एक झलकमे देख रहे हो और मान रहे हो वह भी एक नही है। यहाँपर तीन चीजें हैं द्रव्य गुण और क्रिया। तुम द्रव्य, गुण, क्रियाके मेल वाले किसी एक पिण्ड को एक मानकर उसे ही सामान्य विशेषात्मक मान रहे हो तो ऐसी बात नही किन्तु यहाँ तो अब ६ चीजें हो गयी। जिसे तुम एक निरख रहे हो किसी भी एकको जिसको तुम देखते वह ६ चीजोका पिण्ड है द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, इन ५ का तो जिक्र ही था, लेकिके ये ५ निराले निराले रहे ऐसा बोध तो नही हो रहा इसलिए एक समवाय भी साथमे लगा हुआ है। यों ६ पदार्थोंकी व्यवस्था बताने वाले वैशेषिको के प्रति पहिले कहा गया था कि उन ६ पदार्थोंमेंसे जो द्रव्य पदार्थ है, जिनके ६ भेद किए गए हैं उनका जैसा स्वरूप वर्णित किया गया है विशेषवादमे, वह सिद्ध नही होता। तो द्रव्य नामक पदार्थका निराकरण करनेके बाद अर्थात् सामान्य विशेष रहित, गुण क्रियासे भिन्न, अव्याप्ति अतिव्याप्ति दोपयुक्त जो द्रव्यका स्वरूप बताया जा रहा था और उनकी सख्या कही जा रही थी, उन सबका निराकरण किया जा चुका है। अब गुण पदार्थकी मीमासा चल रही है।

गुण पदार्थकी मीमासा समझनेके लिये तथ्यभूत किञ्चित् ज्ञातव्य— गुण कोई पदार्थ नही है यद्यपि गुणका व्युत्पत्त्यर्थ है गुण्यते भिद्यते इति गुण। जो अलग करदे उसे गुण कहते हैं। लेकिन यह अलग करना, अलग होना केवल बुद्धिमें है पदार्थमें नही है। जब हम एक पदार्थको देख रहे हैं, यह बेन्च है और उसे देखते ही यह समझमे आता कि इसका रग तो अच्छा है। देखो इस बेन्चमें जो यह हरा रग है वह कितना सुहावना लगरहा है लो ऐसा कहनेमें बेन्च और रंगमें भेद डाल दिया बेन्च में रग है ठीक हैं। कटोरदानमें लड्डू है। जैसे उस आधार आधेयमें भिन्नता है तो आधार आधेयपनाकी मुद्रा बनाकर जो बेन्चमें रूपकी बात कही है तो क्या कटोरेमें लड्डूकी तरह है ? क्या यो भिन्न है ? अभिन्न होनेपर भी हम अपनी समझमे उसका भेद कर लेते हैं। सो अभेद होनेपर भी बुद्धि द्वारा जिसकी बुद्धि के अनुरूप भेद किया जाय उसे गुण कहते हैं। लेकिन गुणके इस लक्षणपर विशेष ध्यान न देकर जिसमे जैसी कुछ समझ आयी गुण कह बैठते हैं। गुण होते हैं शाश्वत, अनादि अनन्त, लेकिन लोग भी व्यवहारमें जिस चाहेको गुण कह देते हैं। और, की तो बात जाने दो, अवगुणको भी गुण कह देते हैं। तो यो ही गुणका ऊपरी लोकरूढ़ि भाव लेकर गुणोकी सख्या बतायी गई है विशेषवादमें कि गुण २४ प्रकारके होते हैं। उनका यह २४ प्रकारका बधन बांधना इतना महगा पडेगा कि न तो २४ सख्याकी सिद्धि बनेगी और न उन गुणोके स्वरूपकी सिद्धि बनेगी। गुण न २३ होते न २५।

बाह गुणोकी सख्याका बन्धन क्योकि गुणोकी सख्याका कोई बन्धन ही नही । बन्धन तो वहाँ बने जब कोई सद्भूत निराली चीज हो । जैसे डलियामे केले रखे हैं, उनको गिनकर कह देगे कि १५ केले है, ठीक है, वह बद्ध पिण्ड है, सख्या बन गयी, पर गुण नाम तो उनका है कि जो भी पदार्थ है अखण्ड, पदार्थ अनगिनते होते ही हैं, उन पदार्थोंका स्वरूप जाननेके लिए उनकी जो खासियतें बतलायी जाती हैं उनका नाम गुण है सो खासियतोकी दृष्टि जो जितना जानकार है उतना ज्यादह बना लेगा । तो गुणोमें सख्या नही बन सकती ।

गुणोकी सख्याके व्यवहारका आधार और उसके विरोधमे गुणोकी अनर्गल सख्याका विधान—समझनेकी जितनी सीमा है और उस सीमामे गुणोकी जितनी सीमा है और उस सीमामे गुणोकी सख्या बतायी गई है जैसे पुद्गलमे चार गुण हैं रूप, रस, गध, स्पर्श। पर ये समझनेके लिए बनाये हैं । सख्या नियम सही करके न कहा जायगा कि पुद्गलमे चार ही गुण हैं । हैं गुण चार समझनेके क्षेत्रमे चार गुणोका बताना पर्याप्त है और उससे फिर व्यवहार भी ऐसा ही चला, उपदेश पद्धति भी यो रही । आत्मामे गुण कितने हैं ? दो हैं ज्ञान और दर्शन । तो कोई कहता ३ हैं—श्रद्धा, ज्ञान चारित्र । कोई कहता चार हैं ज्ञान दर्शन, आनन्द शक्ति । अरे जो जितने कहे सबकी बात ठीक है आखिर अखण्ड पदार्थमे खासियते निरखी जा रही हैं जिससे कि हमें अखण्ड पदार्थका परिचय हो जाय । तो गुणको तो ऐसा असीम रखना था और जाननेके प्रयोजनवश उसमे परख करते जाते, पर ऐसा न किया जाकर द्रव्यो की भाँति गुणोकी भी सख्या नियत की गई है विशेषवादमे और वे गुण बताये गए हैं २४ प्रकारके । गुणोकी सख्याको बताने वाला वैशेषिक सूत्र है "रूपरसगधस्पर्शा सख्यापरिमाणानि पृथक्त्व सयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्धय सुखदु खे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्च तु गुणा । इस सूत्रमे १७ गुणोके नाम दिये गये है और च शब्द बोलकर ७ गुण और ऊपरसे लिए गए हैं । इस तरह गुणोकी सख्या २४ बनाई गई है । वे २४ गुण कौन है ? अलग-अलग नाम सुन लीजिए ! रूप रस, गध, स्पर्श, सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व बुद्धि, सुख, दु ख, इच्छा, द्वेष प्रयत्न ये १७ तो सूत्रोक्त हैं और सगृहीत है—गुरुत्व द्रवत्व, स्नेह, सस्कार, धर्म, अधर्म, शब्द । इस तरह ये २४ गुण कहे गए हैं पर इन गुणोकी सख्या स्वरूपकी व्यवस्था करने वाला कोई एक लक्षण तो हो, गुण किसे कहा करते है ? वह एक लक्षण कहा गया है—'द्रव्याश्रयानिर्गुणा गुणा । इस लक्षणको स्याद्वादी भी मानते हैं और विशेषवादी भी । जो द्रव्यके आश्रय तो रहता हो, पर जिसमे और गुण न पाये जाते हो उसे गुण कहते हैं । जैसे पृथ्वी द्रव्य है, इसमें रूप पाया जाता है पर रूपमें और कुछ नही पाया जाता । वह रूप इकला ही गुण रूप है । इसलिए रूप गुण हो गया । गुणका यह लक्षण किया जा रहा है और इस लक्षणके माध्यमसे भी यदि बात चलती रहती तो भी ठिकाना रहता, लेकिन यह गुणका लक्षण भी टूट जाता है । इन २४

गुणोका जब विश्लेषण करेंगे तब समयपर विदित होगा।

शकाकार द्वारा रूप रस गध स्पर्श गुणकी व्यवस्थाका प्रस्ताव—अब यहाँ शकाकार कहता है कि गुण २४ ही हैं। उनमेंसे जो पहिले चार बताये हैं रूप, रस, गध, स्पर्श, सो देख लो ना, रूप द्रव्यके सहारे है। रस, गध, स्पर्श द्रव्यके सहारे है और इन गुणोमे अन्य गुण पाये नही जाते इसलिए गुण सही है और जानकारीमे भी स्पष्ट आ रहा है। देखा! रूप चक्षुइन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आना। आँखे खोलकर देखा! जो समझमे आया वह क्या है? रूप ही तो है। और, वह रूप पृथ्वी, जल, अग्नि इन तीनमें रहता है। वायुमे रूप नही रहता, रहता हो तो बताओ। इस समय जो हवा चल रही बताओ वह काली, पीली, नीली आदि किन रगकी है? अर हवामें रूप गुण नही है, रूप गुण है पृथ्वी, जल और अग्निमे। और, दूसरा गुण है रस। रस जाना जाता है रसना इन्द्रियसे जिह्वासे। और यह गुण मिलेगा दो द्रव्योमे पृथ्वी और जलमे। वायुमे रस नही। बताओ यह वायु जो चल रही है वह मीठी है कि कडवी? और, अग्निमे रस हो तो अग्निकी लपटें खा कर बताओ तो सही कि वह मीठी लपट है कि कडवी आदिक? तो रस दो द्रव्योमें रहा पृथ्वी और जल इनमें गध घ्राणेन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे आता। और, यह गध केवल पृथ्वीमे मिलेगी अन्य तीन द्रव्योमे न मिलेगी। वायुमे केवल स्पर्श है। कभी हवाके झकोरोसे गध मालूम होती है तो उसमें जो पृथ्वीके कण चले आये हैं हवा द्वारा उसकी गध है। कभी जल जलमे गध आने लगती है तो जलमें जो पृथ्वीके कण पडे हैं माम, मिट्टी पृथ्वी, लोहू आदिक, ये सब पृथ्वी कहलाते हैं उनकी गध है। तो गध घ्राण इन्द्रियके द्वारा ग्रहण मे आती है और वह पृथ्वीमे ही रहती है। स्पर्श—स्पर्श इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमे आता है और वह स्पर्श पृथ्वी जल अग्नि, वायु इन चारोमे है। इस तरह देखो! व्यवस्था भी सही समझमे आ रही है। लोगोको ऐसा लग भी रहा है कि पृथ्वी ठढी है पानी ठढा है, आग गर्म है हवा ठढी है, गर्म है आदि। तो इस तरह रूपादिक चार गुणोकी व्यवस्था है लोगोको स्पष्ट समझमे भी आता है और तुम उसे मना करते हो कि यह गुण कोई लाक्षणिक नही है और इसमे अटपटापन है। कैसे है अटपटापन? इस तरह शकाकार रूप, रस, गध स्पर्श गुणोकी सिद्धि कर रहा है।

विशेषवादसम्मत रूपादि गुणोकी व्यवस्थाकी मीमासा—शकाकार रूप रस गध स्पर्शको गुण तो मानता है, किन्तु इसके माननेमे दो तीन बातोका अन्तर है—रूप, रस, गध स्पर्श हैं तो गुण स्याद्वादियोने भी माना है। पुद्गलका रूप, रस, गध, स्पर्श गुण है, किन्तु स्याद्वाद-सम्मत तो गुण इस प्रकार है जैसे कि पुद्गल द्रव्य सदा स्थायी रहता है तो द्रव्यके रूपशक्ति रसशक्ति, गधशक्ति, स्पर्शशक्ति भी सदा रहती है और फिर उस रूपमे जो व्यक्तरूप होता है—काला, पीला, नीला, लाल सफेद आदिक ये रूप गुण नही है, किन्तु रूप गुणकी परिणति है। इसी

प्रकार जो व्यक्त है रस खट्टा, मीठा, कडवा, चरपरा, कषायला आदिक ये रस गुण नही है, किन्तु रस गुणकी परिणति है, व्यक्तरूप है, पर्याय है। गध गुणमे भी सुगध और दुगध ये दो गुण नही है किन्तु गध नामकी शक्तिकी पर्याय है। स्पर्शके जो व्यक्तरूप है--ठडा, गरम, रूखा, चिकना आदिक ये स्पर्श गुण नही है किन्तु स्पर्शगुण की पर्याय है। गुण और पर्यायमे अन्तर क्या है? जैसे आत्मामे श्रद्धा गुण है वह सदा रहता है पर कभी मिथ्यात्व हो गया फिर सम्यक्त्व हो गया तो यह मिथ्यात्व, सम्यक्त्व श्रद्धागुणकी पर्याय है। जैसे अगुली एक द्रव्य है और सीधी हुई टेढी हुई यह अगुलीकी पर्याय है। पर्याय मिट जाती है गुण नही मिटता। जैसे कालापन मिट जाय और नीलापन आ जाय तो यह तो बदल हो गई पर्यायोकी पर जो रूपशक्ति है उसकी बदल नही होती। रूपशक्तिका परिणमन अब नीलापन हो गया। कालेपर नीला पोत दिया जाय उसकी बात नही कह रहे किन्तु स्वय जो काला है वही अपने आप नीला हो जाय जैसे आम सबसे पहिले काला होता है। जब बौरमे सरसोके दाने बराबर आमका फल रहता है तो उसका काला रूप होता है और अपने आप ही वह थोडा बढा कि नीले रूपमे आ जाता है। तो पर्याय अलग चीज है, गुण अलग चीज है, लेकिन वैशेषिक सिद्धान्तमे सब गुण कहलाते हैं। जो पर्याय हैं स्निग्ध रूक्ष वगैरह ये सब गुण ही हैं, सो कोई गुण नित्य होता है कोई गुण अनित्य होता है ऐसा कह कर अपनी व्यवस्था बनायी जाती है, किन्तु गुण जितने हैं वे सब नित्य ही होते हैं, गुणकी जो पर्यायें हैं वे अनित्य होती हैं एक अन्तर तो यह है स्यादवादियोके गुण सिद्धान्तमे और विशेषवादियोके गुण सिद्धान्तमे अब दूसरा अन्तर सुनिये।

रूपादिगुणोकी विकलरूपसे रहनेकी व्यवस्थाकी असिद्धि – स्याद्वाद व विशेषवादके गुणोमे दूसरा अन्तर यह है कि स्याद्वाद सिद्धान्तमे तो चार गुण प्रत्येक पुद्गलमे एक साथ पाये जाते हैं। घट है वह खाया नही जाता मगर रस उसमे भी है। अग्नि है खायी नही जाती मगर रस उसमें भी है। जो भी पौद्गलिक चीज है सबमे रूप, रस, गध, स्पर्श चारोके चारो एक साथ पाये जाते हैं, किन्तु विशेषवादमे यह वर्णन है कि गध केवल पृथ्वीमें मिलेगी, जल अग्नि वायुमें गध नही है। रस केवल पृथ्वी और जलमे मिलेगा वायु अग्निमे नही। रूप पृथ्वी, जल, अग्नि तीनमें मिलेगा वायुमे नही और स्पर्श चारोमे मिलेगा। यह कथन सुननेमे तो भला लगता है कि बात कुछ सच सी लग रही है। हवामें रूप क्या, आगमे रस क्या? तो ये हम लोगो को जो प्रकट जच रहे हैं उस अपेक्षाका यह कथन है, किन्तु युक्तिका कथन नही है। जहाँ रूप, रस, गध, स्पर्शमे एक भी शक्ति पायी जायगी वहाँ चारोके चारो होगे यह नियम है। हमे चाहे एक जचे, दो जचें या चारो जचें। जहाँ एक है वहाँ चारो हैं, और युक्ति बताती है कि चारो धर्म न हो एक साथ पदार्थोंमें तो आपको विदित होगा कि हवाका भी पानी बन जाया करता है। कोई दो किस्मकी हवा मिलायी और पानी बन जाता है तो उपादान तो हवा है अन्यथा पानी बना कैसे? उन हवाओसे। तो

पानीमे जो रस आया वह कहाँसे आया ? रस यदि कारण उपादानमें है तो कार्यमे है तो कार्यमे आ सकता है और कारण उपादानभूतमे रस न था तो किसी भी प्रकार कार्यमें रस नही आ सकता। इससे सिद्ध है कि हवामे रस है। यह अनाज पृथ्वी कहलाती है वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार। यहाँ वनस्पति पदार्थ तो नही माना गया। जितने पेड हैं अकुर हैं फल हैं, फूल है ये सब पृथ्वी हैं। यदि पृथ्वीको खाया मायने दृष्टान्तमें जो खाया, जोमे हवा बनती है। कोई आदमी केवल जौ की ही रोटी बना कर खा ले तो उसके पेटमे हवा बहुत बनती है तो बताओ खाया तो पृथ्वी है और बनी उससे हवा है तो यह हवा आयी कहाँसे ? कारण उपादानमें जो गुण नहीं है वह कार्यमे व्यक्त नही हो सकता। तो पृथ्वीमे हवा है। कभी जगलमे बाँसोकी रगडसे अग्नि पैदा हो जाती है तो अग्नि काय हुआ और वह उत्पन्न होती है पृथ्वीसे बाँस पृथ्वी है तो अब इसमें रूप आ गया ना अग्निमें विशिष्ट रूप माना गया है तो यह रूप आ कहाँसे गया ? अग्निका उपादान जो बाँस है, पृथ्वी है उसमे यदि वह रूप नहीं है तो रूप कहाँसे आ सकेगा ? तो सिद्ध है कि पृथ्वीमे रूप भी है तो युक्तियोसे यह सिद्ध है कि रूप, रस, गध, स्पर्श इन ४ गुणोमेंसे एक भी गुण हो तो हाँ चारोके चारो पाये जाते हैं। ऐसा वर्णन करना युक्त नही कि रूप केवल तीनमे ही पाया जाता। वायु भी रूपादिमान है पौद्गलिक होनेसे, स्पर्शवान होनेसे। जहाँ स्पर्शगुण मिला वहाँ सभी गुण हैं। विशेषवादमें स्पर्शगुण चारोमें है, जहाँ स्पर्श है वहाँ शेष तीन भी अवश्य हैं। इस तरह ये चारो भी चारो गुणोसे युक्त हैं। तो जब पुद्गल व रूप, रस गध, स्पर्श वाले हो गए तो उनमे विकारका नियम बनाना कि गध केवल पृथ्वीमे है रस केवल पृथ्वी जलमें है, रूप केवल पृथ्वी, जल, अग्निमें है, स्पर्श चारोमें है, यह नियम बनाना युक्त नही है।

रूपादिगुर्णोके आविर्भाव व तिरोभावकी युक्तता—रूपादिगुणोका आविर्भाव तिरोभावकी बात कहो तो वह ठीक है, विरुद्ध नही है। पृथ्वीमें गधका आविर्भाव नही, अथवा रसका आविर्भाव है तो उससे स्पर्शका आविर्भाव नही। प्रथम तो पृथ्वीमे चारों ही व्यक्त मालूम देते हैं। जैसे कोई फल उठाया या कोई कही चीज ली, कोई कहा फल खाया, मानो मसूरीकी बिरवटी खा ली उसमें गध भी आती है रूप भी है। वहाँ ऐसा विश्लेषण वैशेषिक लोग कहते हैं कि पृथ्वीमें जो रूप नजर आ रहा है वह अग्नि तत्त्व है, रस जल तत्त्व है, गध पृथ्वी तत्त्व है। ऐसा भी कोई कोई लोग कहते सो यह सब उन मतव्य कथन है। जहाँ जो चीज ज्यादह भली लगी, जो अधिक जचनेमे आयी उसको ही मान लेना युक्तिसिद्ध बात नही है। आविर्भाव तिरोभावकी बात देखो तो वह युक्त है। जैसे गरम जल है। गरम जलमे अग्नि तत्त्वका सम्बन्ध हुआ ना तो उसमे भासुररूप होना चाहिए, क्योंकि अग्निका सम्बन्ध हो गया। जैसे अग्निमे भासुररूप है चमकदार रूप है इसी तरह जलमें भी भासुररूप माना हैं वैशेषिक सिद्धान्तने, किन्तु तिरोभाव रूप माना है। तो अब देखिये ना कि जलमें अग्निके

भासुररूपका तिरोभाव है, रह है तो सही, अथवा स्वर्णको ये मानते हैं कि अग्निका पहिला बेटा सोना है। ऐसा उनके सिद्धान्तमे कहा है कि अग्निका जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह पहिला पुत्र है स्वर्ण। तो स्वर्णमें तैजसपना बिल्कुल साफ मान लिया गया, अग्नि तैजस है, और अग्निका पुत्र है सोना तो तैजसपना बिल्कुल प्रसिद्ध माना गया है। वह तैजसत्त्व तो बिलकुल तिराभूत है। उस स्वर्णमे जब अग्निका सम्बन्ध होता है तब उस स्वर्णमें अग्निका आविर्भाव होता है। जब सोना गरमकर दिया तभी तो उसमे उष्णस्पर्श है, लेकिन उष्ण स्पर्श तो पहिले स्वर्णमे होना चाहिए, क्योंकि वह भी अग्निका लडका है। सो देखो शकाकारने स्वर्णमे उष्ण स्पर्शको तिरोभूत माना है कि स्वर्णमे उष्ण स्पर्श दबा हुआ है अग्निके सम्बन्धमे उसका आविर्भाव होता है। तो यो कभी कोई गुण प्रकट होता है कभी कोई दब जाता, यह बात तो हम मान सकते हैं, लेकिन किसीमे तीन ही गुण हों, दो ही हों एक ही हो, यह बात नही मानी जा सकती, क्योंकि जिसमे एक गुण है फिर उसमे त्रिकाल भी कोई दूसरा गुण नही आ सकता, इस तरह रूप, रस, गंध, स्पर्श गुणके बारेमे जो वैशेषिक सम्मत स्वरूप है वह स्वरूप घटित नही होता।

गुण गुणीमे बुद्धिकृत भेदका वर्णन—गुण और गुण पर्याय ये तो समझने के लिए बुद्धिके द्वारा भेद किए गए, किन्तु एक बुद्धिके द्वारा भेद करना और एक वस्तु मे भेद होना, ये दो अलग-अलग विषय हैं। जैसे आजकलका नया पैसा एक पैसा कहलाता है। एक पैसासे भी छोटा कुछ और होता है क्या ? अभी तक तो कोई मुद्रा नही निकली। तो एक पैसामे छोटा कुछ नही। रकममे छूनेमे, लेनदेनमे एक पैसासे छोटा कुछ नही है, लेकिन बुद्धि द्वारा तो उसमें भी भेद है आधा पैसा, पाव पैसा, एक एक पैसेका सैकडवा हिस्सा, एक पैसेका हजारवाँ हिस्सा। कोई गणितका हिसाब आ जाय तो उसमे एक पैसका हजारवाँ हिस्सा बताया न जायगा क्या ? बताया जायगा, पर वस्तुमे तो कोई हिस्सा नही है। यह एक मोटा उदाहरण दिया है। एक समयमे एक परमाणु १४ राजू गमन करता है। एक समयसे कम कोई समय होता है क्या ? लेकिन बुद्धि यह कह देगी कि जब अणु एक जगहसे १४ राजू तक गया तो उस परमाणुने रास्तेके सारे प्रदेशोको छुवा नही क्या ? और वहाँ क्रम नही हुआ क्या ? बुद्धि समयमे भेद डाल देगी, पर वस्तुत समयमे भेद है ही नही। बुद्धि ऐसी पैनी भेदक होती है कि जहाँ भेद नही वहा भेद डाल देती है। यही हाल यहा हो रहा है कि पदार्थमे और रूप, रस, गंध, स्पर्शमे भेद नही है लेकिन बुद्धिने भेद डाला है। स्याद्वाद तो यह कहता है कि पदार्थमे और गुणमे, द्रव्यमे और गुणमें बुद्धिका भेद है, वस्तुत भेद नही, पर विशेषवादमे यो माना है कि द्रव्यमे और गुणमे वस्तुत भेद है, तो किसी एक वस्तुको समझनेके लिये जब उसमें विशेषतायें बनाते हैं तो उनका नाम गुण है। जो ध्रुव विशेषतायें हैं वे गुण कहलाती हैं जो अध्रुव विशेषतायें हैं वे पर्याय कहलाती हैं। वस्तुत. द्रव्य और पर्यायमें भी पदार्थत भिन्नता नही है।

गुणत्वकी मीमासा– अब रूप, रस, गध, स्पर्श चार गुणोंकी मीमासा करनेके बाद ५ वॉ गुण विशेषवादमे कहा है सख्या । १, २, ३, ४ आदिक जो सख्यायें चलती हैं उनको भी लोग गुण कहते हैं । यह गुण है द्रव्यका । सुननेमे कुछ भलासा जचेगा कि ठीक कह रहे वे लोग कि सख्या भी गुण है । देखा ना ! चार चीजें पडी हैं और कहते हैं कि वे ४ हैं । तो वह ४ क्या है ? गुण है । लेकिन यहाँ गुणका अर्थ समझ लीजिये ! पहिला तो अर्थ यह है कि जो द्रव्यके आश्रय हो और गुणरहित हो उसे गुण कहते हैं । और, सूक्ष्म दृष्टिसे यह समझ लीजिये ! जैसे एक गुणमें डिग्रियाँ पा ली जायें, पर्यायरूप होनेके लिए कमी वेशी पाई जाय उसे गुण कहते हैं । जैसे रूप गुण है और रूप गुणका परिणमन हुआ है मानलो एक लाल परिणमन तो उस लाल में कितनी डिग्रियाँ होती हैं ? कम लाल, तेज लाल और विशेष लाल । यो उसमे लाखो डिग्रियाँ हो सकती हैं । तो रूप शक्तिमें ये डिग्रियाँ पडी हुई हैं और उसमें उनका उस समय विकास होता है । आत्मामें गुण है । ज्ञान गुणमें डिग्रिया हैं कि नही ? हैं भी तो किसीको कम ज्ञान है, किसीको ज्यादह ज्ञान है और किसीको बहुत अधिक ज्ञान है । तो उनमें डिग्रियाँ पाई गई । वे गुण कहलाती हैं । इन दो बातोका ध्यान करके और गुणत्वके निर्णय करनेसे यथार्थताके परिचयको बहुत मदद मिलती है । तो वैशेषिक सम्मत अब गुण समुदायकी मीमांसा की जाती है ।

सख्याकार द्वारा सख्याके गुणत्वकी सिद्धि—शकाकार कहता है कि सख्या वास्तवमे गुण है । १, २, ३ आदिक व्यवहारका कारणभूत है और उस सख्याका स्वरूप मुद्रा कलेवर, एकत्व, द्वित्व, त्रित्व आदि यही है, जैसे कोई पदार्थ होता है ना, तो उसका कोई रूप होता है मुद्रा होती है । जैसे बेञ्च है तो इतनी लम्बी चौडी इस ढङ्गकी है, तो उस सख्याकी क्या मुद्रा है ? उसका क्या रूप है ? कहते हैं कि एकत्व, द्वित्व, तृत्व यही उसका रूप है । और सख्या दो प्रकारकी होती है—एकद्रव्य और अनेक द्रव्य । जैसे एक ही चीजको निरखकर जानो कि १, यह भी तो एक सख्या हुई । यह सख्या एक द्रव्य है । चार चीजोंको देख करके सख्या की ४, तो यह सख्या अनेक द्रव्या है । अनेक द्रव्योंको विषय करके यह ४ सख्या बनी और यह सख्या प्रत्यक्षसे ही सिद्ध है । हर एक कोई झट यह कह देता है कि ये ५ अगुलिया हैं, २ बेन्च हैं, तो सख्या प्रत्यक्षसे सिद्ध भी हैं । और, भेदपद्धतिसे भी सिद्ध होता है । ४ केले रखे थे । एक केला किसीको दे दिया, अब ये ३ रह गए । पहिले ३ थे, अब २ रह गए और ४ मिल गए तो अब ६ हो गए, इस तरहका जो उन सख्याओंमें परस्पर भेद पाया जाता, उससे भी सिद्ध है कि सख्या कोई वास्तविक चीज है और वह गुण है, क्योंकि सख्याका और दूसरा गुण नही रहता । द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा. तीसरा प्रमाण यह है कि सख्या निमित्तान्तरकी अपेक्षा करती है । ४ तक गिन लिया, अब जब ५ वॉं गिनते हैं तो ५ सख्या जाननेके लिए हमे उन ४ का ख्याल रखना पडता है, उन ४ की अपेक्षा करनी पडती है, तब हम ५ बना पाते हैं । तो यह सख्या

निमित्तान्तरकी अपेक्षा भी करती है इस कारण यह वास्तविक चीज है। चौथी बात अनुमानसे भी सिद्ध है। किस तरह कि १, २, ३, ४ आदिक जो ज्ञान हो रहे हैं ये किसी विशेषके ग्रहणकी अपेक्षा करके होते हैं। मतलब कि १, २ आदिक जो ज्ञान हो रहे हैं सो १, २ आदिक संख्या है तब ज्ञान हो रहे। जैसे हमें बेन्चोंका ज्ञान हो रहा है तो बेन्च कोई चीज है तब ज्ञान हो रहा है चीज न होती तो हमें ज्ञान न होता इसी तरह १, २ आदिक जो ज्ञान हो रहे हैं तो १, २ कुछ है तब तो ज्ञान हो रहा। और वह क्या है ? संख्या। तो १, २ आदिक जो ज्ञान होते हैं वे विशेषणके ग्रहणकी अपेक्षा करके होते हैं। विषयका ग्रहण करते हैं ये ज्ञान १ २ आदिक। उनका विषय क्या है ? संख्या। क्योंकि विशिष्ट ज्ञान होनेसे दण्डीकी तरह। जैसे डण्डा वाला मनुष्य है, तो डण्डा वाला मनुष्य होता है तब ही तो यह ज्ञान हुआ। इससे सिद्ध है कि संख्या कोई वास्तविक चीज है और वह है गुण। तो वैशेषिकका यह ५ वां गुण संख्याको सिद्ध कर रहा है।

संख्याको गुण माननेकी आरेकाका समाधान—समाधानमें कहते हैं कि संख्या संख्येय पदार्थसे अतिरिक्त और कोई चीज नहीं पायी जाती। ४ केले कहा तो उन केलोंको छोड़कर ४ संख्या कोई अलगसे चीज नहीं है। उनमें हमने अपनी बुद्धिसे एक व्यवस्था बनाई है कि ये ४ हैं, ये ६ हैं। कोई संख्या नामका पदार्थ या गुण अलग से हो और उसके कारण यह संख्या चलती हो सो बात नहीं है। संख्या तो असत् है। जैसे गधेके सींग कोई वस्तु नहीं इसी प्रकार संख्या भी कोई वस्तु नहीं। जिन पदार्थों की हम गिनती करते हैं वे पदार्थ ही संख्याके रूपमें जाने जा रहे हैं। संख्या नामका कोई गुण अलग हो सो बात नहीं। देखो ! जैसे ये पदार्थ हमको दिख रहे हैं ऐसे ही संख्या भी हमको दिख रही है। इससे सिद्ध है कि संख्या पदार्थसे कोई अलग चीज नहीं है। देखते ही बता देते हैं—२ बेन्च। तो बेन्च दृश्य है और संख्या भी दृश्य हो गई है और संख्याको दृश्य वैशेषिकोंने भी माना है। विशेषवादका एक सूत्र है—संख्यापरिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि। इतनी चीजें रूपी पदार्थोंके समवायसे चाक्षुष बन जाती हैं क्या ? संख्या। ४ केले रखे हैं, तो संख्या जो ४ बनी वह केलेके सम्बन्धसे बनी, अतएव उसकी संख्या भी आंखों दिख गई। परिमाण नामका जो गुण है वह क्या आँखों दिखता है ? लेकिन रूपी पदार्थोंका सम्बन्ध पाये हुए है परिमाण, इस कारण परिमाण भी आँखों दिख गया। पृथक्त्व—यह बेन्च भीटसे अलग है—तो इसको पृथक्त्व गुण कहते हैं। यह पृथक्त्व गुण क्या आंखों दिखने वाला पदार्थ है ? लेकिन यह द्रव्यमें समवाय सम्बन्ध रखता है सो वह भी चाक्षुष हो जाता है। संयोग दो थे, मिल गए तो क्या हो गया ? संयोग हो गया। तो क्या यह संयोग भी आँखों दिखता है ? आंखोंसे तो यह और यह दोनों दिख रहे, किन्तु संयोगका समवाय है इस हाथमें इसलिए संयोग भी चाक्षुष हो गया। इसी तरह विभाग हो गए, टुकड़े हो गए। पहिले मिले हुए थे

और टुकडे हो गए तो यह विभाग भी देखो आंखों नजर आ रहा, क्योंकि रूपी पदार्थों में इसका समवाय है, सम्बन्ध है। इसी प्रकार छोटा बडा, जैसे कहते लहुरा और जेठा दो भाई है और उनमें यह बात दिख रही है तो चूंकि उन भाइयोंमें परत्व अपरत्वका समवाय है ऐसे ही वहाँ भी दो चीजें ही नजर आना चाहिए, किन्तु वह गुण है और रूपी पदार्थोंमें उनका सम्बन्ध है इस कारण परत्व अपरत्व भी नजर आजाते हैं। इसी प्रकार कर्म याने क्रिया भी रूपी पदार्थके समवायमें चाक्षुष है। तो देखा ! सख्याको भी चाक्षुष माना है। इससे सिद्ध है कि सख्येय पदार्थको छोडकर जिनकी सख्या बनायी जा रही है उन पदार्थोंको छोडकर अन्य का सख्या नही उपलब्ध होती वह ही पदार्थ सख्या रूपमें गुणबुद्धिमें आ जाता है। तो यह कहना कि प्रत्यक्षमें सख्या सिद्ध है, यह सख्या प्रत्यक्षसे सिद्ध नही, किन्तु प्रत्यक्षसे पदार्थ सिद्ध है और सख्या सख्येय पदार्थोंमें उस कालमें अभिन्न रूपसे बुद्धिगत है।

विशेषबुद्धिसे भी सख्याके गुणत्वकी असिद्धि – भेद बुद्धिकी जो बात शकाकारने कही है कि ४ से ३ अलग बात है, ३ से ५ अलग बात है, यह भेद बुद्धि होनेसे सख्या कई चीज है। तो वे ३–४ कहाँसे अलग हुए ? चीज अलग हुई, चीज मिली। ४ केलोसे एक केला अलग हुआ और सख्या जो है वह पदार्थोंके आश्रय है तो १ अलग होनेसे सख्यामे भी अलगाव बुद्धि आयगी। तो विशेष बुद्धि होनेसे सख्या कोई अलग चीज है यह बात न मिली। सख्याका भेद विषय नही है, सख्येयमें भेद बुद्धि हुई। लो अब ४ केलोंमेंसे १ केला निकल गया तब ही तो ४ से भिन्न कोई ३ बात समझमें आयी। तो सख्याओंमें जो परस्पर भेद नजर आते हैं वे सख्येयके भेद से भेद नजर आते हैं। सख्या नामका कोई गुण अलग नही है। कभी ऐसा भी लगता है कि चीज कुछ नही है, हिसाब जोड रहे हैं, गुणा भाग कर रहे हैं। ५५ में से ७ निकाल दिए, ४८ बचे। अब बताओ वहाँ चीज क्या अलग की जा रही है ? वहाँ तो केवल सख्या ही सख्यासे मतलब है, किसी चीजसे मतलब ही नहीं। लेकिन वहाँ भी जिसको चीजोंके आश्रयसे सख्या समझनेका अभ्यास बन गया वही पुरुष तो यहाँ कागजपर सख्याकी घटा बढीका हिसाब लगा रहा है। तो सामने कोई वस्तु गिननेकी नही है लेकिन गिननेका जो आश्रय है वह तो वस्तु ही है। और बचपनमें तो गोलियोंके सहारे खूब सीखा भी। अब ५ हो गए, १० हो गए आदिक। जो अभ्यास हो गया है कुछ सख्या सख्येय पदार्थके आश्रयका अभ्यास यहाँ काम दे रहा है। और इसमें भी छुपे हुए रूपसे सख्या मौजूद है जिसकी सख्या की जा रही है। किसी भी पदार्थकी सख्या हो १, २ यों यों करके ५५ हुआ करते हैं। कोई करोड चीजें बनानी हो तो यों एक–एक दो–दो करके बनानेमें तो दिन भर लग जायगा। लेकिन बुद्धिसे कलम उठाया और तुरन्त ही करोड बना लिया तो इतनी जल्दी चीजोंका गिनना कैसे बनेगा ? बुद्धि है एक बात, और ऐसा अभ्यास पडा हुआ है सख्येय पदार्थके आश्रयसे सख्याका ज्ञान करनेका कि न भी कोई चीज हो हिसाब कदाचित लगा रहे हैं वहाँ जो

संख्यामें भेद बुद्धि चल रही है वह संख्येय भेदसे भेद बुद्धि चल रही है। तो विशेष बुद्धि होनेसे भी संख्या भेद हो जाता है यह बात युक्त नहीं है किन्तु संख्येय पदार्थोंके भेद होनेसे संख्यामें भेद होता है। जहाँ गणित करते समय संख्येय पदार्थ कोई मौजूद भी नहीं है वहाँ पर उसके अभ्याससे वे संख्येय पदार्थ बने हुए हैं और उससे वह सब संख्या गणित व्यवहार किया गया है, इस तरह संख्या कोई गुण नहीं है किन्तु पदार्थ है, द्रव्य है उनमें संख्याका आश्रय चलता है।

गुणोमें भी संख्या गुणका व्यवहार होनेसे संख्याके गुणत्वकी असिद्धि और भी देखिये। संख्या केवल द्रव्य द्रव्यमें ही नहीं बनायी जाती गुणोमें भी संख्या बतायी जाती है। इसमें बहुत गुण हैं इसमें थोड़े गुण हैं तो बताओ कि गुणमें गुण तो नहीं हुआ करते। संख्या भी गुण है और गुण भी गुण है और गुणोमें संख्या लगायी जा रही और गुणका लक्षण बनाता है- निर्गुण तो गुणकी फिर संख्या कैसे बन गयी? गुणमें संख्या बन जाय क्रियामें संख्या बन जाय सामान्यमें संख्या बन जाय तो यह सब संख्या संख्येयमें बन ही जाती है, इसको छोड़कर अलग कुछ चीज नहीं है, उसमें ही संख्याकी बुद्धि की जाती है। संख्या नामका कोई गुण अलग नहीं है संख्या गुणकी तभी कल्पना की जा सकती थी जब कि संख्यामें ही प्रयुक्तकी जाती होती क्योंकि गुण द्रव्यके आश्रय ही माने गये हैं। अब यह संख्या गुण आदिके भी आश्रय हो गई।

अनुमानसे भी संख्या गुणकी असिद्धि शंकाकार कहता है कि अनुमानसे संख्याकी सिद्धि हो जाती है। अनुमान यह है कि एक आदिक जो ज्ञान होते हैं वे विशेषण अथवा विषयके ग्रहणकी अपेक्षा रखकर होते हैं विशिष्ट ज्ञान होनेसे। जैसे कि डंडी पुरुष तो डंडा और पुरुषका संयोग विशेष है। उस विशेषका ज्ञान हुआ तो विशेष के ग्रहण पूर्वक हुआ है, इसी तरह १, २, ४ आदिक जो ज्ञान होते हैं वे संख्याके ग्रहणकी अपेक्षा ही तो करते हैं। उससे संख्याकी सिद्धि हो जायगी। समाधानमें कहते हैं कि इस तरह भी संख्याकी सिद्धि नहीं हो सकती। १-२ आदिक प्रत्यय, ज्ञान तो गुणोमें भी होते हैं जैसे १ गुण, ४ गुण बहुत गुण। तो जैसे गुणोंके सम्बन्धमें होने वाले एक आदिक प्रत्ययको संख्याके बिना मान लिया गया है इसी प्रकार घट आदिक पदार्थोंमें भी एक आदिककी बुद्धि अपने आप हो जायगी संख्या गुणका सहारा मानने की जरूरत नहीं है। जैसे गुणोमें संख्या नहीं मानते, क्योंकि गुणोंमें संख्याको मान लेनेपर गुणोंमें गुण सिद्ध हो जाते हैं। गुण भी गुण है संख्या भी गुण है। और, गुणोंमें बन जाय संख्या तो गुणका लक्षण अघटित हो जाता है। इससे गुणोकी संख्या नहीं मानते वैशेषिक जन, तो इसी प्रकार असहाय केवल स्वतन्त्र अपना स्वभाव रखने वाले घट आदिक पदार्थोंमें भी १, २ आदिककी बुद्धि बन जायगी, फिर संख्या मानने से कोई प्रयोजन नहीं। यदि कहो कि गुणोंमें भी संख्या हो जाय तो क्या हर्ज है?

कहते हैं—नहीं, गुणोंमें सख्या सम्भव नही है। वैसे भी और वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार इस तरह कि गुण अद्रव्य हैं द्रव्य तो नही है। गुण तो गुण ही है। और सख्यो को द्रव्यके आश्रय माना है सख्याका आश्रय तो है कोई तो गुण गुणके आश्रय न रह सकनेसे सख्या गुणोंमें सम्भव नहीं होती, सख्या द्रव्योंमें ही सम्भव हो सकेगी वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार, सो कायदेसे तो गुणोंमें सख्या न लगना चाहिए यदि सख्याको गुण माना जाय तो मगर गुणोंमें भी सख्या लगती अवश्य है। तो जैसे एक गुण है, बहुत गुण हैं, यो गुणोंकी सख्या नही मानते और एकादिकी बुद्धि व्यवहार करते ही हो ऐसे ही घट आदिकमें भी सख्या गुण नही है और उसमे भी अपने आप बुद्धिसे, व्यवस्थासे वह सब गणनामे आ जाये।

गुणोमे एकत्वादि उपचरितत्वकी असिद्धि—यह भी नही कह सकते कि गुणोंमें एकत्व आदिकका ज्ञान उपचरित मान लिया जाय अर्थात् गुणोंमें जो सख्या है १, २ आदिककी, वह उपचारसे है यह बात यों नही मानी जा सकती कि जैसे घट पट आदिक द्रव्योंमें सख्या बिल्कुल निर्बाध सिद्ध होती है इसी प्रकार गुणोंमें भी सख्या बराबर निर्बाध सिद्ध हो रही है, इस कारण उपचार नहीं माना जा सकता और यदि आश्रयमे रहने वाली सख्या एक अर्थमें समवाय सम्बन्ध होनेके कारण गुणोमे उपचरित मान ली जाय तब फिर एक द्रव्यमे रूपादिक बहुत गुण हैं यह ज्ञान न बनना चाहिए, क्योंकि सख्याको तो मान लिया गया एकार्थ समवायी अर्थात् सख्या एक पदार्थमें समवाय सम्बन्धसे रहती है। अब यहाँ पदार्थ तो है एक और गुण देखे जा रहे हैं बहुत। तो सख्या जब एकार्थ समवायी मान ली तो फिर एक पदार्थमें एक सख्याका ज्ञान हो हो, क्योंकि सख्याका आश्रयभूत जो एक द्रव्य है उसमें बहुतकी सख्या नही है। आश्रयभूत द्रव्य तो एक है ना! जैसे कहा जाय कि पृथ्वीमे रूप, रस, गध स्पर्श चारो ही गुण हैं तो पृथ्वी तो एक है और स० मानी है एकार्थसमवायिनी, तो एकार्थमें एक स० उठे, उसमें बहुस० न उठना चाहिए। और, भी देखो, कहे जाते हैं ६ पदार्थ तो ६ तो हुई स० और पदार्थ हुए स०के आश्रयभूत, पर पदार्थ तो पदार्थ भी है, गुण भी है क्रिया सामान्य, विशेष, समवाय यो भिन्न ६ प्रकारके हैं और स० द्रव्यमें ही लगनी चाहिये गुण कर्म आदिकमे तो स० यो नही लग सकती कि स० है गुण और गुण रहता है द्रव्यके आश्रय। बाकी ५ पदार्थ तो द्रव्य हैं नही उन पदार्थोंमें ६ यह स० का ज्ञान होनेका कारण क्या है? प्रथम तो जब स० एकार्थ समवायी है अर्थात् एक एक द्रव्यमे ही लगती है तब फिर स० के साथ ६ पदार्थोंका तो किसी भी जगह समवाय नही हो सकता। इससे स० गुण नही कही जा सकती।

सख्यामे गुणत्वकी असिद्धि—कदाचित् मान लो कि स० गुण है या स० को मान लो कि है कुछ चीज ना स०में गुण न की सिद्धि कैसे होगी? क्योंकि गुण स० तो छहो पदार्थोंमें प्रवृत्त हुई ना! और गुण कहते हैं उसे जो द्रव्यमे रहे जैसे—

सत्त्व छहों पदार्थोंमे लगा हुआ है ! किसीमे स्वय लगा है, किसीमे समवाय सम्बन्धसे लगा है, पर सत्त्वकी प्रवृत्ति छहो पदार्थोंमे है उसी तरहसे स० की प्रवृत्ति भी छहो पदार्थोंमें है। १ सामान्य २ सामान्य गोत्व, मनुष्यत्व इत्यादि रूपसे सामान्यमे भी गिनती चल सकती है। विशेषोमे तो गिनती चलती ही है, क्रियामें भी गिनती चलती है। गुणोमे गिनती तो चला ही करती है, १० गुण, ४८ गुण आदि। तो केवल द्रव्य मे ही तो स० नहीं है अन्य पदार्थोंमें भी स० है, इस कारणसे सख्यामे गुणपनेकी सिद्धि नही होती।

सख्याकी असमवायिकारणता व अनित्यताके हेतुमे सख्याको गुण सिद्ध करनेकी शका— शकाकार कहता है कि यदि सख्या गुण न हो तब फिर सख्या मे अनित्यपना और सख्याका असमवायि कारणपना नही बन सकता और अनित्यपना असमवायि कारणपना ये दोनो हैं अवश्य। सख्या अनित्य तो यों है कि जैसे जिस चीजकी गिनती की जा रही है वह चीज ही मिट जाय तो सख्या कहाँ विराजेगी जैसे १० कोयलें हैं और वे जल गए तो १० कहाँ रहेगे ? और असमवायि कारणपना यो है कि १० जानने के बाद ९ जानना पहिले आवश्यक रहा, ९ जाननेके लिए ८ जानना आवश्यक रहा प्रयोजन यह है कि एकजाननेके बाद जो दो जाना जाता है तो द्वित्व सख्या जाननेका असमवायिकारण एक सख्या है। अगर एक न समझा होता तो दो कि समझ कहांसे होती ? तीन सख्या बननेके लिये २ सख्या असमवायिकारण है। तो उत्तरोत्तर सख्याकी निष्पत्ति उसके पूर्व सख्याके कारणसे होती है। तो सख्या वास्तविक पदार्थ है। और गुण है तभी तो उसमें अनित्यपने की बात और असमवायिकारणपने की बात सिद्ध होती है। आगममे भी कहा है कि एक आदि व्यवहारका जो हेतु हो उसे सख्या कहते हैं। सख्या दो प्रकारकी होती है—१ एक द्रव्य वाली और (२) अनेक द्रव्यवाली। एक द्रव्यवाली जो स० है वह तो नित्य भी होती है और अनित्य भी होती है। जैसे जल आदिकके रूप ये नित्य हैं, जल बना है परमाणुवोंसे और जल आदिकके रूप आदिक जो गुण है वे नष्ट हो सकते हैं पर जो आदि परमाणु है वह नित्य है। वह नष्ट नही होता। तो इसी प्रकार आदि परमाणु द्रव्यके सहारे रहने वाली जो एक स० है वह सदा नित्य है और द्वयणुक कार्यके लिए पृथ्वी आदिक दृश्यमान पिण्डोंके आश्रय होने वाली जो एक आदिक सख्यायें हैं वे सब अनित्य होती हैं। तो एक द्रव्य वाली जो सख्या है वह इस प्रकार नित्य और अनित्यकी निष्पत्ति पूर्वक है। और, अनेक द्रव्य वाली सख्या वह दो आदिक है और वे परार्द्ध तक सख्यायें चलती हैं। तो उस सख्याकी निष्पत्ति अनेक विषयकी बुद्धि सहित एकत्वसे होती है द्वित्व आदिक सख्याके प्रति अपेक्षा बुद्धि कारण पडती है सो एकत्व सख्या असमवायि कारण बनती है।

कारणत्रयसे कार्य सिद्धिवत् सख्याकी उपपत्तिके कारणत्रयका शका-

कारका कथन—सख्याकी निष्पत्तिके लिए तीन कारणोंकी जरूरत हुई समवायि कारण, असमवायि कारण और निमित्त कारण। जैसे किसी डलियामें १२ केले रखे हैं तो उन समस्त केलोंमे जो एक सख्या विदित हुई सो १२ सख्याकी उत्पत्तिका समवायि कारण तो ये केला ही हैं स्वय जो कि डलियामें रखे हुए हैं और असमवायि कारण १२ सख्याके लिए ११ है अर्थात् ११ सख्या बननेपर १२ संख्याकी उत्पत्ति हुई लेकिन उन केलोंको देखकर जाना कि ये १२ हैं तो अभ्यास और सस्कारमें कारण शीघ्र एक दो तीन आदिक क्रमसे बुद्धिमें सख्या आ जाती है। तो जब २ जाना तो १ सख्याका असमवायि कारण १ है। ३ जाना तो उसका असमवायि कारण २ है, इसी तरह १२ जाना तो उसका असमवायि कारण ११ है। तो उत्तर उत्तर सख्याकी निष्पत्तिमें पूर्व-पूर्व सख्या असमवायि कारण बनती चली गयी। तो समवायि कारण हुआ वह द्रव्य जिसकी सख्याकी जा रही है और असमवायि कारण हुई पूर्वकी सख्या और निमित्त कारण है अपेक्षा बुद्धि। साथ ही साथ उनमें अपेक्षा बुद्धि भी तो चल रही है। तो उत्तरोत्तर सख्याओंके जाननेके लिए पहिले जानी हुई सख्याओंकी अपेक्षा करनी पडी ना। तो अपेक्षा बुद्धि भी उस वक्त काम कर रही है सो अपेक्षा बुद्धि निमित्त कारण है। यों अनेक विषयक जो बुद्धि हुई उससे सहित जो एकत्व स० है उससे अनेक द्रव्यो वाली सख्याकी उत्पत्ति हुई है। इस तरह तो असमवायि कारणपना सख्याको गुण माने बिना नही बन सकता। कार्य बननेमें तीन कारण हुआ करते हैं। समवायि कारण तो उपादानभूत द्रव्य है और असमवायि कारण कोई गुण पडता है द्रव्य नही पडता। द्रव्य तो जिसमें कार्य हुआ वह तो समवायि कारण है और जिन अन्य द्रव्योकी अपेक्षा रखकर कार्य हुए वे सब द्रव्य निमित्त कारण होंगे। निमित्त कारण द्रव्य भी हो सकता है गुण भी हो सकता है, पर असमवायि कारण गुण होता है। तो कोई भी सख्या उत्पन्न हुई, किसीकी बुद्धिमें कोई स० आयी तो किसी पदार्थ विषयक ही तो आयगी। जिस पदार्थमें, विषयमें आया वह पदार्थ तो हुआ समवायि कारण और जो स० ज्ञानमें की उस सख्यासे पहिली स० भी उसकी बुद्धिमें आई, अन्यथा उत्तर स० न आ सकती थी। तो पहिली स० हुई असमवायि कारण और उस में जो बुद्धि लगाई पहिलेके ज्ञानकी सुध की और उसमें फिर १ और जोडा, १ और जोड़ा, इस तरह उनकी बन गयी सख्या तो अपेक्षा बुद्धि निमित्त कारण हुई, इस प्रकार पहिली स० जो असमवायि कारण बनी उससे ही यह सिद्ध है कि सख्या गुण अवश्य है। जैसे कपडा तैयार हुआ तो कपडेके समवायिकारण तो हुए सूत, क्योंकि वे ही कपडेके रूपमे आयेंगे। और, असमवायिकारण हुआ उन तन्तुवोंका सयोग और निमित्त कारण हुए जुलाहा और उसके साधन तुरी, शलाका आदि। तो इन तीन कारणोंपूर्वक कार्यकी उत्पत्ति होती है। तो यहाँ भी जो स० उत्पन्न हुई उसमे इसी प्रकार तीन कारण लगे, उसमेंसे इस प्रसङ्गमे यह बात कही जा रही है कि उत्तर स० के लिये पूर्व स० असमवायि कारण है और असमवायि कारण गुण हुआ करता है तो

देखो, सख्या गुण बन गई ना !

सख्याकी अनित्यतासे सख्याके गुणत्वकी सिद्धि करनेका शङ्काकार द्वारा वणन अब दूसरी बातपर दृष्टि दीजिये। सख्याका विनाश भी हो जाया करता है। तो कहीं अपेक्षाबुद्धि के विनाशसे स० का विनाश हो जाता है और कहीपर आश्रयके विनाशसे स०का बिनाश हो जाता है। जैसे डलियामें केले रखे थे उनको गिनने लगे अथवा एक पेपरमें घनी-घनी अनेक लाइनें छपी हुई थीं, उनको गिनने लगे। गिनते समय लाइनकी अपेक्षा मिट गई। कभी इस तरह हो जाता है कि अब हम किसके बाद गिन रहे हैं, यह भूल हो जाती है तो अपेक्षाका विनाश हुआ, तो सं० भी मिट गई। अब उस पेपरकी लाइनोकी स० ज्ञात न हो सकी। कहीं आश्रयके विनाश से स०का विनाश होता है। सो उस जगह आश्रयका विनाश होनेपर सं०का भी विनाश होता है और अपेक्षाबुद्धिका भी विनाश होता है जिसकी सं० की जा रही है, जब वह चीज ही न रही मिट गई तो अपेक्षा किसमे लगाओगे और फिर गिनती भी किसमें लगाई जायगी ? तो सं०का विनाश भी देखा जाता है ऐसा अनित्यपना होनेके कारण भी स० गुण है यह सिद्ध होता है। गुण कोई नित्य भी होता और कोई अनित्य भी होता है।

द्वयणुकादि पिण्डोकी उत्पत्तिके लिये सख्याको असमवायित्व सिद्ध करनेका शङ्काकारका कथन—और भी देखिये। यह कैसे प्रमाण किया जा सकेगा यदि स० को गुण न मानोगे कि यह स्कध द्वयणुक है यह त्र्यणुक है यह चतुर्णुक है यह लक्षाणुक है अर्थात् यह पिण्ड इतने परिमाण वाला है, ऐसे द्वयणुक आदिक पिण्ड तो तभी बनते हैं जब पहिले उसकी स० जानी जाय। और, स० का जिस तरह असमवायि कारण पूर्व स० है उसी प्रकार परिमाणपिण्ड जाननेका असमवायि कारण स. है। जैसे जाना चतुर्णुक। तो उसमे जो ४ स० जाना उस स० के ज्ञानका तो असमवायि कारण ३ स० है लेकिन यह चतुर्णुक है, स परिमाणके परिचयका असमवायिकारण ४ स० है, जिस सख्याका नाम बोला जारहा है, परमाणु पिण्डसे सम्बन्धित करके वहाँ वही स० असमवायि कारण बनती है और जहा स० ही प्रधान है वहा पूर्व स० असमवायि कारण बनती है। जैसे कहा १० केले, तो यहाँ तो स० प्रधान हुई। तो १२ का असमवायी कारण ११ सख्या हुई। किन्तु जब कहा जायगा कि १२ मोती की माला तो १२ सख्या स्वय असमवायि कारण बनेगी। किसके लिए ? मोती माला के ज्ञानके लिए। तो इस तरह सख्याओंमें जो असमवायी कारणपना बन रहा है उससे भी यह सिद्ध है कि सख्या गुण है। सख्याके गुणपनेका निषेध नही किया जा सकता।

सख्याको गुण सिद्ध करनेके शकाकारके विकल्पोका निराकरण—समाधानमें कहते है कि यह भी तुम्हारी केवल मनकी कल्पना मात्र है। एकत्व सख्या

आदिक असमवायी कारण नही बनता जैसे कि भेदमे असमवायि कारणपना नही बनता। जब कई काय हो रहे हैं और वे भिन्न भिन्न कार्य हैं तो भिन्न-भिन्न कार्यको बतानेमें या भिन्न-भिन्न कार्यके होनेमे भिन्न-भिन्न कारण होते ना, तो भिन्नताका असमवायि कारण कारणभिन्नता होना चाहिए। भिन्न और अभिन्नका ही तो यहाँ सवाल चल रहा है। जैसे कुछ अभेदमे यह चतुरणुक स्कध है उस अभेदमे तुम सख्या असमवायी कहते हो तो असमवायी कारण गुण को ही बोलना रहे। तो वैशेषिक सिद्धान्तमें जैसे सख्या गुण है इसी प्रकार भेद भी गुण है, विभाग भी गुण है। जैसे कि सयोग गुण है। ततुवोका सयोग हुआ वह गुणका असमवायी कारण बना तो ऐसे ही कार्योंका निष्पादन भेदपूर्वक होता है, तो भेद भी तो गुण है। तो कार्यकी भिन्नतामे कारणकी भिन्नताको असमवायी कारण स्वय वैशेषिकोंने नही माना, याने किसी बडे हालमें १० तरहकी चीजें बन रही है, कोई घडा बना रहा है, कोई-सूत कात रहा है, कोई काठका खिलौना बना रहा है तो कोई पत्थरकी गोली बना रहा है तो कार्य भिन्नता है ना वहाँ तो कार्य भिन्नता कारण क्या है? कारण भिन्नता होना चाहिये ना और वह होवे असमवायी कारण लेकिन ऐसा वैशेषिक सिद्धान्तमे भी स्वय नही माना है। तो जैसे कार्यभिन्नतामे कारणभिन्नताको असमवायिकारण स्वय विशेषवादमें नही माना है इसी प्रकार एकत्वमें भी किसी सं० आदिकको असमवायि कारण न मानना चाहिए क्योंकि एकत्व अभेद पर्यायरूप है, और-अभेद व भेद परापेक्ष्य हैं। स्वात्माकी अपेक्षा और परमात्माकी अपेक्षा भेद और अभेद अवगत किए जाते हैं और ऐसा अभेद और भेद रूप आदिकमें भी हुआ करता है। जैसे रूपका रूप स्वरूपकी अपेक्षा अभेद है, परन्तु रूपका रस स्वरूपकी अपेक्षा अत्यन्त भेद है ना। तो अभेद और भेद ये स्वात्म एव परात्मकी अपेक्षा रखने वाले होते हैं। तो इसी तरह एक और अभिन्न यह पर्याय है और इसी तरह अनेक और भिन्न यह भी पर्याय है। चाहे एक कहो या अभिन्न कहो पर्यायवाचक शब्द है, एकत्व कहो या अभेद कहो एक ही बात है, इसी तरह अनेक कहो भिन्न कहो एक ही बात है, और इस तरह द्वित्व आदिक सं० क्या हुई। अनेकत्व पर्यायरूप हुई। तब जब द्वित्व आदिक अनेक पर्यायरूप हो गए तो सत्‌रूपी हो गए। अब उस अनेककी उत्पत्ति अपने कारण समूहसे होगी। फिर उसे यो कहना कि अनेक पदार्थ विषयक बुद्धिसे सहित एकत्वसे सख्याकी निष्पत्ति होती है, यह निरर्थक रहा। देखो ना अब द्वित्व आदिक स्वय पदार्थ बन गए क्योंकि द्वित्व कहो या अनेक कहो एक ही चीज हो गई।

अनेकत्वकी अविशेषता होनेपरभी अपेक्षाबुद्धिसे सख्यामें भेद विभाग माननेकी तरह अपेक्षा बुद्धिसे द्वित्वादिके ज्ञानके विभागकी सिद्धि—अब शकाकार कहता है कि द्वित्व आदिकको अनेकत्वकी पर्याय रूपसे माननेपर सभी वस्तुवो में २ हो, ४ हो, ५ हो, ६ हो, अथवा कितनी ही हों, उनमें दो तीन आदिक प्रतिभास का अटपट प्रसग हो जायगा। जब द्वित्व आदिकको अनेकका पर्यायवाची माना, अनेक

की ही पर्याय है तो अटपट किसी भी सं० का प्रतिभास हो बैठे । २ है सो भी अनेक है, ६ है सो भी अनेक है, ५० हो सो भी अनेक है । तो फिर उसमे भिन्न-भिन्न सं० रूपसे प्रतिभास होनेका विभाग न बन सकेगा, क्योंकि अनेकपनाकी अपेक्षा तो २ से लेकर ऊपरकी सारी स०वोंमें समानता है । समाधानमे कहते हैं कि यह दोष यो नही आता कि अपेक्षा बुद्धि विशेषकी तरह द्वित्वादि ज्ञान विभागकी भी सिद्धि हो जाती है तो अविशिष्टताका स० की सिद्धिके कोई नियम नही रहा । जैसे कि अनेक विषयताकी अविशेषता होनेपर भी कोई अपेक्षा बुद्धि द्वित्व स० को उत्पन्न करने वाली है और कोई अपेक्षा बुद्धि द्वित्व सख्याको उत्पन्न करने वाली हैं । वहाँ यह भी नही कह सकते कि अपेक्षा बुद्धिसे पहिले ही वहाँ द्वित्व आदिक स० गुण मौजूद है क्योंकि यदि अपेक्षा बुद्धिसे पहिले बहुत्व आदिक गुण मान लिए जायें तो जो द्वित्व गुण पडा हुआ है पहिलेसे, उसका भी असमवायि कारणरूप अन्य द्वित्वादिक गुण बनेगा और उसका भी अन्य द्वित्व आदिक गुण असमवायी कारण बनेगा । इस तरहसे द्वित्वादिक गुणों की ही परम्परा लग बैठेगी । उसीमे ही अनवस्था बन जायगा । तो जैसे द्वित्व आदिक स०के प्रति अनेकत्वकी कारणरूपसे अविशेषता होनेपर भी उसमे अब अपेक्षा बुद्धि विशेषसे जैसे भेद मान डालते हो, अर्थात् पदार्थोंकी अनेकता समान होनेपर भी चाहे वे कितनी ही स०में हो फिर भी अपेक्षा बुद्धिसे यह भेद मान लेते हो यो ही अपेक्षा बुद्धिसे द्वित्व आदिके ज्ञानका विभाग ही क्यो नही सीधा मान लेते ? और यो अपेक्षा बुद्धिसे पहिले द्वित्व आदिक गुणकी अनर्थकता हो जायगी । वह स० तो अपेक्षा बुद्धि से पहिले भी विराजी हुई थी, फिर उसका ज्ञान करनेके लिए अपेक्षा बुद्धिकी आवश्यकता क्या रही ? तो अपेक्षा बुद्धिसे स० की उत्पत्तिके निमित्त कारणकी बात बता कर जो स० को सिद्ध कर रहे हो उसकी अपेक्षा तो यही मानना सीधा सच्चा है कि पदार्थोंको निरखकर द्वित्व आदिक ज्ञानका विभाग बन गया । जिस ही कारण अभिन्न और भिन्नत्व लक्षण वाले विशेषसे अपेक्षा बुद्धिमे विशेष आता है उस ही कारणसे अर्थात् अभिन्नता और भिन्नता रूप विशेषसे ही एकत्व आदिक व्यवहारका भेद बन जायगा । तब फिर बीचमें अपेक्षा बुद्धि विशेष नामका एक अन्य गुण लगाया, एक अर्गला दी, उससे क्या फायदा ? तात्पर्य यह है कि स० की उत्पत्तिमे जो तीन कारण बता रहे हो समवायी कारण, असमवायी कारण और निमित्त कारण, सो उसमें असमवायी कारण भी नही बना और निमित्त कारण भी नही बना । हाँ आश्रयरूप जो है वह बाह्य पदार्थ जिसको उपयोगमें लेगा वह एक स० बन गयी ।

सख्यामे संख्या, गुणोमे सख्या होनेसे भी सख्याके गुणत्वकी असिद्धि जब भिन्नत्व और अभिन्नत्वरूप विशेषसे एकत्व आदिकका होना मान लिया तो गुणो में भी एकत्व आदिकका व्यवहार बहुत ही सुगमतासे कल्पित किया जा सकता है । याने गुणोमे भी स०का जुडाव हो सकता है और गणित व्यवहारमे यह बात बडी सुगमतया देखी ही जा रही है । कहते हैं ना कि पाँच पच्चीस याने पच्चीस पाँच बार

(२५×५=१२५) और भी देखो ! कहते हैं ना कि २६ के साथ १०० १०० अर्थात् १२६/१० और २=१०, बच्चोंको सिखाते ना, कि १० के साथ २ और लगा दो आदिक रूपसे गणितमे भी देखा जाता है कि गुणोंमे भी स० का व्यवहार चलता है और स० के साथ स० का भी संयोग किया जाता है। द्रव्य और द्रव्यत्वमें संयोग बताया गया है, मगर जोड क्या चीज है। जैसे जोड का प्रश्न हुआ ५ और ६ तो उन को संयोग करके नीचे लिख देते हैं ११। सं० संख्याओंमे संयोग हो तो संयोग तो गुणोंमें नही हुआ करता, द्रव्य द्रव्यमे सयोग हुआ करता। तब स० गुण कैसे सिद्ध हो सकेगी ?

संख्योपपत्तिकी वास्तविकता—स० के प्रसगमें बात सही यह बैठती है कि जो अभिन्न हो वह एक कहलाती हैं। जो अखण्ड है, निरश है जिसमें प्रदेश और अवयव भी नही है, जिसका कोई हिस्सा न किया जाय वह सब एक। अब वह एक दूसरे भिन्नके साथ जुट जाय तो वह २ हो गया। जैसे कि अखण्ड अभिन्न एक है, उसके साथ दूसरा अभिन्न अखण्ड एक और जुड गया तो उसे २ कहेंगे। और वे दोनो दूसरे अभिन्नके साथ और गए तो वे ३ कहलायेंगे। इस तरहसे संख्याका संकेत लोक में प्रसिद्ध है और गणितमें प्रसिद्ध है। जो एकत्व आदिक व्यवहारका हेतु भूत हो जाता है। तो यो स० कोई अलग चीज न रही। वह पदार्थ ही है, ऐसा कि जिसके साथ मिला दिया पदार्थ तो उनमें स० बढ जाती। कोई सं० नामक गुण हो और उस गुणके कारण १, २, ३ आदिक गिनती चलती हो सो बात नही है।

द्व्यणुकत्वमे द्वित्व संख्याकी असमवायि कारणताकी असिद्धि—अब शकाकार कहता है कि स० की सिद्धि इस युक्ति हो जाती है कि देखो, द्वयणुक, त्र्यणुक आदिक परिमाण वाले जो स्कंध होते हैं उन स्कंधोंके लिए द्वित्व बहुत्व स० असमवायी कारण है। यदि द्वित्व बहुत्वकी स० न होती तो द्वयणुक त्र्यणुक आदिक परिमाण नही बन सकता था। तो द्वयणुक आदिक परिमाणके प्रति द्वित्व त्रित्व आदि स० असमवायी कारण थे, इस कारण स० के सद्भावकी सिद्धि हो जाती है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात सगत नही बैठती। स० किसीका भी असमवायी कारण नही है। द्वयणुक आदिक पिण्डका स० असमवायी कारण बन जाय इसमे कोई प्रमाण नही मिलता। यदि कहो कि अनुमान प्रमाण तो है। वह किस प्रकार ? देखो द्वयणुक आदिक परिमाण असमवायि कारण पूर्वक है सद्रूप कार्य होनेसे। जैसे घट पट आदिक सद्रूप कार्य हैं। हो पिण्ड रूप, पदार्थरूप कार्य तो वहाँ असमवायी कारण अवश्य होता है। जैसे पटका असमवायी कारण क्या है ? तंतुवोंका सयोग। घटका असमवायी कारण क्या है ? घटके अवयवोंका सयोग। इसी प्रकार द्वयणुक परिमाण जो होता है उसका असमवायी कारण क्या है ? २ आदिक स० २ संख्या न होती तो द्वयणुक परिमाण वाला यह पदार्थ है यह कैसे कह सकते कोई कहे कि यह कपडा २

गजी है। तो २ गजीका आधार २ संख्या रहा ना। तो वह द्वित्व सं० असमवायी-कारण बन गई। यों सं० के सद्भाव की सिद्धि होती है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात यों संगत नहीं होती कि कारणका परिमाण ही कार्यका असमवायीकारण सम्भव हो सकता है। जिस कारणमे जो गुण हो वे कार्य गुणके लिए असमवायी कारण बनते हैं। मिट्टीमें जो रूप है सो घडा बननेपर घडेके रूपका असमवायी कारण मिट्टी का रूप कहलायगा। कार्यभूत द्रव्यमे जो रूपादिक गुण पाये जाते हैं वहाँ असमवायी कारण समवायी कारणमें पाये जाने वाले गुण हुआ करते हैं तो इसी प्रकार द्वयणुक परिमाणमे जो परिमाणपना आया है सो कारणपरिमाण अणुपरिमाण असमवायी कारण हैं उनका और उससे फिर द्वयणुक आदिकका परिमाण आया है।

कार्यपरिमाणका कारण कारणपरिमाण शंकाकार कहता है कि यदि द्वयणुकमे कारणपरिमाणका परिमाण आया है, परमाणु परिमाणसे अन्यपना है द्वयणुक आदिकमे तो इसका अर्थ यह होगा कि द्वयणुकमे भी परिमाणपनेका प्रसंग हो जायगा। दो परमाणु मिलकर द्वयणुक पिण्ड बना और कार्य परिमाणको आप मानते हैं कि कारण परिमाणसे वह आया करता है। तो कारण परिमाण तो एक प्रदेशी है, उससे आया कार्य परिमाण। तो द्वयणुक परिमाण बराबर हो जायगा। जैसा परमाणु का परिमाण है उसका जो स्वरूप है वही स्वरूप द्वयणुक कार्यमें आ जाना होजायगा। समाधानमे कहते हैं कि यह बात सङ्गत नहीं है, क्योंकि कार्य और कारणका समान ही परिणमन हुआ करेगा इसमे कोई दृष्टान्त नहीं है, बल्कि देखा जाता है सब जगह कि कारणके परिमाणसे अधिक ही कार्यपरिमाण होता है। जैसे अग्नि जली और उससे धुवाँ उत्पन्न हुआ तो अग्निका जो परिमाण है उस परिमाणसे विशेष ही परिमाण हुआ धुवेंमे। कार्य परिमाण कारण परिमाणसे अधिक ही देखा जाता है। एक बीज बोनेसे वृक्ष पैदा हुआ तो बीज तो छोटेसे परिमाण वाला है और वृक्ष बहुत अधिक परिमाण वाला है। तो देखो ना! कार्य परिमाण कारण परिमाणसे अधिक देखा गया है।

कर्ममें संख्याकी असमवायिकारणताकी तरह सर्वत्र संख्यामें असमवायिकारणताकी अनुपपत्ति— संख्याको असमवायिकारण माननेपर एक दोष यह भी आता है कि परिमाणकी तरह कर्ममे भी असमवायिकारणपना आ जाना चाहिए अर्थात् जैसे कार्यपरिमाणमें असमवायिकारण संख्याका हो तो किसी पत्थरको ४ आदमी मिलकर उठायें तो ४ आदमी कारण किसके हुए ? उस पत्थरके उठाये जाने के तो उठाया जाना यह हुआ कर्म और वह कर्म हुआ है ४ आदमियो द्वारा उठाये रूपसे, तो उस कर्मका भी असमवायिकारण संख्या बन बैठेगी ? देखा ही जा रहा है कि २, ३, ४ पुरुषोने पत्थरको उठा लिया तो कार्य हुआ वह पत्थरका उठाना, उस उठनेरूप कार्यमे कारण पडे वे २-४ पुरुष तो उनमें जो २-४ संख्या है वह संख्या

कर्मके प्रति भी असमवायि कारण बन जाना चाहिये। लेकिन कर्मके लिए संख्याको कारण वैशेषिकोंने माना है नही अर्थात् जो क्रिया हुई है, पत्थर उठाया गया है, उसका असमवायि कारण संख्या नही मानते। हाँ, यदि उसका निमित्तपना मानते हो केवल अर्थात् पाषाण जो उठाया गया है उस उठे हुए पाषाणका निमित्त है वे २, ४ पुरुष। सो उत्तरमे कहते कि निमित्तपना माननेमे किसीको भी विवाद नही है। पाषाण उठा, २–४ पुरुषोके निमित्तसे उठा तो वह बराबर निमित्त है सही बात है। और, वैसे निमित्तपनेकी बात तो सामान्य आदिकमें भी मानी गई है। हाँ, उठाने कार्यमे सं०का असमवायि कारण नही माना गया है। इससे सिद्ध है कि संख्या अन्य संख्याओका भी असमवायिकारण नही है और द्वयणुक त्र्यणुक आदिक पिण्डोके परिमाणका भी असमवायि कारण सं० नही है, क्योंकि ऐसा माननेपर बहुत जगह दोष आयेंगे। परिमाणके प्रति सं० असमवायिकारण नहीं है, जैसे किसी क्रियामें सं० असमवायिकारण नही। पत्थरको उठाया तो उस अभेदरूप क्रियाका असमवायी कारण ३–४ पुरुषोकी सं० नही है, इसी प्रकार द्वयणुक आदिक जो स्कंध बने हैं उनके द्वयणुक परिमाणका भी असमवायिकारण सं० नही है तथा उत्तर सं० की भी पूर्व सं० असमवायिकारण नही है। जैसे ४ सं० कहा किसीने तो ४ सं० का असमवायि कारण ३ सं० को माना गया है वैशेषिक सिद्धान्तमे, वह भी युक्त नही बैठता इसी प्रकार संख्या नामका कोई गुण नही है।

संख्याज्ञाताओकी विशेष बुद्धिकी उपज—सं० तो जानकार पुरुषोंकी बुद्धिकी उपज है। पदार्थ तो जो जैसा अपने स्वरूपमे है वह वैसा उसी तरह अपने अपने स्वरूपमे मौजूद है, उनमे सं० नही है। सं० है, पर वह गुण नही। गुण द्रव्यसे अभिन्न हुआ करता है। जो लोग गुणको द्रव्यसे भिन्न मानते हैं उन्हे द्रव्यको गुणका समवाय सम्बन्ध मानना पडता है। और समवाय सम्बन्ध तादात्म्यकी तरह है। तो एक दृष्टिसे यही अर्थ हुआ कि गुण द्रव्यमे अभेद रूपसे रहा करते हैं। तो द्रव्य जो है जैसा वह है, उनमे जानकार पुरुष इस तरहसे सं० बनाता है कि जो है सो वह १ है हो, उसमें उपचारका सवाल नही। अब उस १ के साथ दूसरा १ और जोडा, उसका नाम २ सं० रखा। २ के साथ १ अभिन्न वस्तु और जोडा तो वहाँ ३ सं० की उपज हुई। जब कभी बडी बडी सं० मे भी एक साथ कोई कह दी जाती है वहाँ पर भी प्रक्रिया तो यही है किन्तु उसका ज्ञान बहुत अभ्यस्त हो जानेके कारण संस्कारमें भी सब बात उतर जाती है इसलिए प्रक्रिया लगानेकी जरूरत नही पडती। प्रक्रिया वहाँ लगायी जाती है जहाँ कोई नई घटना हो और जिसका बार बार अभ्यास न हुआ हो। तो पदार्थ पदार्थके साथ सम्बन्धित हो करके सं० के आधारभूत बन जाते हैं। तो सं० के विषयमें शंकाकारने जो प्रत्यक्ष सिद्ध पनेका विशेष बुद्धिका निमित्तान्तरकी अपेक्षाका और अनुमानका प्रमाण दिया था वे सबके सब असिद्ध हो जाते हैं और सिद्ध यही होगा कि सं० है पदार्थके आश्रय। चाहे वह द्रव्य हो गुण हो, सामान्य हो, विशेष

हो, कुछ भी हो उन सबमे कहने वालेके अभिप्रायके अनुसार कहने वालेके चित्तमें बुद्धि बनाकर फिर उनको साथ जोड जोडकर सख्याकी उत्पत्ति कर ली जाती है सख्या नाम का कोई गुण हो अथवा द्रव्य हो ऐसी उसकी कोई सत्ता नही है। वह तो व्यवस्थाकी और समीचीन कल्पनाकी बात है। और, उस व्यवस्थासे सिद्ध हो जाता है साथ ही एक बात और है—गुण होता है द्रव्यसे अभिन्न और द्रव्य होता है उत्पाद व्यय ध्रौव्य-वान। तो सख्याकी उत्पत्ति, सख्याका विनाश और सख्याका ध्रौव्य जो कुछ नजर आता है वह द्रव्यके उत्पाद व्यय और ध्रौव्यके आधारपर आता है। इससे द्रव्यमें ही सख्याकी कल्पना है। पदार्थमे ही सख्या कल्पित की जाती है। सख्या वास्तविक गुण नही है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थके विरोधके प्रसगमे शकाकार द्वारा परिमाण गुणका कथन—जगतमें जो कुछ भी है वह सब सामान्यविशेषात्मक है। और, सामान्यविशेषात्मक समस्त पदार्थ ६ जातिके पाये जाते हैं जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल, किन्तु विशेष वादी इस कुञ्जीसे कि बुद्धिमें जो कुछ भिन्नता जचे उसके आधारपर बुद्धि ग्राह्य तत्त्वको बिल्कुल स्वतन्त्र पदार्थ मान लीजिए, विशेष वादी कहता है कि सामान्य और विशेष स्वय ही अलग-अलग पदार्थ हैं, तब सामान्यविशेषात्मक एक सिद्ध करना युक्त नही है और इस प्रकार पदार्थ ६ यो हो गए—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। इन ६ पदार्थोंमेसे गुण पदार्थका वर्णन चल रहा है, जिसमे छठवां गुण है परिमाण। पदार्थोंमे जो परिमाण पाया जाता है छोटा है, बडा है लम्बा है, हलका है आदिक, उस परिमाणके व्यवहारका कारणभूत जो कुछ गुण है उसका नाम है परिमाण गुण। महान, अणु दीर्घ, ह्रस्व, यो परिमाण ४ प्रकारके होते हैं। महान मायने बडा। अब वह बडा किसी भी ओर से चारो ओरसे कैसा ही हो, वह बडा कहलाता है। और अणु मायने छोटा, दीर्घ मायने लम्बा, ह्रस्व मायने छोटा यानेलम्बे रूपमें छोटा, इस तरह ४ प्रकारका परिमाण होता है।

शकाकार द्वारा परिमाणके भेदोका कथन—महान दो प्रकारका है, नित्य महान, अनित्य महान। जैसे आकाश, काल, दिशा, आत्मा, इनमे नित्य महत्त्व पाया जाता है। ये शाश्वत नित्य महान हैं और द्वयणुक आदिक द्रव्य अनित्य महान हैं। दो अणु मिलकर कोई स्कध बने, अब वह स्कध महान तो है, पर अणु बिखर जायेंगे तो महान कहाँ रहा? इसलिए इन चीजोमे जो महत्त्व है वह अनित्य है। बेन्च बडी है तो ऐसा जो बेन्चका बडापन है वह अनित्य है। जल जाय, फट जाय, टुकडे हो जायें तो कहाँ महान रहा? अणु अणु होकर बिखर जाय तो कहाँ महान रहा? तो महान दो प्रकारके होते हैं एक नित्य महान और एक अनित्य महान। नित्य महान हैं जैसे दिशा, आकाश, काल, आत्मा आदिक, ये सदा परम महा परिमाण वाले हैं और ये पिण्ड स्कध अनित्य महान हैं। अभी महान हैं, बिखर जायें तो महानपन नष्ट हो गया।

अणु भी दो प्रकारके होते हैं नित्य अणु और अनित्य अणु । नित्य छोटा याने जो कभी नष्ट हो ही नही सकता और अनित्य छोटा, जो कभी छोटा हुआ है पर उसका छोटा पन मिट जायगा । इस प्रकार अणु (छोटा) भी दो तरहके होते हैं। नित्य अणु (छोटा) और अनित्य अणु याने अनित्य छोटा परमाणु एक प्रदेशी होता है और सदा काल एक प्रदेशी रहेगा । मन भी एक अणु बराबर है और सदाकाल मन अणु बराबर ही रहेगा । ये नित्य अणुके दृष्टान्त हैं । अनित्य अणु द्वयणुकमे ही पाया जाता है। जैसे दो परमाणुवोका मिलकर कोई स्कध पिण्ड बना तो द्वयणुक अणु है याने अनित्य मे सबसे छोटा द्वयणुक ही है । परमाणु ना नित्य अणु (छोटा) है और द्वयणुक अनित्य अणु (छोटा) होता है । ३ अणु वाला और भी अधिक अणु वाला जो स्कध है वह अणु नही है । इसकी अपेक्षा वह महान है । अनित्य अणुवोमे सबसे छोटा अणु कौन हो सकता है ? द्वयणुक । दो परमाणुवोके स्कधमे जो परमाणु बना वह । तो नित्य महान कौन हुए ? आकाश, काल, दिशा, आत्मा और अनित्य महान हुए ये सब पिण्ड ।

उपचारित भी अणुत्व महत्त्वका भी व्यवहार एव परिमाणगुणके भेदोका उपसहारात्मक कथन— अब कोई ऐसी शङ्का करे कि इन पिण्डोमें भी तो यह व्यवहार देखा जाता कि यह बेञ्च छोटी है यह बेञ्च बडी है । बेञ्च तो अणु नही है, चाहे कितनी ही छोटी हो, वह तो महान ही है, लेकिन उसमे भी छोटा है ऐसा तो लोग कहते हैं ? अब इसका उत्तर देते हैं कि बेर, आँवला, बेल आदिक ये सब महान हैं, लेकिन इनमे महत्ताकी प्रकर्षता देखकर किसीको अणु कह देते हैं, यह उपचरित कथन है । वास्तवमे वह छोटा नही है किन्तु बडी चीज सामने ला दे तो उसको छोटा कह देते हैं, यह एक उपचरित व्यवहार है । यह सब शकाकारका ही सिद्धान्त चल रहा है । शकाकार परिमाणको गुण मानता है । जैसे आत्मामें ज्ञान दर्शन सुख आदिक गुण हैं पुद्गलमे रूप, रस, गध, स्पर्श आदिक गुण है इसी प्रकार शकाकार कहता है कि इसमे जो परिमाण बना है यह बहुत बडे परिमाणका है । यह छोटे परिमाण वाला है, यह एक दम लम्बा चला गया और यह ह्रस्व रह गया । तो शकाकार यहाँ परिमाणका गुण कह रहा है और परिमाण ४ प्रकारके बताये जा रहे हैं—महान और अणु, दीर्घ और ह्रस्व ये चार प्रकारके परिमाण हैं और ये ४ गुण हैं, गुणके भेद हैं । गुण तो वह एक ही है परिमाण ।

महान् व दीर्घ तथा अणु व ह्रस्वमे शङ्काकार द्वारा अन्तरप्रदर्शन— अब यहाँपर शकाकारसे कोई प्रश्न कर रहा है कि महत्त्व और दीर्घत्वमे जो कि त्र्यणुक, चतुरणुक आदि पिण्डोमे प्रवर्तमान है याने जो ३ अणुवोंसे ४ और ५ यो अनेक अणुवोसे बने हुए हैं, उनमे प्रवर्तमान जो महत्त्व और दीर्घत्व है उनमें क्या अन्तर है और द्वयणुकमें जो व्यवहार होता है दीर्घ और ह्रस्वका, इनमें भेद क्या है ?

यहाँ पूछा जा रहा है कि महान और दीर्घमे और अणु और ह्रस्वमें फर्क क्या है ? क्योंकि सीधा सुननेमे ऐसा लगता कि महान कहो या दीर्घ कहो, एक ही बात है। अणु कहो या ह्रस्व कहो, एक ही बात है, किन्तु तुमने किया है ४ भेद तो इनमे फर्क क्या रहा ? महान और दीर्घमे फर्क क्या और अणु और ह्रस्वमे फर्क क्या ? तो शकाकार उत्तर देता है कि महान और दीर्घमे फर्क है जिस फर्कको व्यवहारभेद स्पष्ट बता देता है। व्यवहारमे यह भेद पडा हुआ है कि महान वस्तुवोमे दीर्घ वस्तु लावो महान पदार्थोंमें दीर्घ पदार्थ रखो और दीर्घ पदार्थमे महान पदार्थ रखो। बडी चीजमें लम्बी चीज लावो और लम्बी चीजमे बडी चीज लावो इस प्रकारका व्यवहारभेद देखा जाता है। जैसे बहुत बडे बडे फजली आम रखे हैं अब जिसे पसद हैं लम्बे आम तो वह कहता है कि हमारे इन बडे आमोमे इन लम्बे (दशहरी) आमोको रखियेगा। तो अब बडेमे और लम्बेमे फर्क हो गया ना ? जब लोग व्यवहारमे ही भेद डाल रहे हैं तो वास्तविक भेद है तभी तो व्यवहारमे भेद कहा जाता है। इसी तरह बहुतसे दसहरी आम हैं, लम्बे आम हैं और जिसको रूचि बडे आम या फजली आम खानेकी है तो वह कहता है कि हमारे इन लम्बे (दसहरी) आमोमे बडे (फजली) आम रखो। तो इस प्रकार व्यवहारमे भी जब लम्बे और बडेका फर्क किया गया है तो यह फर्क वास्तविक अवश्य है। अब दूसरा प्रश्न है कि अणु और ह्रस्वमे क्या अन्तर है। तो चूँकि अणु द्वयणुक ही होता है, बडे पिण्डोको अणु नहीं कहते और परमाणु अणु होता है तब अणुमे और ह्रस्वमे क्या फर्क है यह बता सकना हम लोगोकी बुद्धिका काम नही रहा इसे तो जो प्रत्यक्षदर्शी योगी है, सातिशय ज्ञानी हैं उनके लिए यह प्रत्यक्ष हो रहा कि अणुमे और ह्रस्वमे अन्तर क्या है। इस तरह परिमाण गुण है। परिमाणके चार भेद हैं और ये भेद देखे जाते हैं, भेद व्यवहार हो रहा है, इससे सिद्ध है कि इस भेद व्यवहारमे आश्रयभूत परिणाम नामका गुण अवश्य है।

शकाकार द्वारा अनुमाणके गुणत्वकी सिद्धि — अनुमानसे भी सिद्ध होता है कि परिमाण छोटे बडे आदिक परिमाण रूप आदिकसे भिन्न चीज है, क्योंकि रूप आदिकका जो ज्ञान होता है उस ज्ञानसे भिन्न ज्ञान है परिमाण सम्बन्धी। इससे सिद्ध होता है कि परिमाण भिन्न गुण है। अब देखिये कि एक पुद्गल स्कधमे रूप पाया जा रहा है ना ! और उसमे परिमाण भी पाया जा रहा, इस बेन्चमें हरा रग है, यों रग भी पाया जा रहा और यह ४ फिटकी बेन्च है, इस तरहका परिमाण भी पाया जा रहा। तो रूप ज्ञान हुआ एक किसी किस्मका ज्ञान और एक परिमाणका ज्ञान हुआ। इतनी लम्बी चौडी है, यह हुआ दूसरी किस्मका ज्ञान। इन दो ज्ञानोंमें अन्तर नही है क्या ? यदि परिमाण कोई अलग गुण न होता और यह पुद्गलकी ही चीज होती, रूप, रस गध, स्पर्शमय पुद्गलका ही गुण परिमाण होता तो फिर रूपके ज्ञानमे और परिमाणके ज्ञानमे फर्क न रहना चाहिये था लेकिन फर्क है। जैसे कि रूप ज्ञानमे और रस ज्ञानमे अन्तर है ना ! किसी लालची भूखेको आप कोई खानेकी अच्छी चीज

दिखा दें तो रूप ज्ञान तो उसने कर लिया, मगर वह उसमें तृप्त तो न हो सका, बल्कि उससे अतृप्ति बढ़ती है, देख रहा है तो रसज्ञान करनेकी रसका स्वाद लेनेकी आकांक्षा बढ़ रही है, तो रूप और रस अगर एक होते तो आँखोंसे देखनेपर पेट भर जाता था, स्वाद भी आ जाता था, पर ये दोनों ज्ञान भिन्न-भिन्न हैं, इससे सिद्ध है कि इन ज्ञानो का जो विषय है वह भी भिन्न-भिन्न है याने रूप अलग पदार्थ है, गुण है, रस अलग गुण है । इसी तरह रूप गुणसे भिन्न परिमाण समझमें आ रहा है । इससे सिद्ध है कि परिमाण नामका गुण अलग है । बात यह शंकाकार द्वारा यह कही जा रही । जैसे कि स्याद्वादी जन (जैन लोग) पुद्गलमें चार गुण मानते ना ! रूप, रस, गंध, स्पर्श इसी प्रकार आत्मामें ज्ञान आदि । तो शंकाकारने कहा है कि कथित इन गुणोंके अलावा और भी अनेक गुण हैं और जैसे कि इस प्रसङ्गमें कहा जा रहा परिमाणगुण, तो यों परिमाण गुण पदार्थ है । इस प्रकार शंकाकार २४ गुणोंमेंसे परिमाणगुणकी सिद्धि कर रहा है ।

परिमाणको गुणत्व सिद्ध करनेवाले शंकाकारोक्त साधनकी सदोषता का वर्णन— अब समाधानमें कहते हैं कि पहिले तो इसपर ही विचार कर लीजिए कि परिमाण गुणको सिद्ध करनेके लिए जो अनुमान बनाया है कि महत्त्व आदिक परिमाण गुण रूप आदिकसे भिन्न हैं, क्योंकि उन दोनोंके ज्ञानमें परस्पर विलक्षणता है । रूप आदिकके ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान द्वारा परिमाणका ग्रहण होता है सुख आदिक की तरह । तो यह तुम्हारा हेतु असिद्ध है । परिमाण पदार्थसे भिन्न कोई चीज नहीं है, घट पट आदिक पदार्थसे अलग महत्त्वादिक परिमाण प्रत्यक्ष परिमाण द्वारा ग्राह्य तो नही हो रहा, याने यह बेन्च यदि ४ फिटकी है तो बेन्च धरी रहे, ४ फिटका परिमाण आप उठाकर दूसरी जगह धर दें, बेन्चको वहीं पड़ी रहने दें, बेन्चका जो परिमाण है उसे जरा भिन्न करके बता दो तो परिमाण भिन्न नही किया जा सकता । वह बेन्च स्वयं उतने रूपमें फैली हुई है, इसको बताया जाता है बुद्धि द्वारा ।

सर्वसिद्धान्तोंकी भेद और अभेदपर आधारितता एवं भेदाभेदात्मकता का प्रतीक— देखिये, सर्वसिद्धान्त अभेद और भेदपर आधारित हैं । जैसे न्यारे न्यारे हो और उनको अभेद बना देवे इसमे भी कुछ मत निकल आता है । चीज एक है लेकिन उसमें बुद्धिसे भिन्न-भिन्न समझ बनाकर भेद बना डालते हैं उससे भी कई मत निकले हैं । लोग एक गणेशकी मूर्ति बनाते हैं तो चूहाकी तो सवारी रखते हैं और हाथीका मुह उसमे फिट कर देते हैं तो यह क्या बना रखा है लोगोंने ? समें तत्त्व था पहिले । यह एक संकेत रूप मूर्ति थी कि पदार्थ जितने होते हैं वे सब भेदाभेदात्मक होते हैं, सामान्यविशेषात्मक होते हैं । सामान्यका दूसरा नाम अभेद है, विशेषका दूसरा नाम भेद है । भेद जब देखा जाता है और भेदके देखनेमें एकान्त हठ करली जाती है तो ऐसा भेदन किया जाता है बुद्धि द्वारा कि भेद नही है फिर भी बुद्धिसे भेदकर दिया

जाता है । और, जब अभेदका एकान्त किया जाता तो बिल्कुल न्यारे–न्यारे पदार्थ हैं मगर उनको ऐसा एकत्वमें फिट कर दिया जाता कि उसका भेद नही जच सकता । बस इस ही की मूर्ति गणेश है । देखो ! कहाँ तो आदमीका शरीर और कहाँ हाथीका मुह । कोई कल्पना कर सकता है कि ये दो गुण ऐसे एक फिट बैठ सकते हैं कि ऐसा ही मालूम हो कि सब कुछ एक ही है पूर्ण रूपसे । लेकिन ऐसे भिन्न–भिन्न पदार्थोंको अभेदमें ढाल दिया उसका प्रतीक है यह अग, यह गणेशका प्रतीक । और, सवारी जो चूहेकी रखी है—उसमे ऐसी प्रकृति है कि कपडे या कागजको कुतरनेके लिए डट जाय तो इतने बारीक टुकडे कर देता है कि जितने बारीक टुकडे आप कैंचीसे अथवा अन्य किसी औजारसे नही कर सकते । कैंची वगैरहसे आप जो टुकडा करेंगे वह ठोस होगा चूहे द्वारा हुये टुकडेमे रच भी ठोसपना नही रहता तो भेद और अभेद दोनो स्वतन्त्र वस्तु रहते है इसका प्रतीक है वह गणेश । तो यह एक सिद्धान्तका सकेत था । पदार्थ सब भेदाभेदात्मक होते हैं । सामान्यविशेषात्मक होते हैं, यह एक निशान था, लेकिन यह निशान अब एक देवताके रूपमे माना जाने लगा । बात एक लोक रूढिकी हो गयी ।

तत्त्वगर्भित घटानाओंकी कालान्तरमे रूढरूपता—ऐसी अनेक रूढियाँ हो जाती हैं कि तत्त्व तो उसमे बसा हुआ होता है प्रायोजनिक, लेकिन उसी वस्तुको परम्परामे उनके, लडके, उनके लडके उसको करने गए तो तत्त्व तो छोड देते हैं और उसकी रूढिमे रह जाता है । जैसे किसी सेठके यहाँ एक पली हुई बिल्ली रहती थी । सेठके यहाँ हुआ लडकीका विवाह तो जब फेरका समय था उस समय वह बिल्ली यहाँ वहाँ फिर जाया करे । यो अच्छे कममे बिल्लीका आना जाना फिरना सकुन नही माना गया सो सेठने आडर दे दिया कि इस बिल्लीको किसी एक कमरेमें पिटारेके अन्दर बन्द कर दो ताकि यहाँ वहाँ न फिर सके । बदकर दिया टिपारेके अन्दर । अब विवाहके बाद सेठ तो गुजर गया । बहुत दिन हो गए । अब लडकेकी लडकीकी शादी का अवसर आया । तब तक वह बिल्ली गुजर चुकी थी । जब फेरेका समय आया तो एक लडकेने मनाकर दिया–ठहरो अभी फेरा न पडेगा । अभी एक नेग बाकी रह गया है । इस समय बिल्ली पिटारेमे बन्द की जाती है तब जाकर फेरे पडेंगे । चले बिल्ली ढूढने । बिल्ली ढूढते–ढूढते सवेरा हो गया । फेरेका समय भी निकल गया । जब सवेरे बिल्ली मिली, पिटारेके अन्दर उसे बन्द किया । तब जाकर फेरे पडे । अब इसमें आप समझ लीजिए कि बिल्लीका टिपरेमें बद करनेका उद्देश्य क्या था कि बिल्लीका उस समय इधर उधर फिरना असगुन माना जाता था, तत्त्व तो उसका यह था पर इस कार्य मात्रको देख देखकर बहुत समयके बाद तत्त्व तो भूल गए और उसे रूढिमे ला दिया । तो इसी तरह हमारे बहुतसे धार्मिक काम भी तत्त्वमे तो कुछ थे, पर चलते चलते उनकी एक रूढि बन गई और रूढि बननेके बाद इतना बाहर रूढिमे चले गए कि उसके तत्त्वका अनुमान भी नही किया जा सकता जैसे एक रक्षाबन्धन पर्व है, सूत बाँधते हैं भाई बहिनके अथवा कोई किसीके । अब इस सूत बाँधनेका असली तत्त्व क्या

है जो धर्मसे सम्बन्धित है। एक राष्ट्रीय नातेसे कुछ अर्थ लगा देना यह दूसरी बात है मगर इसके मूलमे धार्मिक तत्त्व क्या था ? धार्मिक तत्त्व यह था कि धार्मिक पुरुषोसे निष्कपट प्रेम करता वात्सल्य करना, धर्मात्मा जनोकी निष्कपट रक्षा करना, यह उसका मूल तत्त्व था। जैसे विष्णु कुमारने अकम्पकाचार्य आदिक ७०० मुनियोकी रक्षा की थी। तत्काल तो वह ध्यानमे रहा, अब चूँकि उस बन्धनमें रक्षा शब्द पडा हुआ है सो थोडा रक्षाका तो ख्याल रहा लेकिन उसका मूल तत्त्व उड गया। तत्त्व तो इतना ही रह गया कि राखी बाँधी, थोडी मिठाई दी और उससे चौगुना अठगुना वसूल कर लिया अनेक बातें है जो हमारे प्रयोगमें आती हैं धार्मिक, उनमें मूलमें काई खासा तत्त्व मिला हुआ होता है सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र आदिकका, पर रूढ़िमे आनेसे तत्त्व भूल जाते हैं तो प्रयाजन तक भेद किया जाना चाहिए पर अखण्ड वस्तुमे भी स्वतत्र सत्ता मान ली जाय ऐसा भेद करना ता असगत है और प्रयोजन तक अभेद करना चाहिए, किन्तु भिन्न–भिन्न पदार्थोंका तादात्म्य बन जाय ऐसा अभेद करना भी अनुचित है।

अभेदवादके एकान्तमे अभेदकी अयुक्त पराकाष्ठा—जैसे अभेद एकान्तवादियोंने ऐसा अभेद किया कि सारा विश्व एक ब्रह्म है और उस एक ब्रह्मकी ये सर्व पर्यायें हैं। चेतन हो अचेतन हो, कितना ही परस्पर विरोध हो, कोई दुःखी हो, कोई सुखी हो, कोई ज्ञानी हो, कोई मूढ हो। कैसे ही अभेद हो पर यह सब एक ब्रह्मकी पर्याय है। अब जरा आप बतलाओ कि एक चीज जो होती है वह एक ही होती है, अखण्ड ही होती है और उसमें फिर जो भी बात बनेगी वह उस पूरे एकमें बनेगी या कुछमें न बने ऐसा भी हो जायगा क्या ? उसके आधे हिस्सेमें हो आधेमे न हो यह बात नही बन सकती। जैसे एक आप आदमी हैं तो जो ज्ञान आपमें जगेगा वह आपके आत्मामें पूरे जगेगा। यह नही हो सकता कि आपके आधे आत्मामे ज्ञान हो और आधेमें ज्ञान न रहे। तो जब सारी दुनिया एक ब्रह्म है तो एक तो सुखी हो रहा और बाकी सुखी नही हो रहे यह अन्तर कहाँसे आ गया ? एकका तो यह विशेषण है नही कि एकमें आधा दुःखी रहे आधा सुखी रहे, फिर एक कहाँ रहा ? जो दुःखी हो रहा वह एक अलग है और जो सुखी हो रहा वह एक अलग है। कोई उसके भेदमें चले तो मानलो अलग चीज है, अचेतन अलग चीज है पर चेतन सारा एक है। कैसे चेतन एक हो जायगा ? जब हमारा सम्वेदन हममें है, आपका ज्ञान आपमें है, सबका परिणमन उनका अपने आपमे है तो वह एक कैसे हो जायगा ? तो प्रकट भिन्नको अभेद करना यह भी अनुचित है और अभेदको भिन्न करना यह भी अनुचित है।

विशेषवाद भेद एकान्तकी अयुक्तसीमा—विशेषवादमें यही किया जा रहा है कि है तो अभेद और उसमे भेद कर दिया, टुकडे कर दिये। आत्मा एक है मगर उसमें ज्ञान सुख दुःख इच्छा द्वेष राग, प्रयत्न, पुण्य, पाप, सस्कार ये कुछ नजर आ रहे

ना । इसलिए यह कह बैठते कि जो कुछ ये नजर आ रहे सब बिल्कुल जुदे पदार्थ हैं। आत्मा बिल्कुल जुदा है और वह है गुण और आत्मा है द्रव्य। यह बात यो कहनी पडी कि द्रव्यमे गुणका समवाय सम्बध बताना है। तो इसी भेद बुद्धिके साध्यसे शकाकार इस प्रसगमे यह कह रहा है कि पुद्गलमे जैसे रूप, रस, गध, स्पर्श ये गुण हैं, इसी तरह इनमे परिमाण गुण भी रूप ज्ञानसे, रस ज्ञानसे जुदा है। तो रूप आदिक के ज्ञानोसे परिमाणका ज्ञान भी जुदा है। यो परिमाणमे चीज छोटी है यह बडी है, यह सक्षिप्त है, यह भी गुण है ऐसा शकाकार का कहना है लेकिन बात यहाँ यह सही नही है, जितने प्रकार प्रकारको लिए हुए जो चीज है वह वही वैसा है, उसमे गुणकी कोई बात नही। वह चीज है, उसको हम बुद्धि द्वारा बताते हैं कि यह इतनी लम्बी चौडी है। गुण सदा नित्य हुआ करते हैं। अनित्य गुण होते ही नही। पहिले तो वैशेषिकका यह कहना गलत है कि गुण नित्य भी होता है और नित्य भी होते है। जो अनित्य गुण दिख रहे हैं वे गुण नही, किन्तु गुणकी पर्याय हैं। परिणमन नित्य नही हुआ करता है। तो परिमाण यदि गुण होता तो सदा रहना चाहिए, पर बेन्चके टुकडे हो जायें, बिखर जायें, अणु अणु बन जायें तो कहा रहा परिमाण ? इससे परिमाण कोई गुण नही है, किन्तु वह पदार्थ ही है। पदार्थसे भिन्न परिमाण नामका कोई गुण समझमे नही आ रहा।

गुणोमे भी परिमाणगुणका ज्ञान होनेसे परिमाणके गुणत्वका निराकरण

और भी देखिये । जैसे एक लाइनमे बहुतसे मकान बिल्कुल पक्तिबद्ध खडे हुए हैं तो लोग कहते हैं कि महलकी पक्ति कितनी बडी है, यह महलमाला बहुत बडी है। माला मायने पक्ति, लाइन। अब बतलावो, यहाँ तीन बातें कही गई हैं—महल, माला और बडी। तो द्रव्य तो हुआ महल और माला हुआ गुण, महलकी माला। और, महलकी माला बडी है तो महलके बाद गुण और आ गया तो गुणोमे तो गुण नही माना। महलोकी यह माला बहुत बडी है। तो इसमे गुणमे गुण कैसे आ गए ? इससे मालूम होता है कि बडा-छोटा होना यह गुण नही है किन्तु पदार्थ जैसा है तैसा बतानेके लिए हम बुद्धिसे कल्पना करते हैं। तो आपका वह हेतु भी अनेकान्त दोषसे दूषित हो गया याने यह कहना कि बडा छोटा परिमाणरूप आदिक गुणोसे जुदा है क्योकि रूप आदिक गुणके ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान द्वारा यह परिमाण जाना जाता है। सो देखो ! कि महलकी माला बडी लम्बी है तो मालामे महत्ता आदिकका ज्ञान तो हो गया, लेकिन माला द्रव्य नही है, स्वय गुण है तो गुण गुणमे तो न रहेगा इस कारण अनुमानसे यह सिद्ध करना कि पदार्थका परिमाण कोई अलग गुण हुआ करता है सो बात विरुद्ध है।

तत्त्वचर्चाका प्रयोजन भेदविज्ञान—यहाँ वस्तुका स्वरूप ही कहा जा रहा है कि इस पुद्गलमें क्या-क्या गुण पाये जाते हैं और विशेषताका पदार्थके सम्बधमे

जब ज्ञान होता है तो भेदविज्ञानसे और अधिक स्पष्टता आती है, कोई पुरुष तो ऐसा समर्थ होते हैं कि स्व और परका इतना ही भेद विज्ञान किया। जैसे किसी शिवभूति मुनिने दाल और छिलकेको भिन्न-भिन्न देखकर अपने मा मा और शरीरको भी भिन्न भिन्न पहिचानकर आत्मकल्याण किया। तो वह उनका ऐसा संस्कार था, ऐसा अनुभव था कि भेद विज्ञान किया और आत्महित किया। लेकिन इस भरोसे नही बैठे रहना है कि जब शिवभूतिने स्व परका भेद ज्ञान करके आत्महित कर लिया तो हमभी कभी भेद विज्ञान करके आत्महित कर लेंगे। अरे किसी अंधे पुरुषको रास्तेमें चलते हुए किसी पत्थरकी ठोकर लग जाय और उस पत्थरको निकाल दे तो बहुत सा धन मिल जाय तो कहीं इससे यह नियम तो न बन जायगा कि जो चाहे अंधा जैसा बन जावे, आंखोमे पट्टी बाधकर चले और किसी पत्थरमे ठोकर मारे तो उससे वह धनिक बन जाय। अरे, धनिक बननेका उपाय तो व्यापार आदि करना है। तो इसी प्रकार भेद विज्ञानका उपाय है ज्ञानार्जन। स्वरूप का अधिकाधिक परिचय पायें, भीतरी बात जितना देख सकें उतना निरखते जायें। जितना विशिष्ट ज्ञान होगा उतना ही भेदविज्ञानमे स्पष्टता आयगी और उतना ही अपने अभेदस्वरूप आत्मतत्त्वकी ओर आ सकेंगे। इसी उद्देश्यको लेकर वस्तुस्वरूपकी ये सब ज्ञानकी चर्चायें चल रही हैं।

गुणमे गुणाश्रयता आदिका प्रसङ्ग होनेसे परिमाणके गुणत्वकी असिद्धि

महत् आदिक परिमाण गुण हैं क्योंकि उनका प्रत्यय देखा जा रहा है, ऐसा कहनेमे यह दोष है कि जब यह कहा जाता है कि मकानकी पक्तियाँ बडी लम्बी चौडी हैं तो अब गुणमे तो गुण रहते नही, मकानकी पक्तियाँ स्वय गुण है और उन पक्तियोमे महान दीर्घपनाका व्यवहार देखा जा रहा है तो यह तो सिद्धान्तसे गलत है। गुणमें गुण तो रहा ही नही करते। यदि कहो कि जिस ही महल आदिकमे माला नामका गुण समवेत है अर्थात् मकानमे ही तो कहा जा रहा है मकानकी माला और महत्व भी बताया जा रहा है उस ही मे तो उसका भी समवाय है। माला और महत्त्वादिक इनका एक मकान अर्थ समवाय सम्बन्ध है इस कारण 'महतो प्रासाद माला' यह ज्ञान बन जाता है और इस तरह अनैकान्तिक दोष भी नही आता। समाधानमें कहते कि इस तरह तो अपने ही सिद्धान्तसे विरोध होता है। पहिली बात तो यह है कि गुणोमे गुणका सद्भाव माना नही गया और यहा प्रासादमालामे महत्त्वका गुण थोपा जा रहा है, दूसरी बात यह है कि मकान वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार अवयवी द्रव्य नही है अर्थात् एक पदार्थ नहीं है एक अवयवी द्रव्य बनता है सजातीय अवयवोंके सम्बन्धसे, पर मकानमे काठ भी लगा है लोहा, ईंट पत्थर आदि कितने ही विजातीय पदार्थ लगे हुए हैं तो विजातीयोका सयोग मात्र रहा। विजातीय स्कध द्रव्यके आरम्भक नही बन सकते अवयवी द्रव्य बनेगा, तो सजातीय अवयवोसे बनेगा। जैसे एक कपडा बना तो सजातीय तन्तुओसे बनेगा, इस तरह ये मकान कहाँ सजातीय अवयवोसे बनता है? वह तो अनेक विजातीय स्कन्धोका सयोग मात्र है और ऐसा माना भी है

वैशेषिकोंने कि मकान एक संयोगात्मक गुण है याने काठ, ईंट, पत्थर, लोहा आदिक पदार्थोंका जो संयोग है उस ही संयोगका नाम मकान है। तो मकान क्या हो गया गुण हो गया और गुणमे गुण रहता नही तो गुणमें परिमाण कहाँ आयगा ? पहिले तो यह ही कहना गलत है कि मकान बडा है, क्योकि मकान स्वय द्रव्य नही है। वह तो अनेक विजातीय पिण्डोका संयोग है, सो मकान गुण स्वरूप हुआ अब गुणमें महान है यह ऐसा महत्त्वका गुण कैसे आया ? और, फिर माला नामका गुण तो मकानमे रह ही नही सकता, क्योंकि गुणोमे गुण नही रहा करते। मकान संयोग गुण है, उसमे माला नामका गुण नही रह सकता। तो प्रासाद माला है यही ज्ञान पहिले अयुक्त है। मकानका माला तो माला गुण है और मकान भी गुण है। गुणमे गुण रहता नही अतएव प्रथम शब्द ही गलत है। फिर उसमे यह बात कहना कि प्रासाद माला महती है, छोटी है यह तो बात दूर ही रही, इस ज्ञानका अवकाश ही कहाँ ? तब पहिले प्रासाद माला है यह ही सिद्ध नही हो पा रहा। देखो! वैशेषिक सिद्धान्त का भी यही कारण है कि माला तो है संख्या रूपसे, अर्थात् जहाँ बहुत मकान दिखें उसका नाम माला रखा गया तो माला किसका नाम पडा ? बहुत मकानोंका नाम। और बहुत है संख्या तो माला तो संख्याका रूप है। तो माला गुण हो गया ना, और प्रासाद याने मकान संयोगरूपसे है। अनेक विजातीय स्कंधोके संयोगसे महल तैयार हुआ है तो मकान भी गुणरूप हो गया, और महत आदिक परिमाण रूपसे है। महत परिमाण है इसका तो यह प्रकरण ही चल रहा है। तो अब देखिये कि ये तीनोके तीनो ही चीजें गुणरूप हो गयी। मकान भी गुणरूप, मकानकी पंक्ति भी गुणरूप और मकानकी पंक्ति मकान है तो यह महत्त्व भी गुणरूप है। अब तीन गुणोका आधार आधेय भाव बनाया जा रहा है तो यह कहाँ तक युक्त है ?

मालाको द्रव्यस्वभावताकी अनुपपत्ति यदि शंकाकार कहे कि मालाको हम द्रव्यका स्वभाव मान लेंगे, माला महान है तो महान तो गुण है ही, वह तो परिमाणका अंग है लेकिन मालामे हम महत्त्व थाप रहे हैं तो मालाको हम द्रव्य स्वभावी कह देंगे। माला द्रव्यरूप है, फिर तो मालामे महत्त्व रह जायगा, द्रव्यमे गुण तो रहा ही करता है। इसका उत्तर यह है कि मालाको द्रव्यस्वभावी मान लेनेपर भी अर्थ यह हुआ कि द्रव्य द्रव्यके आश्रय हो गया। माला हो गया द्रव्य स्वभाव और मकान को मान ही रहे द्रव्य स्वभाव तो द्रव्य द्रव्यके आश्रय हो गए। अथवा मालाको तो मान लिया द्रव्य स्वभाव और मकान है संयोगात्मक गुणरूप तो द्रव्य गुणके आश्रय कभी माने ही नही गए। द्रव्य द्रव्यके सहारे संयोगरूपसे रहेगा या निराश्रय रहेगा। तो मालाको भी जब द्रव्यरूप मान लियो तो प्रासाद गुणरूप नही रह सकते। फिर यह कहना कि प्रासाद तो संयोग स्वरूप है, अर्थात् विजातीय अनेक स्कधोका संयोग गुण मिल करके यह प्रासाद बना है तो फिर मालाका संयोग स्वरूप प्रासादके आश्रय कहना नही बन सकेगा।

ज्ञान होता है सो वह अनुगत बोध औपचारिक है, मुख्य नही। यह बात यो नहीं कह सकते कि जैसे मुख्यमे जातिका (अनुगत रूपका) ज्ञान होता रहता है इसी प्रकार इन मालावोमे माला माला इस प्रकारका अनुगत ज्ञान बराबर निर्बाध हो रहा है, जैसे कि मुख्य वस्तुमे ज्ञान होता है। सो मुख्य जो ज्ञान होता है उस हीकी तरह जो जो ज्ञान हो उन्हे औपचारिक तो नही कहा जा सकता। जैसे खडी मुण्डी आदिक अनेक गायें हैं उन गायोमे गौ गौ इस प्रकारका जो ज्ञान हो रहा है वह मुख्य ज्ञान है और उसीकी तरह ही इन मालावोमें माला माला इस प्रकारका ज्ञान हो रहा है वह भी निर्बाध हो रहा है तो मुख्य ज्ञानके समान जितने भी ज्ञान हैं उन्हे औपचारिक नही कहा जा सकता। यदि मुख्य ज्ञानके समान हुए ज्ञानोको औपचारिक कह दिया जाय तो इसमे बडी विडम्बना होगी। फिर तो कोई कह बैठेगा कि यह मुख्य ज्ञान औपचारिक है। खण्ड-खण्ड ज्ञानमें गौ-गौ इस प्रकारका जो अनुगत ज्ञान हो रहा है वह भी औपचारिक है, यो कह दिया जायगा। इस कारण परिमाणके सम्बन्धमे तो यह सीधीसी बात मान लेनी चाहिए कि जो अपने कारण समूहसे मकान आदिक महत आदिक रूपसे जो कि उत्पन्न हुआ है, अवस्थित है वह भी महान आदिक प्रत्ययके गोचर होता है अर्थात् यह बडा है ऐसे ज्ञानका विषयभूत क्या है ? ये ही स्वय महान आदिक, जिसमे बडेपनका हम ज्ञान कर रहे हैं न कि यह बडा है इस प्रकारके ज्ञानका विषय कोई परिमाण नामका गुण है, ऐसे ही घट पट आदिक समस्त पदार्थ नजर आ रहे हैं। इन ही पदार्थोंमे बुद्धिसे सोच जानकर यह महान है, ह्रस्व है, दीर्घ है आदिक ज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है। इससे इन पदार्थोंसे भिन्न कोई परिमाणनामक गुणकी कल्पना करना व्यर्थ है।

अनुत्तीर्ण पदार्थोंमे महत् अणुके औपचारिक कथनकी मीमासा— शकाकारने यह भी कहा था कि बेर, आमला आदिकमे अणुका व्यवहार होना औपचारिक है याने द्वयणुक स्कध तो अणु है, उससे अधिक अणु वाले स्कध पिण्ड वे सब महान कहलाते हैं, तो बेर, आँवला आदिकमें तो असख्य अणु हैं। वे तो महान ही हैं, फिर भी उनमे जो यह व्यवहार देखा जाता कि बेल तो बडा है, आवला छोटा है, बेर और छोटा होता है, इस प्रकार जो इन महान पदार्थोंमे अणुका व्यवहार देखा जाता है वह सब औपचारिक है। शकाकारका कहना यह कथन मात्र है, क्योकि परिमाणके सम्बन्धमे मुख्य और गौणका विभाग करना अप्रमाणभूत है जैसे कि सिंह और बालक मे, जैसे बालकका नाम सिंह रख दिया तो उन दोनोमे मुख्य और गौणका विवेक करना सब लोगोको विवादरहित है। जो जङ्गलका सिंह है वह मुख्य सिंह है और शहरमें रहने वाले पुरुषका जो बच्चा है जिसमें कुछ क्रूरता सी हो इस कारण सिंह नाम रख दिया अथवा निक्षेपसे सिंह नाम रख दिया तो इन दोनोमे सिंह तो मुख्य है और बालक सिंह गौण है ऐसा जो ज्ञान बनता है वह बिल्कुल विवादरहित बनता है। इस प्रकारसे ऐसा ज्ञान किसीको भी नही होता। द्वयणुकमें तो अणु और ह्रस्वपना मुख्य

है और बेर, आँवला आदिकमें अणु और ह्रस्वपन औपचारिक है इस प्रकारका किसी को ज्ञान नही चलता। केवल कथनमात्रसे कोई बात लादनेकी पद्धति तो सब शास्त्रोंमें सुलभ है। अनेक मत हैं, अनेक शास्त्र हैं, सब अपने–अपने दिमागसे बनाये गए, उपज से कथनमात्रको लादते ही हैं। तो यह कहना भी उपयुक्त न रहा कि बेर आँवला आदिकमे जो अणु आदिकका व्यवहार होता है वह औपचारिक है। पदार्थ है और पदार्थको निरखकर ही अपने प्रयोजनवश अणु ह्रस्व आदिकका व्यवहार होता है। परिमाण नामका कोई गुण न रहा।

आपेक्षिक होनेसे परिमाणके गुणत्वका निराकरण– परिमाण इस कारण भी गुण नही है कि वह आपेक्षिक है। गुण कभी आपेक्षिक नही होता है। जो है सो है। कोई कभी निरख ले, पर परिमाण यह बडा है, यह छोटा है यह सब आपेक्षिक है, अपेक्षाओंसे उत्पन्न हुआ है। जैसे बीचकी अगुलीकी अपेक्षा अनामिका अगुली छोटी है तो यह आपेक्षिक व्यवहार हो गया। रूप सुख आदिक भी तो गुण हैं, उनमे अपेक्षा व्यवहार तो नही सिद्ध होता। रूप है सो है ही है, पर छोटा बडा होना यह तो आपेक्षिक चीज है और गुणोंमें आपेक्षिकता होती नही। शकाकार कहता है कि जहाँ यह प्रयोग होता कि यह नील है, यह नीलतर है, याने यह साधारण नील है, यह विशिष्ट नील है तो देखो! नील रूप है ना और रूपमें आपेक्षिकता आ गयी, जिसको हम विशिष्ट नील कहते है वह साधारण नीलकी अपेक्षासे ही तो विशिष्ट है, इसी तरह सुखमें भी कहा करते हैं कि यह सुख है यह सुखतर है। यह उससे ऊँचा सुख है। तो सुखमे भी आपेक्षिकता आती है। तो यह कथन तो युक्त न रहा कि गुणों में आपेक्षिकता नही हुआ करती सो परिमाणमे अपेक्षा है, इस कारण परिमाण गुण नही है। उत्तरमें कहते हैं कि नील नीलतर सुख सुखतर आदिकका जो आपेक्षिक व्यवहार है सो नील और सुखके प्रकर्ष और अप्रकर्षके कारण है। नीलसे अधिक नील बन गया तो उसकी तरतमतासे यह आपेक्षिक व्यवहार है पर गुणके कारणसे आपेक्षिक व्यवहार नही है, किन्तु परिमाणमें यह छोटा है यह बडा है यह सदा आपेक्षिक व्यवहार रहा करता है, तो आपेक्षिक (अपेक्ष जनित) व्यवहार होनेके कारण परिमाणको गुण नही कह सकते हो।

आपेक्षिकता होनेसे परिमाणके गुणत्वका अभाव–विशेषवादमें परिमाण को गुण कहा है। कोई वस्तु ४ फिट लम्बी है अथवा महान है आदिक जो परिमाण नजर आते हैं इनको भी गुण बताया है, लेकिन ये गुण नही हैं सीधी सी बात है–गुण कभी आपेक्षक नहीं होते, जिसमे जो है सो है। दूसरा हो तब यह गुण है ऐसी अपेक्षा नही रहती। पुद्गलमें रूप, रस गध, स्पर्श हैं तो हैं वे, आत्मामें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख आदिक गुण हैं, ठीक है, इनमें किसी अन्यकी अपेक्षा नही रही, लेकिन अणु महान ऐसा बतानेमें अन्य द्रव्यकी अपेक्षा है। एक ऐसा वृत्तान्त है कि एक राजाने एक बार

अगुलकी सीक रख दी और लोगोसे कहा कि इसको तोडो मत और छोटी करदो। सभी लोग बडी हैरानीमे आये कि यह सीक तोडे बिना छोटी कैसे हो सकती है ? तो उनमें एक बुद्धिमान मन्त्री था, उसने झट उसी तरहकी ६ अगुलकी लम्बी सींक उसके पास लाकर रख दी और कहा—अब देखिये महाराज ! यह सीक छोटी हो गयी या नही ? तो सभी लोग बोल उठे हां, छोटी हो गई ! तो छोटी-बडी यह अपेक्षित चीज है और जो अपेक्षित है वह गुण नही हो सकता। गुण तो पदार्थकी एक शाश्वत शक्ति है, उसमे अपेक्षाकी क्या बात ? इसी तरह ह्रस्व दीर्घपना भी गुण नही हो सकता। कोई चीज ह्रस्व है, कम लम्बी है तो वह वस्तु जैसी अपनी सस्थानमे है बस उस ही सस्थानका नाम तो ह्रस्वपना है। कोई दीर्घ स थान वाली हो तो उस हीका नाम दीर्घपन है। वस्तुके आधारविशेषसे अतिरिक्त लम्बा, कम लम्बा ये कुछ कहलाते हो तो बताओ ? जैसे यह चीज १ फुट लम्बी है वह तो वही धरी रहने दो और वह लम्बापन अलग निकालकर बता दो, या किसी तरह अनाश्रय लम्बापन दिखा दीजिये क्या आप दिखा सकेंगे ? नही दिखा सकते। तो यह परिमाण कोई गुण नही है। यदि उस लम्बेपनको, ह्रस्वपनको वस्तुके आकारसे भिन्न बताओगे वह तो भिन्न चीज है, किसी भी तरह भिन्न बताओ और तब फिर ४ ही भेद परिमाणके क्यों कहते—अणु, महान, ह्रस्व दीर्घ आदिक ? फिर तो उसमे अनेक और जोड दीजिये ! गोल, त्रिकोण, चौरस आदिक। तो ४ ही परिमाणके भेद हैं यह सख्या तो न बनी ! इससे सिद्ध है कि परिमाण कोई गुण नही है।

तत्त्वमीमासाका प्रयोजन आत्महितके उपायका अन्वेषण—ये चर्चायें यद्यपि विस्तारमे जाकर रूखी पड जाती हैं किन्तु इन चर्चाओका जब मूल समझेंगे कि ये निकली क्यो हैं ? तो विदित होगा कि इनका जो मूल ध्येय है उससे आत्महितका अधिक सम्बन्ध है। ये सब चर्चायें इस बातपर निकली कि ज्ञानका विषय सामान्य-विशेषात्मक होता है। हम ज्ञानके द्वारा जो भी पदार्थ जानेंगे वह पदार्थ सामान्य-विशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है, भेदाभेदात्मक है। यह निरूपण तो समस्त ज्ञानो का मूल आधार है। लोग मोह मिटानेके लिए बडे-बडे आश्रय लेते हैं और मोह नहीं मिटता। जीवोको यदि कोई दुख है तो केवल मोहका दुख है, दूसरा और कोई दुख नही, सभी मोहसे दुखी है, किसीका कुछ नही। प्रत्येक आत्मा केवल स्वरूपसत्त्व मात्र है। किसी भी आत्माका अपने स्वरूपसे बाहर कुछ भी तो नही है, लेकिन जीव की दृष्टि, जीवका उपयोग बाहरकी ओर ऐसा वेगपूर्वक दौडा है कि इसे यह सुध भूल गई कि मैं तो केवल अपने स्वरूपमात्र हूँ इससे बाहर मेरा कहीं कुछ नही और, देखिये जब मेरेसे बाहर मेरा कही कुछ नही तो मेरा आनन्द, मेरी शान्ति, मेरा सुख किसी बाहरी दृष्टिके उपायसे प्राप्त हो सकता है क्या ? कभी नही प्राप्त हो सकता। लेकिन मोहमे इतना ज्ञान किसे धरा है ? मोही जीव तो यह मानते हैं कि मेरे पास इतना वैभव हो तो सुख मिले मेरी ऐसी कीर्ति छा जाय तो मुझे शान्ति मिले पर न उतना

वैभव मिल पाता, न उतनी कीर्ति छा पाती। न मन चाही बात होती तो बडी हैरानी अनुभव करते हैं हाय मुझे बडा कष्ट है। सुनने वाले लोग भी मोही हैं सो वे भी सहानुभूति प्रकट करते हैं—हाँ भाई कष्ट तो ज्यादह है। कोई ज्ञानी विवेकी हो तो वह उस मोही पुरुषकी हँसी करे। अरे कहाँ है कष्ट ? तू तो अपने स्वरूप मात्र है। न लखपती करोड पति बन सका तो इससे तेरा क्या बिगड गया ? तेरा धर्म तो सम्यक्त्व, ज्ञान व चरित्र है, इनमे यदि बाधा आये तो तेरा सब कुछ खो गया। बाहरमे कमी वेसी रही तो उमसे क्या है ? वे तो सब तेरेमे प्रथक् हैं। तेरा तो तेरे आत्मस्वरूपसे अतिरिक्त यहाँ अन्य कुछ है नही लेकिन इसमें मोही जीव आ कहाँ पाते हैं ? बाहर वे डोलते हैं और व्यर्थ हैरानी सहते हैं। तो हैरानीका मूल मोह है दूसरा कुछ नही। जब जब हैरानी बढ रही हो तब तब आँखें मींचकर दृष्टि बन्द करके भीतर ही भीतर अपने आपको निरखलो कि मैं यह हू मेरी दुनिया इतनी है, मेरेमे मेरा परिणमन होता है, बस यही मेरा सर्वस्व है, यही मेरी प्रक्रिया है। इससे बाहर तो हमारा कुछ है ही नही। लोग तो इस मेरेका परिचय कर भी नही रहे हैं, हैरानी क्या ? बडे बडे पुरुष एक सेकेण्डमे ही ६ खण्डके वैभवको छोड देते हैं। ज्ञानी पुरुषोने अरबोंके साम्राज्यको एक साथ छोड दिया और तुम्हारा कुछ धन गिर गया, या किसी तरह कम हो गया तो तुम्हारा उन ज्ञानी पुरुषोसे अधिक टोटा पड गया क्या ? यो समझनो। और, जिन्होंने अरबोका साम्राज्य छोटा उन्होने सब कुछ पाया। जो पानेकी चीज थी सो पायी, जो न पानेकी चीज थी उससे मोह छोडा, यह अन्तर आया। और, यहाँ मोही जगतमें जो पानेकी चीज है उसकी सुध ही नही और जो न पानेकी चीज है वही उपयोगमें रात दिन बस रहा है। उससे बात क्या हुई ? वासना विगड रही है, मलिन हो रहे हैं, दु:खी हो रहे हैं। तो जिस मोहसे हम दु खी हुआ करते हैं उस मोहके मेटने का उपाय क्या है? इसपर तो दृष्टि दो।

दृढ यथार्थ वैराग्यकी नींव मौलिक विज्ञान— ऊपरी बातोसे काम न चलेगा। यह दुनिया ईश्वरका बगीचा है, तुम्हारा इसमे क्या रखा है ? मोह न करो, इन गप्पोसे काम न चलेगा। या किसीको मरा हुआ देखकर यह कह उठना कि अरे, यहाँ किसीका कुछ नही है, जीव अकेला आता है, अकेला जाता है, न साथमे कुछ लाता है, न साथ कुछ ले जाता है, सब कुछ यहींका यही पडा रह जाता है। इन गप्पोसे भी काम न चलेगा, किन्तु जब एक-एक पदार्थका, अणु-अणुका, प्रत्येक आत्माका यह स्वरूप देखेंगे कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे रह रहा है, मरो जियो, इसकी कुछ बात नही है। जी रहे हैं वहाँ भी दु ख, मर कर गए वहाँ भी दु ख, दिखता सब जगह यही है कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमें ही है। किसी पदार्थ का किसी अन्यमें कुछ गया नही है। यह बात तब ही तो दीखेगी जब पदार्थका स्वरूप भी दृष्टिमें हो। उसीका यह सब प्रसङ्ग है कि प्रत्येक पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होता है। कुछ धर्म, गुण तो ऐसे हैं जो परस्पर एक दूसरेसे मिलते-जुलते हैं। तो जो पर-

स्पर एक दूसरेसे मिलते-जुलते हैं उन धर्मोंके कारण अर्थक्रिया नही होती, काम नही होता। जो गुण दूसरोसे मिलते-जुलते नही, अपनी ही अपनी व्यक्तिमे रह रहे हैं ऐसे असाधारण गुणसे अर्थक्रिया होती है, लेकिन उन असाधारण गुणोकी रक्षा साधारण गुणोमे हो रही है। आत्मामे ज्ञान गुण है, असाधारण गुण है, अन्य पदार्थोंमे नही पाये जाते। लेकिन ज्ञान है यह तो मान ले वो और ज्ञान अस्तित्वसहित है। ज्ञान अपने स्वरूपसे है, परस्वरूपसे नही, ज्ञान निरतर परिणमता रहता है। ज्ञान अपनेमें ही परिणमता दूसरेमें नही परिणमता ऐसी साधारण बातें यदि असाधारण गुण वाले अर्थमे न जुटी हो तो केवल असाधारण गुणसे ही क्या काम चलेगा ? तो यो पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं। इसी दृष्टिसे हमारा मोह दूर होगा जडसे मोह दूर होने की प्रक्रिया यही है। पदार्थोंका स्वरूप यथाथ जाने बिना जो वैराग्य, त्याग, व्रत आदिक हैं वे सब भावुकताके फल हैं। दिल भर आया तो वैराग्य हो गया। वह मूलसे ज्ञान पूर्वक वैराग्य नही है। मौलिक वैराग्य जिसके होता है कर्मोदयवश कभी वह फिसल भी जाता है लेकिन उसका फिसलाव लम्बा नही हो सकता। वह तुरन्त चेत जाता है, वह भावुकताका वैराग्य नही है। भावुकताके वैराग्य वाले कभी अपने वैराग्य प्रदर्शन मे या व्रत नियम आदिके साधनमे बहुत तेज भी कदम बढालें किन्तु भीतर उन्हे आत्मीय विशुद्ध निर्दोष आनन्दकी प्राप्ति नही होती। तो हित है वैराग्यमे और वैराग्य का मूल है सम्यग्ज्ञान और सम्यग्ज्ञान वही है जहाँ वस्तुका मौलिक अन्त. परिचय प्राप्त हो जाय। तो यो सामान्यविशेषात्मक पदाथके परिचयकी बात चल रही है।

भेदाभेदविपर्ययसे मूल प्रयोजनमे बाधा—तो दार्शनिक अपने अपने विचारके जुदे-जुदे हुआ करते हैं। विशेषवादी दार्शनिकने यह बात रखी कि सामान्य-विशेष स्वय जब पदार्थ है तो पदार्थको सामान्यविशेषात्मक कहना कैसे युक्त है ? वह सामान्यविशेष द्रव्य गुण कर्म वाले पिण्डमें लगा करता है। ये द्रव्य गुण कर्म भी जुदे जुदे पदार्थ हैं। देख लीजिए ! चीज एक है उस एक ही चीजको ६ खण्डोमे बाँट देना यह बुद्धि भेदका कितना जबरदस्त एकान्त है। इस विशेषवादकी झलक कभी कभी वैज्ञानिकोमे भी आ जाती है। वे अपने प्रयोगमे शक्तिको पिण्डसे जुदा निरखते हैं और यह सुध भूल जाते हैं कि शक्ति अनाश्रित कैसे होती है ? निरपेक्ष स्वतत्र शक्ति माना है और शक्ति शक्तियोका योग करते हैं और उसपर प्रयोग करते हैं, किन्तु शक्ति शक्ति मानको छोडकर अन्यत्र कही भी नही रह सकती। एक ही पदार्थमें शक्तिको जुदी निरखना, उसकी परिणति परिणमन कर्म क्रियाको जुदी निरखना, और उसमे सामान्य धर्म नजर आना उसे जुदा करना। उस ही एकमे विशेषत्व भी दृष्टिमे आना, उसे जुदा करना और जुदा हुए ही बने रहे तो कुछ बात ही न कर सकेंगे, कुछ उत्तर ही न दे सकेंगे सो जुदे भी मान लेना और समवाय सम्बन्धसे उनको एकमेक कर देना यह तो बाँटोको तोलनेकी तरह है। जैसे वाधक लोग किसी तराजूके पलडेपर बाँटसे बाँट तोलते हैं, एक पलडा नीचे जाता, दूसरा ऊपर आता, फिर ऊपर वाला पलडा नीचे

अलग रह रहे पदार्थोंको छोडकर अन्य पृथक्त्व कोई प्रत्यक्षमे प्रतिभासमान नही होता अपने-अपने स्वरूपमे ये सारे पदार्थ हैं इस तरह तो प्रत्यक्षमे जाना जाता है, और जब अपने-अपने स्वरूपमे है तो उसका अर्थ यह हुआ कि दूसरेके स्वरूपमे नही है, इसीके मायने पृथक्त्व है। कुछ भी बात कही जाय वह अपने विरोध सहित होती है। कुछ भी वस्तु हो कोई धम हो, कोई भी बात कही जाय उसका प्रतिपक्ष जरूर है। अगर उसका प्रतिपक्ष न हो तो जो बात कही उसमे भी बल न रहेगा। जैसे कोई कहता कि हमारी बात बिल्कुल सच है तो इसका अर्थ है कि हमारी बात जरा भी गलत नही है। ये दोनो बातें उसमे मिली हुई हैं कि नही ? मिली हैं। जहाँ कुछ कहा उसका विरोधी "नही है" यह उसमे जुडा हुआ है। तब दो बातोके बिना तो गुजारा चलता ही नही, व्यवहार चलता ही नही। चाहे उसका हम प्रयोग करें या न करें मगर दो बातें प्रत्येक बातमे बसी हुई हैं। तो जहाँ यह कहा गया कि ये प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे ही है तो इसका ही अर्थ यह निकला कि कोई पदार्थ दूसरे पदार्थके स्वरूपसे नही है। यह बात उस ही वस्तुमे पडी हुई है। यह पुस्तक अपने स्वरूपसे है। जो इसमे रूप रग आदि है वह सब अपने स्वरूपसे है। यह 'है पना" पुस्तकमे है कि नही ? है। और, इसका ही दूसरा अर्थ यह निकला कि यह पुस्तक परके स्वरूपसे नही है। तो यह "न पना" भी इस पुस्तकमे है कि नही ? वह भी है। तब पृथक्त्व नामका गुण अलग क्या रहा जो पदार्थसे अलग बताया जाय ? तो आपका हेतु असिद्ध हो गया। अपने ही हेतु धोमे उत्पन्न हुए एक दूसरे पदार्थसे स्वय ही व्यावृत्त याने जुदे रहने वाले पदार्थोंको छोडकर अन्य कोई पृथक्त्व प्रत्यक्षमे प्रतिभासमान नही होता। और, जब पदार्थसे जुदा कोई पृथक्त्व प्रत्यक्षमे प्रतिभासमान नही हो रहा तो इस ही कारण पृथक्त्व गुण का सत्त्व पृथक्त्व नामका कोई गुण नही है, क्योकि गुण होते तो वे गुण उपलब्धिमे आ सकते थे और आ नही सके इस कारण असत् हैं।

पृथक्त्व गुणके कारण पदार्थोंका पार्थक्य माननेमे द्वितीय दोष—पृथक्त्व गुणसे पदार्थोंका पार्थक्य माननेपर दूसरा दोष यह है कि गुण किसे कहते हैं ? द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा। जो द्रव्यके आश्रय हो और स्वय गुण शून्य हो उसको गुण कहते हैं। तो पृथक्त्व नामक तुमने गुण माना और ऐसा ज्ञान देखा जाना रूपादिक गुणोमे भी देखो रूपसे रस पृथक है। और है भी पृथक् अगर स्वरूप देखो तो रूपका स्वरूप और है, रसका स्वरूप और है। यदि रूप और रस पृथक् न होते तो रसकी माँग करने वाले पुरुषको केवल उस वस्तुका रूप दिखा दो तो क्या वह तृप्त हो जायगा तृप्त तो नही हो सकता। तो रूपसे रस पृथक् है यह भी तो ज्ञान होता है और रूप रस हैं गुण उन गुणोमे पृथक् गुण और लगा बैठे तो गुणोमे गुण तो नही रहा करते लेकिन यहाँ गुणोमे गुण हो गए। जैसे कहते हैं कि पिछीसे पुस्तक अलग है इसी तरह यह भी तो कहते हैं कि पुस्तकके रूपसे पुस्तककी गध अलग है। गध तो घ्राणसे जानी जायगी और रूप चक्षु इन्द्रियसे जाना जायगा। तो गुणोमें भी पृथकपनेकी बात चलती

है ज्ञान होता है, तो उससे सिद्ध है कि पृथक्त्व नामका कोई गुण नही है। अपने अपने स्वरूपसे जैसे गुण हैं उन्हे समझ लिया, वे परस्पर दूसरे स्वरूपसे अलग हैं ही। पदार्थमे भी जब पृथकपनेकी बात ज्ञानमे आती है तो वहाँ भी यह आया कि पदार्थ अपने-अपने स्वरूपसे हैं लेकिन स्वय ही दूसरेसे अलग हैं। उनका ज्ञान कर लिया। अन्यथा, रूपादिक गुणमे जो पृथक्त्वका ज्ञान होता है तो वहाँ यह दोष आ गया कि गुणमे देखो गुण रहने लगा, पर गुणोमे गुण तो रहा नही करते। गुणोमें गुण रहने लगें तब तो न द्रव्यकी सिद्धि होगी, न गुणकी। किसी भी पदार्थका ज्ञान गुणके कारण होता है। अब जिन गुणोके कारण पदार्थका ज्ञान होगा उन गुणोका भी तो ज्ञान होना चाहिए। उन गुणोका स्वय ज्ञान मानोगे नही। और, गुणोसे उन गुणोका ज्ञान होगा तो उनका भी ज्ञान और, गुणोसे, उनका भी ज्ञान और गुणोसे। तब तो गुणो गुणोके ही ज्ञानमे जिन्दगी बिता डाली जायगी प्रस्तुत पदार्थका ज्ञान हो ही नही सकता यह भी नही कह सकते कि पदार्थोमें यह इससे पृथक् है, ऐसा पृथक्त्वका ज्ञान तो मुख्य है। और, गुणोमे यह गुण इस गुणसे पृथक् है उसमें पृथक्त्व गुण औपचारिक है, यह भी नही कह सकते क्योंकि जैसे निर्दोष पृथक्त्व हमे द्रव्य-द्रव्यमे जच रहा ऐसे ही गुण गुणोमे जच रहा। तो जैसा ज्ञान तुम्हारे मुख्य पृथक्त्वमे हो रहा वैसा ही ज्ञान जहाँ तुम गौण पृथक कह रहे वहाँ भी हो रहा। और, देखिये-ज्ञानके समान ज्ञानको भी अगर औपचारिक कह दिया जाय तो कोई बदलकर यह भी कह सकता कि यह मुख्य ज्ञान औपचारिक है। गुणोमे जो पृथक्त्वका ज्ञान हो रहा वह सही है और यहाँ का ज्ञान औपचारिक है यह भी कहा जा सकता है।

पदार्थोंसे पृथक्त्व गुणकी भिन्नता व अभिन्नता दोनो विकल्पोमे अव्यवस्था—स्वरूपसे जो स्वय जुदे हैं यह बात सगत नही बैठती। जैसे यही बतलावो कि यह पुस्तक पिछीसे अलग है ऐसा ज्ञान कराने वाला गुण है पृथक्त्व तो यह पृथक्त्व तो यह पृथक्त्व गुण पुस्तक पिछीसे अलग है या मिला हुआ है? इन दो ही बातोका उत्तर दे दीजिये! यह पृथक्त्व गुण जिससे जान रहे हैं कि पुस्तक और पिछी न्यारे-न्यारे हैं, यह यदि इन दोनो वस्तुवोसे भिन्न हैं तो फिर यह पृथक्त्व गुण इसमे कुछ काम ही नही कर सकता, इसका लगाव ही नही बना सकते क्योंकि यह भिन्न है, भिन्नका क्या मतलब? दुनियामे जैसे अनेक पदार्थ पडे हुए है वहाँ यह काम तो नही हो रहा? तो देखो पृथक्त्वसे इन पदार्थोंके पृथक्त्वका ज्ञान नही किया जा सकता यदि कहो कि पृथक्त्व, इन दोनो ही पदार्थोंसे अभिन्न है तो इसके मायने यह हुआ कि ये पदार्थ स्वरूपत हो एक दूसरेसे पृथक हैं। पृथक्त्व गुण कुछ अलग नही रहा। जो जो परस्पर एक दूसरेसे अलग रूपसे रहते है अपने आप अलग। उन्हे अपनेसे भिन्न किसी पृथक्त्व गुणका आधार न चाहिए। चीज है जो है सो है। इसीके मायने है एक दूसरेसे न्यारा होना। जैसे रूप रस आदिक गुण हैं वे परस्पर एक दूसरेसे अलग हैं तो उनका अपनेसे अतिरिक्त किसी पृथक्त्व गुणका आधार न चाहिए। ये वैशेषिक

रूप, रस, गध, स्पर्शको स्वय ही एक दूसरेमें जुदे स्वरूप वाला मानते हैं, पृथक्त्व गुण के कारण उन्हे जुदा नही मानते, क्योकि पृथक्त्व गुणके कारण रूप रस आदिकको जुदे-जुदे मान लें तो गुणोमे गुण आ गए यह दोष आयगा । सो गुणोंमे तो ये पृथक्-पना स्वय मानते हैं और पदार्थोंमें पृथक्पना पृथक्त्व गुणके कारण मानते हैं। तो जैसे अपने-अपने स्वरूपसे रहने वाले गुणोमे पृथक्पना स्वय है इसी तरह अपने अपने स्वरूपसे रहने वाले पदार्थोंमे पृथक्पना स्वय है। इसलिए पृथक्त्व नामका गुण कोई अलग चीज नही है।

स्वरूपत सिद्ध पार्थक्यके अवगमका आत्महितमें विशिष्ट सहयोग— भेद विज्ञान उत्पन्न करनेके लिए पृथक्त्वका ज्ञान करना ही होगा, इसमें कोई सदेह नही, पर पदार्थमे पदार्थोंके स्वरूपको ही निरखकर पृथक्त्वका ज्ञान करते तो इससे कुछ प्रेरणा मिलती, प्रगति होती। लेकिन करनेका काम तो कुछ किया नही, और इस उधेड बुनमे आ गए कि ये पदार्थ जो अलग-अलग हैं सो ये किसी पृथक्त्व गुणके कारण हैं। स्वय जच रहे हैं। पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे हैं इस कारण एक दूसरे से अलग हैं। अब उनका स्वरूप जान लें और स्वरूप ज्ञानके प्रतापसे उनमे परस्परका अलगाव भी जान लें। काम बन गया। जिनको आत्महितकी वाञ्छा है वे वस्तुका ज्ञान इस पद्धतिसे करेंगे कि जिसमे आत्महितकी बात नजर आती रहे और जिनको केवल लोकमें अपका पाण्डित्य जाहिर करने की अभिलाषा है वे वस्तुस्वरूपको इस पद्धतिसे जानेंगे कि जिसमे कुछ ऐसी बात समझमे आये कि यह तो हमने कभी सुना न था। कुछ अचरज जैसी बात लगेगी। उस ढगकी पद्धति होती है पाण्डित्य प्रदर्शन को पर आत्महितकी दृष्टिमे तो सीधा सक्षेपमें पदार्थोंको जानने की बात है। जो पदार्थ सक्षिप्त है ही, पदार्थ विस्तृत नही है पदार्थका विस्तार तो हम अपनी लायक समझ बनानेके लिए किया करते हैं। पदार्थ विस्तृत नही है। जैसे कहते हैं कि पदार्थके गुण अनन्त हैं पदार्थकी महिमा अपरम्पार है। यह एक जब विस्तारमें चले, पाण्डित्यमे चलें वहाँ कि बात है और आत्महितकी दृष्टिसे पदार्थ सुगम है पदार्थ एकत्वको लिए हुए है, पदार्थ अति सक्षिप्त है। और इन पदार्थोंका प्रयोजनिक रहस्य जानना यह बहुत सुगम है। कोई कठिन नही है। जब हम आत्मदृष्टिके पथसे चलकर वस्तुका परिचय पाते हैं तो कुछ भी वर्णन किया जाय उसमें भेदविज्ञानकी बात स्वरूपसे अस्ति, पर-रूपसे नास्ति, इस पद्धतिका अनुसरण होता है, और पदार्थ है भी स्वरूपमात्र इसलिए सक्षिप्त है। ऐसे सक्षिप्त सुगम स्वरूपमात्र पदार्थके जाननेमे कुछ भी कठिनाई नही है। जब चित्तमे घर बसा हो, दूकान बसी हो, बाल बच्चे बसे हो, वैभव बढानेकी बात बसी हो, लोकमे यश चाहनेकी बात बसी है, ऐसी बातें जहाँ बसी हो वहाँ पदार्थका सक्षिप्त स्वरूप, जो एक नजरमे पूरा एकत्व आ सकता है वह उन विकल्पों वाले उप-योगमे कैसे समा सकता है ? तो पदार्थ अपने स्वरूपसे है और इसी कारण एक पदार्थ दूसरे पदार्थसे अलग है। उनको अलग करनेके लिए पृथक्त्व नामका कोई गुण

अलग हो और उसके कारण ये अलग किए जाते हो सो बात नहीं है।

असाधारण धर्मसे ही पृथक्त्वका ज्ञान हो जानेसे पृथक्त्व गुण पदार्थकी असिद्धि— जब कि अपने-अपने पदार्थमें अलग पृथक्त्वक असाधार घट पट आदिक पदार्थ देखे जाते हैं याने इन पदार्थोंसे भिन्न पृथक्त्व नामका कोई गुण या किसी भिन्न पृथक्त्व नामके गुणके आधारमें ये घट पट नहीं देखे जाते इससे सिद्ध है कि भिन्न भिन्न स्वभाव रूपसे उत्पन्न हुए पदार्थ ही पृथक् इस ज्ञानके विषयभूत हैं। तब अलगसे पृथक्त्व नामक गुणकी कल्पना करना व्यर्थ है। प्रथक्त्व ज्ञानका भी होना असाधारण धर्मसे ही माना गया है। कोई यह शंका न करे, मनमें न सोचे कि वस्तुसे भिन्न जब पृथक्त्व नामका कोई गुण नहीं है तो यह प्रथक् है, यह प्रथक् है' ऐसे ज्ञानकी उत्पत्ति कैसे होगी? प्रथक है यह ऐसे ज्ञानकी उत्पत्ति असाधारण धर्मसे ही होगी। जो पदार्थ जिस स्वरूपमें रहता है अर्थात् पदार्थका अपने आपके स्वरूप मात्रमें रहनेका नाम है असाधारण धर्म। याने वस्तुका जो चतुष्टय स्वरूप है वही उसका असाधारण धर्म है, तो देखिये! जब एक वस्तु अन्य वस्तुओंसे भिन्न देखी जाती है तो जानने वाला उस समय यों जानता है कि यह एक प्रथक् है, विविक्त है। अन्य सबसे जुदा है। और जब दो पदार्थ अन्य पदार्थोंसे विलक्षण एक धर्मके सम्बन्धसे भिन्न-भिन्न देखे जाते हैं तो जानने वाला यों मानता है कि दो प्रथक् हैं और जब एक देश रूपसे, एक कालके रूपसे, किसी एकपनेसे तो जानने वाला यों मानता है कि ये सब इससे प्रथक् हैं। तो ये ज्ञेयभूत विषयपर आधारित हैं कि जानने वाला प्रथक्त्वका ज्ञान करले। देखो ना एक पुद्गल द्रव्यमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक गुण हैं तो द्रव्यका स्वरूप तो अभेद है गुणका स्वरूप भेद है तब द्रव्यसे गुण पृथक हुए ना? स्वरूप संख्या आदिककी अपेक्षा से। तो वहाँ भी यह व्यवहार चलता है कि रूपादिक गुण द्रव्यसे पृथक हैं, तो प्रथक् हैं, प्रथक् हैं इस प्रकारका ज्ञान असाधारण धर्मसे हो जाता है। इस प्रकार पृथक्त्व नामका गुण कभी सिद्ध नहीं होता।

शंकाकार द्वारा संयोग और विभाग नामक गुण पदार्थके सद्भावकी सिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि संयोग और विभाग नामके दो गुण माने बिना काम चल ही न सकेगा जिन चीजोंकी प्राप्ति थी है उन अप्राप्त चीजोंकी प्राप्ति हो गयी सो संयोग हो गया। न था और आ गया, इसीका नाम संयोग है। और, प्राप्ति पूर्वक अप्राप्ति होनेका नाम विभाग है। पहिले निकटमें थे संयोगमें थे अब उनकी प्राप्ति न रही, जुदे हो गए, वही विभाग हुआ। और ये दोनों गुण संयोग और विभाग पदार्थ में संयुक्त और विभक्त ज्ञानके कारण होते हैं। यह चौकी पुस्तक संयुक्त है। इस ज्ञान का कारण हुआ संयोग गुण और इस चौकीसे दरी विभक्त है इस ज्ञानका कारण हुआ विभाग गुण तो देखो ना! संयोग और विभाग नामके गुण शुद्ध वास्तविक और उन गुणोंके कारण संयुक्त ज्ञान, विभक्तज्ञान ये बराबर चलते रहते हैं। याने संयुक्त

पदार्थका ज्ञान और विभक्त पदार्थका ज्ञान सयोग और विभाग गुणके कारण होता है ।

सयोग व विभाग गुणके स्वरूपकी असिद्धि—अब उक्त शकाका समाधान करते हैं कि सयोग तो कोई चीज ही नही है, पदार्थ हैं और वे भिन्न-भिन्न पदार्थ निकट आ गए इस हीका नाम सयोग रख दिया जाता है। कोई सयोग नामक गुण वास्तविक हो, जिसकी अर्थ क्रिया हो, जिसमे सत्त्व हो ऐसा कोई गुण नही है । और सयोग नामक कोई गुण न रहा तो यो कहना कि प्राप्ति पूर्वक जो अप्राप्ति है उसका नाम विभाग है याने प्राप्ति हुआ सयोग और सयोग होकर फिर सयोग न रहे वे जुदे जुदे हो जायें इसका नाम विभाग है यह भी असिद्ध है। देखो ! जब जब सयोगका ज्ञान होता है कि ये दो पदार्थ सयुक्त हैं तो वहाँ हुआ क्या कि वे दोनो पदार्थ पहिले सान्तररूप थे याने उनकी अवस्थितिमे अन्तर था। एक पदार्थ एक देशमे और दूसरा पदार्थ दूसरे देशमे था तो पहिले उनमे सान्तर रूपता थी। मायने अन्तरसे रह रहे थे। अब हुआ क्या कि सान्तर रूपताका परित्याग हुआ। सो सान्तर रूपताके परित्यागसे निरन्तर रूपतासे अब वस्तु उत्पन्न हो गयी। तो यही तो अर्थ हुआ कि सान्तर रूपता का त्याग करके निरन्तर रूपतामें आना अर्थात् जहाँ अन्तर न रहे ऐसे प्रदेशमे अव-स्थित हो जाना, यही सयुक्त ज्ञानका विषयभूत है। उस वस्तुको छोडकर अन्य और कोई सयोग नही है, जो सयोगके या सयुक्तके ज्ञानका विषयभूत बन सके। जो पदार्थ अविच्छिन्न उत्पत्ति वाला है अर्थात् अन्तर सहित नही, किन्तु निरन्तर निकटमे अव-स्थिति वाला है सो वही वस्तु निरन्तर ज्ञानका विषय होता है अर्थात् ये दोनो पदार्थ अन्तर रहित ठहरे हुए हैं। इसीका नाम तो सयुक्त है । तो यो सयुक्त ज्ञानको कहो अथवा निरन्तरताके ज्ञानको कहो, विषयभूत पदार्थ वही पदार्थ है जो निरन्तर रूपसे अविच्छिन्न रूपसे अतिनिकट रूपसे अवस्थित है। जैसे कि दो पुरुषोके दो घर निरन्तर से उपरचित हैं अर्थात् घरसे घर मिला हुआ है, उसमे अन्तर नही पडा है। तो ये दो मकान सयुक्त हैं, पास पास टसे हुए बने हुए हैं। ऐसे ज्ञानका विषयभूत हुआ क्या कि अन्तर रहित उन मकानोकी अवस्थिति वे स्वय मकान जो अन्तररहित होकर बने हुए हैं सो ही सयुक्त ज्ञानके विषयभूत हैं, न कि सयोग है वहाँ सयुक्त ज्ञानका विषयभूत।

सयोग गुणके अभावका एक और प्रमाण—अब और भी सुनिये ! अन्तर रहित रचे गए मकानमे जो सयुक्तपनेका ज्ञान हो रहा है उसका कारण सयोग क्यो नही है कि सयोग गुण है और मकान भी गुण है, मकान विशेषवादमे अवयवी द्रव्य नही माना गया है, अवयवी द्रव्य तो एक एक ईंट है, अब उन अनेक ईंटोका जो सयोग बना है अथवा काठ लोहा आदिक विजातीय पदार्थोंका जो सयोग बना है उसको कहते हैं महल। तो महल हुआ सयोग गुणरूप और सयोगमे सयोग बताना, महलमे

सयोग बताना यह तो गुणमे गुणका बताना हुआ। गुणोमें गुण रहा नही करते, क्योकि 'निर्गुणा गुणा' गुण सब गुणरहित ही हुआ करते हैं अर्थात् गुणोंमे अन्य गुण नही समाता। ता सयोगात्मक होनेसे वे महल गुणरूप हुए और उनमे सयोगगुण बताया जा रहा तो यह गुणोमें ही गुण कहा जा रहा, सो अभीष्ट बात है।

विभाग गुणकी असिद्धिका निरूपण - सयोग गुणकी असिद्धिकी तरह विभागको भी बात सुनो! विच्छिन्न उत्पन्न अथवा अन्तरसहित ठहरे हुए पदार्थको छोडकर अन्य और कोई विभाग नही है और अन्तर सहित अवस्थित पदाथ ही विभक्त ज्ञानके विषयभूत हैं। उन सान्तर उत्पन्न पदार्थोंको छोडकर विभाग नामक कोई अन्य चीज नही है जो विभक्तत्व प्रत्ययका विषयभूत बने। जैसे हिमालय और विन्ध्याचल, ये दोनो विभक्त हैं ना! हिमालय कही है, विंध्याचल कही है। तो हिमालय विन्ध्याचल ये जुदे हैं, विभक्त हैं, ऐसा जो ज्ञान हुआ उस ज्ञानका विषयभूत क्या पड़ा? वे ही हिमालय और विन्ध्याचल। उनमें तो विभागका लक्षण तक भी नही जाता। विभागका लक्षण यह किया गया है विशेषवादमें कि प्राप्ति पूर्वक अप्राप्ति होना। पहिले तो सग हुआ और फिर उनसे अलग हो जाना इसका नाम है विभाग। तो विन्ध्याचल और हिमालयका सयोग कब था? इन दोनोमें प्राप्ति कभी न थी और प्राप्ति पूर्वक पूर्वक अप्राप्तिको विभाग कहते हो तो विभागका लक्षण भी विन्ध्याचल और हिमालय मे नही गया और फिर भी विभक्तपनेका ज्ञान हो ही रहा है, इससे सिद्ध है कि विभाग नामका कोई गुण विभक्त्व प्रत्ययका विषय नही है किन्तु अन्तररूपसे अवस्थित वे ही सब पदार्थ विभक्त्व ज्ञानके विषय होते हैं।

अनुमान प्रमाणसे भी सयोग विभाग नामके गुण पदार्थोंकी असिद्धि- और भी सुनो! अनुमानके रूपसे जो सयुक्त आकारकी बुद्धि होती है वह विशेषवाद कल्पित सयोगका आश्रय न करने वाले वस्तुविशेष मात्रसे ही होती है। जैसे यह बुद्धि हुई कि ये दो सयुक्त महल हैं, तो उन सयुक्त महलोमे सयुक्ताकार रूपसे ज्ञान हुआ। ये सयुक्त महल, तो वह बुद्धि उन महल वस्तुवोंके कारणसें ही हो गयी। उन महलोंमें कोई सयोग पडा हो और सयोग रूप महलोंमे सयुक्ताकार बुद्धि हुई हो सो बात नही अथवा कोई पुरुष कानोमें कुन्डल पहिले है तो उसे कहें कुण्डली पुरुष, कुण्डल वाला पुरुष तो इस प्रकारकी जो सयुक्ताकार बुद्धि हुई है सो कानो और कुण्डलकी निरतरता होनेसे हुई है। कही सयोग नामक गुणके कारण हुई हो सो बात नही। अथवा दूसरा प्रयोग सुनो! अनेक वस्तुवोका सम्बन्ध होनेपर जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह विशेषवाद कल्पित सयोग रहित अनेक वस्तु विशेषमात्रमे ही होती है अर्थात् जहाँ अनेक वस्तुवों का सन्निपात हुआ उससे ही यह साव्यवहारिक बुद्धि हुई और वहाँ ज्ञान हुआ कि ये सब पदार्थ सयोगसे रहित हैं।

गुणपदार्थोंकी असिद्धिका एक और कथन जैसे अन्तररहित अवस्थित अनेक सूतोंके विषयमें होने वाली जो बुद्धि है यह पट है, यह संयुक्त है, इस तरहकी जो बुद्धि है वह देखो ना ! संयोगगुण विकल उन अनेक तन्तुवोंके निरन्तर रहनेसे हो रही है, यही बात सभी संयुक्त प्रत्ययोंमें घटा लेना चाहिए। तो जैसे संयुक्ताकार बुद्धि संयोग गुण रहित उन ही वस्तुके विशेषमात्रसे ही हो जाती है इसी प्रकार विभाग रूपकी बुद्धि विभाग गुणरहित पदार्थ मात्रके कारणसे हो जाती है। जैसे बहुत सी गायें हैं और उनमें ऐसी विभक्त बुद्धि बने कि इस गायसे यह गाय अलग है। बिल्कुल साफ विलक्षण जचती है तो हुआ क्या, उस विभक्त्व बुद्धिका कारण वही गाय हुई। विभाग नामक कोई गुण नहीं है विभाग गुण आकर लगे उनमें तो विभक्त्वका ज्ञान है ऐसा नहीं है अथवा अनेक पदार्थोंके सन्निधानके आधीन उस विभक्त्व बुद्धिका उदय हुआ है याने इन्द्रिय पदार्थ आदिक अनेक कारणोंका सम्बन्ध होता है तब ज्ञान बनता है, तो उस ही ज्ञानमें संयुक्तत्वकी बुद्धि बनती है और ऐसे ही सन्निधानमें विभक्त्वकी बुद्धि बनती है। जैसे—देवदत्त और यज्ञदत्तका घर दूर दूर है तो उन महलोंके परिज्ञान का कारण हुआ इन्द्रिय अर्थका सन्निकर्ष प्रकाश आदिक उन सबके होनेपर यह ज्ञान बना तो उन महलोंके कारणसे ही बना विभाग नामका कोई गुण हो उससे बना हो सो नहीं। हिमालय और विन्ध्याचलमें तो यह बात साफ है कि उनमें विभाग गुण है ही नहीं। संयोग पूर्वक विघटनका नाम विभाग है तो इनका कोई संयोग ही न हुआ तो देखो इनके विभाग गुण तो नहीं लगा है लेकिन विभक्त्व रूपसे न दोनोंका ज्ञान हो ही रहा है, इससे विभाग नामका भी कोई गुण सिद्ध नहीं होता। और, संयोग नाम का भी कोई गुण सिद्ध नहीं होता है।

संयोग मान लेनेपर भी विभाग गुणकी असिद्धि—कदाचित् मान लो कि संयोग नामका कोई गुण है या संयोगको मान भी लो कदाचित् तो विभाग तो संयोग के अभावका नाम है ना ? तो अभाव तो तुच्छाभाव है, वह गुण कैसे बन सकता है ? और, विभागको माना है कि कुछ काल स्थायी रहे ऐसा गुण। तो देखो ! जो पुत्र चिरकालसे अलग है, बहुत समयके बाद भी उसमें विभक्तत्वका प्रत्यय किया जाता है कि यह पितासे अलग है। उसमें विभक्तका प्रत्यय किया जाता है कि यह पितासे अलग है, तो संयोग दूर हुए तो बहुत दिन हो गए थे, अब बहुत कालके निवृत्त संयोगकी जगह विभाग तो न बनना चाहिए। विभाग तो तत्काल जैसे भेदका नाम है। संयोग है अब उसका भेदन हो रहा है वह जुदा हो रहा है उसका नाम विभाग है, अथवा साफ दृष्टान्त ले लो—हिमालय और विन्ध्याचलमें संयोग कभी हुआ ही नहीं, और संयोग हो फिर उसके अभावका नाम विभाग कहते हैं तो विभाग रूपसे ज्ञान इनमें हो न सकेंगे। तो देखो ! हिमालय और विन्ध्याचलमें संयोग अनुत्पन्न होनेपर भी विभक्त्व रूपसे ज्ञान हो ही रहा है, लेकिन इस सिद्धान्तवादमें विभक्त्वरूपसे ज्ञान कैसे बने ? हिमालय और विन्ध्याचलका पहिले संयोग हो और पीछे इनके विभाग किए गए हो

ऐसा तो है नहीं। वस्तुसे भिन्न कोई विभागस्वरूप कभी भी नही पाया जाता। तब कहीं उपचार कल्पना बनाना भी सही नही बनता कि जैसे कोई कह बैठे कि हिमालय और विन्ध्याचलमे जा विभागकल्पना है वह उपचार कल्पना है। जब कही मुख्यरूपमे प्रसिद्ध हो तो उसका कही उपचार भी बताया जा सकता है, पर विभाग का स्वरूप ही कही सिद्ध नहीं है। वस्तुके विभाग तो कुछ चीज ही नही हैं। जब विभाग कहीं उपलब्ध ही नही है तो किसीमें विभागका उपचार बता देना तो कभी सिद्ध हो ही नही सकता।

संयोगनिवृत्ति और विभागका कारण कर्म—यहा यह शका न करना चाहिए कि यदि विभाग गुण न माना जाय तो संयोगकी निवृत्ति कैसे बनेगी ? संयोगकी निवृत्ति भी कर्मसे ही बनती है। जैसे धनुषसे बाण चलाया तो क्रियासे ही विभाग बन गया ना! अब कोई ऐसी शका करे कि तब तो फिर क्रियामात्रसे ही संयोग की निवृत्ति हो जाना चाहिये। उत्तरमे कहते हैं कि हो जावो इसमे क्या दोष ? कर्ममात्रसे संयोगमात्रकी निवृत्ति हो जायगी, पर संयोग विशेषकी निवृत्ति कर्म विशेषसे होगी। जैसे कि वैशेषिकके मतमे भी माना गया है कि संयोग विशेषकी निवृत्ति होनेपे विभाग विशेषकी उत्पत्ति होती है। तो यो विभागका भी कारण कर्म रहा, क्रिया रहा। और, संयोगका भी कारण कर्म रहा, सो विभाग और संयोग नामक गुणको अलगसे माननेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती।

संयोग विभाग गुणकी मीमासाका सक्षिप्त पुनर्निरूपण—शकाकार यहाँपर संयोग और विभाग नामके दो गुण बना रहा है। दो बिखरी हुई चीजें इकट्ठी मिल जायें, निकट आ जायें, यह तो होता है संयोग गुण पूर्वक और मिली हुई चीजें अलग हो जायें यह होता है विभागगुणपूर्वक। यद्यपि सुननेमे यह बहुत भला लग रहा है कि ठीक ही तो है संयोग गुणके कारण चीज इकट्ठी हो गई, विभाग गुणके कारण चीज अलग हो गयी, लेकिन गुणका क्या लक्षण है उसपर दृष्टि डालनेसे यह बात बिल्कुल अयुक्त विदित हो जाती है। प्रथम तो जिन चीजोका संयोग विभाग हुआ है, हुआ क्या? अन्तरसे रहने वाली चीज है उसका तो नाम है विभाग और अन्तर रहित, निकट चीज आ गयी उसका क्या गुणपना है वह तो उन वस्तुवोका ही गुणपना है कि जो पहिले अन्तर सहित थे अब निकटमे आ गए। दूसरी बात यह है कि संयोग केवल द्रव्यमे ही तो नही कहा जाता। गुणमें भी संयोग कहा जाता। जैसे दो मकानों में संयोग हो गया, एक साथ दो मकान लगे हुए थे तो मकानमे संयोग कहा गया। अब देखो विशेषवादके अनुसार मकान कोई द्रव्य नहीं है। द्रव्य तो ईंट, काठ लोहा आदिक हैं, विजातीय सजातीय अनेक स्कधोका जो संयोग हुआ है उसका नाम मकान है। तो मकान भी एक संयोग है। तो संयोगमें संयोग बता रहे तो गुणमें गुण आ गया ना ? इसी तरह प्रकट गुणोमे भी संयोगकी बात लगती है। यो संयोगक स्व-

रूप सिद्ध नही है। और जब सयोग सही न रहा तो सयोगपूर्वक ही विभाग किया जाना था'। विभाग न रहा।

विभाग गुणके अभावमे सयोगनिवृत्तिकी समस्याकी शकाका समाधान—यहाँ पर कोई मनमें यह शका न रखे कि जब विभाग न रहा तो सयोग कैसे छूट गया ? अरे क्रियासे ही सयोग बनता है। क्रियासे ही सयोग हटता है। सयोग विभाग नामके गुणकी जरूरत नहीं है। क्रियासे सयोग होता है। दो चीजें अलग-अलग बिखरी हुई थीं, उन दोनोमे क्रिया हुई। वे अपनी जगहसे हटकर चले तो क्रिया होनेसे अब उनमे सयोग हो गया। यहाँ शकाकार कहता है कि क्रिया तो सयोगका उत्पादक हो गया। क्रिया होनेसे दो पदार्थोंमें सयोग बन गया। मगर क्रियासे सयोग की निवृत्ति कैसे ठीक कही जायगी ? क्रियासे सयोग बनता है, क्रियासे सयोग नष्ट होता है, यह कैसे कहा जायगा ? उत्तरमे कहते हैं कि ठीक है। क्रियासे ही सयोग बनता है, और क्रियासे ही सयोग नष्ट होता है। जैसे किसी धनुर्धारीने बाण चलाया तो पहिले तो उसका बाणमे सयाग हुआ, हाथका, धनुषका, बाणका सयोग हुआ। तो देखो हाथ आया, धनुष पास आया, बाण निकट आया तो क्रिया हुई ना सबमे। तो सयोग बन गया। और, अब देखिये-उस सयोगसे बाणमे क्रिया बनी, सयोग ही क्या? जोरसे खीच करके फेंका तो क्रिया उसमे सयोगपूर्वक हुई। और, आगे चलकर जिस वृक्षमें बाण लगा उस वृक्षके पास जाकर वहाँ क्रिया मिट गई। सयोग मिट गया। तो वहाँपर बाणका सयोग वृक्षसे हो गया, अब वृक्ष बाणको आगे नही जाने दे रहा बतावो—यहाँ सयोग क्रियाका निवर्तक कैसे हो गया ? सुनिये ! कहोगे कि अन्य सयोगसे उसकी निवृत्ति हुई। कहते हैं कि यही उत्तर सब प्रसगोमे लेना चाहिए। हम यह तो नही कहते कि जिस क्रियासे सयोग उत्पन्न होता है उसी क्रियासे सयोग मिटता है। देखो हस्त बाण आदिकके सयोगसे तो उस बाणमें क्रिया बनी और वृक्ष बाणके सयोगसे क्रिया मिटी तो क्रियाको रचने वाला सयोग दूसरा है और क्रियाको नष्ट करने वाला सयोग दूसरा है। इसमें सयोग विभाग नामके गुण कुछ नहीं है। यह तो पदार्थोंकी क्रियासे ही सयोगविभाग बना बनता है।

विभागज विभाग पदार्थकी असिद्धि—अब शकाकार विभागको तो गुण मानता ही था। अब एक ऐसा विभाग मान रहा जो विभागसे विभाग पैदा हो। वह है विभागजविभाग। उसके उत्तरमे कहते कि यह भी केवल अपनी कल्पनामात्र है। विभागजविभाग क्या है ? सयोगका अभाव। उसकी भी क्रियासे उत्पत्ति हो जायगी, विभागजविभागका भी कोई सत्त्व नही। शकाकार कहता है कि विभागजविभाग नामक गुण न हो तो देखो एक भीटपर हाथ रखा है तो वहाँ क्या है ? हाथका और भीटका सयोग है। तो हाथ और भीटका सयोग होनेसे शरीरका और भीटका सयोग रहा ना ! और जब हाथको हटा लिया तो हाथ और भींटका सयोग नष्ट हो गया, तो

अब यहाँ जो शरीरका और भीटका सयोग मिटा वह हाथ और भीटके सयोग मिटनेसे मिटा, तो देखो अगर विभागजविभाग नहीं होता तो हाथ और भींटका सयोग मिटने पर भी शरीर और भींटका सयोग न मिटता । शरीर और भींटका सयोग इसी कारण मिटा ना कि हाथ और भींटका सयोग मिटा । तो हाथ और भींटका विभाग होने से शरीर और भीटका विभाग हो गया । तो यह विभागजविभाग है । यदि विभागज विभाग न मानो तो हाथ और भीटका विभाग होनेपर भी शरीर और भींटका विभाग न बन सकेगा । उत्तरमे कहते हैं कि हाथ और भीटके सयोगका ही नाम शरीर और भीटका सयोग है । कोई वहाँ दो चीजे नहो हैं । तो जब एक ही बात हुई तो हाथ और भीटका सयोग मिला इसका ही नाम है शरीर और भीटका सयोग मिटा हो, कोई दो चीजें अलग हो तब तो यह दोष दे सकते हो । यदि यह कहो कि शरीर और भीटका सयोग तो हाथ और भीटके सयोगसे ही बना, तो ठीक है, तब फिर जब एक जगह यह बात बनने लगो कि हाथ और भींटका सयोग होनेसे शरीर और भीटका सयोग बन गया तो हम कहते कि हाथमे क्रिया होनेसे फिर शरीरमें क्रिया क्यो नही बन जाती ? कोई पुरुष हाथ ही हिलाता रहे तो उसका सारा शरीर भी क्यो नही हिल रहा ? जो कुछ भी इसका उत्तर होगे वह उत्तर प्रसगमे भी लग जायगा, इससे सयोग और विभाग नामका कोई वास्तविक गुण नही है ।

विभाग गुणकी प्रसिद्धिके लिये अनुमान देनेका शकाकारका अन्तिम प्रयास शकाकार विभाग गुणकी प्रसिद्धिके लिये यह अनुमान कह रहा है कि विवक्षित अवयवी द्रव्यके अवयवोकी क्रिया आकाश आदिक प्रदेशोसे विभागका नही करती क्योकि क्रिया तो वह द्रव्यको रचने वाले सयोगके विरोधी विभागको उत्पन्न करता है आकाश प्रदेशका विभाग नही करता । तभी यह बात बन जाता है कि भीटसे हाथका सम्बन्ध था तो हाथका सम्बन्ध टूटा लेनेसे शरीरका सम्बन्ध भी टूट गया । देखो ! जो आकाश आदिक प्रदेशोका विभाग करने वाली क्रिया है, वह क्रिया सयोगविशेषको रचने वाले विभागकी जनक भी नही हो सकती । जैसे अगुलीकी क्रिया । एक अगुली अभी खडी हुई है और उसका सकोच कर दिया, टेढ़ी करके नीचे जोडमें मिला दिया, तो वहाँ आकाशके प्रदेशोका विभाग तो बन गया । पहिले उस खडी अगुलीमे दूसर प्रदेश रुके थे अब सकोच होनेसे उन प्रदेशोंका सयोग न रहनेसे विभाग बन गया । लेकिन सयोग विशेषको हटाने वाले विभागका जनक नही हो सकता । यदि जैसे - अलग होने वाले बाँस अवयवी द्रव्यकी अवयव क्रिया आकाश आदिक प्रदेशसे विभाग को करदे तो उसका अर्थ यह हुआ कि अब बाम आदिक द्रव्यके आरम्भक सयोगके विरोधी विभागको उत्पादकता अब इस क्रियामें न हो सकेगी । जैसे कि अगुली अवयवी द्रव्यकी क्रिया आकाश प्रदेशमे विभाग तो कर देती है पर द्रव्यारम्भक सयोगके विरोधी विभागको उत्पन्न नही करती । इस कारण यह मानना चाहिये कि अवयवी

द्रव्यमे जो आकाश आदिक देशका विभाग होता है उस विभागको करने वाला विभाग नामका गुण है।

विभागगुणकी सिद्धिके लिये शंकाकारके दिये गए अनुमानका निराकरण—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात अयुक्त है। क्रियामे विभागकी उत्पादकता है यह सिद्ध नहीं होता। क्रियासे तो संयोगकी निवृत्ति हो गयी। जैसे कि अंगुली खड़ी थी। टेढ़ी करनेपर ऊपरके आकाश प्रदेशका संयोग हट गया। यदि यह कहो कि अवयवीमें जो अवयव क्रिया है वह आकाश आदिक प्रदेशोके संयोगको नहीं हटाती, क्योंकि वह तो द्रव्यको रचने वाले संयोगको हटाने वाली है। यदि आपका यह कहना है तो यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है, क्योंकि रूप आदिक सपक्ष हैं और उनमे देखो आकाश आदिक प्रदेशका संयोग नहीं हट रहा लेकिन द्रव्यारम्भक संयोगकी निवृत्तिका अभाव है। रूप जहाँ है तहाँ ही रह रहा है मगर अपने आपके द्रव्यको रचे बनाये रहनेका काम भी कर रहा है। यहाँ यह नहीं कह सकते कि अवयवोके संयोगसे अवयवीका संयोग कुछ भिन्न ही होता है। अवयवके संयोगसे अवयवीका संयोग भिन्न है इस एकान्तका तो पहिले ही निषेध कर दिया। हाथ यदि भीटसे हट गया तो इसका ही अर्थ है कि अवयवी शरीर भी भीटसे हट गया। और, ऐसी प्रक्रिया बना लेना, अपने ग्रन्थोमें रच डालना यों अवयवीमें क्रिया बनी। क्रियासे संयोग बना। संयोगसे अवयवीकी उत्पत्ति हुई तो ऐसी प्रक्रिया रच डालना और उससे फिर अवयव अवयवीमें भेद होना यह तो अपनी जिह्वाकी बात है। कुछ भी कह लो पर तुम्हारी बात युक्तिमे उतर जाय और उसमे किसी प्रमाणसे बाधा न आये तब ही तो वह प्रक्रिया समीचीन हो सकती है। जो बात सीधी स्पष्ट समझमे आ रही है। अवयवोका संयोग हुआ। अवयवीकी रचना हो गयी और उन अवयवोमें सिथिलपना आया या किसी निमित्तसे उनमें विभाग बन गया। तो विभाग बन गया। तो जब द्रव्यारम्भक संयोगके विरोधी विभागकी उत्पादकता क्रियामें सिद्ध नहीं होती तो विभाग नामक गुणका प्रसिद्ध करनेके लिए दोषोसे बचनेकी वजहसे जो अनुमान बना रहे हो वह असिद्ध हो गया और इसी कारण विभाग गुण नामका पदार्थ कुछ भी घटित नहीं होता है। इस तरह २४ गुणोमे जो विभाग नामक गुणकी प्रसिद्धि कर रहे थे वह विभाग गुण प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है।

शंकाकार द्वारा परत्व और अपरत्व गुणकी सिद्धिका प्रस्ताव—अब शंकाकार कहता है कि परत्व और अपरत्व भी गुण है। जैसे आत्मामें ज्ञान गुण हैं, सुख गुण है। ये गुण हुआ करते हैं इसी तरह परत्व और अपरत्व भी गुण हैं। परत्व मायने दूर होना, अपरत्व मायने निकट होना। जिसे कहते—परे हो गए, उरे हो गए। तो परे उरे होना यह परत्व अपरत्व गुणके कारण बनता है। या उम्रमे पर

होना मायने जेठा होना। अपर मायने लहुरा होना वडा भाई होना, छोटा भाई होना। तो यह परापरका व्यवहार परत्व और अपरत्व गुणपूर्वक ही है। परत्व गुण न होता तो कोई पर न कहला सकता था। अपरत्व गुण न होता तो कोई अपर न कहला सकता था। यह पर है यह अपर है। ये शब्द और ये ज्ञान किस गुणके कारण हुआ करते हैं उन ही का नाम परत्व और अपरत्व है। और ये नित्य नहीं हैं, अनित्य हैं। जैसे तीन भाई हैं—वडा, मझिला और छोटा तो अब मझिला और छोटा इन दो में बात कहेंगे तो मझिला पर है छोटा अपर है और जब मझिला और वडा। इन दोका मुकाबिला करेंगे तो वह मझिला जो अभी पर कहा गया था वह अपर कहलाने लगा। तो पर अपर मिट जाने वाली चीजें हैं। ऐसे ही क्षेत्रमें भी जो परे उरे कहा जाता है वह भी अनित्य है। जिसे अभी परे कहा जा रहा वही किसी अन्य देशकी अपेक्षा उरे कहा जा सकता है। तो परत्व और अपरत्वमे अनित्य गुण है परत्व अपरत्व गुणके बिना यह व्यवहार वन नहीं सकता, इस कारण परत्व और अपरत्त्व गुण भी वास्तविक है। २४ गुणोमें ये गुण १० वें व ११वें नम्बरके हैं। इनसे पहिले रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग और विभाग ये ९ गुण थे। अब यह १० वा और ११ वा गुण परत्व और अपरत्व नामका है।

परत्व और अपरत्व गुणके सद्भावकी शंकाका समाधान—समाधानमें कहते हैं कि परत्व अपरत्व कोई गुण नही हैं। गुण किसे कहते हैं ? जो पदार्थोंमें शाश्वत रहे। दूसरी बात—जो द्रव्यमें रहें, तीसरी बात—जिसमे और गुण न रहा करें। तीन चिन्होसे गुणका लक्षण परिचय बनता है। पर परत्व और अपरत्वमें ये तीनो ही बातें नही हैं, परत्व अपरत्व शाश्वत नहीं, नित्य नहीं, अनित्य माने गए हैं। जो अनित्य हैं वे गुण कैसे हो सकते हैं ? अनित्य तो कर्म होते हैं, पर्याप्त होती है, दशा हुआ करती है। दूसरी बात—गुण द्रव्यके आश्रय हुआ करते हैं—द्रव्याश्रया गुणा। लेकिन परत्व अपरत्वका बोध जैसे द्रव्योमे हुआ करता कि यह परे है, यह उरे है। पर और अपरका बोध द्रव्यमें होता है तो पर अपरका बोध गुणोमें भी हो जाया करता है। जैसे—सामने दो चीजें नीले रंगकी रखी हैं, उनमें एक गहरा नीला है, एक हल्का नीला है। तो उनमें यह कहते हैं कि यह तो पर नील है और यह अपर नील है। देखो ! गुणोमें भी पर और अपरका व्यवहार वन गया तो गुणोंमें गुणका व्यवहार बन गया। पर ऐसा नहीं हो सकता। और भी देखो गहरी नीली चीज तो हो उरे और हल्की नीली चीज हो परे (दूर) तो गहरी नीलको कहते हैं पर पर और हल्की नीलको कहते हैं अपर। तो देखो जो परे चीज रखी है वह तो अपर है और जो उरे चीज है, अपरकी ओर है वह हो गया पर। तो ये विषमतायें भी कैसी बन गयीं ? बात यह है कि यहां परत्व और अपरत्व गुण नहीं है किन्तु किसी भी क्षेत्र या कालकी दृष्टिसे हम उसमें प्रकर्ष और अप्रकर्ष ढूंढ़ते हैं। दूर होना निकट होना ढूंढ़ते हैं, उससे पर और अपरका व्यवहार बनता है। अन्यथा याने कोई अपेक्षा

विशेष बुद्धि न हो और परत्व अपरत्व गुणके कारण ही हम उनमे पर और अपरका व्यवहार बनायें तो फिर गुणोमे परत्व और अपरत्वका व्यवहार न बनना चाहिये। तो जैसे वहाँ परत्व अपरत्व गुणके बिना पर अपरका व्यवहार बना ऐसे ही वेन्व भाई बन्धु आदि सभी पदार्थोंमे पर और अपरत्व गुणके बिना पर और अपरका व्यवहार बन जायगा।

परत्व अपरत्व गुण बिना पदार्थव्यवस्थासे ही पर अपर व्यवहारका साधक अनुमान प्रमाण--जैसे गुणोमे, घट आदिकमे दिशा और कालकृत पर अपर का व्यवहार बना, गुणोमे गुणोकी डिग्रियोके हीनाधिकके कारण पर अपरका व्यवहार बना, इसी तरह सब पदार्थोंमे किसी अपेक्षासे पर और अपरका व्यवहार बनता है परत्व और अपरत्व गुणके कारण पर और अपरका व्यवहार नही बनता। उसका प्रयोग भी बना लीजिए। जितना पर अपरका ज्ञान होना है—पर मायने जेठा, अपर मायने लहुरा, पर मायने दूरकी बात, अपर मायने पासकी बात। तो जितना भी पर अपरका ज्ञान होता है वह विशेषवाद कल्पित परत्व अपरत्व गुणसे रहित पदार्थके किसी क्रम और उत्पादकी व्यवस्थापर आधारित है, क्योकि पर अपर ज्ञान होनेसे। जैसे रूपमे पर अपरका ज्ञान होता है। गहरा नील है यह पर नील है, उत्कृष्ट नील है, हल्का नील है यह अपर नील है, यह जघन्य नील है, तो देखिये! गुणोमे भी पर अपरका व्यवहार हुआ। पर अपरको मानते हो गुण, तो गुणोमे गुण कैसे रहे। पर अपरको यहाँ कहा है विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट। विप्रकृष्ट मायने दूर रहना दूर रहना मायने परे रहना। सन्निकृष्ट मायने निकट रहना, निकट मायने उरे रहना। तो जैसे विप्रकृष्ट और पर ये पर्यायवाची शब्द है इसी प्रकार सन्निकृष्ट और अपर ये भी तो पर्यायवाची शब्द हैं। पर्यायवाची शब्दोमें कोई यो कहने लगे कि इसकी बुद्धिकी अपेक्षा वह उत्पन्न हुआ तो हम यो कह बैठेंगे कि किसी चीजके दो नाम हो जैसे पुस्तक और पोथी तो वहाँ कोई यह कह बैठे कि पुस्तक बुद्धिकी अपेक्षा करके पोथी उत्पन्न हुई तो इसका कुछ अर्थ है क्या? जैसे घट और कुम्भ दोनो ही एक कलशके नाम हैं और वहाँ कोई यह कह बैठे कि घट बुद्धिकी अपेक्षा करके कुम्भ उत्पन्न हुआ ता क्या यह कोई ढगकी बात हुई? पर्यायवाची शब्द हैं दोनो। उनमे एककी अपेक्षामे यह दूसरा उत्पन्न हुआ यह नही कहा जा सकता। और, पर्याय शब्दके भेदसे अर्थ भी न्यारा-न्यारा नही बन सकता। तो इसी तरह यो कहना विप्रकृष्ट बुद्धिसे पर व सन्निकृष्ट बुद्धिसे अपरकी उत्पत्ति होती है बेकार है। जितना भी पर अपरका व्यवहार होना है वह कल्पनासे होता है, पदार्थोंकी अवस्थिति देखकर होता है। कोई इसका बनाने वाला अलग गुण हो, ऐसी बात नही है।

गुणत्वकी मीमासा - गुण वास्तवमे नाम किसका है? गुण नाम है पदार्थमे ही रहने वाली अभिन्न शक्तियोका। जैसे अग्नि है, अग्नि तो जो है सो है, एक है,

प्रागष्ट है। जैसी है वैसी ही है अब उसमें हम निरखना चाहते हैं कि इसमें जलानेकी शक्ति है, प्रकाशकी शक्ति है, लोगोंको बुरा लगनेकी शक्ति है, साहूकारोंको भला लगने की शक्ति है, तो ऐसी अनेक बातें जितना सोचते जावो उतनी ही उसमें शक्तियाँ मानते जावो। आत्मामें ज्ञान शक्ति है। आत्मा सदा अकेला रहता है, सो आत्मामें ज्ञान ही सदाकाल है। तो शक्तियाँ यों ऐसी रोज नहीं हो गयी कि अनित्य भी चीज है, नष्ट होने वाली भी है और है भी नहीं है कुछ और रचनाकी तरह केवल कहना भर है। और, सभी अटपट कुछ गुण गण मान लिये जावें, सम्बन्ध भी गुण है संयोग भी गुण है, अलग हटना भी गुण है, पर रहना भी गुण है, उरे रहना भी गुण है, ऐसा गुणका सस्ता भाव बना लेना यह कोई विवेककी बात नहीं है। सोचना चाहिये कि पदार्थ असलमें होता क्या है और किस तरहका है। विशेषवादमें गुणको ऐसा ही स्वतन्त्र मान लिया गया जैसे कि द्रव्य स्वतन्त्र है। गुणका स्वरूप गुणमें है, द्रव्यका स्वरूप द्रव्यमें है, भिन्न–भिन्न चीज है। समवाय सम्बन्ध जब उन दोमें लगता है तो वे गुणी कहलाते हैं। आत्मा अलग पदार्थ, ज्ञान अलग पदार्थ। ज्ञानको वे बुद्धि शब्दसे कहते हैं। अब आत्मा और बुद्धिमें समवाय सम्बन्ध हो गया तब आत्मा यहाँ जानकार बना। बुद्धिके सम्बन्धके बिना आत्मा जानकार हो ही नहीं सकता। यों ऐसे स्वतन्त्र स्वतन्त्र द्रव्य, गुण, पदार्थोंको मानना यह वस्तुगत् बात नहीं है। कोई भी वस्तु है, एक है यह एक ही है। भले ही आधुनिक विज्ञान परम्परामें शक्तिका आधारभूत द्रव्यका तो पता पाट नहीं पाये, क्योंकि वह है अत्यन्त सूक्ष्म और शक्तियोंका प्रयोग चल रहा है तो प्रयोगके द्वारा शक्तियोंका अनुमान व्यवस्थित बन रहा है, तो वहाँ द्रव्यके बिना भी शक्तियाँ मान लेते हैं लेकिन कहीं भी यह बात नहीं हो सकती कि शक्तिका आधारभूत शक्तिमान कुछ न हो और शक्तियाँ हों।

शक्तियोंका अनुमान—शक्तियोंका तो ऐसा भी कुछ हिसाब है कि जैसे जैसे पदार्थ छोटा होता जायगा शक्ति उसमें उतनी गुणी बढ़ती जायगी। जैसे एक मोटे रूपमें मानलो कि जो लडका जितना अधिक मोटा होगा वह उतना ही कम दौड पायगा। तो उसमें शक्तिकी हीनता देखी गई। और, जो बालक जितना इकहरा मिलेगा वह उतना ही ज्यादह दौड लगायेगा। यह केवल एक मोटा दृष्टान्त दे रहे हैं। पदार्थोंमें जो पदार्थ जितना अधिक वजनदार होगा उसकी गति कम होगी और जो पदार्थ जितना हल्का होगा उसकी गति तीव्र होगी। स्कंधोंमें जो स्कंध चाक्षुष इतने बडे हैं कि आँखों दिखते हैं उनमें गति तीव्र नहीं हो सकती। और जो स्कंध अचाक्षुष हो जाते हैं, आँखों नहीं दिखते हैं उनकी गति तीव्र हो जाती है। अचाक्षुष स्कंधोंमें ही आधुनिक वैज्ञानिक स्वतन्त्र भिन्न केवल शक्तिकी कल्पना करते हैं और जब वे अचाक्षुष स्कंध और भी हल्के बन गए, बिखर बिखरकर परमाणुमात्र रह गए तो वे बहुत ही तीव्रगतिसे गमन करते हैं। वीतराग ऋषी संतोंने अपने योग बल से बुद्धिसे परमाणुके विषयमें बताया है कि परमाणु एक समयमें १४ राजू तक गमन

करता है। तब उन सब व्यवस्थाओमे परत्व अपरत्वकी बात ढूढना, यह सब उन पदार्थोंके गुणोको ही निरख करके बताया जायगा। उन पदार्थोंसे अलग कोई परत्व अपरत्व नामका गुण हो और उसके कारण फिर इसमे पर अपर व्यवहारकी व्यवस्था बनती हो यह बात युक्त नही बैठती। तो गुण नाम है अभिन्न वस्तुमे शक्तिभेदकी कल्पना करना। एक वस्तु है उसकी करतूत देखकर उनका कार्य निरखकर। परिणतियाँ देखकर उनमें शक्तिकी कल्पना करना इसमे यह भी शक्ति है, इसमे वह भी शक्ति है। वे सब शक्तिया गुण कहलाती हैं। गुण अनित्य नही हुआ करते। चाहे वह शक्ति अपने अनुरूप काम न भी करे तो उसने चलो प्रतिरूप काम किया। किसी न किसी अवस्थामे शक्ति रही और शक्तिका अभाव नही हो सकता तो परत्व अपरत्व व्यवहार अनित्य होनेसे गुण नही।

गुण कर्म सामान्य आदिमे परत्व अपरत्व व्यवहार होनेसे परत्व अपरत्वकी गुणरूपताका निराकरण—परत्व अपरत्व व्यवहार केवल द्रव्यमे रहता सो बात नही, अतएव गुण नही है। पर अपरपन द्रव्यमें भी लग गए तो जो द्रव्यके अतिरिक्त अन्यमे लगा करें वे गुण कैसे हो सकते हैं? बताया गया है कि सामान्य दो प्रकार का होता है—परसामान्य और अपर सामान्य। जिससे और आगे बडा कोई सामान्य न मिले उसे तो पर सामान्य कहते हैं। जैसे कह दिया पदार्थ, लो इसमे सब आ गए, कोई नही छूटा। अब इससे आगे और कौन सा शब्द लोगे कि पदार्थ और उसके अतिरिक्त और कुछ भी आ जाय? कोई शब्द नही है। अब उसके भेद करना, जैसे विशेष वादमें भेद किया है पदार्थ ६ तरहके हैं-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। यो भेद करके अब उन पदार्थोंमेसे एकको पकड लेना जैसे कहा द्रव्य, तो कुछ आया, यह द्रव्य भी सामान्य बन गया, क्योकि द्रव्य अब ९ प्रकारके हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश काल, दिशा, आत्मा और मन। तो अब उन भेदोकी अपेक्षासे तो द्रव्य सामान्य रहा लेकिन पदार्थोंके मुकाबलेमे यह सामान्य विशेष रहा। तो द्रव्य सामान्य का परिमाण छोटा रहा और परसामान्यका परिमाण बडा रहा। तो देखो—महान आधार बुद्धिकी अपेक्षासे तो परत्वकी उत्पत्ति हुई और अल्प आधारकी बुद्धिकी अपेक्षासे अपरत्वकी उत्पत्ति हुई तो उसमे भी क्यो नहीं मान लेते कि गुणके कारण सामान्यमे परत्व और अपरत्वका व्यवहार हुआ है।

परत्व अपरत्वको गुण माननेपर मध्यत्व आदिके प्रसगमें गुणसख्याका विघात—यह गुणोकी मीमासा चल रही है। वैशेषिक यह कह रहा है कि हमारी बुद्धिमे जो कुछ ऐसा आया कि रहता तो हो द्रव्यमे मगर द्रव्यका लक्षण उसमे न हो तो वह गुण कहलाता है। इस आधार पर २४ गुण बताये जा रहे हैं। उनमे यह ११वा और १२वा परत्व और अपरत्व है, उसकी चर्चा है। ये परत्व और अपरत्व भी गुण नही और परत्व और अपरत्व गुण मान लिए जायें तो देखो! एक

गुण मध्यत्व भी मान लेना चाहिए कि यह चीज परे है, वह जीना परे है, यह बेन्च उरे है, लेकिन यह खम्भा बीचमे है। तो जब तुमने एक परत्व गुणके कारण परेका व्यवहार माना, अपरत्व गुणके कारण उरेका व्यवहार माना तो यह बीचमें है यह किस गुणके कारण व्यवहार हुआ ? उसका एक गुण मान लो मध्यत्व। देखिये ! दिशाकी अपेक्षा भी मध्यका व्यवहार चलता है। जैसे किसीके तीन लडके हैं तो एक है। एक छोटा है और एक मध्यका है। तो जब मध्यपनेका व्यवहार हो रहा है तो इसका आधारभूत, कारणभूत, वह तो कोई गुण मान लेना चाहिए। तो कोई व्यवस्था न बनना यह परत्व अपरत्व गुणके कारण नही है किन्तु चीज ही यह इस प्रकार अवस्थित है। कोई चीज दूर देशमे है तो उसे कहते हैं पर चीज, निकट देशमें है तो उसे कहते हैं अपर चीज। यह कोई गुण नही कहलाता।

गुणपरिचयका महत्त्व—गुणपर यदि दृष्टि जाय तो इस आत्माको निर्विकल्प दशाकी निकटता आ सकती है। गुण तो शुद्ध द्रव्यकी भाँति है। ऐसा शुद्ध तत्त्व है कि जिसकी यदि परख बन जाय तो आत्मा तो निहाल हो सकता है। जैसे सही आत्मद्रव्य क्या ? जिसमें दूसरेका कुछ भी सयोग न जाय ऐसा शुद्ध आत्मा कैसा होता होगा जरा निगाहमे तो डालो। यहा हम जिसको कहते हैं कि यह जीव है, यह आत्मा है। थोडे ही जीव है। वह नही है आत्मा, वह तो अनेक पिण्डोका समूह है। शरीर है। जीव है। कर्म हैं, इतनोका पिण्डोला है। जैसे विस्तरमें तीन चीजें हैं—दरी गद्दा और रजाई। इन तीन चीजोका वण्डल जैसे विस्तर है इसी तरह जीव, कर्म और शरीर इन तीनका पिण्ड यह दिखने वाला शरीरो जीव है। और भी देखिये - जैसे अग्रेजीमे होता है—Good, better, best इसी तरह यहाँ हिन्दीमे है—विष विषतर, विसतम। जिस विषके खानेसे मरण हो जाता है उसका नाम है विष, और उससे भी अधिक बलिष्ठ चीज है विषतर। यह विस्तर उन ही लोगोके पास पाया जायगा जो मोहमे है, घर गृहस्थीमें हैं जैसे यात्रा करते हुएमे आपको किसीके पास विस्तर दिख जाय तो समझलो कि यह मनुष्य घर गृहस्थी वाला है, परिग्रही है परिवार वाला है। मोहमे फसा है। तो घरगृहस्थीमे मोह ममतामे रहनेपर दृष्टिमे आता है कि यह है विस्तर। उसका प्रतीक है वह पिण्डोला इसलिये उसका नाम भी विस्तर रख दिया गया। तो जो प्राणी यहाँ नजर आ रहे है ये प्राणी तो बिस्तर हैं। इनका परिचय, इनका स्नेह इनका अनुराग, इनका अपनाना ये सारे बिस्तर हैं। विषसे कम नही हैं। विषसे अधिक हैं। ये शुद्ध आत्मा नहीं हैं।

शुद्ध आत्मतत्व अथवा शुद्ध आत्मशक्तिके बोधका प्रलय—शुद्ध जीव द्रव्य क्या है ! यह अन्तर्दृष्टिसे ही निहारा जायगा। इस शरीरसे परे, इन विकल्पो से परे जो एक शुद्ध प्रतिभासमात्र तत्त्व है वह है आत्मद्रव्य। अब कोई उस शुद्ध आत्मस्वरूप तक अपनी दृष्टि लगाये तो उसके यहा वहांके विकल्प, कल्पनायें कहाँ

ठहर सकती है ? इसी प्रकार उस आत्माकी किसी एक शक्तिपर भी कोई दृष्टि दौड़ाये आत्मामे ज्ञान शक्ति है तो ज्ञान शक्ति शुद्ध शक्तिका नाम है। उस ज्ञानमे जो कुछ परिणमन हो रहे हैं वे ज्ञानशक्ति नही। जैसे हम भीट जान रहे हैं तो भीटका जो जानन बन रहा है यह ज्ञानशक्ति नहीं। शक्ति नही। शक्ति तो शुद्ध होती है। भीटका जानन अनित्य है और यह परसम्बन्ध वाला है। भीटका जानना, इस जाननेमे भीट विषयभूत हुआ, पर शक्ति शुद्ध होती है। उसका विषयभूत कोई पदार्थ नही होता। और वह शाश्वत रहता है। ऐसी जरा ज्ञानशक्तिकी ओर दृष्टि तो लाइये। जैसे किसी कठिन कामको करनेके लिये हाथ पैर नसें ये सब चरमरा जाते हैं इसी तरह आत्माकी किसी भी एक शुद्ध शक्तिपर दृष्टि ले जानेके लिये ये विकल्प, कल्पनायें, चिन्ता, शोक आदि सब चरमरा जायेंगे। और जब तक ये सब जीवित रहते हैं तब तक आत्माकी शुद्ध शक्तिका उपयोग नहीं किया जा सकता। तो गुण तो इतना श्रेष्ठ तत्त्व है। अब उसकी यहाँ मोटी दृष्टि देकर सूक्ष्मताकी कला खेली जा रही है विशेषवादमें कि परेका ज्ञान हो यह भी गुण, उरेका ज्ञान हो यह भी गुण। और गुण नाम है शक्तिका। और कामके लिये बडा आधारभूत तत्त्व हुआ करता है। ऐसे अटपट गुणोकी कल्पना करनेसे कोई हितकी सिद्धि या पदार्थोंमें किसी ऐसे स्वरूपकी सिद्धि कि जिसको जाननेके कारण आत्माका हित हो जाय, इस गुण विस्तारसे कोई सम्बन्ध नहीं। तो यह परत्व अपरत्व व्यवहार भी परत्व अपरत्व गुणके कारण नही किन्तु अपेक्षा बुद्धिके कारण हो रहा है। लम्बे कालकी बातको पर कहा गया और निकट कालकी बातको अपर कहा गया। लम्बे क्षेत्रकी बातको पर कहा गया निकट क्षेत्रकी बातको अपर कहा गया। यो परत्व अपरत्व नामका गुण कोई वास्तविक गुण नही है।

विशेषपादाभिमत बुद्धि गुणकी मीमांसा—अब शंकाकार कहता है कि एक बुद्धि नामका भी गुण है। जिसका समवाय सम्बन्ध आत्मामे होता है। बुद्धि अनित्य होती है। आत्मा नित्य होता है और इसी कारण एक साथ ज्ञान चलते रहने का दोष नही आता, क्योकि आत्मा तो चित्स्वरूप है। आत्मासे तो ज्ञान होता नही। आत्मामे ज्ञानका स्वभाव है नही। वह तो मात्र चैतन्यस्वरूप है। आत्मामें जो ज्ञान बनता है सो बुद्धिके सम्बन्धसे बनता है और जब तक यह बुद्धि इस जीवके साथ लगी है तब तक इसको यो व्यक्त ज्ञान रहता है और संसारमें इसका परिभ्रमण चलता है। जिस कालमें भेद विज्ञान हो जाय कि मैं तो केवल चित्स्वरूप हू, बुद्धि मुझसे पृथक है और उस बुद्धि विकल्पसे दूर हो जाय तो इस जीवको मोक्ष होता है। इस तरह शंकाकार बुद्धि गुणका सद्भाव कह रहा है और बुद्धिको अनित्य कह रहा है। समाधानमे उनसे पूछा जाय कि बुद्धि आत्मासे सर्वथा भिन्न है अथवा अभिन्न है? यदि बुद्धि आत्मासे सर्वथा जुदी है तब फिर इसका कारण बतलावो कि बुद्धिका सम्बन्ध आत्मासे ही तो होता है और आकाश, काल, दिशा इनमें नही होता, इसका

कारण क्या है। जो अत्यन्त भिन्न-चीज है जैसे पुद्गल और जीव भिन्न हैं तो जीव और पुद्गलका कभी समवाय हो ही नही सकता। द्रव्य द्रव्य सब परस्पर अत्यन्त भिन्न माना है तो द्रव्य द्रव्योका कभी-भी तादात्म्यरूप सम्बन्ध हो हो नहीं सकता। तो जब बुद्धि आत्मासे जुदी है तो बुद्धिका आत्मामे सम्बन्ध कैसा ? और, यदि अभिन्न है तो आत्मा ही बुद्ध्यात्मक कहलाया। बुद्धि अलगसे गुण पदार्थ हो। आत्मा ही बुद्धयात्मक कहलाया। बुद्धि अलगसे गुण पदार्थ हो। आत्मद्रव्य अलगसे पदार्थ हो और फिर आत्मामे बुद्धिका समवाय किया जाता हो यह बात तो न रही।

बुद्धि गुणके सम्बन्धमे निर्णयन —अब इस बुद्धिमें तथ्यभूत क्या है सो सुनो। आत्मा चित्स्वरूप है यह तो विशेषवादी भी मानता है और स्याद्वादियोको भी इन्कार नहीं है। बराबर आत्मा चैतन्यस्वरूप है। मगर चैतन्यका अर्थ क्या है ? चैतन्यका अर्थ है चेतना प्रतिभासना। आत्माको ब्रह्मवादी प्रतिभासस्वरूप भी कहते हैं और ब्रह्मवादी और विशेषवादी ये हैं तो एक ही प्रकारके लोग, पर मतव्योसे कुछ अन्तर आ गया है। तो मतलब यह है कि आत्मा चैतन्यस्वरूप है। इसका अर्थ क्या हुआ कि आत्मा प्रतिभासस्वरूप है। जब आत्मा प्रतिभासस्वरूप है तो प्रतिभास दो प्रकारके होंगे—एक सामान्यप्रतिभास एक विशेषप्रतिभास। कुछ भी बात हो, सामान्य विशेषताका कोई उल्लघन नही कर सकता। मनुष्य है तो दो प्रकारसे देखो उसे—सामान्य मनुष्य और विशेष मनुष्य। आनन्द है उप भी दो प्रकारसे देखो—सामान्य आनन्द विशेष आनन्द। कुछ भी बात हो, उसके भेदाभेदरूप हैं विकासपर दृष्टि दे तो विशेष नजर आयगा। और सामान्य वर्तनापर दृष्टि दो तो सामान्य दृष्टिगत होगा। अब यह प्रतिभास यह चैतन्यसामान्यरूप भी हुआ, विशेषरूप भी हुआ। सामान्यरूप चैतन्यका नाम है दर्शन और विशेष चैतन्यका नाम है ज्ञान। तो जब चैतन्य आत्माका स्वरूप है गुण नही, आत्माका गुण चैतन्य माना जाय तो ये दो अलग-अलग पदार्थ बन जायेंगे विशेषवादका गुण अलग सत्ता रखने वाला पदार्थ है और द्रव्य अलग सत्ता रखने वाला पदार्थ है। सो चेतनाको गुण तो नहीं कहते हैं। स्वरूप स्वरूपवानमे अभिन्न रहता है। तो जब आत्माका स्वरूप चेतन है और चेतन है सामान्यविशेषात्मक तो यह अर्थ हुआ कि दर्शन ज्ञान भी आत्माका स्वरूप है, गुण नहीं। विशेषवादियोसे कहा जा रहा है इस कारण दर्शन और ज्ञानमे गुणपनेका निषेध कर रहे हैं। वैसे तो गुण कहा जाय तो कोई अनुचित नही। गुण जो है वह पदार्थमे अभेदरूप हुआ करता है। लेकिन जो गुणको और पदार्थको याने द्रव्यको भिन्न-भिन्न मानते उनके लिये कह रहे हैं—तो दर्शन ज्ञान गुण नहीं किन्तु आत्माके स्वरूप हैं। अब जो ज्ञानस्वरूप बना आत्मा, उस ज्ञानस्वरूपका प्रति समयमें नवीन-नवीन अवस्था बनती ही रहती है। तो जो सहज ज्ञानस्वरूप है वह तो है आत्मामें शक्ति शाश्वत और उसका जो विकास है जाननरूप, वह है (ज्ञान पर्याय)। अब आप यह बतलावो कि आपकी बुद्धि किसका सकेत करती है ? क्या सहज ज्ञान

स्वरूपका नाम बुद्धि रख रहे हो या ज्ञानपरिणमनका नाम बुद्धि रख रहे हो ? यदि सहज ज्ञानस्वरूपका नाम बुद्धि रखते हो तो रख लो। नाम बदलकर रखनेसे पदार्थ तो न बदल जायगा। जैसे कोई व्यक्ति है, गृहस्थावस्थामे उसने बहुत अन्याय किया तो साधु अवस्था ग्रहण करनेपर नाम बदल देता है ताकि लोगोमे हमारा अपमान कम हो जाय। और, वह साधु एक बार नाम बदल चुका और साधुपनेमे ही अन्याय कर बैठा तो फिर वह दूसरा नाम बदल देता। तो यो नाम बदलते जावो पर नाम बदलनेसे आदर प्रकृति मनुष्य तो न बदल जायगा। तो ऐसे ही उस सहज ज्ञानस्वरूपका नाम बुद्धि रखलो तो उससे कही अर्थ न बदल जायगा। सो बुद्धि आत्माका स्वरूप है, उसका निषेध नही किया जा सकता। यदि ज्ञानपरिणमनका नाम बुद्धि रखते हो—खम्भा जाना, भीट जाना, घर जाना, दूकान जाना, इस तरह जो हमारी नाना जानकारियां चल रही हैं इनका नाम बुद्धि है। ऐसा यदि कहते हो, तो अर्थ हुआ कि बुद्धि परिणमन। और वह आत्माके ज्ञानस्वरूपका परिणमन है। इसमे भी कोई आपत्तिकी बात नही है। आपत्ति तो केवल इतनी ही है कि बुद्धिका गुण माना जाय और उसकी सत्ता न्यारी मानी जाय, आत्माको द्रव्य माना जाया, उसका सत्त्व न्यारा माना जाय और फिर आत्मामें बुद्धिका समवाय करके आत्माका काम किया जाय तो इसमे आपत्ति है। तो विशेषवादियो द्वारा कल्पित जैसा बुद्धिका स्वरूप है वैसा बुद्धि नामका गुण पदार्थ सिद्ध नही होता।

शंकाकार द्वारा सुख दुख नामक गुणके सद्भावका कथन—शंकाकार कहता है कि एक सुख नामका भी तो गुण है और दु ख नामका भी एक गुण है। सुख और दु ख जो इस जीवको लगे हैं वे दोनो ही गुण हैं। यहां गुण शब्दका यह अर्थ नही लेना कि जो अच्छी बात हो उसे गुण कहा हो और जो बुरी बात हो उसे अवगुण कहा हो। अवगुण भी गुण ही है और गुण सो गुण है ही। जैसे नाम और बदनाम। कोई लोग कहते कि अगर मैं बदनाम हुआ तो अच्छा ही तो रहा। नाम तो लगा है साथमे। यहां गुणका मतलब अच्छी बातसे नही किन्तु एक जो निर्गुण हो और द्रव्यके आश्रय रहता हो, ऐसा जो कुछ भी तत्त्व है उसका नाम गुण रखा गया है। तो आत्मामे सुख गुण भी है और दु ख गुण भी है। जब सुख गुणका सम्बन्ध होता है आत्मामे तब आत्मा सुखका अनुभव करता है जब दुख गुणका सम्बन्ध होता है तब आत्मा दुखका अनुभव करता है। यह सिद्धान्तानुसार कथित २४ गुणोमेसे १३वां और १४वां गुण है।

सुख दु खके गुणत्वकी शङ्काका समाधान—समाधानमे कहते हैं कि पहिले सुख और दु खका अर्थ ही तो बताओ कि इसका मतलब क्या है ? सुख किसे कहते हैं ? सु के मायने सुहावना और ख के मायने इन्द्रिय। जो इन्द्रियोको सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं। और इन्द्रियोको जो असुहावना लगे उसे दु ख कहत हैं। तो

सुहावना लगना, असुहावना लगना यह किसकी विशेषता है ? है आत्माकी विशेषता। सुहावना लगनेका, असुहावना लगनेका प्रभाव किसपर पड़ता है ? आत्मापर पड़ता है सो है तो सुख दु:खके आधार आत्मा है, इसमे कोई सन्देह नही। लेकिन वे सुख दु ख हैं क्या ? कि आत्माका जो एक आनन्द स्वरूप है उस आनन्द स्वरूपका विभाव परिणमन है। ये सुख दु ख कोई अलग गुण पदार्थ हो और उनका जब समवाय सम्बन्ध बने आत्मामें तब आत्मामें सुख दुख हो ऐसी बात नही है, किन्तु यह आत्मा ही अपने ज्ञानके अनुसार आनन्द गुणका परिणमन किया करता है। सो जब ज्ञानमे भूल है तब ज्ञान ज्ञानस्वरूपसे हटकर किसी अज्ञान रूपमें लग रहा है उस समय आनन्द गुण का, आनन्द स्वरूपका सुख एवं दु खरूप विकार परिणमन होता है। सुख दु ख विशेषवादियोंने अनित्य कहा तो इसमें कुछ सन्देह नही कि सुख दुख अनित्य ही है, क्योकि अनित्य तो कर्म, क्रिया परिणति आदिक कहलाते हैं, गुण नही। तब सुख दु खका आधारभूत जो आत्मामें आनन्दस्वरूप है वह तो है गुण शक्तिस्वरूप और सुख दु ख हैं आनन्दस्वरूपका विकृत परिणमन ! स्वरूप और गुणमे अन्तर कुछ नही, अन्तर केवल यही है कि जब अभेद दृष्टिमे द्रव्यको निरखते है तो वहाँ जो निरखा गया उसे कहते हैं स्वरूप और भेद दृष्टिसे जब सत्यको निरखते हैं वहाँ जो निरखे जाते है उन्हें कहते है गुण। स्वरूपभेद गुण है। गुणोका अभेदस्वरूप है, सुख दु ख नामके गुण अलग हो ऐसी बात नही है। जिस कालमें आत्मा भेद विज्ञान करता है उस भेद विज्ञानसे यह जी अपने अभेद स्वरूपकी ओर आता है। आत्माका अभेद स्वरूप है ज्ञानानन्द-स्वरूप। उसमें उपयोग जमनेसे, उसमे रमण होनेसे आत्माके सुख दु ख विकार आदि दूर हो जाते हैं और आनन्द स्वरूपका शुद्ध आनन्द विकास प्रकट हो जाता है।

हम आप सबकी इस नर जीवनमे बडी जिम्मेदारीका स्मरण—हम आप सब बन्धुवोंने यह मनुष्यभव पाया तो बडी जिम्मेदारीसे सुननेकी बात है, ऐसा अमूल्य नर जीवन बार बार नही प्राप्त हो सकता। ससार मे देखिये-स्थावर, कीट, पतिगे आदि ये कितनी ही तरहके दुर्गति वाले प्राणी हैं, ये प्राणी हमारी जातिके ही जीव हैं, और, इस इस तरहकी परिणतियाँ हम आपने अनेक बार प्राप्त की है। क्या बीती होगी उस समय और अब भी आगे इस नर जीवनको यदि यो ही मुफ्त सा समझ कर परिग्रहकी तृष्णामें, कुटुम्बियोके स्नेहमें, विषयोके उपभोगमे और असार व्यर्थ अनर्थकी कीर्तिकी चाहमे यदि इस उपभोगको फँसाया तो जिन दुर्गतियोंको भोगकर आज आये हैं मनुष्यभवमें उन्ही दुर्गतियोमें फिर जाना होगा। वैसे ही मोटे रूपसे समझ लीजिये कि इस नर जीवनको हम धीरे-धीरे समाप्त कर रहे हैं, मरणकी ओर जा रहे हैं, जितना रहा शेष जीवन है वह भी बहुत ही जल्दी निकल जाने वाला है। मरण होगा, मरणके बाद फिर आपका क्या रहा यहाँ ? घर, कुटुम्ब, पैसा कुछ भी रहे तो बतलावो ! जो पर दृष्टि करके विकल्प बनाकर यहाँ सस्कार बना लिया मलिनता बना

लिया, वे सस्कार तो साथ जायेंगे ना, दु:खी करनेके लिए ? तो जैसे ये घर धन वैभव कुटुम्ब परिजन आदि छूटते हैं वैसे ही ये सस्कार भी छूट जायेंगे क्या ? अरे ये तो न छूटेंगे। जीवनमे जो पाप कमाया है वे सस्कार तो इस जीवको दु खी करनेके लिए साथ जायेंगे। तब समझो अपनी कितनी बडी जिम्मेदारी है। उन गाय बछडो जैसा स्वच्छन्दभरा प्रवर्तन मत करो। खूटेमे बँधे हैं तो बेचैन हैं, जरा सा गिरवाँ टूटा कि भाग करके जहाँ मन चाहा वहाँ भाग जाते हैं। सो ऐसे ही धर्मका बन्धन तोडकर, ज्ञान दृष्टिका नियन्त्रण तोडकर विषयोमें, चाहोमे, दूकानमे, परिजनमे, जहाँ चाहे वहाँ मनको खूब लगायें, यह प्रवृत्ति तो इस जीवकी बरबादीका ही कारण है। इसका फल कोई दूसरा भोगने न आयगा। स्वयके द्वारा किये गए कर्मोंका फल स्वयको भोगना पड़ेगा।

आत्मगुणकी सम्हालमे अलौकिक आत्म वैभवका लाभ—अहो, अब तक बरबादीका ही उपाय किया। कर्मोंका बोझ बढाया, लेकिन खेद मचानेकी कुछ बात नही है। अनगिनते भवोके भी बँधे हुए तीव्रसे भी तीव्र पाप यदि अपनी ज्ञान दृष्टिको सम्हाललें और अपने आपके स्वरूपका अनुभव करें तो वे सारेके सारे पाप कर्म कुछ ही क्षणोमे खिराये जा सकते हैं। बल इतना बडा है हम आप सबमें। क्योकि, आखिर हैं क्या ? एक भ्रमके खम्बेपर यह सारी विडम्बना सवार है। दुर्गतियोमे जन्म मरण करना, चिन्ता भय, शोक, शल्य आदिक भावोसे अपनेको दु खी करना, ये सारीकी सारी विडम्बनायें भ्रमके खम्बेपर आ पडी हुई हैं। आधार कुछ नही है। भ्रम है। एक मान्यता ही उल्टी बना लेनेका यह सब फल है। मान्यता तो मान्यता ही हैं। कुछ वहाँ रूप, रस, गध, स्पर्श नही पडे, वहाँ कोई पहाड पृथ्वी नही अडी कि जिसको फेंककर निकालनेमे देर लगे और बडी कठिनाई पडे। अरे मान्यता तो मान्यता ही है। अब तक रही परमे आपा माननेकी मान्यता, परसे सुख दु ख समझनेकी मान्यता। रही तो मान्यता ही, कल्पना ही। उस कल्पनाको सम्यग्ज्ञानके बलसे दूर करके निरखें कि ज्ञानानन्दघन यह स्वय आत्म-तत्त्व है। बस इसमे इसकी ही चीज, इसका ही ज्ञान, इसका ही उपयोग समाये रहे, बस कृतार्थता जग गयी। आत्माका उद्धार होना कोई कठिन बात नही है लेकिन कोई उसके घोरे ही न आये, आत्माकी चर्चाके निकट ही न आये, यह काम बडा बोझ जैसा लगे और रागद्वेषादिकके कार्य करना बडा आसान मालूम दे, तो ठीक है। आज पुण्यका उदय मिला है ना, घर है घर वाली है, बच्चे हैं। सब कुछ मिला है ना, और वे सब आपके हैं, आपका उनपर अधिकार है व्यवहारसे। तहसीलमे, नगरपालिकामे आपकी जायदाद आपके नाम चढी हुई है। आप बे फिकर होकर सब मेरा ही तो ठाठ है, इसमें किसी दूसरेका है क्या ? यो स्वच्छन्द होकर उसके रागद्वेषमे लग रहे यह काम आपको बडा आसान लग रहा है और यह अपने आत्माकी बात, इस धर्मकी बात, जिससे अपना उद्धार होगा, ससारके सकट सदाके लिए छूटेंगे, उस कामको करनेके लिए, उसकी बात सुननेके लिए आपको बडी कठिनाई

मालूम हो रही है। हम ही आत्माकी बातोको सुनने न देंठें तो होगा क्या, अथवा अब थोडा ही तो समय रह गया, सुन लिया जाय यो उस आत्महितके कामके लिए बडी विवशतायें मालूम हो रही हैं और रागद्वेषादिकके कार्योंके लिए बडी स्वाधीनता मालूम हो रही है। तो इन गैर जिम्मेदारीकी प्रवृत्तियोंको छोडना होगा और जब इस ज्ञान की ओर आयेंगे और किसी भी समय ज्ञानानन्दघन आत्मतत्त्वकी झलक होने लगेगी तब आप स्वय स्वय तृप्त और सन्तुष्ट होगे और जानेंगे कि तीन, लोककी सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग, काककोटसम गिनत हैं सम्यग्दृष्टि लोग यह बात बिल्कुल सत्य है, जिस वैभवको, जिस लाखोकी मायाको लोगोंने बडी रुचिसे पकड रखी है वह माया सम्यग्दृष्टि पुरुषको काककीटकी तरह ध्यानमे आ जायगी आत्म वैभवके पानेपर उस वैभव मूल्य कोई आंक सकता है क्या ? तब उस ज्ञानस्वरूपकी सिद्धि होनेपर उसमे रमण होनेपर ये सुख दु ख नामके विकार इसके तुरन्त दूर हो जाते हैं। और ठीक ही है। मोक्ष अवस्थामें न सुख रहता और न दु ख रहता। सुख दु ख ये गुण नही हैं, किन्तु आत्माके आनन्दस्वरूपमें भेद दृष्टिसे आनन्दगुणके ये विकृत परिणमन हैं, अत विशेषवादमे कल्पित सुख दु ख जिस स्वरूपसे माने गए हैं वह सिद्ध नही होता।

शङ्काकार द्वारा इच्छा और द्वेषमे गुणत्वकी सिद्धिका प्रयास—अब शकाकार कहता है कि इच्छा और द्वेष ये भी तो गुण हैं। राग करना, रम जाना सुहावना लगना, इच्छा करना, प्रतीक्षा करना आदि ये भी तो गुण हैं, द्रव्य तो नही है। इसी प्रकार द्वेष करना, विरोध करना, मात्सर्य रखना यह भी तो गुण है। तब फिर यह कहना कि पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होता है और ऐसे-ऐसे पदार्थ केवल ६ हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। यह कथनी कैसे शोभा पा सकती है ? सब लोगोको विदित है कि इच्छा और द्वेष खासे प्रचण्ड गुण हैं, और ससारमे यह सारा नाच, ये सारी घटनायें, ये विडम्बनायें, सम्मान अपमान आदि जो जो कुछ है वे इस इच्छा द्वेषके आधारपर ही तो हैं। जो मनुष्य अच्छी इच्छा करता है उसका लोकमे सम्मान होता है और वह भी बडा सुखी रहता है। जो द्वेष किया करता है या खोटी इच्छा करता है उसका इस लोकमें अपमान होता है और स्वय भी दुखी रहा करता है। तो जिस गुणपर सारा कुछ खेल अवलम्बित है इस इच्छा और द्वेष नामके गुणको कैसे भूलते हो ? यह भी गुण है।

इच्छा और द्वेषके गुणत्वकी मान्यताका निराकरण—उक्त शकाके समाधानमे कहते हैं कि इच्छा और द्वेष इनका क्या अर्थ है ? इच्छा मायने चाह होना। चाहके मायने परकी ओर आकर्षण होना। चाहे चेतनकी चाह हो अथवा अचेतनकी चाह हो जहाँ चाह है वहाँ परकी ओर खिंचाव है। चाहका अर्थ है परका राग, परकी ओर आकर्षण। और, द्वेष मायने असुहावना लगना, बुरा प्रतीत होना, घृणा करना, आकर्षण न होना, ये तो हैं ही मगर उसके विरुद्ध उतना ही विमुख हो

जाना। ऐसा जो विकल्प होता है उसका ही नाम द्वेष है। तो अब देखो कि जब तक इच्छा है और द्वेष है तब तक जीवोकी परिणति इस इस प्रकारकी हो रही है। जब इच्छा और द्वेष न होगे तब आत्माकी प्रवृत्ति कैसी होगी इसका अदाज करो। शान्त, गम्भीर, अपने आपमे समायी हुई परिणति होगी। इस प्रकारके परिणमन का नाम है तपका प्रायोगिक रूपसे होना। जिसका नाम रखा गया है चरित्र। तो इच्छा द्वेष जब नही है तब शुद्ध चरित्र है और जब इच्छा द्वेष है तब शुद्ध चरित्र नही है। तो अब देखिये ! मुकाबलेमें दो बातें हो गयी– इच्छा द्वेष और शुद्ध चरित्र, तो जिस शक्तिका परिणमन इच्छारूप हो रहा है तब शुद्ध चरित्ररूप नही। जब शुद्ध चारित्ररूप हो रहा है तब इच्छा द्वेष नही। इससे यह मानना चाहिये कि चारित्र शक्ति जीवका स्वरूप है और उस स्वरूपमे जब विकार हुआ तब होता है इच्छा और द्वेष। और फिर स्वरूपमें विकार नही है, स्वच्छ स्वरूपविकासमे चल रहा है तो उस का नाम है शुद्ध चारित्र। इच्छा द्वेष चारित्र नामक स्वरूपके, भेद दृष्टिसे चारित्र नामक गुणके विकार परिणमन हैं। इच्छा, द्वेष स्वय कोई गुण पदार्थ नही हैं कि उनका आत्मामे सम्बन्ध हो तब आत्मा इच्छा और द्वेषका अनुभवन किया करे।

शकाकार द्वारा प्रयत्न नामक गुणके सद्भावका कथन—शकाकार कहता है कि एक प्रयत्न नामका गुण है। जीवमें जो चारित्रका उमग उठता है। प्रयत्न होता है, किसी कार्यके करनेके लिये एक यत्न भीतरमे चलता है जिससे कि प्रगति होती है, आरम्भ बनता है वह है प्रयत्न नामका गुण। तो सब लोग अनुभवमे जानते हैं कि जान लिया, परख लिया, निर्णय कर लिया, पर जब तक प्रयत्न नही किया जाता तब तक वह कार्य सिद्ध नही होता। पानी पीना है। प्यास लगी है मान लो। तो प्यास मिटानेका साधन यह कुवां है। इस कुवेंपर डेगची, रस्सी हमेशा रखी रहती है। वही छोटे–छोटे डिब्बे भी पडे रहते हैं। सब कुछ समझ लिया, पर प्रयत्न न किया जाय, उस ओर न जाया जाय, पानी न खीचा जाय, तो प्यास तो नही बुझ सकती। तो इस प्रयत्नका तो बडा ही महत्त्व है। सब कुछ प्रयत्नके आधार पर ही ये भली बुरी आदिक बातें चल रही हैं। तो जैसे द्रव्य कोई पदार्थ होते हैं इसी प्रकार प्रयत्न नामका गुण भी एक पदार्थ है। जब उस प्रयत्नका सम्बन्ध होता है आत्मामे तब कुछ ये स्थितियां बनती हैं। तो प्रयत्न नामका भी एक गुण पदार्थ है।

प्रयत्नको गुणपदार्थ माननेके विकल्पका निराकरण—अब समाधानमे कहते हैं कि प्रयत्नका अर्थ क्या है ? एक मनुष्यने प्रयत्न किया, कुवेंपर जाकर डेगची से पानी खीचकर पानी पिया तो उस मनुष्यने वहां किया क्या ? प्रयत्न किया। प्रयत्न मायने हस्तादिककी क्रियायें। तो प्रयत्नका अर्थ क्रिया हुई। प्रथम तो इसीसे बात कट जाती है कि प्रयत्न कोई गुण नही है, किन्तु वह तो क्रिया है, कर्म है।

विशेषवादमे कर्म नामका भी पदार्थ माना है। तो प्रयत्न गुण न रहा। और, फिर और भी सुनिये—प्रयत्न आत्मामे हुआ। क्या प्रयत्न हुआ ? आत्माने कोई बात जानी समझी। निर्णयकी और उस उपायका सकल्प किया। अब इसके बाद आत्म प्रदेशमे जो योग हुआ, परिस्पद हुआ वह उसका प्रयत्न कहलाया। तो वह योग भी क्या है ? आत्माकी क्रिया है, प्रयत्न है। तो प्रयत्न नामका कोई गुण अलग हो और उसका फिर आत्मामें सम्बन्ध हो तो आत्मा प्रयत्न करे या जिसमें सम्बन्ध हो वह प्रयत्न करे ऐसा प्रयत्न नामका कोई गुण नही है।

बुद्धि सुख दुख इच्छा द्वेष व प्रयत्नके कात्मगुणत्वकी असिद्धि—अब जरा इन ६ गुणोके सम्बन्धमे एकचित बात सुनिये–बुद्धि सुख,दु ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, जिनका वर्णन अभी चल रहा है, जिनका आत्मासे सम्बध बताया जाता कि इन ६ गुणोका सम्बध आत्मासे है और फिर उसका हम आप लोग प्रयोग करते है तो यह तो बतलाओ कि आत्मामे जो सुख दु ख इच्छा द्वेष प्रयत्न ये ५ गुण हैं–ये ५ गुण बुद्धिरूप हैं या अबुद्धिरूप, ज्ञानात्मक हैं या अज्ञानात्मक ? यदि कहो कि अबुद्धिरूप है, ज्ञानरहित है तो जैसे ज्ञानरहित है तो जैसे ज्ञानरहित रूप, रस, गध स्पर्श हैं तो वे कही बुद्धि आत्माके गुण तो नही बन जाते। पुद्गलमे रूप, रस, गध, स्पर्श पाया जा रहा तो ये रूपादिक क्या आत्माके गुण हो जाते हैं ? नही। क्यों नही होते कि वे अचेतन है, बुद्धिरहित हैं। अब बुद्धिरहित हैं आपके सुख, दु ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, तो ये पाँचोके पाँचो गुण हो ही नही सकते, क्योंकि बुद्धिरहित हैं और यदि कहो कि ये पाँचो भी बुद्धयात्मक है तो ठीक है। इन पाचोका नाम बुद्धि पड गया, ये पाँचो कुछ नही रहे। जब ये पाँचो बुद्धिरूप हो गए तो इनसे भिन्न ये सुख दुख आदिक कुछ भी न रहे। यदि कहो कि कुछ विशेषता है, कुछ इसके स्वरूपका भेद है, उस विशेष को लेकर ये सुख दु ख इच्छा, द्वेष, प्रयत्न बुद्धयात्मक हैं तो भी उनका भेद रूपसे कथन चलता है। जैसे ज्ञान दर्शन चारित्र आदिक गुण स्याद्वादियोके ये आत्मासे भिन्न हैं तो सख्या, गुण, आत्मा, प्रयोजन आदिककी वजहसे उनमे भेद माना जाता है। और भेदरूपसे शास्त्रोमे वर्णन है। इसी प्रकार कुछ विशेषोंको लेकर इन सुख दु ख आदिकमे और बुद्धिमे भेदसे कथन चलता है। तो उत्तरमे कहते हैं कि फिर तो उनके अभिधानमें अभिधामे अभिधेयमे भी भेदका अभिधान होना चाहिये। कुछ विशेषता पाकर उनमे भेदसे कथन करना हो तो वाचक जो शब्द हैं उन शब्दोमे भी भेदसे कथन करो। और, फिर कुछ भी विशेष पाकर अत्यन्त भेद माननेकी यदि आदत बना ली गई तब तो इसमे बडे दोष आयेगे। इसमे ज्यादह बात बढानेसे क्या लाभ है ? तथ्यपर आइये ये सुख दु ख इच्छा द्वेष प्रयत्न आदि जिस जिस प्रकारसे वैशेषिक सिद्धान्तमे माना है उनकी सिद्धि नही होती है। ये सब आत्माके किसी गुणके परिणमन हैं और बुद्धि भी आत्माके सहज ज्ञानस्वरूपका परिणमन है। ये स्वतन्त्र भिन्न गुण पदार्थ नही सिद्ध होते।

शकाकारके [गुरुत्व गुणपे पेशी- शकाकार कहता है कि एक गुरुत्व नाम का भी गुण है। गुरु कहते हैं वजरदारको। गुरु कहते हैं भारीपनको। देखो ! पदार्थमे भारीपन नामका भी एक गुण है जो कि पृथ्वी एव जलमें रहता है। और, वह गुरुत्व गुण पतन क्रियाका कारण है, अर्थात् गिर जाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन ४ मेसे बताना था कि गुरुत्व किसमे पाया जाता है ? तो अग्निमे गुरुत्व नहीं मान रहे क्योकि अग्निका क्या वजन ? यदि जलती हुई अग्निका भी वजन है तो वह ईन्धनका वजन है अग्निका नही। इसी तरह कभी हवाका भी वजन होता है तो वह कोई उपाधिवश होता है। हवामे स्वयमे कुछ वजन नहीं। तो इस तरह वजन नामक गुण पृथ्वीमे और जलमें पाया जाता है। पृथ्वी भी तोली जाती है, सोना, चाँदी, लोहा, पत्थर, मिट्टी सभी तोले जाते हैं। तो गुरुत्व नामक गुण पृथ्वी और जलमें रहने वाला है। और पतनका कारणभूत है। जिनमे गुरुत्व होता है वह चीज गिर जाती है। इस तरह १८वां गुण यह पतन नामक है। ऐसा शकाकार अपने गुण पदार्थके प्रसगमे गुरुत्व नामक गुणकी सिद्धि कर रहा है।

गुरुत्वके गुणत्वकी शकाका समाधान – अब समाधानमे कहते हैं कि गुरुत्व नामक गुण जो बतला रहे हो वह तो युक्त है और पुद्गलका गुण है लेकिन यह समझना चाहिये कि पुद्गलमे जो चार गुण हैं –स्पर्श, रस गध, और वर्ण, उनमे स्पर्श नामक शक्तिका इन स्कधोमें यह एक परिणमनको भी गुण कहा जाता है और शक्तिको भी गुण कहा जाता है। पर गुण गुण नाम सुनकर अर्थ जरूर सही और भिन्न–भिन्न समझना चाहिये। पर्यायरूप गुण तो अनित्य होता है और शक्तिरूप गुण नित्य होता है। जो गुरुत्व गुण है और वह पुद्गलका ही गुण है, लेकिन गुरुत्व के बारेमे यह कहना कि गुरुत्व अतीन्द्रिय है अर्थात् इन्द्रियके द्वारा जाना नही जाता और, पतनसे उसका अनुमान होता है याने कोई चीज गिर गयी तो उससे जाना कि इसमें वजन है तभी तो गिरी, इस प्रकार जो विशेषवादमें कहा गया है कि गुरुत्वमे दो बातें हैं कि अतीन्द्रिय है, इन्द्रिय द्वारा गम्य नही है, और गिरनेकी क्रियासे उस का अनुमान होता है यह बात युक्त नही है। बात तो यह है कि गुरुत्व अतीन्द्रिय नही है। हाथपर चीज रखकर हम जानते हैं कि यह इतनी वजनकी चीज है। कितने ही लोग तो इतने चतुर होते हैं कि हाथपर लेकर ही बता देंगे कि यह चीज इतने किलो अथवा इतने तोले है। तो देखा स्पर्शनइन्द्रियसे जान लिया गया ना, कि इसमें गुरुत्व है ? यह चीज इतने तोला है, इतनी बारीखोकी जानकारी तो मनकी सहायतासे हुई। कोई इतनी बारीखीमे न जान सके, किन्तु वजन तो हर एक जीव जान जाता है। बैल, घोडा आदिपर भी वजन लादा जाता तो क्या वे इतना नही समझ पाते कि मुझपर वजन लदा है ? हाँ यह न जान पायेंगे कि इतने मन या इतने किलो का वजन लदा है। गुरुत्वका बोध तो स्पर्शनइन्द्रिय द्वारा हो जाता है। तो वह गुरुत्व अतीन्द्रिय नही है पहिली बात। दूसरी बात यह है कि यह कहना कि पदार्थके वजन

जुनकर स्कन्धकी सकलमे आते है उस समय इसमे चार परिणमन और प्रकट हो जाते हैं—वजनदार होना हल्का होना, कोमल होना और कठोर होना। जो शुद्ध परमाणु है, जो कि स्पर्श द्रव्य है उसमे ये चार परिणमन न मिलेगे। कोई परमाणु कठोर है, कोई कोमल है, ऐसा तो नही है। लेकिन जब परमाणुवोका सयोग हो जाता और एक पिण्ड बन जाता तो उसमे चार बातें ये और बढ़ जाती है—कोमल होना, कठोर होना, भारी होना और हलका होना। तो पुद्गल स्कधोमे स्पर्श गुणका यह परिणमन है - वजनदार होना। यह शक्ति भूतगुण नही, किंतु शक्तिका परिणमनरूप गुण है।

द्रवत्वको गुण पदार्थ माननेकी शकाकारकी मान्यताका कथन—अब शकाकार कहता है कि एक द्रवत्व नामका भी गुण है। द्रवत्व कहते हैं प्रवाह होनेका। यह द्रवत्व गुण पृथ्वी, जल और अग्निमे पाया जाता है। विशेषवादी कह रहे हैं कि जो वहनेका गुण है। बहाव हो जाता है यह गुण पृथ्वीमे मिलेगा। जलमे मिलेगा। पृथ्वीमे वहाव गुण मिलता है और अग्निमे भी वहाव गुण मिलता है यह बात जरा कठिनाईसे समझमे आनेकी है और जलमे प्रवाह गुण है यह स्पष्ट है। तो इसका कारण यह है कि पृथ्वी और अग्निमे तो द्रवत्व नैमित्तिक गुण है और जलमे द्रवत्व स्वत सिद्ध गुण है। जल बह जाता है यह तो जलका स्वयमेव एक गुण है। और अभी पृथ्वी भी बहती है। जैसे लाख पिघली और बह गयी। तो लाखमे अग्निका सम्बन्ध हुआ उस वजहसे लाख पृथ्वी होकर भी बह गई। सोना चाँदी भी कभी बहते हैं कि नहीं ? बहते हैं। तो पृथ्वी और अग्निमे जो बहाव है वह तो है नैमित्तिक और जलमे जो बहाव है, द्रवत्व है वह है स्वत. सिद्ध तो इस प्रकार यह १९ वा गुण द्रवत्व है।

द्रवत्वके गुणत्वकी मान्यताका निराकरण—उक्त शकाके समाधानमे कहते हैं कि पृथ्वी और अग्निमे भी द्रवत्व है यह बात सही नही है। हाँ कभी ऐसा देखा जाता है कि जैसे कि विशेषवादमे स्वर्णको अग्निका पुत्र माना है। ऐसा पुराणोमे वर्णन चलता है ना ! तो अब स्वर्ण क्या हुआ ? अग्नि, तैजस स्वर्ण पृथ्वीमे नहीं माना गया है विशेषवादमे। चाँदी, लोहा आदि तो पृथ्वी हैं और स्वर्ण है तैजस। तो विशेषवादके आगमसे यह बात प्रसिद्ध है कि स्वर्णादिक कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो अग्निके पुत्र हैं लेकिन उन सबमे पहिला पुत्र है स्वर्ण। तो इससे यह सिद्ध हो गया कि स्वर्ण अग्नि है। अब उसमे द्रवत्व गुण तो अभी नहीं है लेकिन जब अग्निका सयोग हो जायगा और वह स्वर्ण गल जायगा तो गलनेपर स्वर्णमे द्रवत्व अग्निका नही है किन्तु जलीय द्रवत्व है अब उसमे जल तत्त्व आ गए हैं उसके कारण उसमे प्रवाह आया। इसी प्रकार लाख आदिक पृथ्वी द्रव्य हैं, उनमे बहाव नहीं रहता, लेकिन जब अग्निका सयोग होता है तो उस उस पृथ्वीमें जलतत्त्व प्रकट होता है और फिर प्रवाह होता है। उसका वह जलीय तत्त्वका प्रवाह है। पृथ्वीका नहीं।

उस समय उस स्वर्णमें, उस लाख आदिक पार्थिव द्रव्यमे जलीय द्रवत्वका सयुक्त समवाय है। याने द्रवत्वका समवाय है जलमे और जलका सयाग हो गया है स्वर्ण और लाख आदिक पार्थिव द्रव्यमें तो जलीय द्रवत्वके सयुक्त समवायसे स्वर्णमें पार्थिव में द्रवत्व गुणकी प्रतीति होती है। वस्तुत पार्थिवमें और अग्निमें द्रवत्व गुण नहीं है। शकाकार यहाँ यह बात रख रहा है कि द्रवत्व भी गुण होता है लेकिन द्रवत्वके बारेमे निष्पक्ष बात तो सोचिये। द्रवत्व क्या ? बह गया। बहना क्या ? क्रिया हुई। कोई पदार्थ इस प्रकारके ढाँचे वाले होते हैं, इस तरहका उनका कार्य होता है कि वे नीची जमीन पायें तो वे बह जाया करते हैं। यह उन पदार्थोंकी विशेषता है, न कि द्रवत्व गुण कोई आश्रयभूत पदार्थमे है और उस द्रवत्वके कारण वह बहा करता हो, ऐसी बात नही है। यह तो पदार्थोंका अपना अपना सस्थान जुदा-जुदा है कोई कठिन होता है कोई द्रव होता है कोई तरल पदार्थ होता है, लेकिन विशेषवादमें तो बुद्धिमें कुछ भी समझमे आना तो चाहिये फिर वे उनके पदार्थ बन जाते हैं।

भेद व अभेदका औचित्य व अनौचित्य—विशेषवादमें अभेदको आदर नही दिया गया है, अभेदको वे मिथ्या मानते हैं। हैं चीजें न्यारी-न्यारी और उनको इकठ्ठी कर दिया और इकट्ठे मे उन्हे एक मानना यह पदार्थ उनकी दृष्टिमें मिथ्या है लेकिन अभेद मिथ्या भी होता है, सम्यक् भी होता है, भेद मिथ्या भी होता है, सम्यक् भी होता है। उचित अभेद सही है, अनुचित अभेद मिथ्या है। उचित भेद सही है, अनुचित भेद मिथ्या है। जैसे पदार्थमें शक्तियाँ हैं, वे शक्तियाँ पदार्थोंमें अभिन्न हैं। अब उन शक्तियोसे भी पदार्थका ऐसा भेद कर दिया जाय कि वे शक्तिया स्वतत्र पदार्थ हैं और यह द्रव्य स्वतत्र पदार्थ है। ऐसा स्वतत्र मान लेना कि उनका उनसे सम्बन्ध कराने तककी भी गु जाइसका उपाय सही न रहा। तो वह अनुचित भेद हो गया। मिथ्या हो गया पर द्रव्य द्रव्य ये सब जुदी जुदी सत्ता लिए हुए हैं, जीव जीव ये सब अनन्त हैं, अपनी अपनी स्वतत्र सत्ता लिए हुए हैं। तो ऐसे इन जीवोंको एक आत्मा कह डालना यह है अनुचित अभेद। वह मिथ्या हो जायगा। पर जहाँ जैसा अभेद है उसे उस प्रकार मानना मिथ्या नही कहलाता। यह द्रवत्व गुणके सम्बन्धकी चर्चा चल रही है।

पार्थिव और अनलमे सदा द्रवत्व सिद्ध करनेका शकाकारका प्रयास—शकाकार कह रहा है कि पदार्थोंमें द्रवत्व गुण भी है, लेकिन वह द्रवत्व गुण पृथ्वी, जल और अग्नि इन तीनमें पाया जाता है। समाधानमें यह कहा गया कि जलमे द्रवत्व परिणमन है, यह बात मान ली जायगी किन्तु पृथ्वी और अग्निमें भी द्रवत्व है यह स्वीकार नही किया जा सकता क्योंकि जब जब भी पृथ्वीमें और अग्निमे द्रवत्व आया तो उपाधिके सम्बन्धसे उसमें जब जल तत्त्वका सयोग हुआ तब वहाव आया। इसपर शकाकार कहता है कि पृथ्वीमें और अग्निमें सम्बन्धके कारण जलीय तत्त्वमे वहाव

माया है यह बात युक्त नही, किन्तु समस्त पार्थिव द्रव्य, समस्त तैजस द्रव्य द्रवत्वसे सयुक्त हैं, क्योंकि रूपी होनेसे। जो जो रूपी होते हैं वे वे सब द्रवत्व गुण वाले होते हैं। देखिये विशेषवादमे हवामे रूप नही माना गया। रूप पृथ्वीमें है, जलमे है और अग्निमे है पर हवामे नही है, ऐसा विशेषवादी लोग मानते हैं तो जितने भी पार्थिव हैं, जितने भी तैजस हैं वे सब भी द्रव है, प्रवाहशील हैं, बहने वाले हैं क्योंकि रूपी होनेसे जल रूप है तो उसमे द्रवत्व स्पष्ट है, जल बह जाता है अग्नि भी रूपी है, पृथ्वी भी रूपी है, उनमें भी रूप पाया जाता है। तो रूप होनेके कारण ये गुण और पार्थिव भी द्रव हैं।

पार्थिव और अनलमे द्रवत्व माननेकी शकाका निराकरण—समाधान मे कहते है कि यह बात कहना युक्त नही है। (प्रकरण बडा युक्तिसगत चल रहा है) यह बात कही जा रही है शकाकारकी ओरसे कि पृथ्वीमे सदा द्रवत्व पाया जाता है सम्बन्धकी अवस्थासे नहीं। और अग्निमे भी सदा द्रवत्व पाया जाता है। द्रव मायने बह जाना। जैसे पानी बह जाता है रूपी होनेसे। समाधानमें यह कह रहे हैं कि यह बात तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। आंखो ही उसमे दिख रहा कि पृथ्वी नही बह रही है व अग्नि नही बही है फिर प्रत्यक्षविरुद्ध बातको युक्तियोसे सिद्ध करना यह युक्त नही हो सकता है। वह तो बाधित विषय है। बाधित विषयके बारेमे दिमाग लगाना, युक्तिया बताना कहाकी बुद्धिमानी है ? कोई कहे कि अग्नि वर्फकी तरह ठडी होती है क्योकि द्रव्य होनेसे। कहने दो, अब जो कोई ऐसा कह रहा हो उससे बात करना बेकार है क्योकि वह मूढोका सिरताज है। उसको तो इस तरह समझाना चाहिए कि आगको उठाकर उसके हाथमे धर दो। बस वह अपने आप ही समझ जायगा कि अग्नि गर्म होती है या ठडी। तो जो बात प्रत्यक्षबाधित है उसको युक्तियो और अनुमानसे साबित करना और रास्ता ढूढ निकालना यह कोई विवेककी बात नही है। पृथ्वी और अग्नि ये दोनो नही बहती हैं। यह तो स्पष्ट ही समझमें आ रहा कि कहा बह रही। अब शकाकार कहता है कि अजी पृथ्वीमें और अग्निमे इस प्रकारका द्रवत्व धर्म है कि जो प्रत्यक्षमें तो आता नही और बहावकी क्रिया भी नही करता। इस ही ढगका द्रवत्व है पृथ्वीमे और अग्निमें। अच्छा, समाधानमे कहते हैं कि कोई यदि यह कहने लगे कि अग्निमे गुरुत्व और रस भी है। विशेषवादमे अग्निमें गुरुत्व नही माना गया और रस भी नही माना गया लकिन कोई यह कह बैठेगा कि अग्निमे गुरुत्व रस मौजूद है इसमे कोई सदेह नही, कोई पूछ बैठे कि अग्निमे कुछ दिखता तो है नही, न वजन न रग। तो वह यो कह बैठेगा कि अजी। अग्निमें इस तरहका गुरुत्व और रस है कि जो प्रत्यक्षमे तो आता नही और पतन आदिक क्रिया भी नही करता। जैसे शकाकार कह रहा था कि पृथ्वीमे और अग्निमे ऐसा द्रवत्व है, ऐसा द्रवत्व है। ऐसा प्रवाह वाला गुण है कि न तो प्रत्यक्षमें समझमे आता और न बहावका काम करता। हम कहेंगे कि अग्निमे ऐसा गुरुत्व गुण है कि

जो न प्रत्यक्ष समझमे आता और न गिरनेका काम करता। और, अग्निमे ऐसा रस गुण है कि जो न प्रत्यक्षमे समझमे आता और न उसमे तृप्ति आदिकके अनुभव होते। और, इस तरहका छुपा हुआ गुरुत्व धम अग्निमें मान लोगे तो कभी अग्नि ऊर्ध्वगमन वाली नही हो सकती। जिसमें वजन है वह कैम ऊँचे उठेगी किन्तु अग्निमें ऐसा स्वभाव है कि उसकी ज्वालायें ऊपरको ही उठती हैं और फिर आपका जो यह सूत्र है कि रस पृथ्वी और जलमें ही रहता है, सो विरुद्ध हो गया वचन। देखो अब रस अग्निमे आ गया तो इस प्रकार द्रवत्वका पृथ्वीमे और अग्निमे सिद्ध करना एक प्रसगत बात है। जलमे तो द्रवत्व है सो वह द्रवत्व गुण क्या है ? वह जलका ही ऐसा परिणमन है, ऐसा ढाँचा है, ऐसी काय है कि वह निचली जमीन पाकर वह जाता है। तो द्रवत्व नामका गुण जैसा कि विशेषवादियोने माना है वह सिद्ध नही होता।

शकाकार द्वारा स्नेहनामक गुणका कथन—अब शकाकार कहता है कि एक स्नेह नामका भी गुण है। जो कि जलमे ही पाया जाता है। जलके सिवाय अन्य तत्त्वमे स्नेह गुण नही होता। और, स्नेह गुणका काम क्या है ? स्निग्धताका ज्ञान करा देना। यह पदार्थ चिकना है इस प्रकारके ज्ञानका करानेका कारणभूत जो गुण है उसका नाम है स्नेह। पानीमे चिकनापन माना है। चिकनेपनका आधार पानी है। यद्यपि पानीमे अन्य चीजोकी अपेक्षा स्नेह चिकनापन बहुत कम मालूम होता है, घी, तैल, या अनेक पदार्थ ऐसे हैं कि जिनके मुकाबलेमें पानीमें चिकनाई बहुत ही कम नजर आती है। लेकिन चिकनाई असलमें, पानीमें ही है। अन्य चीजोमे चिकनाई का गुण नही है। मूल चीज स्नेहगुण तो जलमे ही पाया जाता है। ऐसा शकाकार एक स्नेह नामक गुणका समर्थन कर रहा है।

स्नेहके गुणत्वकी सिद्धि करनेकी शकाका समाधान—अब उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कहना अयुक्त है कि स्नेह जलमे ही पाया जाता है। देखो घी आदिक अनेक पदार्थ हैं लोकमें, और वैद्यक शास्त्रोमें लिखा हुआ है कि ये स्निग्ध होते हैं घी तैल आदिक। तव यह बात तो न रही कि पानीमे ही स्नेह पाया जाता है। शकाकार कहता है कि घी आदिकमें जो चिकनेपनका ज्ञान हो रहा है वह जलके निमित्तसे हो रहा है। घी आदिक उन पदार्थोमे जलीय तत्त्व है, जलका सम्बन्ध है इसलिए उसमें चिकनेपनका ज्ञान होता है। अब यहाँ दो बातें हो गई। घी स्वय जल नही है, तव फिर क्या होगा ? घी अग्नि भी नही है घी हवा भी नही है, और घीको जलतत्त्व भी नही मान रहे तो बाकी पृथ्वी बची। तो घी विशेषवादमे एक पृथ्वीतत्त्व ही हुआ। वह एक द्रव्यका ढोला ढाला हो गया है, घी हो मगर घी पृथ्वी द्रव्य नही है। उस घीके साथ जलका सम्बन्ध है इसलिए उसमे चिकनापन नजर आता है, और जलकी तरह उसमे द्रवत्व भी प्रकट है सो बहाव तो पृथ्वीमे भी माना गया है। तो

घी आदिकमें जो चिकना है ऐसा ज्ञान होता है वह जलके निमित्तसे होता है। समाधानमे कहते हैं कि यह बात असगत है। हम उलटी भी कल्पना कर सकते हैं कि चावल आदिकमे जलका सम्बन्ध होनेपर भी उनमे स्निग्धता प्रत्यय नही होता अर्थात् उनमे चिकनाई नही आती लेकिन घी आदिकका सम्पर्क होनेपर सभी पदार्थोंमे चिकनाई आ जाती है। शकाकार यह कह रहा था कि घीमे चिकनाई समझमे आती है वह जलके सम्बन्धसे आती है। उत्तरमें कह रहे हैं कि जलके सम्बन्धसे अगर चिकनाई हो जाया करे तो कंकड, चावल गेहूँ आदिक सभी पदार्थोंमे पानीका सम्बन्ध कर देनेसे चिकनाई आ जाना चाहिए। मगर ऐसी बात तो नही देखी जाती। तो आपका यह कहना असगत है कि घीमे जो चिकनापन समझमे आया है यह जलके सम्बन्धमे आया है। और, वास्तविक चिकनापन तो जलमें है, यह कहना सगत नही है। अब शकाकार कहता है कि देखो चावल आदिकमें जब पानी डालते हैं, पकाते हैं तो देखो वह पानी बन्धका कारण बन गया। इससे सिद्ध है कि पानिमे स्नेह नाम गुण है। उत्तरमे कहते हैं कि देखो ! आपने दूध लाख आदिको स्नेह रहित पदार्थ माना हैं। तत्व विशेषवादमें दूध भी जलतत्त्व नही है, वह भी पृथ्वी तत्त्व है। तो दूध स्नेह रहित है, लाख स्नेह रहित है लेकिन ये भी बधके कारण हो जाते हैं। चीज बँध जाती है और लाख भी बँधका कारण होती है। लाख तो इस तरहसे पदार्थोंको जकड लेती है कि उसका हटाना भी बडे श्रमसे होता है। तो यह कहना कि पानी बँधका कारण होनेसे स्नेह गुण वाला है यह नियम न रहा। बधके कारण तो अनेक पदार्थ हैं लेकिन वे स्नेह गुण वाले कहाँ हैं ? इससे सिद्ध है कि स्नेह नामका गुण पानीमे ही है, ऐसा कहना अनुचित है। देखिये ! स्नेह गुण है और उसके आधारभूत शक्तिका नाम है स्पर्श चिकना गुण स्पर्शका ही परिणमन है। चिकनेपनका विरोधी है रूखापन। ये दोनो ही बध के कारण माने गये हैं - स्निग्ध और रूक्षता। इन दोनोके कारण परमाणु परमाणु मे बध होता है। अब जो मोटे स्कध है उनमे जो बध होता है, सम्बन्ध होता है वह परमाणु परमाणु जैसा वास्तविक बध नही है, वह सयोगमात्र बन्ध है। बन्ध असली उसका नाम है कि बध होनेपर दूसरा भी पूरा वहीका वही बन जाय। जैसे—चार गुण वाला स्निग्ध परमाणु है और ६ गुण वाला रूक्ष परमाणु है। जब इन दोका बध हो जाता है तो दोनो परमाणु पूर्णतया रूक्ष गुण वाले हो जाते हैं। वहाँ स्निग्धताका अश नही रहता। तो बन्धमें यह हालत होती है लेकिन बन्धेऽधिको पारिणामिको, यहाँके बाह्य पदार्थोंका जो चिपकाव है वह है एक सयोग होनेपर यह हालत रह सकती है कि उस एक पिण्डमें कुछ अशोमें रूक्षता पायी जा रही हो और कुछमे स्निग्धता पायी जा रही हो। ऐसा वह स्निग्ध गुण नही है, वह स्पर्श गुणका परिणमन है, जितने पुद्गल हैं सबमे स्पर्श गुण है। तो यह कहना कि स्नेह केवल जलमें ही होता है यह बात असगत है।

स्नेहको गुण माननेपर कठोरता कोमलता आदि अनेक गुणोके प्रसङ्ग

मे गुणसख्याभिघात—वैशेषिक सिद्धान्तमें स्नेहको गुण माना है। स्नेह है तो परिणमन, चिकनाई, यह स्पर्शगुणका परिणमन है, किन्तु स्पर्श गुण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चारो पदार्थोंमे रहता है। उनमेसे केवल जलमें स्नेह गुण मानना और उसे भी गुणरूपसे स्वीकार करना इस बातका निराकरण चल रहा है। स्नेहको गुण मानने पर फिर तो कठोरता कोमलता इनका भी गुण मानना चाहिए। अगर चिकनाई गुण बन गया तो कठोरता किसमे सामिल करोगे ? और कोमलपना किसमें सामिल करोगे ? उसे भी अलगसे गुण मानना चाहिये। और जब इसे गुण मानना चाहिये। और, जब इसे गुण मान लेंगे तो २४ गुण हैं यह सख्या सही न रही। अधिक सख्या बढ गई। यहाँ शकाकार कहता है कि कठोरता आदिक तो सयोगविशेषरूप है इसलिए उनका सयोग गुणमें ही अन्तर्भाव है, सख्याका विघात नही होता। कठोरता किसे कहते हैं ? अवयवोका दृढ सयोग होनेका नाम है कठोरता। और अवयवोका प्रकृष्ट शिथिल होनेका नाम है कोमलता। जो पदार्थमे परमाणु हैं, अवयव हैं, अश हैं वे अगर बडी दृढ़तासे सयुक्त हैं तो कठोरता आती है और वे अवयव यदि शिथिलतासे सयुक्त हैं तो वहाँ कोमलपन आता है तो सयोगविशेषरूप है कठोरता और कोमलता। यह कोई विशेष गुण नही है। समाधानमे कहते हैं कि यदि अवयवोके दृढ सयोगका नाम कठोरता हो याने अवयवोंके सयो को ही कठोर बाले तो सयोग तो आंखोंसे दिखता ना ! तो कठोर भी आंखोंसे दिख जाना चाहिए। जो जिसका विशेष होता है वह उसके द्वारा जान ही लिया जाता है। जैसे रूपका विशेष है काला पीला आदि। इसलिये देखो ! रूपके जानते ही काला पीला भी जान लिया जाता है। इसी तरह अब अब अवयवोंके सयोगका नाम रख दिया। इसको कठोरता और इसका सयोग आखोसे दिख रहा है तो कठोरता क्यो न दीखेगी ? तुमने शिथिल सयोगका नाम रख दिया कोमलता सो फिर कोमलता भी दिख जाना चाहिये। जो जिसका विशेष होता है वह उसके जान लिए जानेपर जान ही लिया जाता है। जैसे रूपके जान लेनेपर रूप का विशेष नीलादिकपना भी जान लिया जाता है लेकिन सयोग प्रतीयमान हो रहा है, जो भी पदार्थ दिख रहा है सबका सयोग स्पष्ट समझमे आ रहा, यह बेञ्च है, कठोर है, इसका अवयवोंमें दृढतर सयोग है दिख रहा है लेकिन सयोग विशेषका नाम तुम कहते हो कठोरता तो कठोरपन दिख जाना चाहिये। इससे सिद्ध है कि सयोग विशेषका नाम कठोरता नही। और भी देखो ! चटाईके अवयवोंमे जब सयोग शिथिल हो जाता है, चटाई पुरानी पड गई टूट गयी, उसकी सींके भी टूट जाती हैं, फैल भी जाती हैं तो ऐसा शिथिल सयोग हो गया चटाईके अवयवोंमे, लेकिन कोमलताका वहाँ भान कहाँ होता है ? कितना ही शिथिल सयोग हो जाय चटाईके अवयवोंमे पर वे कठोर ही रहते हैं, और, देखो ! चमडा रबड आदिक—इनमे दृढ़ सयोग है शिथिल नही, शिथिल सयोग टूटी-फूटी चीजोमें कह सकते हो तो चमडा रबड आदिकमें दृढ़ सयोग होनेपर भी शिथिल सयोग नही है लेकिन कोमलता पाई जाती है इस कारण

यह नहीं कह सकते कि अवयवोंके संयोग विशेषका नाम कठोरता है और कोमलता है जब संयोग विशेष सिद्ध न हुआ कठोर और कोमल तो इनका अलगसे गुणमें नाम बताना चाहिये, तब सख्याका व्याघात होना सही बन जायगा।

कठोरताको संयोगविशेषरूप माननेकी शंका पर विचार—शंकाकार कहता है कि कठोरताको यदि संयोगविशेष रूप नहीं मानते तो बताओ कि कोई कठोर वस्तु जैसे कोई ना है अन्नका उसको जब बहुत पीसते हैं हाथसे या यन्त्रसे तो उसमे कोमलता फिर कैसे आ जाती है ? कोमलता इसी कारण हो तो आयी कि संयोग विशेषका नाम था कठोरता और वह संयोग - विशेष हो गया शिथिल पीसनेसे, तब देखो उसमे कोमलता आयी है, इससे सिद्ध है कि संयोग विशेषका नाम कठोरता है। उत्तर देते हैं कि वहाँ हुआ क्या कि कठोर पर्यायमें परिणत द्रव्य निमित्त विशेषका सन्निधान पाकर कोमल पर्यायमे परिणत हुआ है और इस दृष्टिसे कठिन पर्यायमें रहता हुआ पदार्थ अन्य था, और मृदु पर्यायमे परिणत द्रव्य अब अन्य हो गया है। तो वही द्रव्य कोमल नहीं हो गया है किन्तु पहिलेकी कठिन पर्यायकी निवृत्ति होनेपर कोमल पर्यायसे युक्त अन्य द्रव्य ही उत्पन्न हुआ है। यहाँ केवल द्रव्यकी बात नहीं कह रहे, पर्याय संयुक्त द्रव्य कहा जा रहा है। केवल द्रव्यकी बात यदि कहो तो लोकव्यवहारमे जैसे कहते कि वह मर गया, वह पैदा हो गया, यह बात नहीं ठीक बैठ सकती, क्योंकि आत्मा मरता कहाँ, पैदा कहाँ होता ? किन्तु इस तरह कोई कहे कि मनुष्य पर्याय सहित जीव मर गया तो यह बात सही बैठ जायगी। देवपर्याय संयुक्त जीव उत्पन्न होना सही बैठ जायगा। तो इसी तरह पहिले कठोर पर्याय परिणत द्रव्य था। अब मृदु पर्याय परिणत अन्य द्रव्य पैदा हुआ है। और, देखो – जो संयोगविशेषको कोमलपना कहते हैं वे लोग भी पूर्व द्रव्यकी निवृत्ति तो यहाँ मानते ही हैं। अब कठिन द्रव्य न रहा, अब कोमल द्रव्य हो गया, इस कारण इस प्रसंगमे यथार्थ बात यह है, और इसे ही यथार्थ समझना चाहिये कि पुद्गलमे रूप, रस, गंध, स्पर्श गुण हुआ करते हैं। भले ही किसीमे कोई गुण तिरोहित है, कोई आविर्भूत, लेकिन यह मूर्तिकतासे सम्बन्ध रखता है। जो जो मूर्तिक पदार्थ हैं वे रूप, रस, गंध स्पर्श चारोंमय हुआ करते हैं। तो स्पर्श नामक गुण है और उसकी ८ पर्यायें हैं। केवल मृदुता और कठोरताकी ही बात नहीं है किन्तु स्निग्ध, रूक्ष शीत उष्ण, कठोर मृदु, गुरु और लघु ये ८ प्रकारके स्पर्शगुणके परिणमन हैं। और जब जब भी जो भी पदार्थ किसी पर्यायको छोडकर अन्य पर्यायमें पहुँचता है, कठोरताको छोडकर मृदुतामें पहुंचता है तो हुआ क्या यहां ? निमित्त सन्निधान पाकर वही पदार्थ पूर्व पर्यायको छोडकर उत्तर पर्यायमें आया है। तो पर्यायदृष्टिसे उस द्रव्यमें भी अन्यता आ गयी। कठिन पर्यायसंयुक्त द्रव्य और था, कोमल पर्याय संयुक्त द्रव्य और हो गया है। यो मृदुता नामका कोई गुण नहीं है।

शंकाकार द्वारा संस्कारनामक गुणकी सिद्धिमे वेग गुणका निरूपण – अब शंकाकार कहता है कि २४ गुणोंमेंसे २१ वाँ गुण संस्कार नामका भी है। देखते हैं हम चेतन पदार्थोंमें और अचेतन पदार्थोंमें भी उनमे संस्कार बना हुआ है। संस्कार तीन प्रकारके होते हैं - एक वेग नामका संस्कार, दूसरा – भावना नामका संस्कार और तीसरा – स्थित स्थापक नामका संस्कार। वेग नामका संस्कार तो मूर्तिक पदार्थोंमे होता है। कुम्हारने घडा बनानेके लिये जो चाकको डडेसे घुमाया और अब घुमाना बद कर दिया, डडा भी रख दिया, लेकिन वह चाक काफी देर तक घूमता रहता है। तो उसमे लोग क्या कहते हैं ? अब वह चाक क्यो घूम रहा है कि उसमें संस्कार पडा हुआ है। वह कौनसा संस्कार है ? वह है वेगनामक संस्कार। उसमें वेग गुणका समवाय बनाया गया था और वह वेग कुछ सस्कृत हो गया तो बादमें भी वह वेग बराबर कुछ समय तक चलता रहता है। कोई बच्चे लोग एक खेल खेला करते हैं। किसीकी दो पोली लकडियाँ ले लिया और उनके एक एक ओर कलमकी तरहसे छील दिया। उन दोनोंको बाँध दिया। उसपर गीली मिट्टी भी लगा दी। अब एक घडेमें एक लकडी डाल दिया और एक लकडी बाहर रह गयी। अब बाहर वाली लकडीमे थोडासा मुहसे हवा खींचा और छोड दिया तो धीरे धीरे सारा घडेका पानी बाहर आ जाता है। अब बतलाओ वह सारा पानी खींचा तो उसके खींचने वाला कौन है ? कोई नहीं। यही तो कहा जायगा कि संस्कार पडा हुआ है। तो वेग नामका संस्कार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन इन मूर्तिक पदार्थोंमें पाया जाता है। पृथ्वीमे कोई वेग उत्पन्न किया तो उस वेगके कारण आगे भी क्रिया चलती रहती है। जलमे भी वेगसे क्रिया चलती है। अब बच्चोंके उस खेलमे पानी जो सारा घडेका अपने आप निकल गया वह जलका वेग ही तो था। अग्निमें भी वेग होता है। मनकी गति बडी शीघ्र गमनकी बतायी गई है। अब उनमे कारण क्या पडता है ? कही प्रयत्न कहीं अभिघात। और, उनके उन कर्मोंका वेग उत्पन्न होता है और वह वेग नियत दिशामें क्रियाके रचनेका कारण होता है। वेग होता है तो उसकी निश्चित दिशा है। कुम्हारके चक्रका अगर वेग है तो इस ही तरहसे क्रिया करता रहेगा। बाणमें अगर वेग आ गया तो उस बाणकी भी नियत दिशा रहेगी। तो नियत दिशामे क्रिया रचनेका कारण भूत है वेग नामका संस्कार। और वह स्पर्शवान द्रव्यके सयोगका विरोधी है, अर्थात् वेग स बाण चलकर और कहीं छिड गया तो उसका वेग खतम हो जाता है जैसे कुम्हारके चक्रमे वेग चल रहा है और उस चक्रको कुम्हार रोके तो रुक जाता है। तो वेग नामका संस्कार यह है जो नियत दिशामें क्रियाके रचे जानेका कारण बने और स्पर्शवान द्रव्यके सयोगका विरोधी हो। याने स्पर्शवान किसी अन्य द्रव्यका सपर्क हो जाय तो वेग समाप्त हो जाता है। तो इसी प्रकार एक संस्कार नामका भी गुण है जिसका कि प्रथम भेद है वेग।

वेगनामक गुणके सद्भावकी शंकाका समाधान – अब उक्त शंकाके

समाधानमें कहते हैं कि वेग नामका संस्कार तुम मूर्तिक पदार्थोंमे ही कह रहे हो सो यह अवधारण ठीक नहीं है। देखो! वेग नामका सस्कार आत्मामे भी सम्भव है, आत्मा भी सक्रिय होता है। एक जीव मनुष्य लोकसे मरा और ऊर्ध्व लोकमें उत्पन्न हुआ तो वह क्रियाके बिना कैसे चला गया? और, यहा भी देखते हैं कि शरीर चलता है तो शरीरके साथ आत्मामे भी क्रिया हो रही है। तो वेग नामक सस्कार है और वह गुणरूप है या नही। इसकी मीमासा तो बादमे कहेगे पर वेग कोई धर्म है। लेकिन वह वेग पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन इनमे ही रहता हो सो बात नहीं। वह जीवमे भी पाया जाता है। सो अब यह सिद्धान्त न रहा कि वेग पृथ्वी जल अग्नि वायु व मनमे ही होता है। अब वेगकी बात सुनिये! वेग किसे कहते हैं? वेग क्रिया से भिन्न और किसी चीजका नाम नही। क्रिया शीघ्र हो रही हो उसे वेग कहते हैं। शीघ्र उत्पत्ति मात्रमे वेग व्यवहारकी प्रसिद्धि है। शकाकार कहता है कि वेगमें और क्रियामे बडा फर्क है। यदि क्रियाका ही नाम वेग होता तो यहाँ दो शब्द देनेकी क्या जरूरत थी? 'जा रहा है' यह भी क्रिया और 'वेगसे' यह भी क्रिया। तो वेग क्रिया से अर्थान्तर चीज नही है यह बात युक्त नही घटती। समाधानमे कहते हैं कि जब यह कहा जाता है कि वेगसे जाता है तो उसका अर्थ यह है कि शीघ्र जाता है। वेगमे और शीघ्रमे तो फर्क नही। अब यह वेग और शीघ्र क्रियाका विशेषण हो गया। तो जिस वेगको आप सस्कार कहते हो वह वेग क्रियाका ही नाम है। कोई सस्कार नामका गुण नही है। बात तो सारी व्यावहारिक चल रही है। शकाकार तो यहाँ कई अट-पट नटखट बता रहा है। एक गोलीको अगर फेंक दिया और वह गोली बहुत दूर तक चलती जा रही है तो दूर तक चली जानेमें कारण सस्कार वेग नामका गुण है जिस की वजहसे गोली चलती जा रही है और उस वेगका गोलीमे समवाय सम्बन्ध हो रहा है। कोई एक ही बात नही है। उसमें कई विडम्बनायें मानी गई हैं। वेग नामका गुण एक है दुनिया मे। उस वेग गुणका सम्बन्ध हुआ है जिस जिसमें, वे वे चीजें वेगसे चली जाती हैं। ऐसे अनेक विडम्बनाओं रूप वेग गुणको मान रहा है शकाकार लेकिन यहाँ देखिये, तो क्रियाके सिवाय वेग नामका गुण कुछ नजर ही नही आता। क्रिया किसीमे तेज है तो उसीको हम वेग कहते हैं और क्रिया कम है तो उसे हम कम वेग कहते हैं। कोई छोटा नाला भी बहुत तेजीसे बह रहा है तो उसे कहेंगे वेगसे बह रहा है और यमुना जैसी नदी जिसमें बहुत जल है लेकिन वह वेगसे नही बहती है। तो वेग तो क्रियाकी विशेषताका नाम है। क्रियामे शीघ्रता हो तो उसे वेग कहने लगे क्रियामे मदता हो तो उसे कम वेग कहने लगे। तो वेग नामका गुण कुछ नही है किन्तु वेग क्रियाका ही नाम है।

कर्मसे कर्मका आरम्भ माननेपर वेगगुणत्ववादीकी शका और उसका समाधान—अब यहा शकाकार कहता है कि देखो—जैसे कहा कि यह बाण वेगसे जा रहा है तो यहाँ वेग भी नाम तुमने क्रिया बताया और "जा रहा है" का भी

नाम तुमने क्रिया बताया, सो क्रिया क्रियाका रचने वाला बन गया। वेगसे बाण जा रहा है। तो 'वेग' नामक क्रियाने 'जा रहा' क्रियाको रच दिया, तो जब कर्म कर्मको रचने वाले बन गए तो फिर किसी भी जगह वह कर्म बन्द न होना चाहिए। जब क्रियाने क्रियाको रचा, वेगने जानेको रचा, तो फिर जो क्रिया हो रही है वह कहीं समाप्त न होना चाहिये, क्योंकि वेग सब जगह दुनियामें मौजूद है विशेषवादके सिद्धान्त के अनुसार। उसका जब समवाय होता है तो चीजमें क्रिया होती है। तो जब वेग ही क्रियाका आरम्भ करने वाला बन गया तब फिर क्रिया हमेशा ही होना चाहिये, कभी उसका विश्राम न आना चाहिये। तो उत्तरमें आक्षेप पूर्वक कहते हैं कि देखो विशेषवादियो आपने शब्दोंके प्रकरणमे भी यह बात कही थी कि शब्द जो बोले जाते हैं वे श्रोताके कानोंमें नहीं पहुँचते, किन्तु एक शब्दके बाद लहर रूपसे दूसरा शब्द बना, उस शब्दसे तीसरा शब्द बना फिर चौथा शब्द बना, इस तरह वीची तरग न्यायसे शब्द बनते हैं। जैसे समुद्रकी एक लहर उठी, तो आगे वह लहर तब तक नहीं मिटती है जब तक कि दूसरी लहरको पैदा न करदे। दूसरी लहरको पैदा करके वह वहीं रुक जाती है। दूसरी लहर आगे चलती है। फिर दूसरी लहर तीसरी लहरको पैदा करके वहीं रुक जाती है तीसरी आगे चलती है। इसी तरह शब्द सिद्धान्तमें माना गया है कि जो शब्द बोला गया है वह दूसरे शब्दको उत्पन्न करके वहीं रुक जाता है। दूसरा शब्द आगे चला जाता है। और फिर वह दूसरा शब्द तीसरे शब्दको उत्पन्न करके वहीं रुक जाता है और तीसरा शब्द आगे चला जाता है। इस तरह यदि शब्दसे शब्द बनना बताते हो तो फिर कहीं शब्दका विश्राम भी न होना चाहिये। किसी पुरुषकी आवाज ५० गज तक सुनाई देती है, उसके बाद फिर शब्द खतम हो जाते हैं। क्यो हुए खतम ? जब शब्द शब्दको रचते हैं तो ५० गजके बाद भी शब्द रच जाना चाहिये। इस तरह शब्दका कहीं भी विश्राम न होना चाहिए। लेकिन तुम वहाँ यह कहते हो कि शब्द शब्दान्तरको रचने वाला है तो भी कहीं उसका विश्राम हुआ करता है। तो यही बात यहाँ लगा लो कि कर्म कर्मका आरम्भक है तो भी उस कर्म का कहीं विराम हो जाना चाहिये। अब उस वस्तुकी क्रियाकी विशेषता अगर देखो तो यहाँका छोड़ा हुआ बाण एक मील तक जो पहुचता है, और देखो ! क्रिया क्रिया को पैदा करती जाती है यह बात भी समझमें आ रही है। यहाँसे बाण छोड़ा तो १० गज तक गया, उसी क्रियामें क्रिया चलती जा रही है। क्रियाको रचने वाली है क्रिया। उस क्रममें जो बाण छोड़ा गया उसका आरम्भक समझलो। अब छूट जानेके बाद आगे जो क्रिया बराबर चलती जा रही है तो उसका आरम्भक कौन ? उसका आरम्भक वेग क्रिया। क्रिया क्रियाको रचती चली जा रही है। इसीको आप लोग वेग नामका संस्कार कहते हैं और क्रियासे क्रियाके रचे जानेपर भी कहीं न कहीं क्रिया अपने आप शान्त हो जाती है। उसका जैसा वेग है उसके अनुसार ही गति होती है और वहाँ शान्त हो जाता है।

वेग गुणके माननेपर क्रियाके अविरामके सम्बन्धमे प्रश्नोत्तर—वेग सस्कार गुण माननेपर आपत्ति आती है—जैसे धनुर्धारीने बाण छोडा और तुम मानते हो कि उस बाणमे वेगका सस्कार लग गया, उस वेग नामक सस्कारकी वजह से वह बाण एक मील तक चलता जा रहा है तो वेग नामका कोई भिन्न सस्कार यदि होता तो बाणका किसी भी जगह गिरना नहीं हो सकता । कोई विभिन्न सस्कार बाण आदिकके गिरनेका कारण नही है। यदि कोई बाणसे अतिरिक्त, बाण की क्रियासे अतिरिक्त वेग नामक सस्कार होता तो फिर बाण किसी भी जगह गिर नहीं सकता था क्योंकि गिरने न दे याने गिरनेसे रोकने वाला तो वेग नामका सस्कार है। जो गिरने नही देता, चलाये जाता है तो गिरनेका विरोधी वेग नामका गुण सदा ही मौजूद है फिर वह बाण गिरता क्यो है ? शकाकार कहता है कि अब वह बाण यो गिर रहा है कि मूर्तमान वायु आदिके सयोगसे वेगकी शक्ति नष्ट हो गयी । याने बाण वेगसे चला लेकिन आगे वायुके सयोगका अभिघात हुआ उस वायुकी वजहसे बाणके वेगका अपघात हो गया इसलिए बाण गिर गया। तो समाधानमे कहते हैं कि फिर तो वह बाण पहिले भी गिर जाना चाहिए था। एक मील दूरपर जाकर क्यो बाण गिरा ? यदि कहो कि वहाँ वायुका सयोग हो गया तो वायु तो सब जगह थी तो पहिले भी बाण गिर जाना चाहिए था, क्योंकि उसका विरोधी जो वायुका सयोग है वह पहिले भी है बादमे भी है।

वेग गुणकी सिद्धि और असिद्धिके शका समाधान—शकाकार कहता कि बाण पहिले यो नही गिरता कि पहिले तो वेग था बलवान्। तो बलवान होनेसे यह वेग अपने विरोधी मूर्तमान द्रव्यको (वायुको भी वेध करके हटा करके चलता गया और जब बहुत दूर जाते जाते वेग थक गया तब उस समय उसका विरोधी जो मूर्तिक द्रव्य है, जो हवा आदिक है वह बलवान बन गयी। उस समयके युद्धमे वहाँ वेग जो है वह समाप्त हो गया और उस समय मूर्तिक द्रव्य बाण वहाँपर गिर गया है। समाधानमे यह कहते हैं कि तुम्हारा वेग नामका गुण तो सब जगह मौजूद है। कहीं अगर थोडी देरको वेग निर्बल हो गया और वायु सामने बलवान आ गई और उसके कारण बाण गिर गया तो फिर उठ करके फिर उसको चल देना चाहिए, क्योंकि वेग तो सदा ही मौजूद है। और वहाँ बलवान वायु भी न रही तो उस समय फिर यह वेग बलवान हो बैठे और बाण आगे भी चलने लगे, पर ऐसा होता कहाँ है ? शकाकार कहता है कि एक बार बाणका वेग जिन्दा हो जाय और बाणको आगे चलादे यह बात तो नही बन सकती। समाधानमे कहते हैं कि इस तरहकी व्यवस्था बनाने वाला कोई नियम तुम्हारे पास नही है। वेग सब जगह मौजूद है, पदार्थ सब जगह हैं। और सदा उनका सम्बन्ध है निमित्तकी भी कोई अपेक्षा नहीं फिर तो अब चाहे जिस चाहे जगहमे बाण छूटते रहना चाहिए। फिर तो सारी अटपटी बातें हो पडेंगी। तो वेग नामका कोई गुण नहीं है किन्तु पदार्थमे ही उस उस प्रकारसे क्रिया

विशेष होती है, और उस क्रियासे क्रिया चलती रहती है। और जब तक उस क्रियामें वेग है तब तक वह चलता रहता है। क्रियाका वेग समाप्त हुआ तो रुक जाता है। तो क्रियाका वेग मायने क्रियाकी ही विशेषतायें। वेग नामका गुण अलगसे नहीं है कि जिसके सम्बन्धसे पदार्थमें फिर ऐसी क्रिया हुआ करती हो। क्योंकि वेग नामका गुण माना और समवायी कारण हुए वे पदार्थ जिनमें वेग फसेगा, जिसमे वेगका सम्बन्ध माना जायगा वह पदार्थ समवायि कारण कहलाता है, याने उपादान हुआ। तो समवायि कारण भी सदा मौजूद है और वेग गुण भी सर्वत्र मौजूद है। जब सब चीजें सदा हैं तो फिर सभी चीजें स्थिर क्यों हैं? यहाँ वहाँ सभी चीजें भागती क्यों नहीं फिरती? इससे यह सिद्ध है कि वेग नामका कोई गुण नहीं है।

संस्कार गुणकी सिद्धि और निराकृतिका संक्षिप्त निर्देश—इस समय शंकाकार संस्कार नामक गुणके सम्बन्धमे बात कर रहा है। कोई बच्चा अगर बिगड गया हो तो लोग कहते हैं कि अजी! इसका संस्कार अच्छा नहीं है और कोई सुधर गया हो तो लोग कहते हैं—अजी, इसका संस्कार बहुत बढ़िया था। अथवा एक इन्जन किसी डिब्बेको धक्का दे दे तो वह डिब्बा बहुत दूर तक भागता चला जाता है तो वहाँ क्या है? वहाँ भी एक संस्कार है। तो संस्कार भी कोई चीज है। वह संस्कार है क्या चीज? विशेषवादी लोग तो कहते हैं कि संस्कार एक गुण है और वह गुण सारे जगतमें मौजूद है। और, उसका सम्बन्ध होनेसे, समवाय होनेसे पदार्थोंमें क्रिया होने लगती है। लेकिन संस्कार चीज है क्या कि जैसे चेतनमें तो बारबार उसकी भावना बनी रहती, भाव बनाये रहना, वह कहलाता है संस्कार। जैसे जब किसी बालकके प्रति कहते हैं कि इस बालकका खोटा संस्कार था, मायने इस बालकने कई वर्षों तक खोटी बातोंपर ही अपना ध्यान लगाया था और खोटी बातें ही उसके चित्तमें घर कर गई थीं, बस इसीके मायने संस्कार है। अचेतनमें जो संस्कार बोला जाता है वह संस्कार क्या है कि प्रथम ही बारमें पदार्थमें इतनी तीव्र पद्धतिको लेकर क्रिया बनी कि जिसके बाद उसमे यह क्रिया चलती रहती है। अब देखिये! वह उस की ही पद्धति है तभी जितनी पद्धतिसे उसमें क्रिया बनी उस पद्धतिके अनुसार ही वह चीज आगे चली और जाकर समाप्त हो गयी। संस्कार नामका कोई अलगसे गुण नहीं है जिसका सम्बन्ध होकर फिर पदार्थमें क्रिया होती हो। संस्कार तो क्रियाकी विशेषताका ही नाम है।

द्रव्य गुण आदिकी चर्चाका मूल आधार व प्रयोजन—यह सब प्रकरण सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विरोधमें और विरोधके निराकरणमें चल रहा है। आप जानेंगे कि इन सब कथनोंका मूल आधार कितना प्रयोजनीभूत था। जब तक हम पदार्थोंका सही परिचय न पायेंगे तब तक अपना हित करनेमें हम सफल नहीं हो सकते। इतना तो जानना ही होगा कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे परिपूर्ण स्वतंत्र है

और उस उत्पादव्ययध्रौव्य करने वाला है । प्रत्येक पदार्थ नवीन पर्यायको उत्पन्न करता है, पुरानी पर्यायको विलीन करता है और फिर भी पदार्थ वहीका वही रहता है । इतनी बात माने बिना आप अपने हितका मार्ग नहीं निकाल सकते । यही आधार है । हम अपने आपके बारेमे तभी तो सोचते हैं कि हमको कल्याण करना चाहिए । हम अब तक बहुत बरबाद रहे अब तो हमें सम्हलना चाहिए यह बात हम तब ही तो सोच सकते हैं जब यह श्रद्धा हो कि हम एक पदार्थ हैं और हममें नवीन पर्याय बनती है, पुरानी पर्याय विलीन होती है । बरबाद की परिणति हमारी खतम हो सकती है और आबादीकी परिणति हममे उत्पन्न हो सकती है । जब तक यह बात चित्तमें न हो तब तक हम कल्याणका नाम ही कैसे ले सकेंगे ? अब नवीन पर्यायकी उत्पत्ति होना पुरानी पर्यायकी विलीनता होना यह तो विशेष धर्म है । एक नवीन विशेष बात हुई, पहिली विशेष बात समाप्त हुई और यह विशेष बात किसमे हुई ? उस एक ही आत्मा मे । तो हम कैसे जानें कि यही एक आत्मा है । तो जिस सामान्य धर्ममे, जिस चैतन्यस्वरूपसे जानते हैं कि हम यही एक आत्मा हैं और हममे यह नवीन पर्याय उत्पन्न हुई है पुरानी पर्याय विलीन हुई है, तो जिस स्वभावसे हमने अपने आपको समझ पाया मैं वही एक हू, उसीका नाम सामान्य है । जो एकत्व प्रत्ययका कारण बने सो है सामान्य और जो अनेकत्वका कारण बने वह है विशेष । पर्यायें हैं विशेष और स्वरूप है सामान्य । तो स्वभाव और पर्याय इनसे तादात्मक पदार्थ हुआ करते हैं ।

पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकताके परिचयसे आत्महितके लिये ज्ञानज्योतिके उदयका अवतार—प्रत्येक पदार्थोंकी सामान्यविशेषात्मकताको जाननेके बाद फिर हम पदार्थोंमे यह भी तो समझते हैं कि सामान्य विशेषात्मक यह पदार्थ स्वय अपने आपमे परिपूर्ण है । इसकी कोई बात इससे बाहर नहीं । सामान्य विशेषात्मक यह मैं आत्मा अपने आपमे ही परिपूर्ण हू । मेरी बात मेरेसे बाहर नहीं । अब तक हमने भाव करनेके सिवाय दूसरा काम किया ही नही । लोग कहते हैं कि हमने धन कमाया, परिवारका पालन पोषण किया, और और भी अनेक प्रकारके काम किए पर जरा भली भांति विचारो तो सही । एक अपने भावोके सिवाय अन्य कुछ किसीने किया ही नहीं । हम आप सभी केवल अपने भाव भर बनाते हैं । हम आप को शान्ति मिले अथवा अशान्ति, यह अपने भावोपर ही निर्भर है । अब अपने इन भावोमे छटनी कर लीजिए । जो भाव शान्तिके कारणभूत हो उनको अपना लीजिए और जो भाव अशान्तिके कारणभूत हो उनको छोड दीजिये । तो बताया जा रहा था कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं । उसके विरोधमें विशेषवादी कह रहा था कि सामान्य अलग है विशेष अलग है गुण अलग है । कर्म अलग है, जब यो कहा तो इनकी भी बात सुनना चाहिए और इनकी मीमांसा भी करना चाहिए । इसी प्रतिवादपर इस समय चर्चा की जा रही है । विशेषवादी २४ गुण मानते हैं और उनका क्रमसे विचार चल रहा है ।

कर्मनामक कारणमे वेगके जीवन मरणकी समस्यापर शंका समाधान
विशेषवादमें संस्कार नामक भी गुण कहा गया है और उसके तीन भेद किए गए हैं, वेग, भावना और स्थितस्थापकता। इस प्रसंगमे वेगके सम्बन्धमें आपत्तियां दी जा रही हैं। यदि लोकमे वेग नामका गुण है और उस वेगके समवायसे पदार्थोंमें क्रिया होती है तब फिर सदैव क्यो नहीं पदार्थोंमे क्रिया होती क्योंकि वह गुण नित्य है सदा मौजूद है और जिसमें वेगको समवाय किया जाता है ऐसा पदार्थ भी सदा मौजूद है। जैसे कि बाण सदा है और वेग भी सदा है तब फिर क्यों नहीं बाणमे निरन्तर क्रिया ही होती रहती है। इसपर शंकाकार कहता है कि पहिले बाणमे वेगके समवाय से क्रिया हुई और कुछ दूर चलनेके बाद वायु आदिकके सयोगसे बाणका वेग निर्बल हुआ, समाप्त हुआ और वह बाण गिर गया। अब गिरनेके बाद क्यो नहीं फिर वह बाण चलने लगता है ? इसका कारण यह है कि कर्म नामका कारण पीछे उसमें लगे तब वह चले अब तो गिर गया है जब तक उसको दुबारा नहीं चलाया जाता। याने क्रिया नामका कारण जब उसमे दुबारा नहीं आता तब तक नहीं चल सकता है। तो समाधानमे कहते हैं कि यह उत्तर भी योग्य नही है, क्योंकि कर्म नामके कारणका पीछे अन्यथापन हो जाना मायने पहिले तो क्रिया जीवित थी और उससे बाण चलना रहा था। अब क्रिया खतम हो गयी तो उसके बाद क्रियामे गब जान न रही, अन्यथापन आ गया तो उसमे कारण क्या रहा ? जब सारे कारण मौजूद हैं। जिस पदार्थको चलना है, जिसमे क्रिया होनी है उसे कहेंगे समवायि कारण। तो समवायि कारण भी मौजूद है। वेग नामका गुण भी मौजूद है फिर कर्म क्यो नही जीवित हो जाता ? अन्यथापन कैसे आ गया ?

आकाशप्रभून प्रदेशसयोगसे वेगनाशके सम्बन्धमे शंका समाधान—अब शंकाकार कहता है कि धनुर्धारीने बाण चलाया और चला वह वेग नामके गुणके समवायसे। जब बहुत आकाश प्रदेशोंसे सयोग बन गया बाणका तो बहुत आकाश प्रदेश के सयोग होनेके बाद संस्कार नष्ट हो जाता है। इस कारण बाण गिर जाता है ? जिसे लोकव्यवहारमें कहते हैं कि वह बाण बहुत दूर तक चला। उसके बाद अब उसमे संस्कार न रहा, गिर गया। उसको इन शब्दोंमें कहिये कि बाणने बहुतसे आकाश प्रदेशोंका सयोग किया। और जब बहुत आकाश प्रदेशोंका सयोग हुआ तो उसमे संस्कार न रहा और वह गिर गया। जैसे कोई आदमी किसी भीड़मेंसे गुजर रहा है तो अनेक पुरुषोंसे मुठभेड होती जाती है। वह बहुतसे लोगोंको हटाता हुआ आगे बढता जाता है। और, बहुत-बहुत पुरुषोंसे मुठभेड होनेसे उसकी हिम्मत थक जाती है। अब कहाँ तक क्या किया जाय ? यो ही बाणने जब बहुतसे आकाश प्रदेशोंका सयोग कर लिया तो बाणमें संस्कार भी नष्ट हो गया तो अब वह बाण गिर जाता है। उत्तरमे कहते हैं कि भाई संस्कार तो एक स्वभाव है। संस्कार एक है और एक ही स्वभाव वाला है ऐसा विशेषवादमे माना गया है। तो एक स्वभाव

संस्कारमें जब एक स्वभावका ही संस्कार है तो पहिलेकी तरह पीछे भी संस्कारका विनाश न होना चाहिये। जैसे बाण छोडा गया तो जो संस्कार पहिले रहा वह अब आगे भी रहना चाहिए, हमेशा रहना चाहिये, क्योंकि संस्कार एक स्वभाव माना है। नित्य माना है। जो पदार्थ नित्य होता है उसका स्वभाव एक ही किस्मका होता है। तो जब उस संस्कारका काम चलानेका है तो फिर चलाते ही रहना चाहिये। इस कारण जो वेग नामक संस्कारके माननेमे आपत्तियाँ आती हैं उनका निवारण न किया जा सका।

आकाशप्रभृत प्रदेशसंयोगके कारण वेग नाशकी युक्तिकी असिद्धि—अब वेग नामक संस्कार गुणमे अन्य आपत्तियाँ देखिये। विशेषवादने आकाशको निरंश माना है। आकाशमें अवयव नही है किन्तु एक है, निरवयव है। जब आकाशमे अवयव ही नही तो यह कहना कैसे युक्त है कि बाणने आकाशके बहुतसे प्रदेशोका संयोग कर लिया। सो उससे अब संस्कार न रहा। आकाशमे प्रदेश माना ही नही है। आकाशको निरंश माना गया है। और, जब बहुत प्रदेश नही है आकाशमें, तो बाणने उनका संयोग भी न कर पाया। और फिर संस्कारका विनाश भी न होना चाहिए। देखिये कल्पना कारीगरसे रचे गए आकाशके प्रदेशोमें संयोगका भेदकपना होना मानना कि याने यहाँके आकाशप्रदेशका संयोग न रहा आगे अन्य आकाश प्रदेशका संयोग बनना मानना, इस तरह उन संस्कारोंके क्षयका कारण बताना कि बहुतसे आकाश प्रदेशोसे, भीडसे छू गया तो थक गया वह बाण, अब उसमे संस्कार नष्ट हो गया, ये सब बातें तो बहुत दूर ही पडी रहना चाहिए। जब आकाशमे प्रदेश ही नही है तो कहाँसे संयोग और संस्कारका क्षय हो ? इससे संस्कार नामक गुणका जो पृथक् प्रकार बताया है और उससे पदार्थोंमे क्रिया होती रहती बताया है वह सब अयुक्त प्रतीत होता है।

क्रियाके संस्कारका अन्वेषण—अब देखिये किसी चक्रको खूब चलाया और चला करके छोड दिया जिसपर भी चक्र चलता रहता है तो उसमे कारण संस्कार ही तो बताया जायगा। सब लोग कह देंगे कि अब यह अपने संस्कारसे चल रहा है। तो संस्कार शब्दका प्रयोग उचित है, लेकिन संस्कारका स्वरूप क्या है इस पर दृष्टि दो। उस चक्रमे जो वेगने क्रिया की तो उसकी क्रियाका जो वेग है, क्रिया की तो उसको क्रियाका जो वेग है। क्रिया की तो तीव्रता है बस उसीका नाम संस्कार है। क्रियाकी वह तीव्रता कितनी है कि कितनी देर तक उसको भ्रमाता रहेगा। वह उस क्रियामे ही चीज है याने क्रियासे क्रिया चली। उसीका नाम संस्कार है। संस्कार नामका कोई एक अलगसे गुण हो। सर्वव्यापक हो, नित्य हो और उस के सम्बन्ध जुटते फिरें, ऐसा एक व्यापक संस्कार ढूँढना यह गलत है। जिस पदार्थमे काम हो रहा है उस ही पदार्थमे तुम संस्कार ढूँढो। यदि एक संस्कार सारी दुनियामें

मानलो। और वह नित्य संस्कार एक स्वभावी संस्कार सब पदार्थोंमें काम करा रहा है तो यह बात नहीं बनने की, जिस पदार्थमें क्रिया हो रही है उस ही पदार्थमें संस्कार की छाँट करे कि इसमें किस तरहका संस्कार है तो विदित हो जायगा कि उस पदार्थ में जो एक विशेष प्रकारकी क्रिया होती रह रही है बस उसका नाम संस्कार है जिस क्रियाके बाद क्रिया चलती रहती है। तो वेग नामका कोई संस्कार गुण नहीं, सो वह पदार्थोंकी क्रियाका कारण बने यह बात सिद्ध नहीं हो सकती।

भावनात्मक संस्कारके द्वितीय भेदका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—अब शंकाकार कहता है कि संस्कारका दूसरा भेद है भावना नामका संस्कार देखो जीवमें कितना काम कराता रहता है। कहते हैं ना कि इस पुरुषमें ऐसा संस्कार पड़ा है कि वह अपने अच्छे कामको करता जायगा और उसमें रुकेगा नहीं। संस्कार पड़ा है। इस बचपनसे बचपनसे धर्मका संस्कार पड़ा है तभी तो देखो। अब तक ध्यान पूजा, सामायिक आदि धार्मिक कार्योंमें इसका चित्त लगा रहता है। तो संस्कारजीवोंमें भी होता है। और उसका नाम है भावना। तो संस्कार गुण कैसे नहीं है? संस्कार गुणके ही कारण बच्चे लोग जवानीमें भी सम्हले रहते हैं। तो भावना नामक संस्कार है और वह गुण नित्य है, सर्वव्यापक है। उसका जब समवाय सम्बन्ध होता है तब जीवोंमें अच्छी क्रिया होती है। किसीका बुरी भावनाका संस्कार हो गया तो उसकी बुरी परिणति, क्रिया बनती रहेगी। तो इस तरह २१ वाँ जो संस्कार नामक गुण है उसकी अनुभूतिसे भी सिद्धि होती है।

भावनात्मक संस्कारकी यथार्थ रूपरेखा—समाधानमें कहते हैं कि भावनात्मक जो संस्कार बताया है वह हमें अनिष्ट नहीं है इष्ट है, उसे हम भी मानते हैं, पर वह भावना नामक संस्कार है क्या? धारणा नामक मतिज्ञान है। पहिले पहिले अनुभवसे सामर्थ्य प्राप्त हुई है। जिस ऐसे आत्माका एक अभिन्न धारणा नामक ज्ञान है, जो स्मृतिका कारण बनता है उस हीका नाम संस्कार है। यह संस्कार कोई नित्य गुण नहीं है, सर्वव्यापक एक नहीं है किन्तु जिस जीवने किसी पदार्थको जाना और उसकी बारबार भावना की, उसको बारबार जानकर भावना की, उसमें उपयोगका कुछ जरा निरन्तर बनाये रहा तो एक धारणा नामक संस्कार बन जाता है। संस्कार कहो, भावना कहो, धारणा कहो इन सबका एक ही अर्थ है। ये जीव जो संसारमें रुल रहे हैं सबमें मतिज्ञान पाया जाता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनोंके दोनों समस्त छद्मस्थ जीवोंमें पाये जाते हैं। मतिज्ञानका अर्थ है इन्द्रिय और मनके निमित्त से जो ज्ञान हो वह मतिज्ञान है और श्रुतज्ञानका अर्थ है—मतिज्ञानसे जाने गए पदार्थ में, जितना मतिज्ञानसे जाने उससे और अधिक कुछ अन्य बातें जान लेना सो श्रुतज्ञान है। जैसे आँखें खोलते ही पदार्थ देखा और उसमें रूपका ज्ञान हुआ। जैसे जाना कि यह हरा है, तो यह जानना श्रुत ज्ञान है। जाना तो हरेको ही। पर हरा है इ

इस प्रकारका विकल्प जब तक नही उठा और प्रतिभास रहा उस स्थिति को कहते हैं मतिज्ञान। मतिज्ञान निर्विकल्प ज्ञान है, श्रुतज्ञान सविकल्प ज्ञान है। तो मतिज्ञानसे जाना रूप। स्थूल रूपसे समझ लिया, जान लिया कि यह रूप है, या कुछ भी घटना मतिज्ञानसे जान ली। उस ज्ञानके सद्भाव आवान्तर सत्का सद्भावरूप ज्ञान किया। फिर उसमे निर्णय किया कि यह ही है। फिर उसकी धारणा बन गयी। एक स्थूल दृष्टान्त देखिये। जैसे कोई पुरुष सामने आ रहा है। पहिले तो समझा कि यह पुरुष फिर समझा कि यहीका है और निर्णय कर लिया कि यह तो यहींका अमुक पुरुष है। फिर उसे कुछ देर तक जानता रहे या अभ्यासकी वजहसे एक बारमे ही जाना, अब उसके उपयोगमे धारणा बन गयी। धारणाका अर्थ है कालान्तरमें भी न भूलना। किसी पुरुषको सुबह देखा या जब मौका आया तो वह धारणा जग जाती है और स्मृति हो जाती है कि यह पुरुष सुबह मिला था। तो स्मृतिज्ञानका कारणभूत है सस्कार। सस्कारके जगाये जानेसे होता स्मरण। उसी सस्कारका नाम है। धारणा। धारणासे भिन्न अन्य कोई सस्कार नामका गुण नही है।

धारणापर नाम सस्कारका व्यवहारमे विशिष्ट सहयोग—हम आपका धारणा ज्ञान कितना उपयोगी बन रहा है। शास्त्रोका अर्थ लगाते हैं, यह बात कल यहा तक सुनी थी, अब इसके आगे यहाँ सुनी जा रही है। ये सब धारणायें हैं। अन्य बात भी छोडो—कोई शब्द सुनकर हम उसका अर्थ समझ लेते हैं तो क्या उसमे धारणा काम नही कर रही है? बेन्च कहा तो यह अर्थ कहा गया, क्या यह धारणा के बिना समझ रखा है? बेन्च शब्द का यह अर्थ है, यही पदार्थ है ऐसी धारणा प्राय सभी जीवोको लगी हुई है और उसी धारणाके बलपर बडे बडे व्यवहार किए जाते हैं। लेन देन धारणाके बिना नही बन सकते। कुछ लेन देन नही भी लिखे जाते हैं उनका ख्याल रहता है। जैसे कोई पुस्तक मांगकर ले गया तो उसे कोई डायरीमे तुरन्त लिख तो नही लेता, हाँ रुपयोका लेन देन लिख लिया जाता है। तो छोटी मोटी चीजोके लेनदेनका काम धारणासे ही चलता है। पहिले जमानेमें रुपयो का लेन देन भी न लिखा जाता था। तो उसका भी धारणासे काम चलता था। अब जब लोगोके चित्तमे बेईमानी आने लगी तब उसके लिखनेकी पद्धति बन गई। रुपया दिया तो लिखा दिया। जब उसमे भी बेईमानी चली तो दस्तखत कराये जाने लगे, जब उसमे भी बेईमानी चलने लगी तब उसके स्टैम्प खरीदे जाने लगे। उसमे भी बेईमानी चली तब उसकी रजिस्ट्री होने लगी। जैसे जब चार्ज सम्हाला जाता है तो चार्जमे भी तो लेन देन है लेकिन उसको लिखित करके देते हैं। शका है कि कही यह न कह दे कि यह चीज चार्जमे नही दी। तो लिखनेपर भी यह जो व्यवहार चलता है वह सब धारणा पूर्वक चलता है, और वह धारणा है क्या? आत्माके ज्ञान गुणकी पर्याय है। कोई ऐसा सस्कार नही है जो दुनियामे एक नित्य छाया हुआ है और जिसके सम्बन्धको जोडकर जीवोका व्यवहार बनाया जाता हो, किन्तु जीव स्वय ज्ञानमय है

और उस ज्ञानका ही एक परिणमन है धारणा संस्कार । संस्कार भी पर्याय है, गुण नही है । पर्याय और गुणका मोटा भेद यह है कि पर्याय अनित्य होती है और गुण नित्य होता है । संस्कार क्या नष्ट नही होता ? नष्ट हो जाता है ।

धारणापर नाम संस्कारका कार्य – संस्कार मतिज्ञानके अवग्रह ईहा अवाय और धारणा नामक चारभेदोंमेसे था भेद जब हैं तक जिसका संस्कार बना हुआ है तो सारे काम किए जाते हैं । स्वप्नमे भी संस्कार काम करता है । कभी कोई खोटा स्वप्न पाप वाला भी आ रहा हो तो वहांपर भी संस्कार जो पहिले अच्छा बनाया हुआ है वह काम देता है और स्वप्नमें भी विवेककी बात जागृत होती है और विवेकके कारण वह खोटे पापोसे बच जाता है । संस्कार बेहोशीमें भी काम देता है । कुछ लागोंकी ऐसी धारणा है कि जो पुरुष बेहोश हो जाता है और जिसका बेहोशीमें मरण होता है उसकी गति बिगड जाती है, पर यह नियम नही है । बेहोश पुरुष भी यदि ज्ञानी है उसका संस्कार अच्छा है तो उस बेहोशीमें भी अन्दर ही अन्दर वह बराबर सावधान है । अपने आत्मदर्शनमे उस सावधानीके कारण उसकी गति नही बिगडती । क्या जो बेहोश न रहें, जागते ही बोल बोलकर मरें कोई विशेषता प्राप्त करली ? यदि उनका संस्कार भला है तो बोल करके मरे तो क्या, बेहोशीमें मरे तो क्या ? उससे कोई बिगाड नही है । बेहोशीमें होता क्या है ? ज्ञान बेहोश नही होता, किन्तु इन्द्रियाँ बेहोश होती हैं । वही इन्द्रियज ज्ञान हो पाता है, मगर इन्द्रियज ज्ञानसे वहाँ मतलब क्या है ? इन्द्रियज्ञान न हुआ न सही, और किसी तरह यह भी कह सकते हैं कि अगर बेहोशीके कारणसे इन्द्रियज ज्ञान नही हो रहा तो उसको अपनी अन्त सावधानी मिलनेमें बडा सहयोग ही उससे मिल रहा है । वहाँ बाहरी बातोंका ज्ञान और उलझाव न हो सका तो संस्कार धारणा ऐसे दृढ़तम मतिज्ञानकी परिणति है कि जिसके कारण इस जीवको बहुत कुछ आत्महितके लिए सहयोग मिल सकता है ।

संस्कार एव सर्व विशेषोका अनिषेध, किन्तु यथावत् प्रत्ययकी आवश्यकता — भावना नामक संस्कार है और वह उत्पन्न किया जाता है बार बारका उपयोग लगानेसे । अब किसी जीवके तो ऐसी विशिष्ट योग्यता है कि कुछ ही बार उपयोग लगानेसे धारणा बन गयी । कुछ बहुत बहुत उपयोग लगाना होता है तब धारणा बनती है । बच्चोमे ही देखो ! कितने अन्तर पाये जाते हैं । कोई बालक एक ही बात ध्यान से सुनले तो उसे धारणा बन जाती है, कोई दो तीन बार उसमें उपयोग लगायें तो धारणा बन जाती है और कुछ बालक ऐसे होते हैं जो पचासो बार भी उपयोग लगाते हैं, पर धारणा नही बन पाती है । तो ज्ञानावरणका जैसा जिसका क्षयोपशम है उसके अनुसार उसमें उस प्रकारकी धारणा बन जाया करती है । तो संस्कार नामक गुणकी बात जो विशेषवादमे कहा है तो संस्कारको मना नही किया जा रहा, बल्कि जो जो भी कहा है गुणोंके सम्बन्धमें उनको किसीको भी मना नही किया जा सकता । मगर

वे किस रूपसे हैं ? गुण रूपसे कि पर्याय रूपसे ? उनका क्या स्वरूप है उसका विश्लेषण किया जा रहा है। तो इसी प्रकार यह सस्कार भावना नामक कोई एक नित्य एक स्वभावी गुण नही है, किन्तु ज्ञानावरणके क्षयोपशमके अनुसार जिस जीवको जितनी योग्यता मिली है वह अपने मतिज्ञानमे उतनी ही धारणा बनाता है और अपने सस्कार बनाता है। तो भावना नामक सस्कार तो अनिष्ट नही, किन्तु कोई पृथकभूत गुण माना जाय, जीवसे अलग कोई गुण है भावना नामक सो बात नही है। वह जीव ही की चीज है। जिस पदार्थमें सस्कार है वह सस्कार उस पदार्थकी ही चीज है। अब उसमे यह छटनी करें कि वह गुण है कि पर्याय है, किस ढगका है सो तो उत्तर सही आ जायगा, लेकिन पदार्थसे भिन्न कही अलग सस्कार नामका गुण कहा जाय और उसका सम्बन्ध कर करके काम निकाला जाय यह बात अयुक्त है।

स्थितस्थापक सस्कारकी मीमासा—शकाकार कहता है कि एक स्थापक नामका सस्कार भी गुणरूपसे सिद्ध है। स्थितस्थापकका अर्थ यह है कि जो पदार्थ स्थित है, ठहरा हुवा है उस पदार्थको उस ही प्रकारसे स्थापित किये रहना। इसका कारण स्थितस्थापक सस्कार नामका गुण है। और जिस पदार्थमें इस सस्कारका जब शैथिल्य होता है तो वह पदार्थ चलित होने लगता है। स्थित हुआ पदार्थ स्थिरतासे स्थिर रहे ऐसा उसमे एक स्थितस्थापक नामका सस्कार है और यह सस्कार गुणका तीसरा प्रकार है। समाधानमे कहते हैं कि स्थितस्थापकरूप सस्कार तो असम्भव ही है। अच्छा बताओ कि वह स्थितस्थापक सस्कार किस पदार्थको स्थापित करना है ? इस सस्कारका कार्य तो यही है ना कि पदार्थकी ही वैसीकी ही वैसी स्थिति बनाये रखना। तो क्या स्थितस्थापक सस्कार अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको स्थित बनाये रखना है या स्थित स्वभाव वाले पदार्थको यह सस्कार स्थित बनाये रखता है ? स्थित पदार्थको ज्योका त्यो स्थिर बनाये रखना वहीका वही, वैसा ही ठहरा हुआ बनाये रखना यह जो गुण है सो स्थिर स्वभाव वाले पदार्थको ठहराये रहता है या अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको ठहराये रहना है ?

स्थित स्थापक सस्कार गुणको अस्थिर स्वभाव पदार्थकी स्थितिका कारण माननेपर अनिष्टापत्ति—यदि कहो कि अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको यह सस्कार ठहराये रहता है तो यह तो बिल्कुल विरुद्ध बात है। पदार्थ तो अस्थिर स्वभाव वाला है मायने ठहर नहीं रहा है, चलित होता रहे ऐसे स्वभाव वाला है और उस पदार्थको स्थितस्थापक सस्कार ठहराये रखना है तो इसका अर्थ यह हुआ कि सस्कारने पदार्थके स्वभावको बदल दिया। लेकिन पदार्थका जो स्वभाव है। कोटि उपाय किये जानेपर भी बदला नहीं जा सकता। अन्यथा कोई पदार्थ व्यवस्था ही न रहेगी। आत्माका चैतन्यस्वभाव है वह भी कभी बदल जायगा। जिस जिस पदार्थका गुणका, कर्मका जो जो भी स्वभाव है वह बदलता ही जायगा तो फिर पदार्थ ही क्या

रहेंगे ? तो अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको स्थित स्थापक नामक सस्कार ठहराये रहता है यह बात नहीं बनती। और, यदि अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको सस्कार ठहरा दे तो बिजलीको क्यो नही ठहरा देता ? बिजली अस्थिर स्वभाव वाली है तो उसे भी ठहरा दे लेकिन वह दूसरे क्षण भी नही ठहरती। फिर तीसरा दोष यह है कि एक क्षणके बाद वह पदार्थ तो मिलेगा ही नही क्योकि वह अस्थिर स्वभाव वाला है। अपना स्वभाव दूसरे क्षण रख ही नही सकता। अर्थात् उसका विनाश हो जाता है। तो एक क्षणके बाद पदार्थ जब रहा ही नहीं, उसका स्वभाव हो गया तो यह स्थित स्थापक सस्कार फिर किसको ठहराये ? और अगर ठहरा दे तो अस्थिर स्वभाव न रहा फिर पदार्थका। देखो—अब ठहर गया, स्थिर हो गया। इससे अस्थिर स्वभाव वाले पदार्थको स्थित स्थापक नामका सस्कार ठहराये रहता है यह पक्ष सिद्ध नही होता।

स्थित स्थापक सस्कार गुणको स्थिरस्वभाव पदार्थकी स्थितिका कारण माननेपर सस्कारकी अकिञ्चितकता और असिद्धि—अब यदि दूसरा पक्ष कहोगे याने स्थिरस्वभाव वाले पदार्थका स्थित स्थापक नामक सस्कार ठहराये रहता है यह सस्कार उस पदार्थको वहीका वही ठहराये रहता है, उस ही ढगका बनाये रहता है जो पदार्थ स्वय स्थिर स्वभाव रखता है। तो यहाँ यह बात विचारनेकी है कि जब पदार्थ ही स्वय स्थिर स्वभाव वाला है तो उसको ठहरानेके लिये अलगसे स्थित स्थापक सस्कारकी कल्पनाकी क्या आवश्यकता हुई ? पदार्थ स्वय स्थिर स्वभाव वाले हैं और वे वहाँ स्थिरतासे रहेंगे ही, फिर स्थित स्थापक सस्कारकी कल्पनाकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योकि वह पदार्थ अकिञ्चितकर हो गया। पदार्थ जब स्वभावसे उस ही प्रकार ठहरा हुआ है फिर और कोई क्या करे ? स्थित स्थापकका फिर काम क्या रहा ? वह अकिञ्चितकर हो गया। इस कारण यह बात मानना श्रेष्ठ है कि यह पदार्थ अपने कारणोंकी वजहसे जिस जिस प्रकारके रूपसे इसमे जो परिणति होती है, दशा बनती है उस हीका नाम स्थिर स्थापक सस्कार है अन्य और कुछ नही है। उसको किसी नामसे कह लो। पदार्थमे अपने ही कारणसे जिस प्रकार परिणमनकी बात पडी हुई है उस प्रकार वह पदार्थ होता ही है। तो उसमें अब भिन्न कोई नवीन सस्कार लगाना यह बिल्कुल व्यर्थ है। तो सस्कार नामक गुण भी सिद्ध न हो सका।

शकाकार द्वारा धर्म व अधर्मनामक गुणके सद्भावका प्रस्ताव—अब शकाकार कहता है कि धर्म और अधर्म नामके भी तो गुण हैं। देखो—सारा जहान धर्म अधर्मके ही आधीन होकर सुख और दुःख भोग रहा है। धर्मका फल है सुख देना, स्वर्गोंमें उत्पन्न करना और अधर्मका फल है दुःख देना, नरकादिक गतियोंमें उत्पन्न करना। तो जिस धर्म अधर्मका सारा ही ठाठ यहाँ नजर आ रहा है उस धर्म

अधर्म नामक गुणको कैसे मना किया जा सकता है ? लोग तो इष्ट वस्तुवोंको प्राप्त करनेके लिए अधिकाधिक प्रयत्न करके हैरान होते हैं फिर भी उनकी प्राप्ति नहीं होती तो क्यों प्राप्ति नहीं होती कि उनके पास अभी धर्म गुणका सम्बन्ध नहीं बना है और जो दरिद्र हैं, पापी हैं, अकुलीन हैं, दुःख भोगते हैं उनके अधम गुणका सम्बन्ध बना हुआ है इसलिए दुःखी हैं। तो धर्म अधर्म नामक गुणके वशमें यह सारा संसार पड़ा हुआ है। इस धर्म अधर्म गुणका निषेध नहीं किया जा सकता। बहुत-बहुत दूरकी चीजें खिचती हुई चली आयें यह धर्मगुणका ही तो प्रताप है। बहुत दूरसे अनिष्ट वस्तुवें शत्रु खिचकर चले आयें और उनको बरबाद करदें यह अधर्म गुणका ही तो प्रभाव है। अन्यथा बतलावो कि बहुत दूर रहने वाले इष्ट अनिष्ट पदार्थ, सुखकारी और दुःखकारी पदार्थ किसकी प्रेरणासे खिचकर इन धर्मी और अधर्मीको सुख दुःख देनेके लिए आते हैं ? अतः मानना पड़ेगा कि कोई धर्म और अधर्म गुण है।

विशेषवादोक्त धर्म अधर्म नामक अदृष्टके गुणत्वका निराकरण—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि धर्म और अधर्म ये अदृष्टके भेद हैं। इन्हें भाग्य कहो तो ये धर्म अधर्म नामक अदृष्ट आत्माका गुण नहीं है। यह बात पहिले भी बहुत विस्तारसे बता दी गई थी कि धर्म और अधर्म जो अदृष्ट हैं वे आत्मगुण नहीं हैं किन्तु एक पौद्गलिक पिण्ड हैं। इस लोकमें प्रत्येक संसारी जीवके साथ स्वभावसे ही ऐसा कार्माणवर्गनाओंका ढेर लगा हुआ है कि जो इस भवके बाद आगे आगे भवमें भी जीवके साथ जायगा। वे कर्म तो साथ जायेंगे ही जो बँधे हुए है लेकिन है विस्रसोपचय कार्माणवर्गणायें भी इस जीवके साथ जाती हैं। जैसे कभी जंगलमें घूमते हुएमें मक्खियोंका झुण्ड घूमने वाले पुरुषके सिरपर मंडराने लगता है। और भी नई मक्खियां उस झुण्डमें आकर मिल जाती हैं। जहां जहां वह पुरुष जाता है वहां वहां वे मक्खियां भी जाती हैं और वह मक्खियोंका झुण्ड उस पुरुषके लिए बेचैनीका कारण बन जाता है ऐसे ही ये विस्रसोपचय परमाणु भी, कार्माणवर्गणाके स्कंध जो इसमें बद्ध हैं वे भी जीवके साथ इस तरह लगे हुए हैं कि जहां जाये यह जीव वहां ये कार्माणवर्गणायें भी जाती हैं और जो कर्म बंधे हैं वे भी जाते है वह है अदृष्ट। तो अदृष्ट भाग्यका नाम है। वह जीवका गुण नहीं है, आत्मासे पृथक् पदार्थ है, पौद्गलिक है। अदृष्टका और आत्माके विकारका निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध तो है पर द्रव्य पृथक्-पृथक है। भाग्य गुण नहीं है किन्तु भाग्य स्वयं द्रव्य है। इसको रूढ़िमें धर्म और अधर्मके नामसे कहा जा रहा है। उसका सही नाम पुण्य और पाप है।

धर्म अधर्मकी विशुद्ध व्याख्या—धर्म और अधर्मकी व्याख्या यह है कि आत्माका स्वभाव हो सो धर्म है और जो आत्माका स्वभाव नहीं किन्तु विभाव है सो अधर्म है। पुण्य पापका अर्थ है आत्माके जो शुभ विकार हैं उनका नाम है पुण्य और आत्माके जो अशुभ विकार हैं उनका नाम है पाप। और, उन शुभविकारोंके कारणसे

जो कार्माणवर्गणायें बनी, उनमे जो शुभ प्रकृतिपना जिसमे आया है वह कहलाता है पुण्य कर्म और जिसमें पाप प्रकृतिपना आया है, खोटा अनुमान आया है उन्हें कहते हैं पापकर्म। तो पुण्यकर्म पापकर्म तो ससारी जीवोके साथ लगकर उन्हें इस ससारमे भ्रमाते रहते हैं और धर्म इस जीवको सस्कारके दु खोस छुटाकर उत्तम सुखमें पहुँचा देता है। इस दृष्टिमे पुण्य है सो भी अधर्म है, पाप है सो भी अधर्म है। शुभोपयोग है वह भी आत्माका स्वभाव नही है और अशुभोपयोग है वह भी आत्माका स्वभाव नही है। धर्म तो धर्म है अचलित है, धारणपालनरूप नही है। मूल स्वरूपको देखिये! आत्माका जो स्वभाव है वह धर्म है। वह धर्म धारण, पालनरूप नहीं। वह तो स्वभावमात्र है। अब उस स्वभावमात्रकी जो दृष्टि करता है वह जीव दृष्टि करने रूप परिणतिमे धर्मपालन कर रहा है। धर्मपालन कहते किसे हैं? स्वभावको दृष्टिमे लेना स्वभावमें उपयोग रमाना वह है धर्मपालन। धर्मपालन धर्म नहीं, धर्म तो स्वभावका नाम है, किन्तु स्वभावकी दृष्टि करना उसका नाम धर्मपालन है। परिणमन स्वय धर्म नही है पर्याय है, स्वभाव नही है, तो धर्म और धर्मपालन ये दो बातें हैं अब धर्मपालनमें भी और विस्तारसे निरखिये आत्माका जो विशुद्ध सहज चैतन्यस्वभाव है उसकी दृष्टि होना, उसमें उपयोग रमना उसका अनुभव होना यही है धर्मपालन।

निश्चयत और व्यवहारत धर्मपालन—निश्चय धर्मपालनके अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी प्रवृत्तियां हैं धर्मपालन नहीं हैं। लेकिन इस धर्मपालन रूप निश्चय परिणतिके सहायक जितने प्रवर्तन हैं उन्हें भी धर्मपालन कहते हैं और वह व्यवहारत धर्मपालन कहलाता है। निश्चयसे आत्माके विशुद्ध सहज चैतन्यस्वभावकी दृष्टि अनुभव और रमण होना इसका नाम है धर्मपालन और इस निश्चय धर्मके पालनकी पात्रता बनाये रखने वाली जो व्यवहारकी प्रवृत्तियां हैं उन्हें कहते हैं व्यवहारधर्म। जैसे मदिर आना, पूजा करना स्वाध्याय करना। व्रत नियम पालन करने वालेके लिए साक्षात् धर्मपालन करने वालेके लिए साक्षात् धर्मपालनकी पात्रता बनाये रखना इस व्यवहार धर्मका काम है। इन धर्मोंके करते हुए बीच-बीच जब जब भी आत्मस्वभावपर दृष्टि जगे तब वह धर्मपालन कर रहा है। तो इस दिशा मे ऐसा कह सकते हैं कि जैसे युद्धमें सुभट ढाल और तलवार दोका प्रयोग किया करते हैं। पहिले समय मे युद्ध में सैनिक लोग मजबूत, कवच पहिन कर ढाल और तलवार लेकर युद्ध क्षेत्रमे उतरते थे। तलवारका काम था शत्रुका घात करना विजय प्राप्त करना। और ढालका काम था शत्रुका वार रोकना। ढाल शत्रुका घात नहीं करती बल्कि वारको रोकती है और तलवार शत्रुका घात करती है। इसी तरह व्यवहार धर्म तो ढालकी भांति है और निश्चय धर्म तलवारकी भांति है। जीवके शत्रु हैं विषय कषाय। पञ्चेन्द्रियके विषयोमे उपयोग रमना, लोकेषणा आदिके लिए स्वच्छन्द प्रवर्तन होना ये सब जीवका साक्षात् घात करने वाले हैं। तो इन शत्रुवोका घात निश्चय धर्मसे होता है। साधु सन्त जनोको मारो जिन्दगी भर और काम करनेको है ही क्या? यही एक

काम है कि आत्माके शुद्धचित स्वरूपको निरखना और निरख निरखकर तृप्त होते रहना। यह काम साधु संतजन तब तक करते ही रहेंगे जब तक निर्विकल्प स्थिति नही प्राप्त होती निर्विकल्प स्थिति होनेपर फिर इस परिश्रमकी जरूरत नही रहती वे तो स्वयं अपने स्वभावमे समा गए हैं। साधु संतजन इसी एक कामको करनेके लिए सब कुछ परित्याग करके निर्ग्रंथ स्थितिमे आये हैं। तो जब यह धर्मपरिणाम होता है अपने आपके स्वभावकी दृष्टि जगती है उसके निकट उपयोग रमता है तो इस जीवके जो एक अलौकिक आनन्द प्रकट होता है उस आनन्दमे यह सामर्थ्य है कि विषय पाप व विकल्पोको तत्काल दूर कर देता है। तो निश्चय धर्मका काम हुआ विषय कषायविकार शत्रुवोको नष्ट कर देना। और व्यवहार धर्मका काम है कि अपना उपयोग ऐसा शुभ की ओर बनादें कि विषय कषायोके ये खोटे प्रहार इन आत्मापर न लग सके। पूजन करते हैं, स्वाध्याय करते हैं तो उपयोगको हो तो विषयकषाय, भोग-उपभोग, रागद्वेष के विशेष प्रसङ्ग इन सबसे मोड लिए हैं ना! तो यह ढालकी तरह व्यवहार धर्म इन जीवोकी रक्षा कर रहा है, इन्हे नही सकते वे दुष्ट परिणाम। अब व्यवहार धर्मसे रक्षित जीव बेखटके निरत होता हुआ अपने आपके भीतर निश्चय धर्मकी वृत्ति बनाले उसके लिए अब यह सहज हो गया है। जैसे ढालपे रक्षित हुआ सैनिक पद-पदपर ढालके प्रयोगसे अपनी रक्षा बनाता हुआ निशङ्क होकर शस्त्रप्रहारसे, युद्धसे अपनी विजय प्राप्त करे उसके लिए यह सरल हो गया है। तो धर्मपालन नाम है आत्माके सहज शुद्ध चैतन्य स्वभावके दर्शन और अनुभवनका।

धर्मपालनकी महिमा और आवश्यकता—संसारके सर्वसंकटोसे छुटानेमें समर्थ यह धर्मपरिणमन है। लोग अपने आपमे कल्पनाये बनाते हैं कि सबसे श्रेष्ठ रोजिगार कौनसा है जिससे हम जीवनमे सुखपूर्वक रह सकें? अरे, जितना यह १०० ५० वर्षका मनुष्य जीवन है क्या यही तेरा सब कुछ है? इसके बाद जो अनन्त काल पडा है उस अनन्तकालमें हम कैसे अच्छी तरह रह सकें इसका कुछ भी विचार नही करते। और, दूसरी बात यह है कि इस जीवनमें भी सुखी शान्त रहनेके लिए बाह्य पदार्थोके, विषयोके कुछ कर्तव्य बना लेनेकी बात समर्थ नही है। जो बात जिस जिस पद्धतिमें है ही नहीं उसको कहाँसे बनाया जा सकता है? आत्माकी शान्ति है निवृत्तिमें, अपने आपके एकत्वकी दृष्टिमें। बाह्यका संसर्ग बनाकर, बाह्य सम्पर्कमे बुद्धि लगाकर शान्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है? बडेसे बडे दुःखी पुरुष भी एकत्व भावनाके प्रतापसे सुखी हो गए हैं। और, बहुत विषय भोग साधन वैभव सम्पदा राज्यपाटके आरामके अन्दर रहने वाले जीव भी एक इस पर बुद्धिके कारण बडे दुःखी हो गए हैं। किसीको इष्टवियोग हो गया। लोग बहुत-बहुत समझाते हैं, नही समझ मे आता, पर जब कभी भी समझमे आता है, अर्थात् वह पुरुष कुछ शान्ति पाता है तो एकत्व भावना आती है चित्तमे, तब शान्ति आती है, वह भी अकेला मैं भी अकेला कबसे अकेला मैं, कबसे अकेला वह। किसीका किसीसे क्या सम्बन्ध है? हो गया

झटपट निकट। जब अपने आपके एकत्वपर दृष्टि जाती है तब उस आत्माको शान्ति प्राप्त होती है। तो ऐसे स्वभावकी दृष्टि होना धर्म है और इस स्वभावसे च्युत होकर जो कुछ इसकी विकृत परिणति बनती है वह अधर्म है। धर्म है गुण, धर्म है स्वभाव और उसका श्रद्धान अनुभवन, पालन यह है परिणति।

अदृष्टभेदके रूपमे धर्म अधर्मकी व्याख्याकी असंगतता— धर्म अधर्म नामका जैसे विशेषवादमे माना गया है गुण, उसका सद्भाव सिद्ध नही है और इसी कारण विशेषवादमे जो यह वर्णन किया है कि धर्म अधर्म क्या है? अदृष्ट नामका गुण है और जिसके धर्म और अधर्म ये दो भेद हैं। और जो अपने कार्यका विरोधी है, अर्थात् अपनी कल्पना कर चुकनेके बाद मिट जाया करता है। कार्य होनेपर जो ठहर नहीं सकता। आत्मा और मनके संयोगसे उत्पन्न होता है और फल करने वाले को फल देने वाला है ऐसे आत्माके गुणका नाम है अदृष्ट, धर्म यह बात अयुक्त कही गई है। हाँ इस तरहसे व्याख्या करें कि करने वालेका प्रिय हित मोक्षका जो कारण हो उसे तो धर्म कहते हैं और करने वालेको अप्रियपना जचनेका जो कारणभूत हो उसको अधर्म कहते हैं। अर्थात् जो दुःखका कारण है वह अधर्म है और जो संसारके समस्त संकटोंसे छुटा देनेका कारण है वह धर्म है। धर्म और अधर्म कोई व्यापक एक गुण हो और वे जगह जगहसे चीजें खींचकर इस आत्माके पास ला देते हों, इस प्रकारका कोई गुण नही है, किन्तु कर्मोंका ही नाम पुण्य पाप है। और, आत्माके स्वभाव और विभावका नाम धर्म अधर्म है।

शब्दके गुणत्वका निराकरण— आकाशका अन्तिम गुण है शब्द। शब्द को विशेषवादमे आकाशका गुण कहा गया है। जैसे कि एक सरसरी दृष्टिसे कोई निरखता है शब्दोंको सुननेके लिए, शब्दोंकी परखके लिए, तो वह आकाशमे ढूंढता है, निरखता है आकाशमें ही कानोंको लगाता है तो उससे ऐसा एक अतीव साधारणजनों को भ्रम हो जाता है कि ये शब्द आकाशमे फैले हैं, आकाशके ही गुण हैं, आकाशसे ही प्रकट होते है, लेकिन आकाश और शब्द इन दोनोंके स्वरूपपर दृष्टि दी जाय तो इनमें बहुत भेद नजर रहा है। आकाश अमूर्त है शब्द मूर्त है। अमूर्तका गुण मूर्त नही हो सकता। अमूर्तसे मूर्तकी उत्पत्ति नही हो सकती। शब्द मूर्त है यह तो अब बहुत स्पष्ट सिद्ध है। शब्दोंको छोड़ लें, भेड़ लें, अथवा शब्द भीटादिकसे छिड़ गए, शब्दोंका वायु आदिकसे अभिघात हो जाय, आगे शब्द न बढ़ सके, अथवा तरंगोंके रूपसे एक जगहसे दूसरी जगह चले जायें, सुनाई दें ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि शब्द मूर्तिक है। तो मूर्तिक शब्द कभी आकाशका गुण नही हो सकते। ये शब्द तो भाषावर्गणाजातिके पुद्गल स्कंधोंके द्रव्य परिणमन हैं। तो यों शब्द भी गुण न रहे। सामान्यविशेषात्मक पदार्थके विरोधमे जो द्रव्य, गुण कर्म सामान्य, विशेष, समवाय नामक ६ पदार्थोंकी व्यवस्था विशेषवादके अनुसार बनायी जा रही थी उनमेंसे द्रव्य और गुण इन दो प्रकारके पदार्थोंका निराकरण कर दिया है।

शकाकार द्वारा कर्म पदार्थके सद्भावका प्ररूपण—पदार्थ वही "है" कहला सकता है जिसमें उत्पादव्ययध्रौव्य होते हो। प्रति समय परिणमकर भी जो नित्य रहता हो पदार्थ वही है। यह पदार्थकी स्वयकी विशेषता है। तो इसमे जो परिणमन हो रहा है उसमे सो सिद्ध है कि उसमे नई अवस्थायें आती हैं और पुरानी अवस्थायें विलीन होती हैं। अब वे अवस्थायें दो तरहकी होती हैं। एक प्रदेशके हलन चलन रूप, और एक गुणोंकी परिणति रूप। जो प्रदेशके हलन चलन रूप उत्पाद हैं उसका नाम तो है क्रिया और जो गुणोके परिणमन रूप उत्पाद है उसका नाम है गुण पर्याय वस्तुसे-अभिन्न सिद्ध हो गए तो उन पर्यायोके आधारभूत शक्ति भी वस्तुमे अभिन्न है। इस तरह पदार्थमें गुण है, क्रिया है तब उसमे सामान्य भी है और विशेष भी है। इस तरह पदार्थ ही स्वय-गुणात्मक, पर्यायात्मक, सामान्यात्मक, विशेषात्मक, सिद्ध होता है। लेकिन विशेषवादमे तो यह कुञ्जी बना ली गई है कि बुद्धिमें कुछ समझमें तो आये किसी भी तरहसे सो जितने बुद्धिभेद होगे उतने ही पदार्थभेद मान लिये जावेंगे। जब पदार्थोंमे गुण समझमे आये तो गुण नामका भी पदार्थ कह दिया। अब क्रिया समझमें आ रही, तो क्रिया नामक पदार्थ भी विशेषवादमे कहा जा रहा है।

कर्मपदार्थके प्रकारोमे उत्क्षेपणनामक कर्मपदार्थका वर्णन—विशेषवादी कहते हैं कि एक कर्म नामका भी पदार्थ है। कर्मके मायने यहाँ क्रिया है। और, वे ५ प्रकारके हैं उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। पदार्थ जो चलते फिरते नजर आते हैं तो यह चलन फिरन भी क्रिया है ना, और वह वास्तविक पदार्थ हैं। उत्क्षेपण किसे कहते हैं कि किसी चीजका ऊपरका सयोग हो और नीचेके प्रदेशमें वियोग होता जाय, ऐसी क्रियाको कहते हैं उत्क्षेपण यानि फिकना। ऊपरको ढेला फेंका तो हुआ क्या कि ऊपरके आकाश प्रदेशका सयोग होना और नीचेके आकाश प्रदेशका वियोग होना इस तरह उसका कर्म होना और मूल स्थानसे अलग हटना इसे कहते हैं उत्क्षेपण जिसका सीधा अर्थ है फिकना। अब यह क्रिया है ना इस क्रियाको तो स्याद्वादियोने भी किसी न किसी ढगमे मान रखा है—जैसे कि जीव और पुद्गलकी यह प्रदेश क्रिया है। प्रदेशका ही उस प्रकारका परिणमन द्रव्यकी ही एक अवस्था है, लेकिन विशेषवादमे इसे माना गया है कर्म पदार्थ। जैसे कि शरीरके अवयवोमे किसी सम्बन्ध मूर्तिमान पदार्थमे आकाश प्रदेशोके साथ ऊपर नीचे सयोग विभागका कारण बने याने ऊर्ध्व दिशाके आकाश प्रदेशमे तो सयोगका कारण बने और अधो दिशाके प्रदेशमे वियोगको बनाये ऐसा जो गुण है, ऐसा जो पदार्थ है, जिसके द्वारा यह कार्य होता है उसे कहते हैं उत्क्षेपण, जिस कर्म पदार्थने वस्तुको फेंक दिया। यहाँ मूल बात यह चल रही है कि पदार्थोंमे जो क्रिया होती है, एक जगहसे दूसरी जगह चीजका पहुँच जाना, इसमे कर्म पदार्थ काम कर रहा है।

विशेषवादोक्त अवक्षेपण और आकुञ्चननामक कर्म पदार्थका वर्णन

उत्क्षेपणके विपरीत होता है अवक्षेपण अवक्षेपण कहते हैं नीचेकी ओर गिरनेको। इसमे ऊपरके आकाश प्रदेशका होता है वियोग, और नीचेके आकाश प्रदेशका होता है सयोग। इसका जो कारणभूत पदार्थ है उसे कहते हैं अवक्षेपण नामका कर्म पदार्थ। जैसे कोई पूछ बैठे कि यह चीज ऊपर गयी, इसको किसने फेंका ? तो विशेषवादका उत्तर है कि उस कर्म पदार्थके कारण उसमे क्रिया हुई। कोई कहे कि हाथकी क्रिया नही होती तो चीज कैसे फेंक दी जाती ? तो उसका उत्तर है कि वह उसका निमित्त कारण है। कर्म पदार्थ उनमे समवायी कारण है, मिला हुआ कारण है। उस कर्म पदार्थने चीजको एक जगहसे दूसरी जगह गमन करा दिया। तीसरा प्रकार है आकुञ्चन। सरल द्रव्य हो, सीधी चीज हो और उसको कुटिल करनेका जो कारण है उस कर्मको कहते हैं आकुञ्चन। जैसे कि अगुली सीधी है। अब अगुलीके ऊपर के जो अवयव हैं उनका वहांके आकाश प्रदेशोंसे तो वियोग कर दिया, जिन आकाश प्रदेशोमें इस अगुलीके अग्रभागका सयोग था वहांसे तो अलग कर दिया और मूल प्रदेशके साथ सयोग कर दिया याने अगुलीको जो जड है उसके पासके जो आकाश प्रदेश हैं उनके साथ सयोग कर दिया, तो इस प्रकारकी क्रियाका कारणभूत है कर्म पदार्थ। उसका नाम है आकुञ्चन।

विशेषवादोक्त प्रसारण और गमन नामक कर्मपदार्थका वर्णन—चौथे प्रकारका नाम है प्रसारण। इसमें आकुञ्चनसे विपरीत काम होता है। अर्थात् जैसे अगुलीके मूल प्रदेशसे मूलमे रहने वाले आकाश प्रदेशसे तो हो गया वियोग और अग्रभागके ऊपरके आकाश प्रदेशका हो गया सयोग ऐसी क्रियाका कारणभूत जो पदार्थ है उसका नाम है प्रसारण नामका पदार्थ। अब ५ वां कर्म है गमन। अनियत दिशा और देशमे सयोग और वियोगका जो कारणभूत है उसे कहते हैं गमन। इन ५ प्रकारोंमेंसे चार प्रकारके कर्मोंकी तो दिशा नियत है कोई डला फेंका तो नियत है कि इस दिशामें एक डला फेंका तो नियत है कि इसी दिशामें यह डला जायगा किसी चीज में आकुञ्चन है तो नियत दिशा है कि वह चीज अपने मूल तक आ सकेगी। और किसी चीजका प्रसारण हो तो उसकी भी दिशा नियत है, पर गमनकी भी दिशा क्या ? नियत है। चलते चलते किसी ओर भी मुड जाय इस प्रकार ५ प्रकारके पदार्थ होते हैं। इस तरह शकाकारने अब तीसरे पदार्थके सद्भावकी बात कही है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विरोधमें जो ६ पदार्थ कहे थे—द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय, उनमेंसे यह तीसरे नम्बरका पदार्थ है।

कर्म पदार्थके सद्भावकी शकाका समाधान—अब कर्मपदार्थके सद्भावकी शकाके समाधानमें कहते हैं कि यह ४ प्रकारके कर्म पदार्थोंका वर्णन करना बिना विचारे ही सुन्दर लगता है। उनकी व्याख्या करना, लोगोंको कुछ आश्चर्य जैसी बात मे डाल देना। देखो ! कितने सुन्दर शब्दोमें बताया जा रहा कि ऊपरके आकाश

प्रदेशका सयोग होना, नीचेके आकाश प्रदेशका सयोग होना, नीचेके आकाश प्रदेशका वियोग होना, ऐसी क्रिया जिसके द्वारा हो उसे कहते हैं अवक्षेपण नामका कर्म पदार्थ नई व्याख्या नये शब्द, नया ढग, बड़ा सुहावना लगता है लेकिन यह तब तक सुहावना लगेगा जब तक इसपर सम्यक दृष्टिसे विचार न किया जाय। विचार करिये तो है क्या उन ५ प्रकारोमे ? एक देशसे दूसरे देशमें प्राप्ति कराने का कारणभूत परिस्पदात्मक परिणाम है, और अन्य है क्या ? तथा यह भी कोई बताये कि ५ प्रकार ही क्यो कहा ? उनमे कोई विशिष्ट बात सिद्ध होती है क्या ? उन पाचोके पाँचोमें यह बात पायी जाती है कि एक देशसे पदार्थ चला और दूसरी जगह पहुचा। चाहे फिरना हो गिरना हो फैलाव हो, सकोच हो, गमन हो। सब सही बात पायी जाती है लेकिन उनसे देशसे देशान्तर प्राप्तिरूप बात एक ही है सो वह एक देशसे नवीन देशमे पहुँचनेका कारणभूत जो कुछ है वह पदार्थका स्वय का परिणमन है। कोई कर्म नामका पदार्थ अलग ह और उसका सम्बन्ध बनाया जाय, फिर चीज चले ऐसा नही है। पदार्थमे स्वय शक्ति है और निमित्त पाकर वह चलता है। तो वह जो चलता है वह पदार्थकी क्रियावती शक्तिका परिणमन है।

पदार्थका अविरुद्धस्वरूप जाननेपर समाधानकी दिशा—पदार्थ वही कहला सकता है जिसमे साधारण गुण पाये जाते हो इस व्याख्यासे चलिये तो यह भी विदित हो जायगा कि यह पदार्थ है अथवा नही, या पदार्थकी ही एक विशेषता है—जिसमे अस्तित्व हो वह पदार्थ कहलाता है जो अपने स्वरूपसे हो, पर स्वरूपसे न हो वह पदार्थ कहलाता है। इन दो बातोको तो हर एकमे घटित किया जा सकता है। गुण है, अपने स्वरूपसे है, पर स्वरूपसे नही है। फिर भी बारीकीसे देखा जाय तो "है" ही घटित नहीं होता। "है" कहते ही उसे हैं जो उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हो। गुण कर्म आदिक पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक नही है। और, सामान्यतया इनमें "है" की भी बात मान लो तो अभी तो ये दो ही गुण कहे हैं। तीसरा गुण है साधारण द्रव्यत्व निरन्तर परिणमता रहे। अब यहाँ पदार्थको झटपट माननेकी बात टूट जाती है। फिर अपनेमे ही परिणमे दूसरेमे न परिणमे। फिर अपना प्रदेश रखता हो। प्रदेशत्व गुणके कहनेसे गुण क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय, इन सबका निराकरण हो जाता है। ये पदार्थ नहीं हैं, इनमें प्रदेश नही होते। प्रदेश द्रव्यमें ही होते हैं और प्रदेशवान द्रव्यके सहारे ही गुण कर्म आदिक होते हैं। वस्तु है तो वह प्रदेशवान है।

पदार्थोंकी प्रदेशवत्ताके नियममे सब समाधान—कोई कहे कि यह बेन्च भी पदार्थ है। और, यह ४॥ फिट लम्बी है तो यह लम्बा भी पदार्थ है और यह १॥ फिट चौडा है तो यह चौडा भी पदार्थ है। और यह थोडी सरक गयी तो यह सरकना भी पदार्थ है। अब यो बुद्धिभेदसे जो जो भी बात हो यह छोटे बच्चो जैसा

उत्तर तुम्हारा पदार्थ बना दिया गया, परन्तु पदार्थ हो कौन सकता है? पहिले इस मूल स्वरूपपर ही तो दृष्टि दो। प्रदेशवान पदार्थमे जो विशेषतायें नजर आयें वह है गुण, कर्म, सामान्य, विशेष। सम्बन्धकी तो जरूरत ही नहीं। यह सब तादात्म्य सम्बन्धसे है। किसीमें है कादाचित्क तादात्म्य और किसीमे है शाश्वत तादात्म्य। जैसे अगुली सीधी है और अब टेढ़ी की गई तो यह टेढ़ापन विशेषताद में पदार्थ मान लिया। यह टेढ़ापन होना अगुलीकी एक परिणति है। और इस परिणतिका अगुली के साथ तादात्म्य है। लेकिन शाश्वत तादात्म्य नहीं। जिस कालमें अगुलीकी टेढी अवस्था हो रही है उस ही कालमें इस वक्रताका तादात्म्य है जीवमें क्रोध आ रहा है तो यह क्रोध क्या है? यह एक परिणति है। और इस परिणतिका जीवमें तादात्म्य उस ही समयमे है जिस समयमें क्रोध परिणमन हो रहा है। यह शाश्वत तादात्म्य नही है। परिणतियोंका आधारभूत जो गुण हैं उन गुणोके साथ शाश्वत तादात्म्य है। तो कर्म नाम हुआ एक देशमे दूसरे देशमे प्राप्तिका कारणभूत परिस्पंदात्मक परिणामका। सो वह पदार्थकी विशेषता है।

कर्म पदार्थ और उसकी पञ्चरूपताकी असिद्धि—इस कर्मके लक्षणमें पाँचो ही प्रकारके कर्मका अन्तर्भाव हो जाता है। जो ५ प्रकारके कर्म बताये गए हैं ऊपर फिकना, नीचे गिरना, सकुचित होना, फैल जाना, गमन, करना इन सबमें देशसे देशान्तरकी प्राप्ति है कि नही? है। एक जगहसे हटकर दूसरे देशमे पहुँचा यह कर्म सबमे पाया जा रहा है। तो ये ५ क्या रहे? यह एक कर्म, क्रिया है और एक कर्म, क्रियामें ही इन सबका अन्तर्भाव है। तो एक सामान्य लक्षण एक देशसे दूसरे देशमें पहुचने रूप क्रियामे पाँचोका अन्तर्भाव होता है, लेकिन शकाकार या कोई उसमे उनकी विशेषता देखकर भेद पूर्वक कहे कि भाई, अन्तर्भाव तो जरूर है लेकिन जो उत्क्षेपण है वह अवक्षेपण नही है। फिकनेमें और तरहकी बात है गिरनेमे और तरहकी बात है। इन पाँचोंमे भेद है। इनकी पद्धति न्यारी है इसलिए इन्हें भिन्न-भिन्न ही माना। तो क्रियामें अन्तर्भाव होकर भी पांचो भिन्न-भिन्न माननेकी हठ की जाय तो फिर ये ५ ही क्यो कहलाते? बतावो गोल गोल फिरना इसका किसके अन्तर्भाव होगा? लड़के लोग जो वही गोल-गोल घूमते रहते हैं वह उत्क्षेपण नही अवक्षेपण नही, प्रसारण नही, आकुञ्चन नही और गमन नही, इसको कहाँ अन्तर्भाव करोगे? एक वह भी पदार्थ मानलो। और, बहना, झरना, फिरना, पदार्थोंमें जो घूना होता है उसका किसमें अन्तर्भाव कहोगे? ऐसी अनेक क्रियायें हैं जो इन ५ में शामिल नही हो सकती, तब फिर कर्म पदार्थ ५ ही हैं यह तो आपका निश्चय न रहा।

यथार्थ पदार्थव्यवस्था— वास्तविकता यह है कि लोकमे ६ जातिके पदार्थ हैं जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। इनमेंसे ४ पदार्थ तो निष्क्रिय हैं धर्म, अधर्म, आकाश और काल। ये जहाँ है वहाँ ही अवस्थित हैं। वहाँसे एक प्रदेश

भी चलित नहीं हो सकते। आकाश सर्वव्यापक है सब जगह फैला हुआ है। उसके चलित होनेका प्रश्न ही क्या है? धर्म अधर्म द्रव्य लोकाकाशमे व्यापक हैं जीव पुद्गल चलें तो उनके गमनमे सहकारी कारण हैं धर्मद्रव्य। जीव पुद्गल ठहरें तो उनके ठहरने मे सहकारी कारण है अधर्मद्रव्य। काल द्रव्य लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवस्थित है और उस प्रदेशपर रहने वाले पदार्थके परिणमनका कारणभूत है, सो जहाँ काल द्रव्य है वहाँ ही रहता है। केवल क्रियावान द्रव्य दो हैं जीव और पुद्गल, जीवमें क्रिया होती है और पुद्गलमे भी क्रिया होती है। तो यह जो क्रिया हो रही है वह जीव और पुद्गलकी स्वयकी योग्यतापर और निमित्त सन्निधान पानेपर जैसी क्रियाके लिए जैसी स्थिति चाहिए उस स्थितिके पानेपर क्रिया हो जाती है। तो यह चलन, यह हलन चलन यह चलने वाले पदार्थकी योग्यताकी ही बात है। कोई कर्म नामका पदार्थ दुनियामे एक पडा हुआ है और वह इन पदार्थोंको ५ प्रकारसे या अनेक प्रकारसे चलाता रहता है ऐसा कोई कर्म पदार्थ सिद्ध नही होता।

परिणतिलक्षणरूप क्रियाका वर्णन—अब कर्मका अर्थ यदि परिणति लिया जाय तो इसका विस्तार सुनिये! परिणति होती है दो प्रकारकी बिना क्रिया किए अपने आपमे ही कुछसे कुछ बदलते जाना ऐसी भी परिणति होती है और एक जगह से दूसरी जगह पहुच जाना यह भी परिणति होती है। परिणति, पर्याय, अवस्था दशा ये सब एकार्थक शब्द हैं। तो परिणतिकी पद्धतियाँ दो हैं—प्रदेशमें परिणति होना, गुणमे परिणति होना। देखिये! इन बातोका चतुष्टय आधार है - द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। द्रव्य तो वह एक चीज है, पिण्डात्मक पदार्थ है और काल उसकी परिणतिका नाम है। तब दो बातें हुई ना! द्रव्य होना और परिणमन होना। अब वह परिणमन क्षेत्रमें होता है और भावमे होता है। जो क्षेत्रमें परिणमन हुआ उस को नाम है क्रिया जो भावमें परिणमन हुआ इनका नाम है गुणपर्यय। तो इस तरह परिणतिका द्रव्य प्रदेशमे और द्रव्य गुणोमे विस्तार होता है। यह सब पदार्थोंमें उनकी योग्यताके अनुसार स्वयमेव होता है। कौन इनका कराने वाला है? प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, अपना अपना स्वरूप लिए हुए है। और वह अपने ही स्वरूपसे, अपनी ही सीमामे, अपने ही प्रदेशमें निरन्तर परिणमता रहता है। अब परिणमनमे कारण निमित्त जरूर पडते हैं सो निमित्त उपादानमे कोई क्रिया नहीं करते। उनका सन्निधान पाकर उपादानमें उस तरहका परिणमन हो जाता है। जैसे हम चौकीपर बैठे हैं तो चौकीने मुझमें कोई बात नही लादी। चौकीकी क्रिया चौकीका गुण मेरेमें नहीं आया। किन्तु यह मैं उस चौकीका सन्निधान पाकर अपने आपकी क्रियासे अपने आपकी परिणतिमें बैठ गया। बडे बडे प्रेरणात्मक प्रयोग भी कहीं हो रहे हो तो वहाँ भी आपको स्वतन्त्रता दिखेगी। इससे अधिक प्रेरणाका और क्या दृष्टान्त दिया जा सकता कि कुम्हार चाकपर रखे हुए मृतपिण्डको दबोचकर फैला रहा है, घटादिक बनानेमे। लेकिन वहा भी कुम्हार उस मृतपिण्डमें कुछ नही

कर रहा। वह तो अपने हाथमे अपनी क्रिया कर रहा। उस निमित्त सन्निधानको पाकर मिट्टी अपने आपमें फैलनेका काम कर रही है। तो इस घटनामें कुम्हारका द्रव्य क्षेत्र काल, भाव सब कुछ कुम्हारमे है, मृत्पिण्डका मृतपिण्डमे है। यों प्रत्येक पदार्थ अपनी योग्यतासे अपने आपमें अपना परिणमन किया करता है।

यथार्थज्ञान और हितके अवसरको व्यर्थ न खोनेका अनुरोध—स्याद्वाद शासनमें पदार्थोंका कैसा तथ्यभूत वर्णन है कि जिसमे किसी तरहके दोषका कोई प्रसंग ही नही है। पदार्थ ६ जातिके बताये इनमे कोई पदार्थ छूटा नही। कोई पदार्थ दुबारा आया नहीं। किसीका किसीसे कोई मेल रहा नहीं। उनके भी उनके भी जब प्रकार बताये जाते और नयप्रमाणसे जो विवेचना की जाती, कितनी निर्दोष व्याख्या है, जिससे वस्तुके सही स्वरूपका यथार्थ परिज्ञान होता। इस अनादि अनन्त कालमें अनेक अज्ञान दशाओंसे निकलकर आज हम आप इतने ज्ञान वाली अवस्थामें आये हैं लेकिन इस ज्ञानका सदुपयोग नही किया जा रहा है। ज्ञान उन असार बातोंमे लगाया जा रहा है कि न वे असार बातें रहेंगी न ये मौज रहेंगे। और इससे जो जन्म मरणकी परम्परा बढेगी वह अलग ही बात है। ज्ञानका सदुपयोग यही है कि हम वस्तुके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करें जिससे हमारा वैराग्य पुष्ट हो। और वैराग्य ही एक करने योग्य पुरुषार्थ है। राग छोडे बिना शान्ति न मिलेगी। और राग भी व्यर्थका। यहा है कौन किसका? पर व्यर्थमे मोह करके हम आप दुखी हो रहे हैं। जैसे सर्पके द्वारा डसे जानेसे मनुष्यके ६–७ बार वेगका असर आया करता है ऐसे ही मोहके वेगसे संसारके प्राणी दुखी हो रहे हैं। यहाँ है किसीका किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं। सबसे निराला यह आत्मतत्त्व है। उसके जाननेकी दृष्टि करें। यहा ज्ञानोपयोगको लगायें, यही है इस ज्ञानका सदुपयोग। और इससे ही मनुष्य जीवका पाना सफल होगा। इससे मुडकर असार बाह्य विषयोंमें, परिग्रहमे, रागद्वेष के विकल्पोमें बुद्धिको लगाना यह तो है अपने जीवनका बेकार करना। तो यथार्थ पदार्थकी जानकारीके लिये उत्साह बनाये और अपनेको समझें कि मैं अकिञ्चन केवल अमूर्त चैतन्यमात्र हू। गृहस्थीमे हो तो सहज श्रमसे जो हुआ सो हो, गुजारा सब घटनाओंमें किया जा सकता है। लेकिन यथार्थ ज्ञानके उपयोगका लाभ लेना न चूकें। इस हीमे हम आपकी बुद्धिमानी है।

एकरूप द्रव्यमे कर्मकी असंभवता—विशेषवादमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष समवाय ये जुदे-जुदे स्वतंत्र पदार्थ हैं। अब कल्पना करिये कि द्रव्य जो कि गुण, कर्म, सामान्य विशेष समवायमे जुदा है, इकला है तो वह द्रव्य तो एकरूप ही रहा ना। जब द्रव्य गुण, पर्यायात्मक हो तब तो उसे अनेकरूप कह सकते हैं, द्रव्यका परिणमना बना सकते हैं। द्रव्यमे कर्मके सम्बन्धसे परिणमन हो रहा, ठीक है लेकिन द्रव्य स्वय कैसा है? वह तो कर्मरहित है गुणरहित है, तो गुण, कर्म आदिकसे रहित जो द्रव्य है वह तो जैसा है उस ही रूप एक है। उसमे नानारूपता तो नही आ

सकती। और फिर जो आत्मा आदिक हैं वे तो नित्य एकरूप माने ही गये हैं विशेषवादमें जिन द्रव्योंको अनित्य भी माना है वे द्रव्य स्वयं अपने आप तो एक रूप ही हैं, अनित्य कैसे हो सकते हैं। जब गुणसे निराला कर्मके निराला, सबसे निराला द्रव्य है तो उसमे अनित्यताका क्या रूप रहा ? अनित्यताकी तो बात क्या करें पहिले ऐसा कल्पित द्रव्य सत् ही समझमे नही आता, खैर, कल्पनासे मान लो तो द्रव्य एकरूप है उसमे फिर क्रियाका समावेश भी नही हो सकता। जो स्वभावमे एक रूप है, नित्य है, वह तो प्रकट एकरूप है, उसमे क्रिया कैसे लग सकती है क्योंकि सदा अविशिष्ट होनेसे। जो नित्य है वह सदा एक समान रहता है जो द्रव्य है गुण कर्मसे पृथक है वह भी सदा वैसाका ही वैसा है, अतएव उसमे क्रिया सम्भव नही है। जो हमेशा अविशिष्ट है, एक समान है उसमे क्रिया नही लग सकती है। जैसे आकाश सदा समान है। अबसे हजार वर्ष पहिले भी आकाश वैसा ही था, अब भी वैसा ही है, अनन्त काल तक वैसा ही रहेगा। उसमे क्रिया कैसे सम्भव है ?

एकरूप द्रव्यमे क्रियाके संभव न होनेपर प्रश्नोत्तर–शंकाकार कहता है कि रहो पदार्थ एकरूप, लेकिन उनमे गमनका स्वभाव मौजूद है, और जिसमे गमनका स्वभाव मौजूद है उसमे जब क्रिया सम्बंध होगा तो वह चलने लगेगा जैसे जिसमें गमनका स्वभाव है वह पदार्थ अभी अवस्थित है, लेकिन कोई धक्का लगे, प्रयोग लगे तो वह चल देता है कि नही ? इसी प्रकार पदार्थ एकरूप है तो रहे लेकिन उनमें गमनका स्वभाव तो पडा हुआ है अतएव क्रियाका समावेश होनेपर उनमे क्रिया होने लगना सिद्ध है। उत्तरमे कहते हैं कि यदि गति स्वभावता मानते हो कि चलनेका उनमे स्वभाव पडा हुआ है तो फिर वे पदार्थ निश्चल न कहला सकेंगे। जो नित्य पदार्थ हैं, अपरिणामी हैं वे भी निश्चल नही रह सकते। क्योंकि सदा अब उनमें गमन करनेका ही एकरूप हो जायगा। द्रव्य तो एकरूप रहेगा। चाहे किसी रूप मानलो। गमनके स्वभाव वाला मान लो अथवा निश्चल मान लो। शंकाकार कहता है कि हम पदार्थमे अगन्तृरूपता भी मानते हैं अर्थात् चलनेका स्वभाव नही है, नही चलनेका स्वभाव है ऐसा भी हम अंगीकार करते हैं। उत्तरमे कहते कि ऐसा मानने पर फिर तो आकाशकी तरह अगता ही हो जायगा सब। जैसे आकाश कभी भी नही चलता, इसी तरह कोई भी द्रव्य कभी भी न चल सकेगा। और, यो अगन्तृस्वभाव मान लेनेपर चलनेकी स्थितिमे भी इसमे अगन्तृ स्वभाव पडा है तब भी अचल कहलायेंगे, क्योंकि अपनी अगन्तृरूपताका उन्होने त्याग नही कर पाया। इससे पदार्थोंमे कर्म पदार्थका सम्बन्ध हो और वह क्रिया करदे, यह बात घटित नही होती। ऐसा भी नही कह सकते कि इन पदार्थोंमे उभयरूपता है। गमनका भी स्वभाव है और अगमनका भी स्वभाव है। ऐसा यो नही कहा जा सकता कि गमनका स्वभाव और अगमनका स्वभाव ये दो परस्पर विरोधी भाव कभी एकरूप नही हो सकते। जैसे पर्वत है तो वह अगता है, निश्चल है, ठहरा हुआ है तो ठहरा हुआ ही रहता है। वायु है तो

वह गया है। कहीं कोई ऐसी बात वायुमें समझमें आयी क्या कि थोड़ी देरको भी वायु ठहरी हो? जैसे गाड़ी चलती है तो वह कहीं कहीं ठहरती रहती है इसी तरह से हवा भी कहीं ठहरती हो ऐसा किसीने अनुभव किया है क्या? उसका तो गमन करनेका ही स्वभाव है। विचारविमर्शके बाद यह सिद्ध होता है कि पदार्थ ही उस प्रकारके परिणमनस्वभाव वाला है।

सर्वथा क्षणिक पदार्थ माननेपर भी क्रियाकी असभवता—अब कोई क्षणिकवादी शंकाकार कहता है कि चलो नित्य द्रव्यमे तो क्रिया नहीं बन सकती लेकिन जो क्षणिक पदार्थ है उसमे तो क्रिया बन जायगी। उत्तरमें कहते हैं कि पदार्थको क्षणिक माननेपर भी क्रिया नहीं बन सकती। जैसे नित्य पदार्थ है एकान्ततः तो नित्यके मायने जैसा है वैसा ही है, अपरिणामी है। एकस्वरूप है। अदल बदल नहीं होती। तो ऐसे पदार्थमें क्रिया कैसे बन सकती है कि चल देवे, एक जगहसे दूसरी जगहपर? तो जैसे नित्य पदार्थमे क्रिया सम्भव नहीं है इसी प्रकार क्षणिक पदार्थमें भी क्रिया सम्भव नहीं है। क्षणिकके मायने यह है कि जिस समय पदार्थ उत्पन्न हुआ उसके दूसरे क्षणमे नहीं ठहरता। तो जेब पदार्थ जिस जगह उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही वही नष्ट हो गया तो उत्पन्न होनेकी जगहमे ही जो नष्ट हुआ हो उसके द्वारा यह बात सम्भव नहीं है कि वह दूसरे प्रदेशपर पहुँच जाय। जो उत्पत्तिकी जगहमे ही नष्ट हो जाता है वह दूसरी जगह पहुँच नहीं सकता। जैसे दीपक जहाँ उजेला किये था उसी जगह यदि बुझ गया तो अब वह दीपक आगे कहा जा सकेगा? तो क्षणिकवादमें समस्त पदार्थ क्षणिक माने गए हैं। जहा ही पदार्थ उत्पन्न हुआ वहां ही उसी क्षण पदार्थ नष्ट हो गया। तो वह पदार्थ दूसरी जगह कैसे पहुच सकता है? तो क्षणिक माननेपर भी पदार्थोंमें क्रिया सम्भव नहीं हो सकती। क्षणिकवादी शंका कर रहा है कि यह तुम्हे भ्रम लग गया है कि कोई पदार्थ एक जगहसे दूसरी जगह पहुँच जाता है। जब पदार्थ क्षणिक है, जहाँ पदार्थ उत्पन्न हुआ वहीं नष्ट हो गया तो यह कैसे सम्भव है कि कोई पदार्थ एक माल तक चला? प्रत्येक प्रदेशमे नया-नया पदार्थ उत्पन्न होता जा रहा है तुम भ्रम कर रहे हो कि एक ही पदार्थ गया। जैसे तुम्हारा पिता बम्बईसे यहाँ आ गया तो वहाँसे यहाँ तक रास्तेमें जितने प्रदेश पडे सब जगह एक एक आत्मा नया-नया पैदा होता गया और तुम्हें यह भ्रम हो गया कि हमारा तो वही पिता आ गया। तो इस तरह क्षणिकवादी शंका कर रहा है कि पदार्थ क्षणिक है इसलिये एक जगहसे दूसरी जगहमे वे पदार्थ पहुँच गए ऐसा जो ज्ञान हो रहा है वह भ्रान्त ज्ञान है। समाधानमे कहते हैं कि यह बात यो अयुक्त है कि पदार्थ सर्वथा क्षणिक हुआ ही नहीं करते। क्षणिकत्वका निराकरण पहिले विस्तारपूर्वक किया गया है।

जैनशासनके सुदृढ आधारकी शरण्यरूपता—जैन शासनका यह आधार

कितना सुदृढ है कि पदार्थ बनता है बिगडता है और बना रहता है। ये तीनो खासियतें प्रत्येक पदार्थमे मिलती हैं। आप कोई भी मिसाल ऐसी नही दे सकते जो केवल बिगडता हो और शेष दो बातें न हो, और जो बना ही रहता हो, उसमें जरा भी बनना बिगडना न होता हो। शायद कोई यह कहे कि देखो—मेघोंमे बिजली चमकी और मिट गई। अब वह बनी कहाँ रही? तो भाई! वह भी बनी रही। वह भी हमेशा रह रही है। वहा क्या था बिजलीमें? कोई स्कध परमाणु चमकदार बन गए, अब वे परमाणु चमकदार न रहे। अधकाररूप हो गए लेकिन वे परमाणु मिटे कहा? कभी कोई ऐसी शका कर सकता कि हम अनेक चीजोको निरखते हैं—जैसे एक सोनेका डला, तो देखो वह बना रहता है। उसमे बिगडना हमे कुछ भी नही दिखता। यह डला एक दिन दो दिन अथवा कई महीने तक रखा रहे तो वह तो ज्योका त्यो दिखता है। वह कहा बिगडता है? तो भाई ऐसी बात नही है। चाहे आपको विदित न हो सके लेकिन वहाँ भी प्रतिक्षण समान समान अथवा कुछ थोडी विषम नवीन नवीन अवस्था हो रही हैं। अनेक नवीन परमाणु उसमे आते रहते हैं और अनेक परमाणु उसमे आते रहते है और अनेक परमाणु उसमेसे गिरते रहते हैं। बनना, बिगडना और बना रहना ये तीन बातें प्रत्येक पदार्थमे हैं। इसी कारण किसी पदार्थको सर्वथा नित्य नही कह सकते और न सर्वथा अनित्य कह सकते। तो जब कोई पदार्थ सर्वथा क्षणिक नही है तो उसमे यह कहना कि क्षणिकमें क्रिया बन जायगी अथवा क्रिया मानना भ्रम है कि एक ही पदार्थ एक जगहसे दूसरी जगह पहुँच गया, यह कहना व्यर्थ है। यह बात यो ठीक नहीं बैठती कि कोई भी पदार्थ न सर्वथा नित्य होता है न अनित्य। एक वस्तु है और क्षण क्षणमे उसमें नवीन नवीन अवस्था बनती रहती हैं।

स्याद्वादकी निर्णयात्मकता नित्यानित्यात्मक माननेपर यह शका न करना कि फिर तो यह स्याद्वाद सशयात्मक है। अभी कह रहे उसी वस्तुको नित्य है और थोडी देरमें कहने लगे कि वस्तु अनित्य है अथवा नित्य है, अनित्य है। किसी एक निर्णयपर ही ये लोग नही पहुँच पाते। नित्यानित्यात्मकके झूलेको झूल रहे हैं, ऐसी सशयवानकी बात नहीं कह सकते, क्योकि स्याद्वाद निर्णयात्मक है। कुछ लोग इसमे भी' का प्रयोग लगाकर बोलते हैं। पदार्थ नित्य 'भी' अनित्य 'भी' है। यह 'भी' का प्रयोग सशयकी ओर सकेत कर बैठना है, और जिस जगह सशय होता है प्राय. करके वहाँ भी' शब्द लगा भी करता है यह भी हो सकता है यह भी हो सकता है। अब वहाँ निर्णय तो कुछ न रहा तो 'भी' का सम्बन्ध सशयके साथ ज्यादह हुआ करता है। और लोग स्याद्वादमे 'भी' का प्रयोग अधिक लगाते हैं। आत्मा नित्य भी है, अनित्य भी है, लेकिन इस सम्बन्धमें दो बातें जाननी है। मूल बात तो 'ही' लगाने की है। जो शास्त्र परम्परा है उसके अनुसार 'भी' का प्रयोग नही आ रहा, वहाँ ही' का प्रयोग आ रहा है और उस 'ही' का प्रयोग स्यात्के साथ लगता है। अपेक्षाके साथ

लगता है। जिसका सही रूप बनता है स्यात् अस्ति एव, स्यात् नास्ति एव स्यात् अनित्य एव, स्यात् नित्य एव। यह आत्मा द्रव्य दृष्टिसे नित्य ही है, यह आत्मा पर्याय दृष्टि से अनित्य ही है। इस 'ही' का संकेत निश्चयके साथ हुआ करता है। तो पदार्थका धर्म बताते समय अपेक्षा चित्तमें रहती है, और उस अपेक्षाको कोई व्यक्त कर नहीं, केवल समझ लेवे और नवीन अपेक्षाकी बात कहनेका जी चाहे उस हालतमें 'भी' का प्रयोग होता है। तो जो लोग 'भी' का प्रयोग करते हैं उनके भी चित्तमें अपेक्षावाद पड़ा हुआ है। लेकिन अपेक्षा लगावें और 'भी' भी लगावें तो गलत हो जायगा। अपेक्षा लगाकर 'ही' बोलना ही सही रूप है। जैसे एक मनुष्य बालकका पिता भी है और अपने पिता का पुत्र है मान लो तीन व्यक्ति हैं दादा, बाप और बच्चा। अब वहाँ अपेक्षा लगा कर कोई 'भी' लगाये कि यह मनुष्य बच्चेकी अपेक्षा पिता भी है। तो इसका अर्थ यह निकला कि उस बच्चेका वह और कुछ भी लग रहा होगा बच्चा भी लग रहा होगा तो अपेक्षा लगाकर 'भी' का शब्द बोलना गलत हो जायगा। और अपेक्षा लगाकर 'ही' बोला जाय तो सही है। यह बच्चेकी अपेक्षासे बाप ही है। तो स्याद्वादमें दृष्टि रखकर 'ही' का प्रयोग लगाते हैं या बोलकर उसमें हीका प्रयोग बोलना चाहिये। स्याद्वाद संशयवाद नहीं है वह तो दृढ़तासे कहता है कि आत्मा द्रव्य दृष्टिकी अपेक्षा नित्य ही है, दूसरी बात उसमें आ नहीं सकती। इतनी दृढ़ताके निर्णयके साथ स्याद्वाद अपना धर्म रख रहा है। आत्मा पर्याय दृष्टिकी अपेक्षासे अनित्य ही है, उसमें पर्याय दृष्टिसे नित्यता कभी सम्भव ही नहीं। तो स्याद्वाद संशयवाद नहीं है। अपेक्षासे धर्म का अवधारणके साथ प्रतिपादन किया गया है।

कर्मपदार्थके असद्भावके कथनका उपसंहार—यहाँ इस प्रसंगमें बात कही जा रही है कि न तो सर्वथा नित्य पदार्थमें क्रिया सम्भव है और न सर्वथा क्षणिक पदार्थमें क्रिया सम्भव है। इस कारण परिणमनशील पदार्थमें ही क्रिया उत्पन्न हो सकती है। अब कर्मके सम्बन्धमें विचार करिये! यह क्रिया यह कर्म कोई पदार्थ है क्या? यह कर्म जिस पदार्थमें हो रहा है उस पदार्थको छोड़कर भिन्न कोई चीज नहीं है। पदार्थ द्रव्य अलग हो और कर्म अलग हो, फिर कर्मका पदार्थमें सम्बन्ध जुटे तब उसमें क्रिया बने ऐसी बात नहीं है। परिणमनशील, क्रियाशील पदार्थको छोड़कर अन्यत्र और कोई कर्म नामका पदार्थ नहीं है, क्योंकि जो बात पाई जा सकती है और वह न पाई जाय तो इसका अर्थ है कि वह नहीं है। जैसे टेबिल पाई जा सकती है, आंखो दिख सकती है। यदि कमरेमें वह न दिखे तो इसका अर्थ यही हुआ ना, कि कमरेमें टेबिल नहीं है। तो जो चीज दिख सकती है, पाई जा सकती है फिर पाई न जाय उसको कह सकते हैं कि वह है नहीं। तो कर्म पदार्थ पाया जा सकता है वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार दिख सकता है। विशेषवादमें यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग परत्व, अपरत्व और कर्म। इतनी बातें रूपी पदार्थोंके समवायसे आंखो दिखने लगती हैं। तो इसमें कर्मको भी चाक्षुष

बताया है । कर्म भी उपलब्ध हो सकता है तो जो चीज उपलब्ध हो सकती है वह कभी उपलब्ध न हुई हो, किसीको आँखों दिखी न हो, तो इसके मायने है कि वह असत् है, तो कर्म नामका पदार्थ असत् है । कोई अलग दिखता हो कि यह है क्रिया इससे हो रहा है पदार्थका हलन चलन, ऐसा कर्म नामका कोई पदार्थ अलगसे नही है ।

पदार्थके यथार्थ स्वरूपके परिचयमे शान्तिका लाभ—देखो भैया ! बात कितनी सीधी थी कि उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक पदार्थ होता है । जिसमे बनना, बिगडना और बना रहना ये तीन बातें पायी जाती हैं वह एक पदार्थ है और वह पदार्थ इसी कारण परिणमता रहता है और उसकी शक्तियाँ उसमें निरन्तर बनी रहती हैं और उनमे जो सामान्य धर्म है, जो शक्तियाँ हैं, जो अन्यमे भी पायी जा जा सकें वह सामान्य कहलाता है । और जो ऐसे धर्म हैं असाधारण, जो दूसरेमें न पाये जा सकें वे विशेष हैं । सारा मामला एक पदार्थमे घटित करनेका था और वे सबके सब एक ही थे, लेकिन, जब कोई अपनी बुद्धिमानीकी योग्यतासे भी बाहरी परिचय कराना चाहता हो तो वह ऐसी ही बात कह बैठेगा जो बेतुकी हो और सम्भव न हो सके । विशेषवादकी हठने एक ही पदार्थको समझानेके लिए जो भेद किये जा रहे थे उन्हे ही सब कुछ मान लिया, और द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये सब जुदे जुदे पदार्थ स्वीकार किये । लेकिन यह तो बतलावो कि इस तरहकी पदार्थ की व्यवस्था बनानेमे एक दिमागी श्रम ही किया जाय । इसके अतिरिक्त और मिलता क्या है ? पदार्थका पूरा रूप भी न आ सका और पदार्थके स्वरूपकी जानकारीकी भी पूर्णता न हो सकी, फिर सन्तोष पाना, विश्राम लेना। आत्महितमे लगना इनका तो अवकाश हो क्या है । जिसकी दृष्टिमे प्रत्येक पदार्थ साधारण और असाधारण गुणस्वरूप है । अपने ही स्वभावसे वे हैं अपने ही स्वभावसे वे परिणमते हैं, अपने मे ही परिणमते हैं अपनेमे अपनी खासियत रखते हैं ऐसी जब सब पदार्थोंकी व्यवस्था है तो सब पदार्थ स्वतन्त्र हैं । किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ कुछ सम्बन्ध नही है । किसी पदार्थको किसी दूसरे पदार्थकी कुछ अपेक्षा भी नहीं करनी पड रही है । ऐसी स्वतन्त्रता और परिपूर्णता विदित होती है ।

अखण्ड पदार्थको बुद्धिमे छिन्न भिन्न बनानेसे सिद्धिका अभाव—जिसके यहाँ द्रव्य, गुण, कर्म न्यारे-न्यारे पदार्थ हैं उनको तो बडी अपेक्षा लगी हुई है। अच्छा बतलावो—गुण, क्रिया परिणमन सामान्य, विशेश आदिक शून्य द्रव्यकी क्या स्थिति है ? क्या स्वरूप है ? कुछ स्वरूप घटित नही होता । और, कुछ सत्ता भी नहीं विदित हो पाती । और, ऐसा कोई द्रव्य रहता भी नही । तब देखो ! उस द्रव्यको कायम रखनेके लिए गुण कर्म, सामान्य आदिक सबके सम्बन्धकी अपेक्षा बनानी पडी । तो चले तो थे वस्तुको अत्यन्त भिन्न-भिन्न करके पूर्ण स्वतन्त्र बतानेके लिए और आ गयी अत्यन्त परतन्त्रता । जैसे—एक कहावत है कि चौबे गये ता थे छबे होनेके लिए और

रह गए दुवे। दो गोत्र होते हैं चौबे और दुवे। जो दो वेदोंके जानकार हैं उन्हें दुवे और जो चार वेदोंके जानकार हैं उन्हे चौबे कहते हैं। किन वेदके होते हैं ६ अग उन सबकी बातें अथवा चार वेदोंसे आगेकी बातें जाननेके लिए अर्थात् छबे होनेके लिए अब चौबे चले, पर रह गए दुवे। अथवा जैसे कोई पुरुष चले तो किसी ऊँचे पदको पानेके लिए और वह पहिले वाले पदसे भी हट जाय, तो जो उसकी स्थिति है वैसी ही स्थिति विशेषवादियोंकी है। वे पदार्थोंमें बुद्धि भेदसे भिन्न-भिन्न जो कुछ ध्यानमें आया उसे भिन्न-भिन्न स्थापित करके स्वतत्र निरश निरपेक्ष अपनी बहुत सूक्ष्म इकाईमे लानेकी बात कर रहे थे, लेकिन यहाँ सत्त्व ही बिगड़ जाता है। गुण, कर्म आदिसे निरपेक्ष द्रव्यकी क्या स्थिति है। तो इस तरह जो सामान्य विशेषात्मक पदार्थ विरोधमें विशेषवादी यह कह रहे थे कि सामान्य विशेष स्वय पदार्थ है। तदात्मक पदार्थ क्या हो सकता है। और द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इस तरह ६ पदार्थोंकी योजना बना रहे थे उनकी इस योजनामें द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन प्रकारके पदार्थोंका निराकरण किया है। अब सामान्य आदिक शेष तीन पदार्थोंका निराकरण आगे चलेगा।
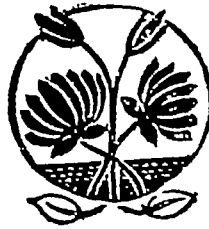
परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[त्रयोविंश भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानंद जी महाराज

●

पदार्थके सामान्य स्वरूपका वर्णन— इस ग्रन्थमें वस्तुपरीक्षाके साधनका वर्णन किया है। परीक्षाका साधन है ज्ञान। ज्ञानका स्वरूप भेद विवेचन आदि कह कर जब ज्ञानके विषयकी जिज्ञासा हुई तो सिद्धान्त कहा गया कि - "सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषय" सामान्यविशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका (ज्ञानका) विषय है। इसके विशेष विवरणके समय अवसर पाकर विशेषवादीने यह बाधा देनेका यत्न किया कि सामान्य व विशेष स्वय स्वतन्त्र पदार्थ हैं इस कारण सामान्यविशेषात्मक पदार्थ होता ही नही सो ज्ञानके विषय जैसे सामान्य व विशेष हैं, उसी प्रकार द्रव्य गुण कर्म भी हैं और इनका परस्पर सम्बन्ध रखने वाला समवाय भी पदार्थ हैं। यो द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय इन छह पदार्थोंको ज्ञानका विषय कहा है। इनके भेद बताये हैं द्रव्य ७ होते हैं, गुण २४ होते हैं तथा कर्म ५ होते हैं। सामान्य दो होते हैं, विशेषता से अनेक होते हैं। विशेष अनेक होते हैं और समवाय एक होता है। इनसेमें ६ द्रव्योका २४ गुणोका, ५ कर्मोंका जैसा कि विशेषवादमे स्वरूप कहा है उन सबका निराकरण किया। अब सामान्य पदार्थके स्वरूपकी भी बात सुनिये! सामान्यको पदार्थ कोई रूढि मे, व्यवहारमे, बोलचालमे भी नही कहते हैं' सामान्यको धर्म कहनेकी व्यवहारमें भी प्रथा है। सामान्य स्वतत्र कुछ नही, पदार्थ नही, वह तो धर्म है। पदार्थके याने वस्तुके उस धर्मको सामान्य धर्म कहते हैं जो धर्म अन्य वस्तुओमे भी पाया जाय। वह सामान्य धर्म अनेक पदार्थोंमे रहने वाला हो उसे तिर्यक् सामान्य कहते हैं तथा एक ही पदार्थके पूर्वोत्तर सर्व पर्यायोमे जो सामान्य धम हो उसे ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं। वस्तुके साधारण धर्मके अतिरिक्त अन्य कुछ भी सामान्य नामक पदार्थ नही है। सामान्य पदार्थ का निराकरण इसी अध्यायके ५ वें सूत्रके विशेषरूपसे कर ही दिया गया है।

विशेषवादियोका विशेष पदार्थ विषयक सद्भावका कथन—विशेषवादी कहते हैं कि विशेष नामका पदार्थ तो जुदा ही पदार्थ है विशेष नित्य द्रव्यमें रहने वाले होते हैं और वे परमाणु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मनमें रहनेसे अत्यन्त व्यावृत्ति की बुद्धिके कारणभूत है। याने ये विशेष अत्य विशेष बताये जा रहे हैं। ये नित्य द्रव्य

में रहते हैं तथा एक दूसरेसे अत्यन्त पार्थक्यके कारणभूत है और, अनन्त हैं, तथा ये अन्तमे हैं इसलिए अत्य हैं। जब ससारका विनाशारम्भ होता है तब ससारके विनाशारम्भमें जो कोटिभूत हैं ऐसे परमाणुवोमें ये विशेष पाये जाते है, मुक्त आत्माओमे विशेष पाये जाते हैं और मुक्तमनोमे विशेष पाये जाते हैं। यो सब अत अत वाली वस्तुवोमें होनेसे इन विशेषोको अत्य कहते हैं, अन्त्यका अर्थ है अन्तमें अर्थात् अवसान में, जिससे आगे कोई विशेष नही होता ऐसे अन्तमे जो होता है वह अन्त्य कहलाता है। जिससे आगे अन्य कोई विशेष नही होता। गुणादिक भी विशेष हैं, लेकिन वे सामान्य रूप विशेषोंसे भिन्न हैं, वे अन्त्य नहीं कहलाते। जिनसे आगे कोई विशेष नही है उन अन्त्योमे ही उनका वैशिष्टय समाप्त हो जाता है। इस कारण ये अन्त्य कहलाते हैं। तो इन विशेषोके लक्षणमे जो दो खास विशेषण दिए हैं नित्य द्रव्यमे रहने वाले और अन्तमें इन दोनो विशेषणोंका विशेष महत्त्व है। नित्य द्रव्यमें रहने वाला है। इसका भाव यह हुआ कि परमाणु आदिकमें यह रहता है सो परमाणु नित्य है। मुक्त आत्माओंमे रहता है वह भी नित्य है। मुक्त मनमें रहता है वह भी नित्य है। यो नित्य द्रव्यमे रहता है और इसकी आखिरी बात बडी होती है। तीसरी खासयत है विशेषकी यह कि वह एक दूसरेसे व्यावृत्तकी बुद्धिका विषयभूत है। याने इन विशेषोसे यह जाना जाता है कि एक दूसरेसे यह अत्यन्त भिन्न है। तब विशेषोका लक्षण सही बन जाता है। इससे सिद्ध है कि विशेष नामका पदार्थ भी वास्तविक है।

विशेषवादियो द्वारा विशेष सद्भावसाधक प्रमाणका उत्थापन – विशेष है भी इस सत्ताको सिद्ध करने वाला परिमाण है कि वे चूकि व्यावृत्ति बुद्धिके विषयभूत हैं। तो इससे ये सब पृथक हैं इस प्रकारकी बुद्धि जो बनती है वह इन ही विशेषो के आधारपर तो बनती है सो व्यावृत्तिबुद्धि विषयत्व विशेषोका सद्भाव सिद्ध करता है। जैसे कि हम जैन लोगोसे गौ आदिकमें व्यावृत्त प्रत्यय देखा गया है। जैसे यह गौ अश्वसे पृथक् है। कैसे समझा कि आकृति पृथक् पृथक् है गाय और घोडेकी। गुण भी पृथक् पृथक् हैं। उनका चलना क्रिया करना, ये भी पृथक् हैं। अवयवों का सयोग भी भिन्न भिन्न है। तो इन सबके निमित्तसे जो गौमे अश्वादिकसे जुदा है, यह इस प्रकारका ज्ञान देखा जाता है और गाय गायमें भी रग आदिकके निमित्त से भेद देखा जाता है, यह गाय सफेद है। शीघ्र चलने वाली है। मोटे कधे वाली है आदि। इस तरहसे उनमें भी विशेष देखा जाता है। तो जिस तरह पदार्थोंमें हम लोगोको किन्हीं नामत्तोके कारण विशेष दृष्ट हो रहा है उस ही प्रकार हमसे विशिष्ट विलक्षण जो योगीजन हैं उनका नित्य पदार्थोंमे जिसकी आकृति गुण और क्रिया समान है ऐसे भी परमाणुवोंमें मुक्त आत्माओंमे मुक्त आत्माके मनोंमें अन्य निमित्त का अभाव होनेपर भी जिस बलसे उन योगियोको ये विलक्षण है इस प्रकारके ज्ञानकी प्रवृत्ति होती हैं वे ही तो अन्त्यविशेष कहलाते हैं। जिनका कि विशेषक ज्ञानसे सत्व जाना गया है। अन्त्य विशेषोकी परख योगीजनोको होती है और यहांके विशेषोकी

परख हम लोगोंको भी हो जाती है। तो इस तरह अन्त्यविशेष और सामान्यरूप विशेष ये सब पदार्थ कहलाते हैं।

असकीर्ण पदार्थोंमें विशेषपदार्थकी परिकल्पनाका आनर्थक्य— अब उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह भी केवल अपना अभिप्राय भर जाहिर करने तककी बात है। यह विकल्प पुष्ट नहीं है क्योंकि विशेषोंका लक्षण ही नहीं बनता। इसलिए विशेष सत् है ही नहीं। प्रथम तो विशेषके लक्षणके इस प्रकार ही दृष्टि डाल लो कि जो कहते ना, कि यह विशेष नित्य द्रव्यमें रहता ही नहीं इसमें असंभव दोष है, क्योंकि सर्वथा नित्य कोई द्रव्य ही नहीं होता। फिर नित्य द्रव्यमें रहनेकी बात ही क्या? पदार्थ समस्त नित्यात्मक होते हैं। न कोई सर्वथा नित्य होता न कोई सर्वथा अनित्य होता। जब नित्य कोई पदार्थ ही न रहा तब विशेषका यो लक्षण बनाना यह विशेष नित्य द्रव्यमें रहता है। यह तो दूरसे ही हट जाती है बात और दूसरी बात जो यह कही है कि योगियोंके उत्पन्न हुए वैशेषिक ज्ञानके बलसे इन अन्त्य विशेषोंका सत्त्व सिद्ध किया जाता है। वह भी बात अयुक्त है क्योंकि उन परमाणु आदिकका जो स्वरूप जो कि उन परमाणुवोंके निजके स्वभावमें व्यवस्थित है वह परस्परसे असकीर्ण रूप है याने जुदा है अथवा सकीर्ण स्वभावरूप है? यदि कहो कि उन परमाणु आदिकका स्वरूप जो कि उनका उनमें है वह परस्पर असंकीर्णरूप है तो समझ लीजिये कि अपने आप ही स्वत असकीर्ण परमाणु आदिकके रूपका उपालम्भ होनेसे योगीजनोंके उन परमाणुवोंमें विलक्षणताकी प्रतिपत्ति होगी। फिर कोई दूसरे विशेष पदार्थोंकी कल्पना करना व्यर्थ है। जब उन योगीजनोंने परस्पर असकीर्ण याने एक दूसरेसे अत्यन्त जुदे अपने अपने स्वरूपमें व्यवस्थित परमाणुवोंका स्वरूप जाना तो लो—वे परमाणु तो स्वय ही एक दूसरेसे अत्यन्त जुदे थे। फिर जुदे हो गए। अब विशेष नामक पदार्थकी कल्पना करनेकी आवश्यकता क्या रही जिससे कि उन परमाणुवोंमें परस्पर भिन्नताकी बुद्धि की जाती है।

सकीर्ण पदार्थोंमें विशेष पदार्थके कारण व्यावृत्तिके प्रत्ययकी भ्रान्तताका प्रसग—यदि द्वितीय विकल्प लोगे कि सकीर्ण स्वभाव वाले परमाणुवोंका स्वरूप योगियोंके द्वारा जाना जाता है तो अब देखिये कि परमाणुवोंका स्वरूप परस्पर सकीर्ण स्वभाव वाला हो गया एक दूसरेसे मिलने वाला। एक दूसरेमें प्रवेश वाला परमाणुवोंका स्वरूप बन गया। तब विशेष नामक पदार्थान्तरकी उपस्थिति होनेपर भी परस्पर अत्यन्त मिले हुए सकीर्ण परमाणु आदिकमें अब विशेषके बलसे योगियोंके भिन्न भिन्न रूपसे ज्ञान बने तो भिन्नता वाला ज्ञान सही कैसे हो सकता है? जब मूलमें परमाणुवोंका स्वरूप तो सकीर्ण स्वीकार कर लिया तो अब सकीर्ण ही जाने तब तो सही ज्ञान कहलायगा। पर कह रहे हो कि योगीजन विशेष पदार्थके बलसे उन सकीर्ण स्वभाव वाले परमाणुवोंमें विशेष विलक्षण विलक्षण हैं ऐसी बुद्धि

किया करते हैं। तो व्यावृत्तकी बुद्धि तो भ्रान्त हुई। असलियत तो मूलमें थी। परमाणु सकीर्ण स्वभाव वाले जो मान लिये गए यथार्थता तो वह है। अब उस स्वरूप के विरुद्ध विशेष पदार्थके बलपर भिन्नताका ज्ञान किया जाय तो भिन्नताका ज्ञान भ्रांत रहा। अब परमाणुवोंमें परस्पर भेदका जो ज्ञान योगियोंने किया वह भ्रान्त कैसे रह सकेगा? क्योंकि देखो—वे जो परमाणु हैं वे स्वरूपसे तो अव्यावृत्त रूप हैं, सकीर्ण हैं। एक दूसरेसे मिले जुले। एक दूसरेसे अलग न हो सकने वाले ऐसे स्वरूपसे अव्यावृत्त उन परमाणुवोंमे अब व्यावृत्ताकार रूपसे ज्ञान किया जा रहा है तो भ्रान्तका तो लक्षण यह है कि पदार्थ जैसा नहीं है वैसा जानें। अब देखो -परमाणु तो है अव्यावृत्त स्वरूप, सकीर्णस्वभाव और योगीजन उन्हें जान रहे हैं व्यावृत्त रूप, तब उनका ज्ञान भ्रान्त ही रहा। परमाणु तो हैं सकीर्ण, एक दूसरेसे मिले हुए, प्रवेश किए हुए और योगी जानते हैं उन्हें व्यावृत्त, मिले हुए। तो योगियोंका ज्ञान भ्रान्त रहा, असलियत तो पदार्थके मूल स्वरूपमे है कि वे परमाणु परस्पर सकीर्ण हैं। और फिर जब उल्टा ज्ञान कर बैठे योगीजन कि परमाणु तो है सकीर्ण स्वभाव, अव्यावृत्त रूप, एकमेक और योगीजन जान रहे हैं व्यावृत्त स्वरूप। तो योगियोंका ज्ञान भ्रान्त हो गया और भ्रान्त ज्ञान वाले योगीजन योगी कहलायेंगे कि अयोगी? जिनका ज्ञान असत्य है। भ्रान्त है वे काहेके योगी? वे अयोगी बन बैठेंगे। इस कारण विशेष पदार्थ वाली बात नहीं बनती। पदार्थोंमें जिस तरहका स्वरूप पड़ा हो। स्वभाव बना हो वह तो उनका वास्तविक ही है और अन्य कुछ कल्पना वह तो कल्पना कारीगरका महल है। तथ्य कुछ नहीं है।

विशेषपदार्थवादियोंके विशेषोंमे वैलक्षण्य प्रत्ययकी अनुपपत्ति — और भी देखो! यदि विशेषनामक पदार्थान्तरके बिना विलक्षण प्रत्ययकी उत्पत्ति नहीं हो तो विशेषोंमें वैलक्षण्यकी उत्पत्ति कैसे हो? जैसे कि शकाकार मानता है कि अनेक पदार्थोंसे ये विलक्षण हैं, ऐसे ज्ञानविशेष पदार्थके कारण ही होते हैं। विशेष पदार्थ न हो तो उनमें विलक्षणता की उत्पत्ति नहीं हो सकती। विशेष नामक पदार्थान्तरके बिना व्यावृत्त प्रत्ययकी उत्पत्ति नहीं होती है। तो फिर उन विशेषोंमे विलक्षणत्व प्रत्ययकी उत्पत्ति कैसे हो जायगी सो तो बताओ? पदार्थोंमें तो मान लो कि विशेष नामक पदार्थके कारण पदार्थोंमें जुदेपनका ज्ञान होता है। यह विशेष धर्म उस विशेष धर्मसे बिल्कुल जुदा है। तो यह बतलावो कि उन विशेषोंमें जो व्यावृत्त प्रत्ययकी उत्पत्ति होती है वह कैसे होगी? यदि कहो कि अन्य विशेष पदार्थोंके कारण हो जायगी। विशेषोंमे विलक्षणताका ज्ञान अन्य विशेषोंके कारण हो जायगा। तो इसमे अनवस्था दोष आता है फिर उस दूसरे विशेषमे भी जो व्यावृत्ति प्रत्यय होगा उसके लिए तीसरा विशेष मानना पड़ेगा। इस तरह विशेष माननेकी परम्परा लम्बी होती जायगी कहीं पर ठहरना न बन सकेगा। और यदि विशेषोंमें वैलक्षण्यका ज्ञान अन्य विशेषोंसे माना है तो इस सिद्धान्तका भी विघात हो जायगा कि विशेष नित्य द्रव्यमें रहता है।

अब देखो ! विशेष तो अनित्य माना गया है और विशेषोमे दूसरे तीसरे विशेष जो माने जा रहे हैं तो अब नित्यमें भी विशेष रहने लगा, यह भाव निकला । क्योंकि विशेष सारे अनित्य हैं और उन अनित्य विशेषोमे वैलक्षण्यका ज्ञान करनेके लिये अन्य विशेष मानने पड रहे हैं । इससे यह बात न बन सकी कि विशेषोमे वैलक्षण्यका ज्ञान अन्य विशेष पदार्थसे होता है

विशेषोमे स्वत. वैलक्षण्य माननेपर सर्व पदार्थोंमे स्वत. वैलक्षण्यकी उपपत्ति—यदि कहो कि विशेषोमे वैलक्षण्यका ज्ञान स्वत ही हो जाता है कि विशेष धर्म इस विशेष धर्मसे विलक्षण है । तो फिर सभी पदार्थोंमे, परमाणुओंमे परस्परकी विलक्षणताका ज्ञान भी स्वत. क्यों नही मान लिया जाता । वह भी स्वत ही माना जायगा । तो यो विशेष नामक पदार्थकी कल्पनाके लिये कोशिश करना, परिश्रम करना बेकार है । पदार्थ हैं वे सब, और उनमे धर्म रहते हैं । कुछ धर्म ऐसे हैं जो दूसरोंमे मिल जाते हैं । वे तो हुऐ सामान्य और कुछ धर्म हैं जो दूसरोंमे नही मिल सकते वे हो गए विशेष । तो यो पदार्थ स्वय सामान्य विशेषात्मक होते हैं । पदार्थमें वैलक्षण्यका ज्ञान करनेके लिये विशेष नामक पदार्थ माननेकी आवश्यकता नहीं है उसकी सिद्धि ही नहीं होती । तो सामान्य विशेषात्मक पदार्थकी सिद्धिके विरोधमे विशेषवादियोंने जो यह कहा है कि विशेष तो स्वय पदार्थ हैं । यह कहना उनका बिल्कुल अयुक्त साबित होता है । विशेष पदार्थ मानकर पदार्थमे विशेषता और वैलक्षण्यकी सिद्धि की ही नही जा सकती । अत पदार्थको स्वय ही सामान्य विशेषात्मक मानना युक्त है ।

विशेषोमे व्यावृत्तिबुद्धिको उपचरित माननेमें शकाकारको अनिष्ट प्रसग—शकाकार कहता है कि विशेषोमे अन्य अन्य विशेषोके सम्बन्धसे व्यावृत्त बुद्धिकी कल्पना करनेमे अनवस्था आदिक दोष आते है तो उन बाधाओको दूर करने के लिए इस प्रकार मान लेना चाहिये कि उन विशेषोमे जो व्यावृत्त बुद्धि होती है वह उपचारसे होती है । पदार्थोंमे जो परस्पर व्यावृत्तबुद्धि होती है, यह इससे अलग है यह विभाग विशेष पदार्थसे हो जाता है और वे बुद्धिया मुख्य हैं । किन्तु विशेष विशेष धर्मोंमें परस्पर जो व्यावृत्त बुद्धि देखी जाती है वह उपचारसे होती है । इस शकाके समाधानमे पूछते हैं कि व्यावृत्त बुद्धिके उपचारका अर्थ क्या है ? अन्योन्यव्यावृत्तरूप असत् वैलक्षण्यका विषयरूपसे आक्षेप करना इसका नाम उपचार है याने विशेषोमें वैलक्षण्य है नहीं किन्तु मान लिया जाय तो फिर इस बुद्धिमे मिथ्यापन कैसे नही आया कि देखो वस्तुस्वभाव तो कुछ है नही, और है इस विषयरूपसे बनाया जा रहा है तो यह तो विपरीत बात बन रही है । और, ऐसा ज्ञान करें यदि योगी तो वे योगी न कहलायेंगे अयोगी कहलायेंगे । और, भी सुनो ! यह वस्तु स्वभाव जो वैलक्षण्य रूप है और उपचार रूप बनाया गया है उसको विषयरूपसे जो कुछ माना गया है,

विषयरूपसे जो कुछ माना गया है विषयरूपसे कल्पित किया गया है तो क्या संशय के रूपसे कल्पित है या विपर्ययरूपसे कल्पित है ? यदि कहा कि संशयके रूपसे कल्पित है ऐसा उपचरित है तो व्यावृत्तरूपसे जिसके विषयकी प्रतिपत्ति चलित है कि है कि नहीं, व्यावृत्त है, इन ही में जहाँ चलितपना हो रहा है ऐसा, विषय करने वाले विशेषोकी यथावत् प्रतिपत्ति सम्भव नहीं है जब संदिग्ध है या चलित प्रतिपत्ति है तो उस यथार्थ ज्ञान कैसे कर सकते हैं सो यथार्थ ज्ञानका अभाव हो गया। अब उस ज्ञानसे सहित जो भी पुरुष है। योगी है वह योगी तो न रहा। अयोगी हो गया क्योंकि उसे संशय है और, संशय है मिथ्याज्ञान। तो ऐसा मिथ्याज्ञानी वह अयोगी कहलाया। यदि कहो कि वह उपचरित वैलक्षण्य जिस विषयरूपसे उपचरित किया गया है वह विपर्यय रूपसे ही उपचरित है तो उसमें भी यही दूषण आता है कि वह विशेष रूपसे तो विकल था और उनको विशेषरूपसे यहाँ जबरदस्ती जनाया गया। मनाया गया तो ऐसा विपरीत ज्ञान होनेसे तो वह अयोगी ही रहा। जो इस मर्मको विपरीत प्रकार जान रहे हैं वे कहाँ योगी रह सकेंगे ?

विशेषोमे व्यावृत्तिबुद्धि स्वतः माननेपर सर्वत्र व्यावृत्तिबुद्धिकी स्वतः सिद्धि—यदि कहो कि जब अनेक बाधायें तुम दे रहे हो अनवस्था आदिकरूप। तब ऐसा मानना चाहिये कि विशेषोमे जो परस्पर व्यावृत्तबुद्धि हो रही है वह अन्य विशेषके कारण नहीं हो रही। किन्तु हो रही है स्वयं। तो समाधानमें कहते हैं कि यही बात फिर परमाणु आदिकमें मान ली जानी चाहिये कि इन परमाणुवोमे द्रव्यो मे जो परस्पर व्यावृत्त बुद्धि हो रही है वह विशेष निबंधनक नहीं है। विशेष गुणके कारण नहीं है, किन्तु जिस प्रकार विशेषोंमे व्यावृत्त बुद्धि स्वयं है इसी तरह पदार्थों मे भी व्यावृत्त बुद्धि स्वयं मान ली जायगी। परमाणु आदिकमे विशेषोके द्वारा परस्पर व्यावृत्त बुद्धिकी उत्पत्ति माननेपर समस्त विशेषोसे परमाणुवोकी व्यावृत्त बुद्धि फिर विशेषान्तरसे माननी पड़ेगी। याने परमाणु परमाणुवोमें तो यह इससे अलग है इस प्रकारकी व्यावृत्त बुद्धि तुमने मान ली विशेषोसे तो वे विशेष परमाणुवोसे तो अलग हैं ना, एक चीज तो नहीं। जैसे परमाणु आदिक द्रव्य पदार्थ हैं इसी प्रकार विशेष भी पदार्थ है। तो समस्त विशेषोंसे अब परमाणुवोमे जो व्यावृत्त बुद्धि हुई है वह अन्य विशेषान्तरोसे हुई है और इस तरह उन अन्य विशेषोसे उन सबकी जो व्यावृत्त बुद्धिकी जायगी वह अन्य विशेषान्तरोंसे होगी। इस तरह उसमें अनवस्था दोष आता है। यदि कहो कि उन विशेषोंमें और परमाणु आदिकमें स्वतः ही व्यावृत्त बुद्धि हो जाती है इसलिये वे परस्पर एक दूसरेकी पृथक बुद्धिके कारण हैं। सो सभीमें यही बात मान लो। सभी पदार्थ हैं और एक पदार्थका स्वरूप दूसरे पदार्थ से पृथक बतानेके लिये यह विशेष धर्म उस ही पदार्थमें जो स्वरूप पाया जा रहा है सो ही कारण है। फिर अन्य भिन्न विशेष पदार्थकी कल्पना करनेसे क्या लाभ ?

अमेध्य और दीपकके दृष्टान्त पूर्वक विशेष पदार्थोंमे स्वतः और द्रव्यों-

मे विशेष पदार्थके कारण वैलक्षण्यकी सिद्धिका शंकाकारका प्रयास—अब शंकाकार कहता है कि देखो ! जैसे अमेध्य है ये मल आदिक, तो ये स्वतः ही अपवित्र है पर अन्य पुरुषका यदि उस अमेध्य पदार्थसे सम्बन्ध हो जाय तो वह भी अशुद्ध कहलाने लगता है, इसी प्रकार विशेष तो स्वयं विशेषरूप है, स्वयं अपने आपकी व्यावृत्त बुद्धिके कारण हैं और अन्य पदार्थोंमे इस विशेष पदार्थके सम्बन्धसे व्यावृत्त बुद्धि होती है। जैसे कि किसी बालकका पैर मलमे भिड़ जाय तो लोग उस बालकको नही छूते और उसे नहलाकर ही उसे पवित्र मानते हैं। तो वहाँ कोई पूछे कि यह बालक अपवित्र क्यों कहलाने लगा ? तो उत्तर होगा कि मलका सम्बन्ध हो गया था। और, कोई पूछे कि मल अपवित्र क्यो कहलाता था ? तो वहाँ तो यह न कहा जायगा कि इसमे दूसरे मलका सम्बन्ध हो गया था। वह मल स्वयं अपवित्र है और दूसरेसे सम्बन्ध हो जाय तो उसको भी अपवित्र बनानेका कारण बनता है, इसी तरह यह विशेष स्वयं व्यावृत्त बुद्धि वाला है और इस विशेषका परमाणु आदिक पदार्थोंमें सम्बन्ध हो जाय तो उनमे भी व्यावृत्त बुद्धि बन जाती है। और भी सुनो कि जो तदात्मक नहीं हैं ऐसे पदार्थोंमे भी अन्य पदार्थके निमित्तसे यह ज्ञान होता ही है, जैसे कि दीपकसे भींट आदिक पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है। अंधेरा था, कपड़े वगैरह सब रखे थे, दीपक जला और कपड़े हैं ऐसा ज्ञान हो गया। तो देखो ! दीपक है अन्य पदार्थ और उसके निमित्तसे पट आदिक है ऐसा ज्ञान बन गया पर पट आदिकके कारण प्रदीपमें तो ज्ञान नहीं बनता कि यह दीपक है, इसी तरह समझना चाहिए कि विशेषोंके कारण तो परमाणु आदिकमे विशिष्ट प्रत्यय हो जाता है यह उसमे विलक्षण है ऐसा बोध हो जाता है, पर परमाणु आदिकके कारण विशेष धर्मका बोध नही होता। इससे विशेष नामका पदार्थ वास्तविक-पदार्थ है ! विशेष पदार्थके कारण परमाणुओंमे व्यावृत्त बुद्धि हो जाती है।

वैलक्षण्यकी स्वतः परतः की शंकाका समाधान—समाधानमे कहते है कि यह सब कथन असंगत है। अमेध्य अपवित्र जो मल आदिक अशुचि पदार्थ हैं उनके संसर्गसे लड्डू आदिक अपवित्र हो गए। गये। हो गिर गया मलपर तो लड्डूमें जो अपवित्रता आयी वह मलके सम्बन्धसे आयी और मलमें जो अपवित्रता थी वह अपने आप थी। ऐसा जो शंकाकार लोग तुम कहते हो सो बात यह है कि मल आदिक अशुचि द्रव्योंके सम्बन्धसे मोदक पदार्थ जो अशुचि हो गए तो हुआ क्या वहाँ कि पहिलेका जो पवित्र स्वभावपर वह च्युत हो गया और अब अशुचि रूपसे परिणत अन्य ही मोदक उत्पन्न हुआ है। मोदक तो वही है लेकिन पहिले शुचिरूपतासे सम्बन्धित था अब अशुचिरूपतासे सम्बन्धित है। तो जैसे आत्माओंमे यह कहा जाता कि पहिले यह आत्मा पशु था, अब मनुष्य हुआ है तो अब यह नया जीव हुआ है। मनुष्यत्व अवस्थासे सम्पन्न जीवको इस ही निगाहमे नया कह सकते हैं। तो प्राप्त अशुचि स्वभावको छोड़ते हुये ही अब मोदक आदिक भाव अशुचि रूपतासे अन्य ही

उत्पन्न हो रहे हैं। इस प्रकार वैशेषिकवादियोंने माना भी है। वहां तो यह बात युक्त हो जायगी कि ये लड्डू आदिक पदार्थ अन्यके सम्बन्धसे अपवित्र हो जाते हैं। लेकिन यह बात परमाणुवोंमे तो न चलेगी क्योंकि परमाणु तो नित्य ही है। लड्डू आदिक तो अनित्य थे। लेकिन परमाणु जब नित्य हैं तो उनमे यह बात नहीं चल सकती कि पहिले जो अपवित्र रूपता थी विशेष पदार्थके सम्बन्धसे विविक्तता हो तो वतला रहे हो तो पहिले क्या थी अविविक्तता? तो पहिलेके अभेद एक रूपताका त्याग करके अब नये विविक्तरूपतासे परमाणु उत्पन्न हो जाय यह बात तो नहीं बन सकती नित्यमे। तो नित्य अपरिणामी ही माना गया है विशेषवादमें इसमे अमेध्यका दृष्टान्त देकर बाधा देना युक्त नहीं है। दूसरा दृष्टान्त दिया था दीपकका। वह दृष्टान्त भी इस ही कारण असगत है कि परमाणु नित्य है और नित्य परमाणुवोंमें यह नही बन सकता कि पहिली अविविक्तताका त्याग करदें और अब नई विविक्त रूपताको अंगीकार करलें। पट आदिकमे तो यह हो रहा है कि जब दीपक आदिक अन्य पदार्थकी उपाधि आ गई तो प्रदीप आदिक पदार्थान्तरकी उपाधिरूप रूपान्तरकी उत्पत्ति हो गयी। अंधेरा भी पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है और प्रकाश भी पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है। वहां परिवर्तन हो गया लेकिन नित्य परमाणुवोंमें तो यह परिवर्तन असम्भव है। इस कारण यह नहीं कह सकते कि विशेषोसे परमाणुवोंमें भी विविक्तता आती है। परमाणुवोमे विशेषोंमे नहीं आती। नित्य परमाणुवोंमें किसी भी प्रकारका परिवर्तन सम्भव नहीं है।

अनुमान प्रमाणसे विशेषनामक पदार्थके सद्भावका वाधितपना— विशेष नामक पदार्थके सद्भावका मानना अनुमान प्रमाणसे वाधित भी है। वह अनुमान यह है कि इन सब पदार्थोंमें जो वैलक्षण्य प्रत्यय हो रहा है, यह इससे जुदा है इस प्रकारकी विलक्षणताका जो इन पदार्थोंमें ज्ञान हो रहा है वह इन पदार्थोंसे व्यतिरिक्त किसी विशेष पदार्थके कारण नहीं है, क्योंकि व्यावृत्त प्रत्यय होनेसे, यह इससे जुदा है इस प्रकारकी जुदाई वाला ज्ञान होनेसे। जैसे कि विशेष धर्मोंमें जो जुदाई वाला ज्ञान होता है कि यह विशेषसे न्यारा है जैसे कि आत्माका विशेष धर्म पृथ्वीके विशेष धर्मसे जुदा है कि नही? जुदा है। तो उन विशेषोंमे जुदायगी ज्ञान करानेका कारण क्या है? वही विशेष धर्म। उसके लिए अन्य विशेष पदार्थ नही माना गया है। तो इसी प्रकार इन पदार्थोंमें भी आत्मासे पृथ्वी जुदा है आदिक जो वैलक्षण्य ज्ञान होता है वे ज्ञान भी अन्य विशेष पदार्थके कारण पूर्वक नही होते। यहां यह बात बताई गई है कि जैसे पृथ्वी और जल दो पदार्थ हैं। और उन दो पदार्थोंमें भिन्नताका ज्ञान हो रहा है, पृथ्वीमें विशेष धर्म है, जलमें विशेष धर्म है, तो उन विशेष धर्मोंके कारण जुदेपनका ज्ञान हो रहा है सो उन दो पदार्थोंमें जो विलक्षणताका ज्ञान हो रहा सो उन दोनो पदार्थोंके ही धर्मके कारण हो रहा, कहीं अन्य विशेष नामक पदार्थ हो और उसके कारण पृथ्वी, जलमें भिन्नताका ज्ञान हो ऐसी बात नही है, क्योंकि

जितने भी भिन्नताके ज्ञान होते हैं वे सब उन्हीं अ अन्तभूत पदार्थोंके कारण ही होते हैं। जैसे पृथ्वीका विशेष धर्म और जलका विशेष धर्म, इन दोनों विशेष धर्मोंमें भिन्नता है ना ? है। तो उन भिन्नताओंको बताने वाला कौन सा कारण है ? कोई अन्य विशेष पदार्थ नहीं है। यदि अन्य विशेष पदार्थ मानते हैं तो उसमें अनवस्था दोष आता है। फिर उस द्वितीय विशेष पदार्थमें और इसमें भिन्नताका ज्ञान करानेका कारण फिर तीसरा विशेष पदार्थ मानो। तो जैसे । विशेष विशेषोंमें परस्पर भिन्नताका ज्ञान स्वयं हो जाता है इसी प्रकार इन सब पदार्थोंमें भी भिन्नताका ज्ञान इन्हीं पदार्थोंके स्वरूपके कारण हो जाता है तब विशेष पदार्थका मानना युक्तिसगत न रहा क्योंकि प्रथम तो विशेष पदार्थके सद्भावको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है और कभी कोई प्रमाण देगा तो उसमें बाधक प्रमाण है इस कारण विशेष नामक पदार्थ जैसे विशेषवादमें माना गया है वह सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष इन ५ पदार्थोंकी मीमांसा हुई।

समवायनामक पदार्थकी मीमांसाका स्थल— अब छठवां पदार्थ विशेष-वादमें माना गया है समवाय नामक। उसकी मीमांसा चलेगी। समवाय माननेकी चलेगी। समवाय माननेकी कोई खास जरूरत नहीं हो रही थी लेकिन जब विशेष-वादमें एक ही पदार्थमें रहने वाली बातोंको भिन्न भिन्न पदार्थ रूपमें मान लिया तब सम्बन्ध जुटानेको समवाय मानना पड़ा। वैसे हैं सब प्रत्येक अद्वैत द्रव्य, उस हीकी अभिन्न शक्तिका नाम गुण है। द्रव्यके गुणोंकी परिणति व द्रव्यके प्रदेशकी परिणति का नाम है कर्म। द्रव्यमें जो धर्म सामान्यरूप है, जो अन्य पदार्थमें मिल जाय वह कहलाता है सामान्य। द्रव्यके ऐसे धर्म जो अन्य द्रव्योंमें न मिलें उन्हें कहते हैं विशेष धर्म। तो यों एक ही वस्तुमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष रहते हैं। वस्तु ऐसे ऐसे असंख्य अनन्त हैं तो उनका गुण कर्म सामान्य विशेष उनमें हैं। लेकिन जब बुद्धि भेदसे इन सबको भिन्न भिन्न मान डाला और ऐसा मान लेना सस्ता यों पड़ गया क्योंकि बुद्धिमें जब रहा था कि इनका स्वरूप कुछ विलक्षण समझमें आ रहा है सो अभिन्न तत्त्वोंको भिन्न तो मान डाला लेकिन भिन्न माननेके बाद अब यह आपत्ति और कठिन आती कि इनको एकमें कैसे सिद्ध करें ? जब ये पांचों पदार्थ भिन्न भिन्न हो गए और उन्हें पदार्थके नामसे कह दिया तब यह कठिनाई आना प्राकृतिक है कि आत्मामें ही ज्ञानको फिट किया जाय। पृथ्वीमें ही रूप, रस गंधको फिट किया जाय, अन्यमें न किया जाय। इस व्यवस्थाका कोई समाधान नहीं था, उसके लिये समवाय सम्बन्ध मानना आवश्यक हुआ। और उससे व्यवस्था बनायी जाना उचित समझा है जिससे कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विरोधमें जो प्रस्ताव कर डाला एक बार, अन्त तक न निभाव होते हुए भी अपने आपके मुखसे नहीं निभाव हुआ यह तो नहीं कहा जा सकता। इसके लिये समवाय नामक पदार्थकी कल्पना करनी पड़ी। अब उस ही समवाय पदार्थके सम्बन्धमें चर्चा चलेगी।

समवायनामक पदार्थकी अप्रतीति— वैसे तो समवाय नामक पदार्थ कुछ है नहीं यह तो लोगोको साफ विदित हो रहा, क्योंकि न कोई समवाय नामक पदार्थ आता जाता दिखता है, न उसका कोई प्रयोग अर्थ क्रिया कुछ बात होती है और न उसका कोई निर्दोष स्वरूप भी विदित होता है। निर्दोष स्वरूप न होनेके कारण समवाय दा पदार्थोका सिद्ध नही होता, न उसका प्रत्यक्षसे ज्ञान होता, न अनुमान आदिसे ज्ञान होता है। एक सीधी साफ निगाहसे ये सब द्रव्य हैं और वे अपना-अपना स्वरूप रखते हैं एव उनके ही स्वरूपमें यह बात पडी है कि वे प्रति समय अपना अपना परिणमन कर रहे हैं,बस इन्ही विशेषताओके कारण पदार्थमे वे सब तत्त्व घटित हो जाते हैं और फिर पदार्थोंकी सत्ता द्रव्यकी रह जाती है और शेष गुण कर्म सामान्य विशेष ये उस हीके धर्म बन जाते हैं उन धर्मोंसे अभिन्न वे पदार्थ है। अब उससे भिन्न कोई समवाय नामक पदार्थ हो ऐसा न कोई किसी प्रमाणसे सिद्ध है और न समवाय का कोई निर्दोष लक्षण बनता है।

शंकाकार द्वारा समवाय नामक पदार्थके स्वरूप निर्देशन—यहापर शंकाकार कहता है कि समवायका लक्षण है तो सही। समवायका लक्षण है अयुत सिद्ध आधाय आधारभूत पदार्थोंमें इसमे यह है इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत जो भी सम्बन्ध है उस सम्बन्धका नाम है समवाय। इस लक्षणका तात्पर्य यह हुआ कि जब ऐसे पदार्थका सम्बन्ध बताना हो कि जिसमें यह ज्ञान हो रहा हो कि इसमे यह है आत्मामें ज्ञान है पृथ्वीमें गध है, आदि रूपसे इनमें भद है यह ज्ञान हो रहा हो यानि न्यारे न्यारे वे न हो दो। एक तो वह जिसके लिए 'इह' कहा जा रहा है और एक वह जिसके लिए इद' कहा जा रहा है जैसे आत्मामे ज्ञान। तो आत्मा और ज्ञान ये दोनो भिन्न सिद्ध पदार्थ न हो और आधार आधेयभूत हो ? जैसे आत्मा आधार बना और बुद्ध आधेय बनी। तो यो जो अयुत सिद्ध पदार्थ हो, पृथक् पृथक पदार्थ न हों और उनका आपसमे आधार आधेय सम्बन्ध हो और इसमें यह है इस प्रकारका ज्ञान हो रहा हो तो ये तीन बातें रखकर यह समझना चाहिये कि इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत जो भी सम्बन्ध है वह समवाय सम्बन्ध है। तो समवायका यह निर्दोष लक्षण मौजूद है।

समवाय स्वरूपोक्त सम्बन्ध शब्दकी सार्थकताका प्रदर्शन—इस समवायके लक्षणकी निर्दोषता भी तो देखिये कि किसी भी तरहसे दोषका अवसर इसमें नही आ पाता। जैसे कि कोई यह कहता है कि इस ग्राममे वृक्ष है इस ज्ञानमे भी तो यह है ज्ञान हुआ ना। इस ग्राममें वृक्ष क्या पूरे फैलकर समवाय सम्बन्धसे रह रहे हैं ? घने वृक्ष हैं। एक वृक्षके बाद और वृक्ष हैं। चलती जा रही हैं वृक्षकी पक्तियाँ। अन्तराल बीचमें नहीं है। बहुत वृक्ष हैं उसके बीचमे दूसरा गाँव आ गया हो, इस तरहकी भी बात नही है। उस ही ग्राममें चलते जा रहे हैं वे 'पेड' तो देखिये। ये

इह, इद प्रत्ययके कारण हो गए, लेकिन उनमे समवाय सम्बन्ध नही है तो ऐसी शका उन्हें यो न करना चाहिए कि हमारे लक्षणमे तो सम्बन्ध शब्द पडा हुआ है । इस ग्राममे वृक्ष है यहा सम्बन्ध तो नही बन रहा किन्तु अन्तरालका अभाव सूचित हो रहा है। याने इन वृक्षोके बीचमे कोई अतराल नही है। वही वही गाँव बन रहा है तो अन्तरालका अभाव अभावरूप है। वह तो सम्बन्ध नही कहलाता है। इस कारण ग्राममे वृक्ष है इस प्रत्ययके साथ समवायका लक्षण व्यभिचरित नही होता।

समवाय स्वरूपोक्त आधार्याधारभूत शब्दकी सार्थकताका प्रदर्शन--समवायके लक्षणमे एक एक शब्दकी अरिवार्यता तो तको कि कितना आवश्यक शब्द है जिससे समवायका लक्षण निर्दोष बन रहा है। कोई कहे कि इस आकाशमें पक्षी हैं ऐसा भी तो इह इद ज्ञान हो रहा है, मगर आकाश और पक्षीका समवाय सम्बन्ध तो नही मानते, तो यह इद प्रत्यय होनेपर भी समवाय नही माना जा रहा है तो यह लक्षण सदोष हो गया कि नही ? समवायका लक्षण यहाँ भी लग जाना चाहिये था। तो उसका उत्तर यह है कि हमारे समवायके लक्षणमें आधार आधेयभूत पदार्थोका सम्बन्ध हो यह बात पडी हुई है। आकाश और पक्षीमे आधार आधेय सम्बन्ध नही है । कोई कहे --वाह आकाशमे ही तो पक्षी हैं। आधार आकाश है और पक्षी आधेय है तो उसका उत्तर यह है कि पक्षीका आधार आकाश है यह तुम कैसे कह रहे हो कि आकाश नीचे है और पक्षी ऊपर है ? आधार नीचे हुआ करता है। जैसे तखतपर चौकी है, तखत नीचे है, चौकी ऊपर है। आधार ऊपर नही होता । तो चू कि पक्षीके नीचे आकाश है इसलिए तुम आधार कहते हो तो सोचो तो सही कि पक्षीके ऊपर भी तो आकाश है। फिर पक्षीमे आकाशका आधार आधेय सम्बन्ध नहीं कह सकते। इस कारण देखो ! हमारा लक्षण कितना निर्दोष है।

समवायस्वरूपोक्त अयुतसिद्ध शब्दकी सार्थकताका प्रदर्शन--कोई कहे कि यहा ऐसा भी तो ज्ञान हो रहा है कि इस मटकेमें दही है। इह इद प्रत्यय हो रहा ना। और मटकेमें दही है यहा मटका और दही इन दोनोका समवाय सम्बन्ध है नहीं, पर इह इद प्रत्यय हो रहा है इसलिये जुट जाना चाहिए था समवाय सम्बन्ध मगर नही हो रहा है तो आपका हेतु व्यभिचरित हो गया। तो ऐसा नही कह सकते, क्योकि हमारे लक्षणमे अयुतसिद्ध शब्द पडा है। जो अयुत सिद्ध हो, जुदे-जुदे पदार्थ न हैं। उनका सम्बन्ध है, उनका समवाय, लेकिन दही एक अलग पदार्थ है। मटका एक अलग पदार्थ है। उनमे अयुतसिद्धता नही है इस कारण समवाय सम्बन्ध नही बनता। जैसे सूत और कपडा है, ये अयुत सिद्ध हैं। सूतसे बाहर कपडा क्या ? इस तरहसे मटका और दही। ये अयुतसिद्ध चीज नही हैं । इनमें युतसिद्धपना है इस कारण इनके साथ भी व्यभिचारका दोष नहीं दे सकते हो। तब देखो ! हमारा लक्षण कितना निर्दोष है ?

समवाय स्वरूपोक्त अयुतसिद्ध शब्दकी शंकाकार द्वारा व्याख्या—अब अयुतसिद्धका अर्थ समझ लीजिए। युत सिद्ध कहते किसे हैं? पृथक् आश्रयमें रहने का नाम है युतसिद्ध। जैसे दही और मटका। दही किसमे रहा रह है? दही अपने अवयवोमे रह रहा, मटकेमें नहीं। अगर दही मटकेमे हो तो कोई मटका ही खा ले, क्योंकि उसमे दही रखा है। दही है, दहीके अवयवोमें, मटका है मटकाके अवयवोमें। तो देखा, इन पदार्थोंका आश्रय पृथक् पृथक् है पृथक् आश्रयमे रहनेका नाम है युतसिद्ध और इसका नाम युतसिद्ध है कि पृथक् पृथक् गतिमान हो। जैसे दो बैल मिलकर एक गाड़ीको खींच रहे हैं तो क्या वे दो बैल अयुतसिद्ध हैं? नहीं। जब उनकी गतिमत्ता पृथक् पृथक् पायी जा रही है, एक बैल अपनेमे चल रहा है, दूसरा बैल अपनेमे क्रिया कर रहा है, तो यो पृथक् पृथक् गतिमत्ता होना इसे भी युतसिद्ध कहते हैं। तो देखो! युतसिद्धके ये दो लक्षण हुए—पृथक आश्रयमे रहना और पृथक गतिमान होना। सो ये दोनो ही लक्षण ततु पट आदिकमे नहीं है। क्या ततुवोको छोड़कर पट कोई अन्य जगह रह रहा है? कपड़ा उन ततुवोमे ही तो है। तो ततु और पटमें युत सिद्धपना नही है। तो ततु और पटकी तरह मटका और दही अयुतसिद्ध हो जायें इसे कोई नहीं मान सकता। तब देखो—हमारे समवायका लक्षण कितना निर्दोष लक्षण है कि जो अयुतसिद्ध और आधार आधेयभूत पदार्थोंमें इसमे यह है इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत सम्बन्ध हो उसे कहते हैं समवाय। तो समवायका लक्षण नही है कुछ यह कैसे कह दिया? समवायका लक्षण है और वह वास्तविक पदार्थ है।

समवायस्वरूपोक्त अयुतसिद्ध शब्दके अर्थके अनिर्णयसे समवायस्वरूप की असिद्धि—अब इसके हम समाधानमें कहते हैं कि यह जो कहा कि अयुतसिद्ध पदार्थका जो सम्बन्ध है सो समवाय है तो पहिले अयुतसिद्धका अर्थ ही तो निर्णीत कर लीजिये! अयुतसिद्धपना क्या आप शास्त्रीय ले रहे हैं या लौकिक? लौकिकका मायने तो यह है कि जैसे घड़ेमे पानी भरा तो यह अयुतसिद्ध है जुदे–जुदे जगहमे तो नही है और शास्त्रीय अयुतसिद्धका मतलब यह है कि उसके बारेमे जिस तरह शास्त्रोंमें वर्णन किया गया हो। तो अयुत सिद्धपना आप शास्त्रीय ले रहे हैं या लौकिक? यदि कहो कि हम शास्त्रीय अयुतसिद्धकी बात कह रहे हैं तो सुनो। ततु और पटमे भी शास्त्रीय अयुतपना सम्भव नहीं हो सकता। देखो वैशेषिक शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है यह बात कि अयुतसिद्ध उसे कहते हैं जो अपृथक आश्रयमे रहनेकी वृत्ति हो याने जिन दो का सम्बन्ध बनाया जा रहा है—जैसे सूत और कपड़ा। इन दोनोका आश्रय एक होना चाहिए। तब तो अपृथक् आश्रयमे रहना कहलायेगा और अयुतसिद्ध कहलायेगा किन्तु यह बात यहाँ नहीं है वैशेषिक शास्त्रोंके अनुसार। विशेषवादका मतव्य है कि ततु तो रहते हैं अपने अवयवोमें। जो ततुके अवयव हैं एक कपास कण रूप, उनमें तो रहते हैं ततु, और पट रहता है ततुवोमें तो अब देखो! आश्रय एक न रहा। कपड़ा रहा ततुवोमे और ततु रहा अपने अवयव कपास कणोमें। तो पृथक् आश्रय तो तब

बनता कि कपडा जहाँ रहता वहाँ ही तंतु रहते। अब शास्त्रीय पद्धतिसे तो देखलो कि कि तंतु और पटका भी आश्रय एक न रह सका। तंतु और पटका आश्रय अब पृथक पृथक सिद्ध हो गया। पृथक आश्रयमे रह रहे हैं तंतु और पट फिर अपृथक आश्रयमे रहनेकी बात तो असिद्ध हो गयी। तब तंतु और पटमें भी आप समवाय सम्बन्ध नही कह सकते, न अयुक्त सिद्धका अर्थ लगा सकते हो। इसी प्रकार गुण, कर्म, सामान्य इन तीनमे भी अपृथक् आश्रय वृत्तिपना नही है। कैसे ? गुण रहता है गुणवानमे और गुणवान रह रहा है अपने अवयवोमें तो तब आश्रय कहाँ रहा ? इसी तरह कर्म रहते है कर्मवानमे, कर्मवान रह रहा है अपने अवयवोमे। सामान्य रहता है सामान्यवानमे, सामान्यवान रहता है अपने अवयवोमे, तो इसमे भी अयुक्त सिद्धपना न बन सकेगा। तो तुम्हारा समवाय भी सिद्ध न होगा। और,यदि लौकिक अर्थकी बात कहते हो–जैसे कि एक घडेमे पानी भरा सो इसलिए अयुतसिद्ध कहते हो तो दूध और जल भी जब एक जगह हो तो उन्हे तो युतसिद्ध माना है लोकमे भी। तो उनमे भी अयुक्तसिद्धपना बन जायगा इस कारण अयुतसिद्धका अर्थ ही व्यवस्थित न हो सका फिर समवायका लक्षण कैसे घटित होगा।

पृथगाश्रयाश्रयित्वके निरूपणसे तन्तु पटमे समवायकी असिद्धिके निराकरणका शंकाकारका प्रयास––शंकाकार कहता है कि जैसे मटका और दधि के अवयव याहाके दोनो आश्रय पृथक् भूत हैं और उन दोनोमे याने मटका और दहीके अवयवोंमे मटका और दहीकी वृत्ति हैं उस तरह तंतु और पटमे ४ अर्थ नही हैं। इस कथनका तात्पर्य यह है कि जैसे कहते कि मटकामे दही है तो यहा मटकाका आश्रय है मटकाके अवयव और उन अवयवोमे आश्रयी है मटकाके अवयव और उन अवयवोमे आश्रयी है मटका। दो ये पृथक चीजें हो गयी ना और दहीका आश्रय है दहीके अवयव और दहीके अवयवोमें आश्रय है, दही। तो दो चीजें ये न्यारी हो गयी। तो जैसे ये चार चीजें है - इस तरह सूत और कपडेमें ये चार चीजें नहीं हैं। सूतके अवयवोमें आश्रयी है सूत। ये दो बातें न मिलेंगी। कपडाका यही कहेंगे कि कपडा रहता है सूतोमें। सूत को छोडकर कपडाका आश्रय अन्य कुछ नही बताया जा सकता। तो यहाँ अब तीन ही चीजें रह गयी। कपडा है सूतमें। सूत है अपने अवयवोमें। तो तीन ही बातें है और मटका दधिके आधार आधेयभूतमें ४ बातें है। दधि है और वह है अपने अवयवो मे। मटका है और वह है अपने अवयवोमें। दो आश्रय पृथक्भूत हैं और दो आश्रयी पृथक्भूत है। इस तरह सूत और कपडामें बात नहीं जमती। यहा तो तंतु ही अपने अवयवोके आश्रयी हैं और तंतु ही पटके आश्रय हैं। तब यहा तीन ही अर्थोंकी प्रसिद्धि होनेसे, समवाय होनेसे, अब युत सिद्धिका जो यह लक्षण किया गया है कि जो पृथक आश्रयोंमे आश्रयी बन कर हो उसे युतसिद्ध कहते हैं। सो अब यह युत सिद्धका लक्षण याने पृथक भावका लक्षण सूत और कपडामे नही घटता कि

चित मान लो कि क्योंकि सूत और कपड़ा इन दोनो पृथक आश्रय नहीं है इसलिये ततु और पटमे अयुत सिद्धपना बराबर सही है और यो समवायका लक्षण अव्यभिचरित न हुआ। याने दधिकुण्डमें इस कुण्डमे दधि है ऐसा कहकर समवायका अव्यभिचरित न कहा जा सकेगा कि देखो यहां भी इह इद प्रत्यय हुआ लेकिन समवाय न रहा। समवाय कैसे रहेगा ? दधिकुण्डमे, तो युतसिद्ध है आधार आधेय और ततु पटमे युत-सिद्ध है नहीं सो ततु पटमे समवाय सम्बन्ध बन जायगा।

पृथगाश्रयाश्रयित्वसे युतसिद्ध करनेपर आकाशादिकमे युतसिद्धत्व सिद्ध करनेके अनवकाशका प्रसग--इस शंकाके समाधानमे कहते हैं कि दो पृथक् आश्रय और आश्रयी बताकर दधिकुण्डमे व्यभिचार बना दिया समवायके लक्षण का लेकिन यहां बतलावो ! आकाश आदिककी युतसिद्धि कैसे सिद्ध हो ? क्योंकि आकाश, आत्मा, दिशा, काल ये तो निरवयव माने गए हैं विशेषवादमे। इसके अश प्रदेश नहीं होते। तो अब आकाश आदिकका युतसिद्ध किसमें बताओगे ? कहां रहते हैं ये ? इनका अन्य आश्रय तो कुछ है नहीं। और, जब अन्य आश्रय नहीं है तो पृथक आश्रय और आश्रयी भाव बताया ही नहीं जा सकता। रहा ही नही है। जब इसमे युतसिद्धका लक्षण घटित न होगा तब समवाय सम्बन्ध बन बैठेगा। जैसे दधि-कुण्डमें तो यह कह रखा था कि कुण्डका आश्रय है कुण्डके अवयव। दधिके आश्रय हैं कुण्डके अवयव। दधिके आश्रय हैं दधिका अवयव। अब यहां आत्माका आश्रय क्या है ? आत्मामें तो अवयव माना नही गया। आत्माको तो निरवयव सर्वव्यापक माना है। ऐसे ही आकाश दिशा कालको भी निरवयव सर्वव्यापक माना है। तब वहां युत सिद्धका लक्षण घटित होगा नहीं सो अयुतसिद्ध कहलायेगा और समवाय सम्बन्धकी बात इसपे कुछ है नहीं। तो युतसिद्धका लक्षण ही आपका नहीं बनता। और, भी सुनो ! युतसिद्धका लक्षण घटित करनेके लिये शंकाकारने दो बातें कही थी कि जो पृथकाश्रयमे रहे सो युतसिद्ध व पृथकगतिमानपना जिसमें हो सो उसे पृथक सिद्ध बन जाना। तो अब पृथकाश्रय वृत्तिरूप लक्षण तो सही बन न सका।

नित्य पदार्थोंमे पृथग्गतिमत्त्वकी असिद्धि होनेसे युतसिद्धिकी असिद्धि अब दूसरे लक्षणपर दृष्टिपात कर लीजिये पृथक् गतिमत्वको युतसिद्धत्व कहा है। सो नित्य पदार्थोंमें पृथक्गतिमत्व सिद्ध नही होता। शंकाकार चाहे कि पृथक आश्रय में रहने रूप लक्षण युतसिद्धका निराकृत हो गया तो अब पृथक्गतिमत्व लक्षण सही मानकर युतसिद्धका स्वरूप बना लेगे, सो पृथक्गतिमत्व भी तो नहीं बनता। बत-लावो जो नित्य पदार्थ है और साथ ही वह व्यापक भी है, सो उन व्यापक द्रव्योंमेंसे कोई एक परमाणु गमन कर जाय तो अथवा उनमे दो एक साथ गमन करे तो उसमें गतिमत्त्वकी सम्भावना की जा सकती थी लेकिन नित्य और व्यापक द्रव्योमें न तो कोई एक पृथक गमन कर सकता, क्योंकि वहां है ही कहां अनेक। सारा नित्य विभु द्रव्य निरश माना है। और तब उनमेंसे दो भी पृथक गमन क्या करें। और, कदा-

उनमेसे कोई अवयव गमनकर देता है या दो मिलकर भी पृथक गमन करते हैं आपका द्रव्य विभु न रहा। विभु पदार्थोंमे, व्यापक पदार्थोंमे गमनकी बात नही बन सकती जो पूरे लोकमें फैला हुआ है उस किसी एकमे गमन कहा बनेगा? और गमन हो रहा है तो स्पष्ट सिद्ध है कि वे पदार्थ विभु नही है। गमन तो उसे ही कहते हैं कि एक जगह छोड कर दूसरी जगहमे पहुच जाना तो ऐसा करनेमे व्यापकता कहाँ रही? और इस कारण कि व्यापक तो माना ही है निश्चितजो अब पृथक्गतिमत्त्व लक्षण न बन सका।

समवाय पदार्थवादियोके गुण कर्म सामान्य आदिमे परस्पर समवाय हो जानेका प्रसग – अब एक अन्य आपत्ति और देखिये । जब एक पदार्थमें न तो पृथक आश्रय रहा और न पृथकगतिमत्त्व रहा, तब फिर किसी एक द्रव्यमे जो विभु है आत्मा कहो, आकाश कहो, किसी एक द्रव्यके आश्रय रहने वाले गुण कर्म और सामान्यमे परस्पर पृथक आश्रयपना तो रहा नही। गुणका आश्रय कौन ? वही द्रव्य। कर्मका आश्रय, सामान्यका आश्रय ? वही द्रव्य। जब इनका कोई पृथक आश्रय रहा नही, और ये गुण, कर्म सामान्य जो विभु द्रव्यके आश्रयभूत हैं उनपे पृथक आश्रया-वृत्ति हो न सकी तो अयुतसिद्ध कहलाने लगे। जब अयुतसिद्धका प्रसग आ गया तो इसका परस्परमें समवाय हो जाना चाहिए। पर समवाय तो नही माना गया, क्योकि गुण, कर्म, सामान्य इनमे आश्रयके आश्रयीभाव नहीं हैं। तो देखा शकाकारने समवायका लक्षण व्यवस्थित करनेके लिये दो कैद की थी कि एक तो होना चाहिये अयुत सिद्ध पदार्थ, दूसरा होना चाहिये आधार्य आधारभूत। तो उनमे समवाय सम्बन्ध बने। लेकिन प्रथम तो युतसिद्धका लक्षण न बन सका, युतसिद्धका लक्षण न बना तो किसका अभाव करके अब अयुतसिद्धता बताओगे ? तथा आधार आधेयभाव भी नाना प्रकारमें होते हैं पृथक सिद्धमें भी होते हैं, अपृथक सिद्धमें भी होते हैं तो पहिली बात तो यह है कि अयुत सिद्ध और आधार आधेयभूत पदार्थ ही सिद्ध नहीं हो पाते, तो समवाय लक्षण कहा घटावोगे ?

सविशेषण भी समवायके लक्षणमे दोषापत्ति—कदाचित् मानलो कि दोनो बातें हैं-अयुतसिद्ध भी है और आधार्य आधारभूत भी है तो भी आपका यह नियम न बन सकेगा कि अयुतसिद्ध और आधार्य आधारभूतमे समवाय सम्बन्ध होता ही है। देखो ! यह जब ज्ञान किया जाता है कि इस आकाश वाच्यमे आकाश शब्द वाचक लगता है, लोक व्यवहारमे कहते भी हैं कि इस वाच्यमे यह वाचक शब्द फिट बैठता है। तो लो आकाश वाच्यमे आकाश शब्द वाचक रहा तो यह कौन सा सम्बन्ध हुआ। यह तो वाच्य वाचक भावरूप सम्बन्ध है और जिसमे वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध बनाया जा रहा है वह है अयुतसिद्ध और आधार्य आधारभूत। तो अयुतसिद्ध और आधार्य आधारभूत होकर भी आकाश वाच्य और आकाश शब्द वाचकमे समवाय सम्बन्ध नही रहा किन्तु वाच्य वाचक सम्बन्ध है, और भी सुनो ? जैसे यह ज्ञान बना

कि इस आत्मामे ज्ञान है, तो आत्मा और ज्ञानमे विषय विषयी भाव सम्बन्ध है । तो अयुतसिद्ध होकर भी आधार्य आधारभूत होकर भी आत्मा और ज्ञानमे समवाय सम्बध होनेके वजाय विषय विषयी भाव सम्बन्ध है । तो आपका समवाय लक्षण तो सुघटित नही हो रुक रहा ना और, भी तीसरी बात सुनो, कि यहाँ इतरेतराश्रय दोष भी आ रहा है । इस भमेलेमें समवायकी सिद्धि तो हो नही रही क्योंकि जब युत सिद्धि सिद्ध हो जाय तब तो युत सिद्धिका निषेध करके अयुत सिद्धमे तुम समवाय सम्बन्ध बता पावोगे और जब समवाय सम्बन्ध सिद्ध हो जायगा तब यह सिद्ध होगा कि जो पृथगाश्रयमे समवायी रहे वह युतसिद्ध कहलाता है तो समवायकी सिद्धि होनेपर पृथगाश्रयमें समवायी रूप वृत्तिको युतसिद्धि सिद्ध कर सकोगे । और, जब युतसिद्धिका स्वरूप सिद्ध हो जाय तो युतसिद्धिको निषेध द्वारा फिर युतसिद्धिमे समवाय सम्बन्ध बता सकोगे, तो इसमे इतरेतराश्रय दोष भी आता है ।

समवायलक्षणमे प्राप्त दोषापत्तिके निवारणका विफल प्रयास—शंकाकार कहता है कि हम समवायके लक्षणमें दोनो विशेषणोंमें एवकार का आश्रय कर रहे हैं याने अयुतसिद्धमे ही और आधार्य आधारभूतमे ही समवाय सम्बध होता है, हम इस तरहका एवकार लगा रहे हैं और कभी अयुतसिद्धमे या युतसिद्धमे अथवा युतसिद्ध होकर भी आधार आधेयभूतमे यदि विषय विषयी सम्बन्ध जोडा जाय या वाच्य वाचकमे वाच्यवाचक भाव सम्बन्ध लग जाय तो लगे, हमने तो समवायका लक्षण उनमें एवकार विशेषणोंके साथ लगाया है और साथ ही इतरेतराश्रय दोषकी भी बात नही बनती, क्योंकि लक्षणका प्रयोजन तो यह है कि विद्यमान अर्थको अन्य पदार्थोंसे, भिन्न रूपसे बताकर रख दे, पदार्थके सद्भावको सिद्ध करे, यह लक्षणका काम नहीं तो यह है कि अलक्ष्य पदार्थोंसे भिन्न करके रख देवे तब इतरेतराश्रय दोष क्यो आयगा कि अमुक सिद्ध हो तो अमुक सिद्ध हो । सद्भाव कारक हम लक्षण ही नही मानते अब इसके समाधानमे कहते हैं कि देखो ! तुम्हारा है यह ज्ञापक पक्ष, याने कुछ सिद्ध करना है जताना है, ज्ञान कराना है तो ज्ञापक पक्षमे तो इतरेतराश्रय दोष अच्छी प्रकारसे लगता है । देखो अज्ञात युतसिद्धसे समवाय कभी नही जाना जा सकता । जब तक युतसिद्धका लक्षण पूर्णतया न जान लोगे, न समझा सकोगे तब तक समवायका ज्ञान नही किया जा सकता और जब समवाय न जाना गया तो युतसिद्धिकी भी व्यवस्था नही बनायी जा सकती है, इस कारण इतरेतराश्रय दोष तो इसमें अवश्य ही है। और, फिर इस लक्षणसे समवायसिद्ध हो नही सकता। जैसे कि बताया है कि आकाश। वाच्यमें आकाश शब्द वाचक है, इस वाच्य वाचक भावमे तुम्हारा अयुत सिद्ध सम्बन्धत्व और आधार आधेयभूत सम्बन्ध पाये जा रहे हैं और सम्बन्ध है वाच्य वाचक भाव समवाय नही, इसी प्रकार विषय भूत आत्मामें यह मैं ज्ञान विषयी हूँ इस प्रकारके विषयी भावमें भी अयुतसिद्धता भी है और आधार आधेयपना भी है । इससे समवाय का लक्षण तो व्यभिचरित हो गया ।

समवायके लक्षणमें व्यभिचारनिवृत्तिकी शंका व उसका समाधान— शंकाकार कहता है कि इसमें व्यभिचार दोष नहीं दिया जा सकता। क्योंकि जितने भी वाच्य वाचक वग हैं सबमें और जितने विषय विषयी वग हैं उनमें नियमसे अयुत सम्बन्धपना नहीं है, याने युतसिद्ध पदार्थोंमें भी वाच्य वाचक भाव बन सकता है और विषय विषयी भाव बन सकता है इस कारण दोष नहीं आता। समाधानमें कहते हैं कि सर्वकी अपेक्षा भी हिसाब लगाओ। तो मानलो सब जगह विषय विषयी भाव, वाच्य वाचकभाव अन्तर्सिद्धमें न मिले, कुछ जगह मिले तो विपक्षके एक देशमें लक्षणके रहनेको भी व्यभिचार दोष कहते हैं, और जब विपक्षके एक देशसे लक्षण न हट सका तो उसको तो सबके साथ अनैकान्तिक दोष कह सकते हैं। यों समवायका लक्षण भी आपका सिद्ध नहीं हो सकता। विशेषवादियोंने समवायका जो लक्षण कहा है कि अयुतसिद्ध आधाय आधारभूत पदार्थोंमें इसमें यह है इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत जो सम्बन्ध है उसे समवाय कहते हैं। तो इसमें जो दो विशेषण दिए गए हैं समवाय पदार्थ सम्बन्धित कि अयुतसिद्ध और आधार्य आधारभूत तो इनमेंसे एक ही विशेषण कहते कि अयुतसिद्धके ही समवाय सम्बन्ध होता है तो इतनेसे ही काम चल जाता, फिर आधाराधेयभूतानाम् यह विशेषण देनेकी क्या जरूरत रही और या आधाराधेयभूतानाम् इतना विशेषण रखते, यही अवधारण करते तब अयुतसिद्धानाम् यह शब्द देनेकी कुछ जरूरत ही न रहती। फिर एक लक्षणको व्यर्थ ही इतना बढ़ावा देना और अनर्थक शब्द रखना इसमें कौन सी शास्त्रीय विशेषता जाहिर होती है ?

शंकाकार द्वारा समवायके लक्षणके दोनों विशेषणोंके अवधारणकी सार्थकताका प्रतिपादन— शंकाकार कहता है कि समवायके लक्षणमें इन दो विशेषणोंमेंसे यदि एक विशेषण न देते तो उसमें आपत्ति आ रही थी। जैसे कि हम केवल यही कहते कि अयुतसिद्ध पदार्थोंमें इसमें यह है इस ज्ञानका कारणभूत जो सम्बन्ध है उसे समवाय कहते हैं तो अब देखिये। रूप, रस, ये अयुतसिद्ध हैं कि नहीं ? एक द्रव्यमें समवेत रूप, रस, गुण, है अर्थात् रूप पदार्थ जिस द्रव्यमें समवेत है उस ही द्रव्यमें रस, गुण, पदार्थ भी समवेत है। तो रूप, रस, आदिकका समवायी आश्रय एक होनेके कारण रूप, रस, आदिक अयुतसिद्ध हो गए और वैसे ही व्यवहारत देखलो। आमके फलमें रूप और रस एक ही जगह अपृथक् रूपसे हैं कि नहीं ? ऐसा तो है नहीं कि रूप किसी जगह हो, रस किसी जगह हो तो रूप, रस आदिक अयुतसिद्ध हैं। अयुत सिद्धके समवाय होता है, इतना मात्र कहने से इसमें भी समवाय सम्बन्ध बन बैठता। तो एकार्थमें समवाय सम्बन्ध वाले पदार्थोंमें समवायपना न पहुँच जाय उसकी निवृत्तिके लिए दूसरे विशेषणमें भी एकाकार लगाया है कि जो अयुतसिद्ध हो सो तो ठीक है, होना ही चाहिए पर आधारभूत भी हो तो उनमें सम्बन्ध जो हो उसे समवाय कहते हैं। यह समवाय वाच्य वाचक भाव आदिककी तरह युतसिद्ध पदार्थोंमें भी सम्भव नहीं होता। जैसे कि वाच्य वाचक भावमें समवाय सम्बन्ध नहीं किन्तु वाच्य वाचक भावरूप सम्बन्ध

है इसी प्रकार विषय विषयी भावमें समवाय सम्बन्ध नही किन्तु विषय विषयी भाव सम्बन्ध है । जैसे कि हमने घटको जाना तो घटज्ञान और घटके साथ कौन सा सम्बन्ध है ? समवाय तो है नही पृथक भिन्न–भिन्न युतसिद्ध दिख रहे हैं तो वहाँ कहा जायगा कि विषय विषयीभाव सम्बन्ध है । सयोग भी नही है । घट ज्ञान आत्मामे है । घट घटमें है । तो जैसे युतसिद्ध पदार्थोमे समवाय सम्बन्ध सिद्ध नही होता ऐसे ही रूप, रस आदिकमें समवाय सम्बन्ध सिद्ध नही होता क्योकि समवायके लक्षणमें आधार्य आधारभूत ये विशेषण भी दिए गए हैं । इसी तरह यदि केवल आधार्य आधारभूत पदार्थोंमे समवाय होता है, इतना ही कहा जाता तो जैसे कहा कि इस पर्वतमे वृक्ष हैं, तो आधार आधेय भाव तो बिल्कुल स्पष्ट हो गया । पर्वत आधार है और वृक्ष आधेय है तो आधार आधेयभूत पदार्थोमे समवाय होता है इतना मात्र कहनेपर इस पर्वतमें वृक्ष हैं इसमे भी समवाय सम्बन्ध मानना पडता और जब अयुतसिद्धानाम् यह विशेषण दिया गया है तो यहां यह व्यभिचार नही आता, क्योकि पर्वतमे वृक्ष है, वह समवाय सम्बन्धसे नही है । पर्वत भी द्रव्य है द्रव्योका समवाय सम्बन्ध नही माना गया है किन्तु सयोग सम्बन्ध है, इस प्रकार दोनो विशेषण और दोनोमे एकाकार शब्द देना पड़ा है ।

समवायके लक्षणमे दोनो विशेषणके देनेपर भी अनैकान्तिक दोषका अनिवारण—अब उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि दोनो विशेषण, देनेपर भी अनैकान्तिक दोषकी निवृत्ति नही होती । देखो ! वाच्य वाचक भावमें और विषय विषयी भावमे अयुतसिद्धता और आधार आधेय भाव ये बन रहे हैं, लेकिन समवाय कहाँ माना गया है । कभी किन्ही अयुतसिद्धोमे समवाय मानले और किन्हींमें न मान ले, किन्ही आधार आधेयभूत पदार्थोमे सम्बन्ध मान लिया जाय और किन्हींमे न माना जाय, यह तो अपने मनकी स्वच्छन्दताकी ही बात है । कोई नियम नही बना कि जिसके अनुसार जो बात नियममें कही हो उसे मान ही लिया जाता । तो यो समवाय सम्बन्धका लक्षण ही पहिले सही नही बैठता, और सही यों न बैठ सकेगा कि पदार्थ का जो स्वरूप है उस स्वरूपमें विपरीत कोई प्रस्ताव रखा जाय तो वह कहाँ पारित हो सकता है ? पदार्थ सब गुण पर्यायात्मक होते हैं और उन पदार्थोंमें ही पायी जाने वाली विशेषताको प्रतिपादनके अर्थ बताया जाता है तो वहाँ गुण, कर्म, सामान्य विशेष अलग हैं कहां ? और, जब ये अलग हैं नही तो समवाय सम्बन्धकी कल्पनाकी भी जरूरत क्या रही ? यो पदार्थोंको अपने उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक गुणपर्यायात्मक, सामान्य विशेषात्मककी पद्धतिसे निरखो तो सर्व तत्वोका, मर्मोका स्पष्ट बोध होता जायगा । अन्यथा तो कल्पना भी सही न उतरेगी, अन्यथा अयुतसिद्धमें भी समवाय घटित नही होता व युतसिद्धके भी समवाय सम्बन्धका प्रसग आ जायगा । यो अनेक आपत्तियाँ आ सकेंगी ।

समवायके लक्षणको भेदक लक्षण कहकर शकाकारका दोषसे बचाव—

शकाकार कहता है कि समवाय सम्बन्धका जो हमने लक्षण किया है वह भेदक लक्षण है याने अन्य सम्बन्धोसे इसे भिन्न करके बता देना ही इसका प्रयोजन है। यह है समवाय, तो भिन्नताको जाहिर कर देने मात्रका प्रयोजन है लक्षणका, सो यो अनेक उचित विशेषणो सहित और अन्य द्रव्यादिक पदार्थोंसे भेद करा देने वाला निर्दोष यह समवाय का लक्षण है और इसी कारण यह कहा जा सक रहा है कि ततु पट आदिक सामान्य सामान्यवान गुण गुणी आदिक सयुक्त नही होते हैं, ऐसा समझना चाहिए क्योकि ये नियमसे अयुतसिद्ध हैं और आधार आधेयभूत हैं। जो सयुक्त हुआ करते हैं वे अयुतसिद्ध और आधार आधेयभूत नही होते, याने जिनमे सयोग सम्बन्ध पाया जाता है उनमे ये दो विशेषतायें नही हैं। आधार आधेयभूत तो कभी हो भी जाय सयो ी पदार्थोंमे भी लेकिन अ त सिद्ध होकर फिर आधार आधेयभूत हो तो वहाँ सयोग नही पाया जा सकता है। जैसे मटकामें बेर रखे हैं ऐसा कोई व्यवहार करे तो यह सयुक्त होनेके कारण मटका और बेर अयुतसिद्ध पदार्थ नही है बिल्कुल पृथक भिन्न-भिन्न वे द्रव्य हैं। तो अयुतसिद्ध पदार्थ होनेके नाते ततु पट आदिक सयुक्त नही है, किन्तु उनमे समवाय सम्बन्ध है। अथवा इस प्रकारसे भी प्रयोग कर लेवें कि ततु पट आदिकका सम्बन्ध सयोग सम्बन्ध नही है, क्योकि ये नियमसे अयुतसिद्ध सम्बन्ध वाले हैं। जैसे ज्ञान और आत्माका सम्बन्ध, ये सयोग सम्बन्ध नही है, किन्तु विषय विषयी भाव सम्बन्ध है। अयुतसिद्ध है ना ज्ञान और आत्मा। तो उनके सम्बन्धमे जब ज्ञान किया जाता है कि इस आत्मामे यह मैं ज्ञान हूँ या इसमें यह ज्ञान विषयरूप है तो यहा सयोग सम्बन्ध न कहलायेगा विषयविषयीभाव सम्बन्ध है। अत: यह कहना कि ततु पट आदिकमे भी समवाय सम्बन्ध न हो सकेगा यह कैसे युक्त है।

तादात्म्यसे व्यतिरिक्त स्वरूप सम्बन्धकी अनुपपत्ति अब उक्त शकाके उत्तरमे कहते हैं कि ततु और पटके सम्बन्धमे सयोग सम्बन्धका निराकरण करनेके लिये इतना अधिक जो परिश्रम किया गया है वह व्यर्थ है। हम भी ततु और पटमे कब सयोग सम्बन्ध कहते हैं? ततु क्या कोई अलग द्रव्य है पट क्या कोई अलग द्रव्य है? यदि ये अलग अलग द्रव्य होते तो इनमें सयोग सम्बन्ध कहा जा सकता था किन्तु पट तो तत्वात्मक ही है। ततुवोका ही उस प्रकारका सावन आश्लेष रूप परिणमन पट कहलाता है। पट ततुवोके अतिरिक्त और कोई चीज नही है। उनमे कथचित् तादात्म्य सम्बन्ध माना गया है। समवाय सम्बन्ध तो कोई सम्बन्ध ही नही होता। जिसे शकाकार समवाय सम्बन्ध कहता है उसका तादात्मक सम्बन्ध लक्षण बनता है? समवाय सम्बन्ध शब्दसे कहना शकाकारको इसी कारण इष्ट हुआ है कि ताकि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष ये सब स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध होलें। यदि तादात्म्य सम्बन्ध शब्दसे कहते तो उसका अर्थ होता कि वह जिसका स्वरूप है उसको कहते हैं तादात्म्य। और तादात्माके भावको कहते हैं तादात्म्य तत एक आत्मा यस्य तदात्मा, तस्य भाव: तादात्म्यम्। तो तादात्म्य शब्दके कहनेसे ६ प्रकारके परि-

कल्पित पदार्थोंकी सख्या नहीं बन पाती। अतएव समवाय सम्बन्ध शब्दसे कहना पड़ा है। लेकिन वहा तादात्म्य है जैसे कि गुण और गुणीमें। क्या कभी ऐसा भी हो सका कि गुणके बिना गुणी ठहरा हो और गुणीके बिना गुण ठहरा हो। और फिर उनका सम्बन्ध हो तब वह गुण गुणी सही बने, ऐसा कभी नही हुआ। गुण गुणी कोई भिन्न पदार्थ हैं ही नहीं। एक ही पदार्थ है, उसकी हम विशेषताको जानते हैं तब वह गुण कहलाता है और जिसकी विशेषताको जान रहे वह गुणी कहलाता है। तो ततु और पटमे भी तादात्म्य सम्बन्ध माना गया है। और इसी प्रकार गुण गुणीमे, सामान्य सामान्यवानमे कर्म कर्मवानमे तादात्म्य सम्बन्ध माना गया है। समवाय सम्बन्धकी कल्पना करके अनेक दोष उपस्थित होते हैं। और भी बात सुनो! समवाय सम्बन्ध यदि किसी प्रमाणसे सिद्ध हो तब तो उसके बारेमें यह कहना युक्त हो सकता है कि यह समवाय सम्बन्ध सयोगसे कुछ विलक्षण है। अथवा जिसमें सयोग सम्बन्ध बना रहता है उनके सम्बन्धसे विलक्षणताको सिद्ध करने वाला समवाय सम्बन्ध बन जाता है यह कहना युक्त हो सकता है, किन्तु समवाय सबन्ध तो प्रमाणसे प्रसिद्ध है ही नहीं। अतएव समवाय नामक पदार्थ कोई सिद्ध नहीं है।

समवायकी प्रत्यक्षसे सिद्धिका पूर्वपक्ष और उसका निराकरण — शकाकार कहता है कि समवाय सम्बन्धकी तो सिद्धि प्रत्यक्षसे ही हो रही है देखो ना, ततुवोंमें सम्बद्ध जो पट है वह पट ही प्रतिभासमान हो रहा है प्रत्यक्षसे और उसमें जो रूपादिक हैं, जो पटमें सम्बद्ध हैं ततुवोंमें भी सम्बद्ध हैं वे सब भी प्रतिभासमान हो रहे हैं। अगर सम्बन्ध न होता ततुवोंका और पटका तो विन्ध्याचल, हिमालय आदिक पर्वतोकी तरह वियुक्त प्रतिभास होता। पर ततु रूपात्मक हैं, पट भी रूपात्मक है और ततु पटके साथ रूपका ऐसा घन सम्बन्ध होना यह क्या समवायको सिद्ध नहीं कर रहा? तो ऐसे समवायकी तो बराबर प्रत्यक्षसे प्रतीति हो रही। तो यह कैसे कहा जा सकता कि समवाय किसी भी प्रमाणसे प्रसिद्ध नहीं है। उसकी प्रत्यक्षसे प्रमाणसे सिद्धि हो रही है। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना अयुक्त है कि समवाय प्रत्यक्षसे ही प्रतिभासमें आ रहा है। अरे असाधारण स्वरूपना सिद्ध होनेपर पदार्थो की प्रत्यक्षता सिद्ध हो सकती है। जैसे—घडेका आकार है प्रतिवृत्तउदर अर्थात् नीचे सकरा, बीचमें मोटा और अन्तमे भी सकरा तो जब घटका स्वरूप सिद्ध है, घटका आकार प्रत्यक्षसे सिद्ध हो रहा है तब ही तो हम घटकी सिद्धि कर लेते हैं। घट मौजूद हैं। तो जिसका असाधारण स्वरूप सिद्ध हो ले तब उसके बारेमे कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षसे प्रतीति हो रही है लेकिन समवायमें असाधारण स्वरूप क्या है क्या? यही तो सिद्ध नहीं हो रहा। अगर समवायका कोई स्वरूप सिद्ध होना कहते हो तो यह बताओ कि वह स्वरूप क्या है? क्या अयुतसिद्ध सबन्धपनेका नाम समवाय है या सबन्ध मात्रका नाम समवाय है? समवायका क्या स्वरूप है? यदि कहो कि अयुतसिद्ध सबन्धपनेका नाम समवाय है और यही समवायका असाधारण स्वरूप

है तो यह बात गलत है। सभी लोगोको ऐसा अयुत सिद्धपना प्रतीतिमें नहीं आ रहा। वह तो उसका स्वरूप ही है। उसमे समवाय सम्बन्धकी कल्पना करना व्यर्थ है। तो पहिले समवाय सम्बन्धके असाधारण स्वरूपको सिद्ध कीजिए। समवायका असाधारण स्वरूप सिद्ध होने पर फिर उसके बारेमें कहना कि उसको ही प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध करना है। विशिष्ट स्वरूप पहिले ज्ञानमे आये बिना किसी भी पदार्थका प्रत्यक्ष नहीं हुआ करता है। समवायका लक्षण यदि अयुतसिद्ध सम्बन्धपना होता तो यह स्वरूप सबके प्रतिभासमें आना चाहिये था। जो जिसका स्वरूप होता है वह उस स्वरूपसे सभी जीवोमें प्रतिभासमें आया करता है। जैसे घटका स्वरूप प्रथुबुध्नोदराकार है अर्थात् नीचे सकरा, बीचमें मोटा और अन्तमें भी सकरा इस तरहके रूप हैं। तो उस रूपमें जब आकार प्रतिभासमान हो रहा तो घट भी प्रतिभासमे आ रहा है तो अयुतसिद्ध सम्बन्धपना यह असाधारण स्वरूप समवायका न बन सका।

सामान्यात्मकत्व व सम्बन्धमात्रत्वमे समवाय स्वरूपकी असिद्धि—यह भी नही कह सकते कि चलो समवायका सामान्यात्मक स्वरूप कहलायगा। यह क्यो नही कह सकते? यो कि सामान्यात्मक स्वरूप तो वही होगा जिसके समान कई पदार्थ होगे। समवाय तो एक माना गया है और एकमे सामान्य क्या? समानमें होने वाले धर्मको सामान्य कहते हैं जब समान कोई पदार्थ ही न हुए यान समवायकी तरह अन्य कोई पदार्थ है ही नही तो सामान्य भी नही रह सकता। जैसे—गगनमे गगनत्व। आकाश एक है अब वह गगनत्व क्या है, सामान्य? कुछ भी नही। तो अयुतसिद्ध सम्बन्धपना समवायका असाधारण स्वरूप नही बन सकता। यदि कहो कि सम्बन्ध मात्र समवायका असाधारण स्वरूप हो जायगा सो भी गलत है। सम्बन्ध मात्र तो संयोगादिकमें भी है। विशेषण विशेषणी भाव, वाच्य वाचक भाव, विषय विषयी भाव, अनेक प्रकारके सम्बन्ध हैं तो सम्बन्ध मात्र तो सभी कहलाते हैं, फिर समवायका यह लक्षण नही बन सकता है।

समवायके प्रतिभासमानत्वकी पाच विकल्पोमे पृच्छना—और, भी विचारिये यह समवाय सम्बन्ध जिसे प्रतिभासमान कहना चाह रहे हो, तो यह समवाय क्या सम्बन्ध बुद्धिमें तद्रूपसे प्रतिभासमान होता है या 'इह' इस प्रकारके ज्ञानमे समवाय प्रतिभास होता है या समवाय ऐसे अनुभवमें ही समवाय प्रतिभासमान हो जाता है। इस प्रकार तीन विकल्पोमे समवायके प्रतिभासकी पृच्छा की गई है। यदि कहो कि सम्बन्ध बुद्धिमें यह समवाय तद्रूपतया प्रतिभासित हो जाता है तो वह सम्बन्ध क्या है जिसकी बुद्धिमे यह समवाय प्रतिभासित होता है? तब सम्बन्धका अर्थ बताओ, क्या सम्बन्धत्व जातिमे युक्तको कहते हैं या अनेक उपादानोसे उत्पन्न हुएको सम्बन्ध कहते है, या वह सम्बन्ध अनेकके आश्रित होता है या सम्बन्ध बुद्धिको उत्पन्न करने वाला सम्बन्ध होता

है, या सम्बन्ध बुद्धिके विषयको सम्बन्ध कहते हैं ? इस प्रकार सम्बन्धके स्वरूपके निर्धारण करनेके लिए ५ विकल्प किए गए हैं।

सम्बन्धत्व जातियुक्त, अनेकोपादानजनित, अनेकाश्रित व सम्बन्धबुद्ध-युत्पादक इन विकल्पोरूप सम्बन्धकी मीमांसा— सम्बन्ध स्वरूपके उक्त ५ विकल्पो मे से यदि प्रथम विकल्प लोगे, याने सम्बन्धत्व जातिसे युक्तको सम्बन्ध कहते हैं तब तो समवायमें सम्बन्धपना न आ सकेगा, क्योंकि समवायमें जातिका सम्बन्ध नही हो सकता। द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनमेंसे किसीका अभाव होनेपर और समवायान्तरका अभाव होनेसे सम्बन्धत्व जाति समवायमें नही लग सकती। जाति द्रव्य, गुण, कममें लग सकती है। सो समवाय न द्रव्य है, न गुण है, न कम है। और समवायान्तर भी नही बन सकता, अतएव सम्बन्धका लक्षण यह न किया जा सकेगा कि सम्बन्धत्व जातिमे जो युत हो सो सम्बन्ध है। यदि कहो कि सयोगकी तरह अनेक उपादानोंसे उत्पन्न होता है। जितने पदार्थोंका मेल होगा उस सयोगके उपादान कारण उतने कहलायेंगे ? जितने पदार्थ मिले। तो जैसे अनेक उपादानोंसे सयोग उत्पन्न होता है इसी प्रकार अनेक उपादानोसे समवाय भी जनि होता है। उत्तर— तब तो घट आदिकमें भी समवायत्वका प्रसग हो जायगा। क्योंकि देखो— घट भी अनेक उपादानोसे उत्पन्न हुआ है। घटके कण मिट्टीके कितने थे जिन मिट्टी अवयवोसे घडेकी उत्पत्ति हुई है। यदि कहो कि समवाय अनेकाश्रित होता है सो यह भी नही कहा जा सकता, क्योंकि घटत्व आदिकमे सम्बन्धपना लग जायगा। देखिये ! घट घटत्व और उसमें घटत्व जाति है, तो अनेक हो गए। घट और घटत्व। सम्बन्ध बुद्धिका जो उत्पादक हो उसे सबन्ध कहते हैं यह विकल्प भी युक्त नही है। सम्बन्ध बुद्धिके उत्पादकको सबध मान लेनेपर फिर तो नेत्रादिकमें भी सबन्धपनेका प्रसग हो जायगा। क्योंकि नेत्रादिक भी वस्तुमे सबन्धबुद्धिको उत्पन्न किया करते हैं। और, सम्बन्धबुद्धि को उत्पन्न करने वालेका नाम रखा है सम्बन्ध। तो इस प्रकारका सम्बन्धपना नेत्र, प्रकाश आदिक अनेक पदार्थोंमे घन बैठेगा अत सम्बन्ध बुद्धिके उत्पादकको सम्बन्ध कहते हैं यह भी बात युक्त नहीं बैठती।

सम्बन्धके सम्बन्धबुद्धिविषयत्व लक्षणका निराकरण अन्तिम विकल्प यदि कहोगे कि सम्बन्ध बुद्धिका जो विषयभूत है उसे सम्बन्ध कहते हैं। तो सम्बन्ध और सम्बन्धी जब ये दोनो एक ज्ञानके विषय बन गए तो सम्बन्धबुद्धिका विषयभूत सम्बन्ध ही क्यो कहा जाय ? सम्बन्धीको क्यो न कह दिया जाय। सम्बन्धबुद्धिके विषयभूत क्या है और किस स्थितिमें सम्बन्धकी बुद्धि बनी है वहां दो ही तो तत्त्व रहे—सम्बन्ध और संबन्धी। अब सम्बन्धबुद्धिका विषय रूप हेतुको सबन्धको तो ग्रहण कर लिया और सबधीको छोड दिया ? ऐसा क्यो सबधीमे भी सबन्धबुद्धिका विषयपना पाया जाता है। प्रत्येक विषयमें ज्ञानका भेद है। जिस विषयको ज्ञान जान

रहा है वह ज्ञान उस ही विषयका है। तो प्रतिविषय ज्ञान भेद होनेसे सम्बन्धियोंको ज्ञानका विषयपना कैसे कहा जा सकता है जिससे कि सम्बन्धियोंको भी सबन्धरूपता बन जाय, ऐसी आशंका भी न करना चाहिये। प्रतिविषयमे ज्ञानभेद नहीं है, अन्यथा जितने विषय हों उतने ही ज्ञान कहलायें। तो फिर मेचक ज्ञान नहीं बन सकता। चित्राद्वैत सिद्धान्तमे ज्ञान तो वह एक है और उस ज्ञानमे विषय हो रहे हैं चित्र विचित्र अनेक पदार्थ। तो चित्र विषयक अनेक पदार्थ एक साथ विषयमे आ रहे हैं और, ऐसा मान लेनेपर फिर मेचक ज्ञान आदिक किसीके नाम न बनेंगे। फिर तो चित्राद्वैत सिद्धान्त न रह सका। तो इस प्रकार उन तीन विकल्पोंमेंसे पहिला विकल्प तो न बन सका कि सबध बुद्धिमे तद्रूपसे यह समवाय प्रतिभात होता है। समवायका क्या प्रतिभास ? क्या मुद्रा, क्या ढंग है, इस सबन्धमें तीन विकल्पोसे पूछा जा रहा है ?

इह इस प्रत्ययमे समवायकी प्रतिभासमानताके विकल्पका निराकरण

अब दूसरे विकल्पकी बात कहेंगे कि 'इह' बुद्धिमे समवाय प्रतिभास होता है। जैसे कहा कि इस आत्मामे ज्ञान है, इन ततुवोंमे पट है तो जिसके लिये 'यह' सबध बोला गया है उसका सबन्ध 'इह' प्रत्यय समवाय प्रतिभात हो जाता है। यह बात भी सही नहीं है, 'इह' ऐसी जो बुद्धि है वह इस अधिकरणका निश्चय कराने वाली बुद्धि है। समवाय तो आधार आधेय भावरूप सबन्धके आकारसे मुद्रित है। इस कारण 'इह' इतनी मात्र बुद्धिमें समवाय घटित नहीं हो सकता है। "इह" कहा तो इससे अधिकरण जाना गया। इसमे बेर है, तो इसमे' ऐसा कहकर क्या जाना गया ? केवल आधार। तो 'इह' इस बुद्धिमे भी समवाय प्रतिभास नहीं होता। अन्य प्रकारके प्रतीयमान होनेपर अन्य आकार रूप अर्थकी कल्पना नहीं की जा सकती। अन्यथा तो बडी विडम्बना बन जायगी। घटका तो प्रतिभास हो रहा हो और पटका प्रतिभास आ पडे फिर तो कोई व्यवस्था ही न रहेगी। तो जिस आकारमें जो बात है वही प्रतिभात होती है, अन्य आकारमे पदार्थ प्रतिभात नहीं होते। तो 'इह' इस बुद्धिमें अधिकरण तो जाना जायगा, पर समवाय न जाना जायगा।

समवाय इस बुद्धिमे समवायकी प्रतिभासमानताके विकल्पका निराकरण

अब यदि कहोगे कि समवाय इस अनुभवमे (बुद्धिमे) तो यह प्रतीयमान होता है सो भी बात घटित नहीं है। समवाय बुद्धि ही कहाँ रही है। वही तो असम्भव है। यह ततु है। यह पट है, यह समवाय है इस प्रकार एक दूसरेसे विभक्त जुदी तीन चीजें बाह्य ग्राह्याकार रूपसे जैसे कि घट, पट, रस्सी ये बाह्य ग्राह्याकार रूपसे प्रतिभासमे आते हैं इस तरहसे ये तीन चीजें पृथक् किसीके प्रतिभासमे तो आती ही नहीं। किसीको भी यह अनुभव नहीं होता कि यह समवाय है। इस कारण जो तुम्हारा तीसरा विकल्प है कि समवाय, इस अनुभवमे समवाय प्रतिभासमान होता

है । वह घटित नही हो सकता । तो जब समवायका प्रतिभास घटित नहीं हो रहा तो उसे सम्बन्ध मानना और उसकी व्यवस्था बनाना कि समवाय एक है व्यापक है, वह सब एक कल्पनाजाल है ।

समवायके प्रतिभासमानत्वके विकल्पोंका निराकरण— कदाचित् मान लो कल्पनाजालमें कि समवायप्रतिभासमान होता है तो यह बतलावो कि सर्व पदार्थोंमें समवायीरूप अथवा अनुगत एक स्वभावरूप यह समवाय प्रतिभासमान होता है या उनसे व्यावृत्त स्वभाव वाला समवाय प्रतिभासमान होता है ? याने जो समवाय प्रतिभासमें आ रहा है वह पदार्थोंमें अलग स्वभाव होता हुआ प्रतिभासमें आ रहा है या विश्वके समस्त पदार्थोंमें समवायी बनकर सबमें अनुगत रहकर एक स्वभाव रूप प्रतिभासमें आता है इन दो विकल्पोंमें यह तो स्पष्ट अनुचित है कि व्यावृत्त स्वभाव वाले समवाय प्रतिभासमें आते हैं । इससे तो आपके सिद्धान्तकी रंच भी सिद्धि नही होती । बिल्कुल विरोधमें बात आती है । सभी पदार्थोंसे भिन्न रूपसे रहनेका स्वभाव वाला कुछ हो जिसका किसी अन्यसे सम्बन्ध ही नही है तो वह तो आकाश फूलवत् असत् हो गया और उसका किसीसे सबन्ध भी नहीं बन सकता । फिर समवायपना तो बनेगा ही कैसे ? सर्वमें समवायी बनकर रहने वाला समवाय तो प्रतिभासमान होना सिद्ध नही होता और इसी तरह सर्व पदार्थोंमें अनुगत होकर एक स्वभावरूप भी समवाय सिद्ध नहीं होता, क्योंकि यदि तुम्हारी ही बात मानेंगे कि जो सबमें अनुगत हो और एक स्वभाव हो वह समवाय कहलाता है तो सामान्य आदिक पदार्थ वैशेषिकाभिमत अनेक ऐसे हैं कि अनेक पदार्थोंमें अनुगत एक स्वभाव वाले हैं । उनका भी समवायपना फिर तो मान लिया जायगा । और, सीधीसी बात यह है कि समस्त समवायी पदार्थोंका प्रतिभास जब तक न हो तब तक समस्त पदार्थोंमें अनुगतरूपसे रहनेके स्वभावकी पद्धतिसे यह समवाय प्रत्यक्षसे जाननेमें नहीं आ सकता है । आप कहते हो कि समवायी समस्त पदार्थोंमें अनुगत होकर एक स्वभावरूप रहता है है तो इसका बोध कब हो जब समस्त समवायीका परिज्ञान हो जाय । सो समस्त समवायीका परिज्ञान हो नहीं रहा । अब शंकाकार कहता है कि अनुगतरूप और व्यावृत्तरूपको छोड़कर और ढगसे यह समवाय सबन्धरूपसे प्रतीयमान होता है । समाधानमें कहते हैं कि ऐसी सम्बन्धरूपताका तो पहिले ही उत्तर दिया जा चुका है कि सम्बन्ध नाम किसका है और उस सम्बन्धके स्वरूपके बारेमें ५ विकल्पोंमें पूछा गया था कि सबन्ध स्व जाति युक्तको सबन्ध कहा है या सम्बन्ध बुद्धिके उत्पादकको सम्बन्ध कहा है ? इत्यादि इन सब विकल्पोंका निराकरण कर दिया गया है, यों पहिले समवाय और सम्बन्ध तकका भी स्वरूप सिद्ध नहीं होता है ।

शंकाकार द्वारा अनुमानप्रमाणसे समवायकी सिद्धि करनेका आरम्भ शंकाकार कहता है कि समवायका परिचय अनुमान प्रमाणसे होता है । वह अनुमान

इस प्रकार है "इन तन्तुवोंमे पट है" इत्यादि रूप जो इह प्रत्यय हो रहा है वह सम्बंध का कार्य है, क्योंकि अबाध्यमान इह प्रत्यय होनेसे । जैसे कि इस कुण्डमें दधि है, यहाँ अबाध्यमान इह प्रत्यय है तो वह सम्बंधका कार्य है इस अनुमानसे इतना तो निर्विवाद सिद्ध ह कि 'इसमें" ऐसा जहाँ ज्ञान हो रहा हो वहाँ सम्बंध अवश्य होता है । तो "इह" जो ज्ञान होता है वह सम्बंधका कार्य है । सम्बंध है तब इह एक बोध हुआ करता है । अब इसके बादमें यह विचार और करना है कि तन्तुवोंमे पट है ऐसा कहनेपर सम्बंध तो है और यह निश्चय हो चुका, अब किस जातिका सम्बंध है यह निर्णय और करना है । इस निर्णयसे पहिले आधार तो बन ही गया ना, कि इह इद प्रत्यय अहेतुक नहीं हो सकता, क्योंकि यह ज्ञान कादाचित्क है । जो जो भी वस्तु कादाचित्क होती है, जो जो भी परिणमन बात कादाचित्क होती है वह नियमसे सहेतुक होती है । तो इस कुण्डमें दधि है ऐसा ज्ञान है वह भी कादाचित्क है और तन्तुवोमें पट है ऐसा जो ज्ञान हो रहा है वह भी कादाचित्क है, अतएव इस ज्ञानका कोई हेतु अवश्य होना चाहिए और वह हेतु है सम्बन्ध ।

'तन्तुषु पट' इस ज्ञानकी तन्तुहेतुकता व पटहेतुकताका निराकरण-- इस प्रसगमे कोई यह नहीं कह सकता कि तन्तुवोंमे पट है । ऐसा जो ज्ञान हो रहा है वह तन्तु हेतुक है अथवा पट हेतुक है याने तन्तुवोमे पटका जो बोध हो रहा है वह तन्तुवोंके कारण हो रहा है, इस ज्ञानका कारण कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । क्योंकि तन्तुवोंमें पट है यह ज्ञान यदि तन्तु हेतुक होता अथवा पट हेतुक होता तो वहा इस तरहसे ज्ञान होना चाहिये था कि यह तन्तु है पट है या यह पट है । अगर तन्तुवोंके कारणसे ज्ञान हो रहा है तो वहाँ इस प्रकारका ज्ञान होगा कि यह तन्तु है और पटके कारणसे यदि ज्ञान हो रहा है तो वह इस ही मुद्रामे ज्ञान होगा कि यह पट है, तन्तुवोंमें पट है ऐसे ज्ञानका कारण न तन्तु है न पट है, किन्तु कोई सम्बन्ध है । कोई क्षणिकवादी यहा यह भी शका नहीं कर सकता कि तन्तुवोंमें पट है ऐसा जो ज्ञान हो रहा है वह वासना हेतुक है, सम्बन्ध हेतुक नहीं क्योकि क्षणिक पदार्थोंमे सम्बन्धकी कल्पना ही नहीं उठती है । पदार्थ उत्पन्न होते ही अपने स्वरूपका लाभ ले या अन्य पदार्थोंका सम्बन्ध बनाये स्वरूप लाभ ही होगा और फिर उत्तर क्षणमें वह पदार्थ रहता ही नहीं । अत: जो कुछ भी यह सम्बन्ध विषयक ज्ञान होता है यह सम्बन्ध हेतुक नहीं है । किन्तु वासनाहेतुक है, ऐसा भी कोई क्षणिकवादी कह नहीं सकते । इसका कारण यह है कि वासना स्वयं कारणरहित है । तो वासना का ही होना सम्भव नहीं है । वासनाकी ही उत्पत्ति नहीं है तब फिर इह इद प्रत्ययको वासनाहेतुक बताया जाय, यह कैसे युक्त हो सकता है । क्षणिकवादमे वासनाका कोई कारण नहीं बन सकता । यदि ये कहें कि पूर्व ज्ञान कारण बन जायगा तो यह बतलायें ये कि पूर्वज्ञान जो बना है उसका कारण कौन है ? यदि कहो कि उसको पहिली

वासना है तो उस वासनाका कारण कौन है ? पूर्वज्ञान। इस तरहसे अनवस्था दोष हो जायगा। तो जब वासनाका कोई कारण ही न बन सका, वासनाका सद्भाव ही सिद्ध न हो सका, तो किसी ज्ञानको वासनाहेतुक कहना बिल्कुल अयुक्त बात है।

"तन्तुषु पट" इस ज्ञानकी वासनाहेतुकताका निराकरण—यदि क्षणिकवादी यह कहे कि ज्ञान और वासनामें अनादिपनका सम्बन्ध है अर्थात् यह परम्परा अनादिसे चली आ रही है। ज्ञान वासनासे हुआ, वासना पूर्व ज्ञानसे हुई, वह ज्ञान वह वासनासे हुआ। इस तरहसे ज्ञान और वासनामें अनादिपना होनेसे दोष नहीं लग सकता है। ऐसा क्षणिकवादी सिद्ध नहीं कर सकते हैं। कारण यह है कि इस तरह ज्ञान और वासनामें अनादिपनकी सिद्धि की जाय तो देखो नील आदिक पदार्थोंका सतानान्तर याने परत्व और नील आदिकका स्वसतान और ज्ञानाद्वैत इन की सिद्धिका भी अभाव हो जायगा। क्योंकि नील आदिकसे उत्पन्न होने वाला ज्ञान तो यह नील है इस प्रकारसे ही उत्पन्न होता है ना ? और, विद्यमान नील आदिकसे उत्पन्न होनेके कारण अब कल्पनामात्र वासनासे उत्पन्न होना नहीं बन सकता। इस कारण "इह इद" इस प्रत्ययको अनादि वासना हेतुक नहीं कह सकते और नील आदिक ज्ञानको भी अनादि वासनाके वशसे नहीं कह सकते। यदि वहाँ आप यह कहे कि नील आदिक ज्ञान स्वत ही प्रतिभासमान होते हैं तो यह बात क्षणिकवादमें सम्भव नहीं है और इसी कारण जो तंतुवोंमें पट है, इस प्रकारको इह इद की मुद्रा वाला ज्ञान हुआ है वह कादाचित्क है इसलिये अहेतुक तो हो नहीं सकता। सो उस ज्ञानका जो कुछ भी हेतु है वह सम्बन्ध है। क्योंकि अबाध्यमान इह प्रत्यय हो रहा है। जहाँ अधिकरणरूप इह की मुद्रारूप प्रत्यय होगा वहाँ सम्बन्ध अवश्य होगा और यह सम्बन्धरूप ज्ञान न तो आधारभूत पदार्थोंके कारण हुआ और न आधेय पदार्थ के कारण हुआ और न वासनाके कारण हुआ, यह तो सम्बन्धके कारण हुआ है।

"तन्तुषु पट" इस ज्ञानमें तादात्म्यहेतुकता व संयोग हेतुकताकी असिद्धिका प्रशंकन—अब कोई स्याद्वादी ऐसी शंका करे कि तंतुवोंमें पट है यह जो ज्ञान हुआ है वह तादात्म्य हेतुक हुआ है सो यह भी वे न कह सकेंगे कारण यह है कि तादात्म्यका अर्थ है एकत्व और एकत्व जहाँ है अर्थात् एक हो बात जहाँ रह गयी वहाँ सम्बन्धका प्रश्न न रहता, क्योंकि सम्बन्ध हुआ करता है दो पदार्थोंमें पर तंतु और पट में तो अब दोपना रहा ही नहीं। तादात्म्य जब मान लिया गया तो तादात्म्यके मायने एकपना। एकपनाका आधार है एक। एकमें सम्बन्ध क्या ? और असलियत तो यह है कि तंतु और पटमें एकत्व ना है नहीं क्योंकि प्रतिभास भेद हो रहा है। तंतु तंतु ही कहलाता है, पट पट ही कहलाता है। तंतुवोंके प्रतिभासमें और ही प्रकारसे वस्तु ज्ञेय हो रही है और पटके प्रतिभासमें ज्ञेय और ही प्रकारसे प्रतिभासित होता है इस कारण तंतु और पटमें एकपना नहीं हो सकता। विरुद्ध धर्मोंका भी इसमें अध्यास है।

ततुमे ततुके धर्म हैं। लम्बा होना, इतनी सूची मात्र होना और पटमें धर्म और प्रकार है, ततुवोसे ठढ तो नही मिटाई जा सकती। पटमे ठढ मिटती, तन ढकता। ततुवोका काम और है पटका काम और है फिर ततु और पटमे एकता कैसे हो सकती है? और फिर परिमाणमे भी अन्तर है। ततुवोंका परिमाण और ढगका है, पटका परिमाण और ढगका है। ततु हजारो गजके हैं और पट देखो १०–२० गजका ही हैं, तो परिमाणमें भी अन्तर है, सख्यामे भी अन्तर है। ततुकोकी हजारोकी सख्या है पर पट तो एक ही रहता है। फिर जातिभेद भी है। ततुमें ततुत्व है, पटमें पटत्व है. इस कारण इतने भिन्न जचने वाले ततु और पटमे एकताकी बात कहना कैसे युक्त है? और, जब एक नही है तो उनमे तादात्म्य भी कैसे कह सकते हो? इससे ततुवोमें पट है यह ज्ञान तादात्म्य हेतुक नही किन्तु सम्बन्ध हेतुक है। कोई यह कहे कि ततुवोमे पट है यह ज्ञान सयोग हेतुक है। बहुतसे ततु हैं इनमे सयोग किया गया इस कारणसे पटका ज्ञान हुआ। यो सयोग हेतुक भी न बताया जा सकेगा। इसका कारण यह है कि युत सिद्ध पदार्थोंमें ही सयोग सम्भव होता है। पट यदि भिन्न पदार्थ होता और ततु भिन्न पदार्थ होता और भिन्न पदार्थ होनेके मायने यह है कि ततु जैसे पहिलेसे प्रसिद्ध है इसी प्रकार पट भी पहिलेसे प्रसिद्ध होता। तब इन दोका सयोग बताया जा सकता था लेकिन ततु और पट युतसिद्ध पदार्थ नही हैं इसलिए ततुवोमें पट हैं इस प्रकारका जो ज्ञान हुआ है वह सयोग हेतुक भी नही है।

सम्बधपूर्वक निश्चित हुए "ततुओमे पट है" इस ज्ञानकी समवाय-पूर्वकताकी सिद्धिका शकाकार द्वारा कथन—यहाँपर कोई यह कहे कि यदि ततुवोंमे पट है ऐसा ज्ञान समवाय पूर्वक सिद्ध हो रहा है तो फिर कोई दृष्टान्त बताओ क्योकि, जो भी दृष्टान्त दोगे अभी तो वह पक्षमे ही है। अर्थात् समवायकी सिद्धि ही की जा रही है तो कोई साध्य दृष्टान्तमें न मिल सकेगा। और, साध्य विकल होनेसे हेतु विरुद्ध बन जायगा ऐसा भी कोई नही कह सकता। क्योकि इस समय ततुवोंमे पट है इस प्रकारके ज्ञानको समवायपूर्वक नही सिद्ध कर रहे हैं, अभी तो हम न तो समवायपूर्वक सिद्ध कर रहे और न सयोग पूर्वक सिद्ध कर रहे, इस समय तो केवल सम्बधमात्र पूर्वक सिद्ध कर रहे और खूब समझलो– तन्तुवोंमे पट है इस प्रकारका ज्ञान देखो! न तो ततुवोके कारणसे हुआ न पटके कारणसे हुआ। ततुके कारणसे होता तो ये ततु हैं इतना ही ज्ञान होता। पटके कारणसे होता तो यह पट है इतना ज्ञान होता। वासना सिद्ध हो ही नही सकती। तो वासना हेतु कभी नहीं कह सकते। तादात्म्य भी नही बन रहा है। तादात्म्य हेतुक भी यह ज्ञान नहीं है। सयोगहेतुक भी यह ज्ञान नहीं है। तो जब "इह इद" प्रत्यय अहेतुक तो है नहीं और आधार आधेय सयोग वासना तादात्म्य इनके कारण भी नही हो रहा है तो परिसेष्य न्यायसे यही सिद्ध हो सकता है कि ततुवोंमे पट है इस प्रकारके ज्ञानको समवाय ही उत्पन्न कर सकता है। तो अनुमानसे ततुवोमे पट है इस प्रकारके बोधको सम्बन्धमात्र हेतुक सिद्ध

करके अब विशेष दृष्टिसे खोज करें कि आखिर यह कौनसा सम्बन्ध है, तो भली प्रकार विदित होगा कि "इह इद" प्रत्यय जो अयुतसिद्धमें हो रहा है वह समवाय सम्बन्ध पूर्वक हो रहा है और उत्पत्ति जो पटकी हुई है उसका समवायी कारणमें क्रिया होती है वह तो समवायजन्य है। संयोगजन्य नहीं मानी। तो अनुमानसे यह बात विशिष्ट प्रतीत हो गयी कि समवाय सम्बन्ध है। उसका परिचय अनुमानसे निर्विवाद सिद्ध हो जाता है।

शंकाकारके समवायसाधक अनुमानमें हेतुकी आश्रयासिद्धता - अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं। शंकाकारने जो यह कहा कि समवायकी सिद्धि अनुमानसे हो जाती है और वह अनुमान दिया गया है यह कि इन तन्तुवोंमें पट है आदिक जो इह प्रत्यय हो रहा है, "इसमें" ऐसा जो ज्ञान हो रहा है वह सम्बन्धका कार्य है, क्योंकि अबाध्यमान 'इह' प्रत्यय होनेसे। जैसे इस घटकामें दही है। यहां जो इह प्रत्यय हो रहा है सो सम्बन्धका कार्य है ना! दहीका घटका आधार है, दही आधेय है और उस प्रसंगमें जो "इसमें" ऐसा ज्ञान हो रहा है वह सम्बन्धके कारण ही हो रहा है इस प्रकार समवायकी सिद्धि के लिये जो अनुमान दिया है यह बिना विचारे ही कहा गया है, क्योंकि इस अनुमानमें जो हेतु दिया है वह आश्रयासिद्ध है। अप्रसिद्ध विशेषण है और स्वरूपासिद्ध है तथा अनैकांतिक भी है। आश्रयासिद्ध तो यों है कि ऐसा ज्ञान जो बताया है कि "इन तन्तुवोंमें पट है" सो प्रतिवादीके लिये इस ज्ञानकी सिद्धि मान्य नहीं है। तन्तुवोंमें पट कहां है? तन्तु तन्तु है, पट पट है। तन्तुवोंमें तन्तु ही हैं पटमें पट है। यहां "इहेद" यह ऐसा अबाधित प्रत्यय नहीं है कि जिसके विरुद्ध और कुछ न कहा जा सकता हो तो "इन तन्तुवोंमें पट है" ऐसा ज्ञान है यहां धर्मी। इस अनुमानमें सिद्ध तो यही किया जा रहा है सो इसमें जो पक्ष है वह तो प्रसिद्ध होना चाहिए। धर्मी यदि अप्रसिद्ध है तो उसमें फिर अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। तो यहां यह धर्मी ही सिद्ध नहीं है।

शंकाकारके समवाय साधक अनुमानमे हेतुकी अप्रसिद्धविशेषणता व स्वरूपासिद्धता —अबाधित इह प्रत्यय होनेसे यह हेतु दिया जा रहा है शंकाकार द्वारा समवाय साधक अनुमानमें। वह हेतु अप्रसिद्ध विशेषण है। यहां जो कहा कि पटमें तन्तु है यदि कोई यों कह बैठता है कि देखो कपड़ेमें तन्तु है, तो इसमें क्या बाधा आयेगी। बल्कि तन्तुवोंमें कपड़ा है। इसके बजाय ऐसा कहने वाले बहुत मिलेंगे कि इस कपड़ामें तन्तु हैं। तब अप्रसिद्ध विशेषण हो गया ना! जैसे कहते हैं कि वृक्षमें शाखायें हैं तो वृक्ष है अवयवी, शाखायें हैं अवयव। तो अवयवीमें अवयव बतानेकी पद्धति भी है। यहां भी पट तो है अवयवी और तन्तु हैं अवयव थोड़े-थोड़े हिस्से तो यहां भी अवयवीमें अवयव बतानेकी पद्धति विशेष है। लोग कहते हैं कि इस कपड़ेमें सूत अच्छा है। इस कपड़ेमें ऐसा सूत है, तो इस तरहके ज्ञान होनेके कारण यहां जो

ज्ञान अनुमानमें बताया है कि इन तन्तुवोंमें पट है तो वह ज्ञान असिद्ध विशेषण हो गया। इन तन्तुवोंमें पट है ऐसा कहकर शंकाकारका यह भाव था कि अवयवोंमे अवयवीका रहना बताया जा रहा है। लेकिन लोकमे प्रायः ज्ञान चल रहा है कि पटमें तन्तु है वृक्षमे शाखायें हैं तो यहाँ अवयवीमें अवयवोंकी वृत्तिके रूपसे ज्ञान चल रहा है और यह लोक प्रसिद्ध अधिक है। तन्तुवोंमे पट है ऐसा कहने वाले विरले ही होंगे जो जानकर कहेंगे। किन्तु कपडेमे तन्तु हैं ऐसी बात करनेकी एक लोक प्रसिद्धि भी है। इस कारण तुम्हारा हेतु असिद्ध विशेषण है। समवाय साधक अनुमानमे जो अबाध्यमान 'इह' प्रत्ययका हेतु दिया गया है वह स्वरूपासिद्ध भी है क्योंकि वहाँ तन्तुके ज्ञानमे अथवा पटके ज्ञानमे 'इह' प्रत्ययपनेका अनुभव नहीं होता। जो कोई भी पुरुष वहा अनुभव करता है तो इस तरह अनुभव करता है कि यह पट है। तन्तुवोमे यह अनुभव करता है कि ये तन्तु हैं, पर तन्तुको निरखकर कदाचित् कोई विशेष बातका वर्णन करना चाहे तो भले ही अनेक बातें कहे लेकिन ज्ञान तो सीधा तन्तु रूपसे और पट रूपसे हुआ करता है।

शंकाकारके अबाध्यमानेहप्रत्ययत्व हेतुमे अनैकान्तिक दोष—शंकाकार का हेतु अनेकांतिक दोषमें दूषित है। शंकाकारका अनुमान है कि इन तन्तुवोंमें पट है आदिकमे जो 'इह' प्रत्यय है वह सम्बन्धका कार्य है क्योंकि अबाध्यमान 'इह' प्रत्ययरूप होनेसे। तो जहाँ जहाँ इह इह प्रत्यय हो जिसमे "इह' ज्ञान चले, वहाँ वहाँ सम्बन्ध होना चाहिये ना तभी तो अनुमान सही कहलायेगा। लेकिन देखिये! जब यह ज्ञान होता है कि इस प्रागभावमे अनादिपना है तो आप बतलावो कि इस प्रागभावका और अनादिपनेका कोई सम्बन्ध भी है। अभाव तो तुच्छ अभाव है। उसका क्या सम्बन्ध है। अभाव ४ प्रकारके कहे गए हैं—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव। प्रागभाव, कहते हैं कार्य होनेसे पहिले कार्यके अभाव होनेको यहाँ प्रागभावका भाव यह है कि किसी भी क्रियासे पहिले जो स्थिति है उन स्थितिका नाम है प्रागभाव, लेकिन विशेषवादमें अभावको भाव स्वरूप नहीं माना है, तुच्छाभाव माना है तो क्रियाका पहिले अभाव होना यह बात बतावो किसी दिनसे है या अनादिसे है? जिस समय जो भी परिणति होती है उस परिणतिका उस समयसे पहिले अनन्तकाल तक अभाव था। तो यो प्रागभाव अनादि सिद्ध ही है। और उसमें यह ज्ञान भी चलता है कि प्रागभावमे तो अनादिपन है अर्थात् प्रागभाव किसी दिनसे शुरू हुआ हो ऐसा नही है, किन्तु अनादिकालसे बराबर चला आ रहा है। जिस समय जो परिणति होती है उसका उससे पहिले अभाव था। तो ज्ञान तो किया गया इस तरह कि इस प्रागभावमे अनादिपन है लेकिन प्रागभावका और अनादिपनका कोई सम्बन्ध नही। उस 'इह' ज्ञानमे सम्बन्धपूर्वकताका अभाव है। हेतु तो मिल गया, पर साध्य नहीं बन रहा, इस हीका नाम है अनैकान्तिक दोष। और, भी देखिये! प्रध्वंसाभावके प्रति भी यह कहा जाता है कि प्रध्वंसाभावमें प्रध्वंसाभावका अभाव है, याने

जो चीज मिट गई उस मिटनेमें मिटनेका अभाव है। याने फिर न हो जायगा। जो मिटा सो मिटा ही मिटा। तो प्रध्वंसाभावमें प्रध्वंसाभावका अभाव है। यदि प्रध्वंसाभावका अभाव न हो प्रध्वंसाभावमें तो उसका मतलब यह निकाला जायगा कि कभी प्रध्वंसाभाव मिट जायगा। पर ऐसा कहीं हुआ है ? जो पर्याय मिटी सो मिटी। उसके समान पर्याय बनती रहो। पर जिसका प्रध्वंसाभाव हो उसका तो सदा ही प्रध्वंसाभाव हो। तो प्रध्वंसाभावमें प्रध्वंसाभावका अभाव है ऐसा प्रत्यय तो हो रहा, अबाध्यमान 'इह" ज्ञान तो हो रहा लेकिन सम्बन्धपूर्वक नहीं है वह इह ज्ञान, क्योंकि आधार आधेय यहाँ दोनों अभावरूप हैं।

प्रागभाव व अनादित्व विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्ध माननेकी अयुक्तता—शंकाकार कहता है कि हम यहाँ विशेषण विशेष्य रूप सम्बन्ध मान लेंगे। विशेष्य है प्रध्वंसाभाव और विशेषण बन जायगा प्रध्वंसाभावका अभाव। इसी तरह प्रागभावमें अनादिपन है यहाँ प्रागभाव तो हो जायगा विशेष्य और अनादिपन हो जायगा विशेषण। तो इसमें सम्बन्ध बन गया ना, तब तो हेतु सही हो गया कि जहाँ अबाध्यमान 'इह' प्रत्यय हो वहाँ समझना चाहिए कि यह सम्बन्ध पूर्वक है। समाधानमें कहते हैं कि जब सम्बन्ध ही नहीं है उनमें, अभावरूप चीज है, प्रागभाव है सो भी अभावरूप, अनादि शब्द है—सो भी अभावरूप, आदि न है, प्रध्वंसाभाव है सो भी अभावरूप, प्रध्वंसाभावका अभाव है सो भी अभावरूप। उनमें सम्बन्धकी क्या चर्चा है ? और जब सम्बन्ध नहीं बन सकता तो विशेषण विशेष्य भाव तो असम्भव है। यदि सम्बन्धके बिना विशेषण विशेष्यभाव बना लिया जाय तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि सभी चीजें सभीके विशेषण और विशेष्य बन जायेंगे क्योंकि अब सम्बन्धके बिना ही कुछसे कुछ किसीका विशेषण विशेष्य बनने लगा। पर ऐसा तो नहीं है। सम्बन्धके होनेपर ही द्रव्य, गुण कर्म आदिकमें एकका विशेषणपना तो दूसरेका विशेष्यपना माना जा सकता है। लेकिन अब सम्बन्धके अभावमें भी विशेषण विशेष्य भावकी कल्पना करने लगे तो इसमें तो बड़ी विडम्बना बन जायगी। कहो विन्ध्याचल पर्वत और हिमालय पर्वत इन दोनोंमें विशेषण विशेष्य भाव रच डालो, एक पहाड़ विशेषण हो गया। एक विशेष्य, पर है क्या ऐसा ? दोनों दूर दूर अपनी अपनी जगह स्वतंत्र स्वतंत्र रूपमें पड़े हुए हैं, उनमें सम्बन्धभाव ही नहीं है। जब सम्बन्ध नहीं होता तो उनमें विशेषण विशेष्य भावकी कल्पना नहीं की जा सकती। तो शंकाकारका यह हेतु कि "अबाध्यमान इह प्रत्यय होनेसे" अनैकान्तिक दोषसे दूषित हो जाता है।

प्रागभाव व अनादित्वके विशेषणविशेष्यभावमें निबन्धन अदृष्टको माननेकी मीमांसा—शंकाकार कहता है कि हम यहाँ अदृष्टरूप सम्बन्ध विशेषण विशेष्य भावका कारण मान लेंगे। याने प्रागभावमें अनादिपनकी जो बात कही गयी है

सो वहाँपर प्रागभाव विशेष्य है, अनादिपन विशेषण है। इस भावको बताने वाला कारण क्या है। ऐसा पूछा गया है तो हम अदृष्ट नामका सम्बन्ध कहेंगे। क्योंकि जब अदृष्ट अनुकूल होता तब पदार्थोंमें वे परिणतियाँ होती हैं। भाग्यके अनुसार सब दृष्टि चलती है ना, तो इसमे हम अदृष्टका सम्बन्ध बता देंगे। समाधानमे कहते हैं कि यह बात आपकी यो ठीक नही कि सवत्र आपने ६ माने हैं। फिर तो सख्याका विघात हो जायगा। अब तो यह अदृष्ट नामका भी सम्बन्ध कहा जाने लगा। और, इस अदृष्ट मे सबन्धरूपता है ही नहीं। क्योंकि सम्बन्ध होता है दो पदार्थोंमे रहने वाला। लेकिन अदृष्ट तो आत्मामे रहने वाला बताया गया। अदृष्ट आत्मामें रहने वाला है तो न वह प्रागभावमे ठहरा और न अनादिपनमे ठहरा। तो प्रागभाव और अनादिपन दो में न ठहरने वाला अदृष्ट नामक सम्बन्ध कैसे द्विष्ठ बन जायगा यह बात विचारनेकी है। और, यदि यह अदृष्ट अदृष्ट नामका सम्बन्ध मान लिया जाता है तो गुण गुणी आदिक भी इस अदृष्टके कारण ही सम्बद्ध हो जायेंगे। जैसे कि प्रागभावमें अनादिपनका सम्बन्ध अदृष्टने बना डाला है तो सभी जगह गुण, गुणी आदिकमे सम्बन्ध अदृष्टसे कहा जायगा। फिर समवाय सयोग आदिक सम्बन्धकी कल्पना करना व्यर्थ है। सब जगह अदृष्टकी बात लगा दी जायगी। तो समवायकी सिद्धिके लिए जो हेतु दिया है कि "अबाध्यमान इह प्रत्ययरूप होनेसे" "इह इद" इसमे जो ज्ञान हो रहा है वह सम्बन्ध पूर्वक है यह हेतु असिद्ध भी है और अनैकान्तिक दोषसे दूषित भी है।

सबधसाधक हेतुसे सबधमात्रकी सिद्धिमे अविवाद—विशेषवादी यह बतलायें कि इस अनुमानसे जो कि समवायको सिद्ध करनेके लिए कहा गया है कि "इन तंतुवोमे पट है आदिक रूपमे जो इह प्रत्यय (ज्ञान) है वह सम्बन्धका कार्य है क्योंकि अबाध्यमान इह प्रत्यय होनेसे" तो इस अनुमानके द्वारा क्या सम्बन्ध मात्रकी सिद्धि की जा रही है या सम्बन्ध विशेषकी सिद्धिकी जा रही है? यदि कहो कि सम्बन्ध मात्रकी सिद्धि की जा रही है तब तो ठीक है तादात्म्य नामक सम्बन्ध इष्ट ही है ततुपटमे, किसी प्रकारके अनेक एक पदार्थोंमें तादात्म्य नामका सम्बन्ध है। शकाकार कहता है कि ततु और पटमे तादात्म्य कैसे है? यदि इनमे तादात्म्य होता तब तो या ततु रह जाता? तादात्म्यके मायने तो है एक रह जाना। दो रहे तो तादात्म्य क्या रहा? ततु और पटमे यदि तादात्म्य सम्बन्ध हो तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि या तो ततु रहेगा या पट रहेगा। और, फिर दूसरी बात यह है कि ततु और पट ये दोनो सम्बन्धी एक बन गए तो सम्बन्ध हो नाम किसका है, क्योंकि सम्बन्ध तो द्विष्ठ होता है। दो पदार्थोंमें सम्बन्ध लगाया जाता है। समाधानमें कहते हैं कि जो दो पदार्थोंमे सम्बन्ध लगता है उसको तो इस प्रकारका अभाव कह सकते हो कि अब सम्बन्धी एकपनेको प्राप्त हुए तो फिर द्विष्ठ कहाँ रहा और सम्बन्ध कहाँ रहा? किन्तु तादात्म्यरूप सम्बध तो द्विष्ठ नही हुआ करता। तादात्म्य सम्बन्धका तो अर्थ है तत्स्वभावत: उस स्वभाव रूप है। यही तादात्म्यका अर्थ है तो एक पदार्थ रहे और उसमे उसके स्वभावकी बात

कही जाय कि यह पदार्थ इस स्वभाव रूप है तो यहाँ दोकी बात कहाँ कही गई ? ततस्वभावता रूप सम्बन्धको तादात्म्य कहते हैं। उसका प्रभाव ततु पटमें नही किया जा सकता है, क्योंकि ततुस्वभाव ही पट है। इससे भिन्न कोई पट नही हैं। ततु और पट ये दो पदार्थ अलग अलग हों और फिर इनमें किसी सम्बन्धकी बात कही जाय तो द्विष्ठ कहा जायगा, पर यहाँ दो हैं ही कहाँ ? ततु ही सब आतान वितान रूप हुकर पटरूप बन गए। आतान वितान रूप हुए ततुवोंसे भिन्न कोई पट उपलभ्यमान है। ततु यह है, पट यह रखा है, कोई देश आदिकसे भिन्न पट नही है तो यह तादात्म्य सम्बन्ध है और इस अनुमानसे यदि सम्बन्धमात्र सिद्ध करते हो तो उसमें कोई आपत्ति नहीं है। पर, वह सम्बन्ध यहाँ तादात्म्यरूप है समवाय नामका कोई पदार्थ अलग हो और उसके कारण इह इद प्रत्यय हुआ करता हो सो बात नही है।

सवधसाधक हेतुसे समवायसबध विशेष सिद्ध करनेकी अनुपपत्ति— यदि कहो कि हम उक्त अनुमानसे सम्बन्ध विशेष सिद्ध कर रहे हैं, ततुवोंमें पट है और उसके लिए जो अनुमान दिया है कि "इह इद" यह ज्ञान सम्बन्धका कार्य है, अबाध्यमान इह प्रत्यय होनेसे" और उससे तुम सिद्ध करना चाहते सम्बन्ध विशेष तो यह बतलावो कि वह सम्बन्ध विशेष क्या सयोग नामका है या समवाय नामका है ? जिस सम्बन्ध विशेषको तुम अनुमानसे सिद्ध करना चाहते हो ? यदि उसे सयोग सम्बन्ध कहोगे तो ऐसा तो तुमने माना ही नही है ततुवोंमें पट है, इसमें जो "इह इद" प्रत्यय हो रहा है वह सयोग पूर्वक नही माना है विशेषवादमें। और कहो कि समवाय सम्बंध है यह याने यह अनुमान ततुवोंमें पट है' इसमें समवाय सम्बन्धको सिद्ध कर रहा है तो फिर इस अनुमानमें जो दृष्टान्त दिया है कि "कुण्डमें दधि इत्यादि इह इद प्रत्ययकी तरह" तो दृष्टान्तमें तो समवाय नही माना गया है तब दृष्टान्त साध्य विकल हो जायगा। शकाकारका पूरा अनुमान दृष्टान्त सहित इस प्रकारका है कि इन ततुवोंमें पट है आदिकमें जो इह प्रत्यय है वह सम्बन्धका कार्य है। अबाध्यमान इह प्रत्यय होने से जैसे कुण्डमे दधि है इसमें इह प्रत्ययरूप हो रहा है। सो अनुमान तो दिया यह और दृष्टान्त दिया कुण्ड दधिका। तो अनुमानके द्वारा जो तुम साध्य सिद्ध करना चाहते हो वही साध्य तो दृष्टान्तमें आना चाहिये। अब अनुमानसे तो तुम साध्य सिद्ध करना चाहते हो समवाय सम्बन्ध, और वह दृष्टान्तमें पाया नहीं जाता इस कारण सम्बन्ध विशेष भी सिद्ध करनेका अनुमान सही नहीं उतरता।

परिशेषन्यायसे समवायसिद्धि करनेका शकाकारका प्रस्ताव—अब शकाकार कहता है कि हम इस अनुमानसे न तो सयोग सिद्ध करना चाहते न अनुमान सिद्ध करना चाहते, किन्तु सम्बमात्र सिद्ध करना चाहते। और, फिर सम्बन्धमात्र सिद्ध हो जानेपर परिशेषन्यायसे समवाय सिद्ध हो जाता है यह बात बन [illegible]। समाधानमें कहते हैं कि यह भी तुम्हारा कथन मात्र है। परिशेषन्यायसे [illegible] सिद्धि

होना असम्भव है क्योंकि प्रथम तो समवाय सम्बन्धमें अनेक दोष दिखाये गए हैं। समवाय पदार्थकी सिद्धि ही नही हो रही है और फिर परिशेषन्याय तो वहाँ चलेगा जहाँ अन्य-अन्य सम्बन्ध तो अनेक दोषोमे दूषित हो और समवाय सम्बन्ध निर्दोष हो। वहा ही तो परिशेषन्यायसे सम्बन्ध सिद्ध किया जा सकेगा जैसे कि लो और और सम्बन्ध माननेमे यहा यहा दोष आता है किन्तु समवाय सम्बन्ध माननेमे कोई दोष नही आता पर ऐसा तो नही है। समवाय सम्बन्धकी ही सिद्धि नही हो रही है तब परिशेष न्यायसे सम्बन्धकी बात बताना कहा युक्त है? तथ्यकी बात यह है कि पदार्थ ही स्वय जिस रूपमे हैं उस रूपसे बनाये जाते हैं और उनमे यदि कोई पदार्थ निरन्तर है तो उसे कहते हैं सयोग सम्बन्ध। सयोग नामका कोई गुण नही है, पदार्थ नही है कि जिसकी वजहसे सयुक्त कहा जाय, किन्तु वे पदार्थ निरन्तर रहने वाले हैं। उनके बीचमे अन्तर नही पडा हुआ है। इस कारण सयोग कहते हैं, और, समवाय एक ही पदार्थमे प्रयोजनवश भेद करके बात कही जाती है, उस कथनमे समवाय कह लीजिए जिसका कि सही नाम तादात्म्य है तो न तो सयोग नामक पदार्थ ही कुछ है और न समवाय नामक पदार्थ ही कुछ है, फिर अनुमानसे समवाय पदार्थकी कैसे सिद्धि की जा सकेगी?

समवायसिद्धिमे परिशेषन्यायकी असभवता—अच्छा, अब बतलावो कि जो तुम कह रहे हो कि परिशेष न्यायसे सम्बन्ध सिद्ध होता है तो वह परिशेष क्या चीज कहलाती है? शकाकार कहता है कि परिशेषका यह अर्थ है कि प्रसक्तोका प्रतिषेध करनेपर शेष बचे हुएके ज्ञानका जो कारण बने सो परिशेष है। कोई बात कहे और उसके अनुरूप कुछ-कुछ सदृश अनेक वस्तुवोका प्रसग आये, ये सभी लागू होना चाहिये यो स्थितियाँ आयें तो उनमेंसे प्रसक्तका तो प्रतिषेध कर देते हैं याने जो वास्तविक लागू होने योग्य नहीं है और वह भी लागू होनेके लिए आया है तो उसका निषेध कर देते हैं फिर जो कुछ शेष बचे उसका जो ज्ञान कराये उस ज्ञानका नाम है परिशेष तो समाधानमें पूछते हैं कि जिसको आपने परिशेष कहा है जो प्रसक्तोका प्रतिषेध करनेपर शेष बचेका ज्ञान कराये उसे परिशेष कहते हैं तो ऐसा परिशेष प्रमाण है अथवा अप्रमाण? अप्रमाण तो कह नही सकते क्योंकि जो स्वय अप्रमाण है उसके द्वारा किसी भी अभिमतकी सिद्धि कैसे की जा सकती है? जब साधन ही अप्रमाण है तो उसके द्वारा किसी तत्त्वको सिद्ध कैसे किया जा सकता है? क्योंकि अगर अप्रमाण अभिमत सिद्ध करने लगोगे तो इसमे अतिविडम्बना आ जायगी। फिर तो अटपट जिस चाहे बातसे जिस चाहेकी सिद्धि कर दी जाय। यदि कहो कि वह परिशेष प्रमाणभूत है तो वह प्रत्यक्ष है अथवा अनुमान? यदि कहो कि प्रत्यक्ष है तो यह बात अयुक्त है, क्योंकि प्रसक्तका प्रतिषेध करनेके द्वारसे किसी अभिमतकी सिद्धि करनेमे प्रत्यक्ष समर्थ नही है। प्रत्यक्ष तो जो सीधे सामने सन्निधानमे हो विषिरूप पदार्थ उसे सिद्ध करता है। अब यह तो तर्कणाओकी बात है—प्रसक्तका निषेध करे फिर शेष बचे

हुएका ज्ञान कराये यह काम प्रयत्नका नही है। यदि कहो कि केवल व्यतिरेकी अनुमान ही विशेष है तब तब तो प्रकृत अनुमान देनेकी जरूरत ही नही रही। क्योकि प्रकृत अनुमान देनेपर भी अर्थात् जो कहा गया है कि इन तनुवोमें पट है इसमें जो इह प्रत्यय हो रहा है वह सम्बन्धका कार्य है अबाध्यमान इह प्रत्ययरूप होनेसे तो यह अनुमान दे दिया तिसपर भी यह अनुमान सिद्धि तो कुछ नही कर पा रहा। जब परिशेषकी बात आयगी तब कुछ बात बने। परिशेषके बिना इष्ट साध्यकी सिद्धि तो इस अनुमानसे न हो सकी। यदि कहो कि प्रमाणान्तरके बिना परिशेष भी तो साध्य की सिद्धि नही कर सकता अर्थात् अन्तमें समवायकी सिद्धि हुई परिशेषसे। लेकिन यह परिशेष केवल स्वय साध्यकी सिद्धि नही कर सकता। प्रकृत अनुमान जो दिया है उस प्रमाणान्तरके बिना परिशेष साध्यको सिद्धि करनेमे समर्थ नही है। तब तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष हो गया। जब प्रकृतमे अनुमान साध्य सिद्ध करलें तब परिशेष न्याय बने, जब परिशेष अनुमान बने तो प्रकृत अनुमान साध्य सिद्ध करनेमे समर्थ बने। यदि यह कहो कि प्रमाणान्तरके बिना भी परिशेष साध्यको सिद्धि करनेमें समर्थ है तब तो यह इस परिशेष अनुमानको ही कहियेगा। फिर जो यह अनुमान बताया गया प्रकृत अनुमान—ततुवोमें पट है, इत्यादि इह प्रत्ययसे समवायकी सिद्धिका जो अनुमान बनाया गया फिर तो वह न कहना चाहिये। इस प्रकार समवाय किसी तरह सिद्ध नही हो सकता। और जब समवाय सिद्ध नहीं है तब फिर इह इद यह ज्ञान समवायका आलम्बन करता है यह कहना अयुक्त है। 'इह' यह ज्ञान समवाय का आलम्बन नही करता।

इहेद प्रत्ययको समवायहेतुक माननेके प्रसगमे एक अन्य-प्रश्नोत्तर— शकाकार कहता है कि आपका कहना सत्य है। हम ऐसा कब कहते हैं कि "इह इद" यह ज्ञान मात्र समवायका आलम्बन करता है। वह ज्ञान तो विशिष्ट आधारको विषय करता है। ततुवोमें पट है इसमे जो इह प्रत्यय हो रहा है वह केवल समवायका आलम्बन नही कर रहा किन्तु समवाय विशिष्ट ततु और पटका आलम्बन कर रहा है। ततु और पटमे जो विशिष्टता है उसीको ही सम्बन्ध कहते हैं। और, यही समवाय सम्बन्ध है। और देखिये किसी भी प्रकार यदि इह प्रत्ययको समवाय हेतुक न माना जायगा तो "इह इद यह ज्ञान निर्हेतुक बन जायगा और निर्हेतुक बननेसे फिर यह ज्ञान कादाचित्क न रहेगा, शाश्वत हो जायगा, पर 'इहेद' ज्ञान शाश्वत कहाँ है। इससे सिद्ध है कि समवायके कारण "इहेद" ज्ञान हो रहा है और वह इस प्रकार समवायका आलम्बन करता है। अब उक्त शकाका समाधान करते हैं। ततुवोंमें पट है इस प्रकारके ज्ञानसे जो सम्बन्ध तादात्म्य माना गया है, इसके लिए जो अनुमान बनाया है कि 'इह' यह प्रत्यय सम्बन्धका कार्य हैं सो ठीक है, वह तादात्म्यका कार्य है, और, तादात्म्यका अर्थ है—तनुस्वभावता यानेजैसे तनुस्वभावता है पटमे। पट और तनुमे ये दो भिन्न पदार्थ हों और फिर उनका सम्बन्ध बनाया जाय ऐसी बात

नहीं है, किन्तु ततु ही अपनी पूर्व अवस्थाको त्यागकर एक श्रा न विलानभूत पर्याय में आया है उस ही का नाम घट है। समवाय नामका कोई सम्बन्ध नही है।

इहेद प्रत्ययको महेश्वरहेतुक मान डालनेका प्रत्याक्षेप—विशेषवादमें एक सिद्धान्त माना गया है कि जो जो भी कार्य है वे सब महेश्वरकृत हैं याने समस्त कार्य म श्वर हेतुक हैं। तो बजाय समवायके यही कल्पना कर लो कि इह इद ऐसा जो ज्ञान हुआ है वह भी महेश्वरका काय है। जब कुछ असगत ही कल्पना करना है तो एक बार जो अपनी कल्पना करली उस हीकी बातोंको जोडते जाइये। नवीन-नवीन कल्पनायें करनेका श्रम क्यो किया जा रहा है? और, महेश्वर हेतुक हो जानेसे इह इद ज्ञान कादाचित्क भी रहेगा। उसकी अनित्यतामे विरोध भी न आयगा। यदि कहो इह इदका जो ज्ञान है वह महेश्वर हेतुक नही है तब फिर आपके इसीसे ही कर्मत्वात् इस हेतुका व्यभिचार आ गया। आपका अनुमान था कि जो जो भी पदार्थ हैं वे सब महेश्वर निमित्तक है कार्य होनेसे। अब देखिये! काय तो "इह इद" भी है लेकिन महेश्वर हेतुक नही मान रहे तो साधन पाया गया और साध्य स्वीकार नही करते तो अनैकान्तिक दोष ही आया। शकाकार कहता है कि महेश्वर कोई सम्बन्धरूप नही है। महेश्वर तो महेश्वर है, सम्बन्धपना न होनेके कारण महेश्वर कैसे सम्बन्ध बुद्धिका कारण बन जायगा? इस कुण्डमें दधि है अथवा इन ततुवोमे पट है, इस प्रकारकी जो सम्बन्ध बुद्धि बन रही है उसका कारण तो सम्बन्ध ही कोई हो सकता है। महेश्वर सम्बन्धका कारण नही। समाधानमे कहते हैं कि क्या हो गया? प्रभुकी शक्ति तो अचिन्त्य मानी ही गई है। जो ईश्वर तीन लोकका कार्य करनेमे समर्थ है वह पटमे रूपादिक है, ततुवोमें पट है, कुण्डमे दधि है, इस प्रकारकी बुद्धियोको न पैदा कर सकेगा क्या? लोगोके चित्तमे जो इह इद ज्ञान बन रहा है उस ज्ञानको ईश्वर ही करदे। प्रभु तो जो चाहता है उस सब मनको कर देता है। अगर न करे तो उसकी प्रभुता समाप्त हो जायगी। फिर क्या वह प्रभु रहा कि जो चाहे सो न कर सके। ऐसे ही ससारी जीव है। शकाकार कहता है कि इस कुण्डमे दधि है आदिक ज्ञानमे जैसे सम्बन्ध पूर्वकताकी उपलब्धि है अर्थात् यह साफ दिख रहा है कि मटकेमें दधि रखा है और यह सयोग सम्बन्धमे रखा हुआ है तो जैसे कुण्डदधिके इह इद प्रत्ययमें सम्बन्ध पूर्वकता पायी जाती है इसी प्रकार ततुवोमे पट है यहाके भी इह प्रत्ययमें सम्बन्ध पूर्वकता बन जायगी। कहते हैं कि यह भी नही कह सकते, क्योकि इन ततुवोंमें पट है ऐसे ज्ञानमे भी हम ईश्वर हेतुकता कह देंगे, क्योकि कार्य तो है ही और फिर यह भी विरोध नही आता कि महेश्वर हेतुक होनेपर यह कहीं अनित्य न रहेगा। और फिर देखो जो दृष्टान्तमे दे रहे हो सयोगकी बात कि इस कुण्डमे दधि है। जैसे इस ज्ञानका कारण सयोग सम्बन्ध है तो सयोग सम्बन्ध भी वास्तविक चीज नही है। संयोग नामका कोई भिन्न पदार्थ हो और यह पदार्थमें लगता फिरे इससे पदार्थ सयुक्त कहलाये, यह बात सिद्ध नहीं होती।

संयोग पदार्थ न माननेपर शंकाकार द्वारा आपत्ति प्रदर्शन—शंकाकार कहता है कि यदि संयोग नामका कोई भिन्न पदार्थ स्वतंत्र न माना जाय तब भी वही गड़बड़ियाँ हो जायेंगी देखो—खेतमें बीज डालते हैं तो बीज तो वही है। संयोग नामकी कोई चीज तुमने मानी नही तो वही बीज अपने घरमे रखे हैं तो उनमें भी क्यो नही अंकुर फूट निकलते ? जैसे—खेतमे बीज पहुँचनेपर उनमें अंकुर फूटते हैं, पौधे बनते हैं तो कारण क्या है ? वहां संयोग बन गया खेतका और बीजका। पौधा होनेके लिए, अंकुर होनेके लिए जो जो भी चीजें चाहिएँ उन सबका संयोग हो गया। लेकिन संयोगको तुम मानते नही तो फिर सभी जगहके बीजोमे अंकुर उत्पन्न हो जाने चाहियें क्योंकि संयोग न माननेपर जैसी साधारणता खेतमें पडे हुए बीजोंकी है ऐसी ही साधारणता घरमें रखे हुए बीजोकी है। इस कारण संयोग नामका पदार्थ तो मानना ही होगा। संयोग मान लेनेपर यह व्यवस्था बन जाती है कि जहां संयोग है वहां संयोग है वहाँ संयोगजन्य कार्य होता है जहाँ संयोग नही वहाँ संयोगजन्य कार्य नही होता। समाधानमे कहते हैं कि ऐसा कहना भी असगत है कि वे बीज निर्विशिष्ट हो गए, सबकी ही तरह हैं खेतमे पडे हुए भी, घरमें रखे हुए भी। उन बीजोंकी क्या विशेषता है ? बीज तो ज्योके त्यो हैं। तो वे सब बीज निर्विशिष्ट होनेके कारण सदा ही अंकुरोंको पैदा करदें, यह जो आपत्ति दी वह अयुक्त है, क्योंकि बीजोंमें निर्विशेषता सिद्ध है। खेतमें पडे हुए बीज और घरमें रखे हुए बीज दोनो एक समानकी स्थितिके नही हैं। समस्त पदार्थ परिणमनशील हुआ करते हैं। तो खेतोंमें पडे हुए बीज विशिष्ट परिणाम करके युक्त हैं, उनमें विशिष्ट परिणामता क्या है कि वे खेत, खाद जलादिक के अन्तरसे नही पडे हुए हैं और उनमें उस प्रकारकी योग्यता आई है, उन बीजोंमे अंकुर आदिक उत्पन्न करनेकी बात सही है और घरमे रखे हुए बीजोमें वह विशिष्ट परिणाम नही आया है इस कारण वे अंकुर आदिकको उत्पन्न नही करते है।

शंकाकार द्वारा सर्वदा कार्यानारम्भ हेतुसे निमित्त सन्निधान—शंकाकार कहता है कि केवल कहने भरसे क्या है देखिये ! हमारे पक्षका अनुमान भी प्रबल है। वे बीज अंकुर आदिक कार्योंको उत्पन्न करनेमें अन्य कारणकी अपेक्षा रखते हैं क्योंकि सर्वदा कार्य न होनेसे। उन बीजोमे सर्वदा तो अंकुर आदिक उत्पन्न होनेका कार्य नहीं होता। जहाँ जहाँ सर्वदा काम नही होते देखा गया है वहा यह मानना पडेगा कि वहाँ वह अपना काम करनेमे अन्य कारणोंकी अपेक्षा रखता है। जैसे मृत्पिण्ड घटके बनानेमे दंड, चक्र कुम्हार आदिककी अपेक्षा रखता है। अगर वे सब साधन यों ही पडे रहे तो घट तो नही बन जाता। कुम्हार जब अपने हस्तादिक क्रियावोंका व्यापार करता है तो उस निमित्त सन्निधानमे वह मृत्पिण्ड घटादिकके करनेमे समर्थ हो जाता है। तो जैसे मृत्पिण्ड आदिक घटके करनेमे कुम्हार आदिक की अपेक्षा रखते हैं इसी प्रकार ये बीज भी अंकुर आदिकके कार्यकी उत्पत्तिमें अन्य कारणकी अपेक्षा रखते हैं क्योंकि बीजोमे सर्वदा अंकुर आदिक कार्य नही पाये जाते

और वे बीज जिन अन्य कारणोंकी अपेक्षा रखते हैं वे अन्य कारण हैं सयोग । इस प्रकार सयोग नामक गुण पदार्थकी सिद्धि बराबर है।

कार्यनारम्भ हेतुसे कारणमात्र सापेक्षता माननेपर सिद्धसाध्यता— उक्त आरेकाका उत्तर कहते हैं शकाकारने जो यह कहा कि सर्वदा कार्य न होनेसे वे बीज अकुर आदिक कार्योंकी उत्पत्तिमें कारणान्तरकी अपेक्षा रखते है सो इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट बताओ कि वे बीज कारणमात्रकी अपेक्षा रखते हैं यह बात आप सिद्ध कर रहे हैं या किसी सयोग नामक पदार्थान्तरकी, कारण विशेषकी अपेक्षा रखते हैं यह आप सिद्ध करना चाहते हैं ? यदि कारणमात्रकी अपेक्षा रखते हैं यह आप सिद्ध करना चाह रहे हैं तो इसमें कोई आपत्तिकी बात नही । सभी लोग यह मानते हैं कि विशिष्ट परिणामकी अपेक्षा रखने वाले उन बीजोमे अपने अकुरके करनेकी बात आ जाती है तब तो बीजोका जैसा जहा सन्निधान होना योग्य है और उन बीजोमे शीत उष्ण आदिकका जब परिणमन होता है उस समयमें उसमे अकुर आदिक उत्पन्न होते हैं। तो बीजोने विशिष्ट परिणामकी अपेक्षा रखी सो कारण मात्रकी अपेक्षा रखते हैं इस सिद्धमें कोई आपत्ति नही ।

कार्यनारम्भ हेतुसे अभिमतसयोगनामक पदार्थान्तरसापेक्षता साध्य माननेपर आपत्तिया—यदि यह कहो कि हम तो कारण विशेषकी अपेक्षा बतला रहे हैं और वह कारण विशेष है तुम्हारा माना हुआ सयोग नामका पदार्थ। सो हमारे अभिमत सयोग नामक पदार्थान्तरकी अपेक्षा रखते हैं, बीज आदिक ये सिद्ध कर रहे हैं। तो उत्तरमें कहते हैं कि जब यह कहा कि देवदत्त अकुण्डली है, जब कोई पुरुष कुण्डल पहिने हुए हैं तो उसको कुण्डली कहते हैं और जब कुण्डल रहित है तब वह अकुण्डली है। तो देवदत्त अकुण्डली है इस प्रकारका जो वाक्य बोला जाता है इस ज्ञानमे देखो - आपके हेतुका अविनाभाव नही पाया जा रहा है इसलिये अनैकातिकताका दोष आता है। क्योंकि अब यहा देखो सम्बन्धके बिना भी एक यह ज्ञान बन गया और फिर जो दृष्टान्त दिया गया है वह भी साध्यविकल दृष्टान्त है। मृत्पिण्ड आदिक कुम्भकारकी अपेक्षा रखकर घटकार्य करनेमे समर्थ होते हैं तो भी यह कुम्भकार सयोग स्वरूप तो नही है। आप इस अनुमानको करके सयोग पदार्थकी सिद्धि करना चाहते। लेकिन दृष्टान्त जो दिया है उसमे कुम्भकारकी अपेक्षा हुई। इतना ही सिद्ध होना है सयोगकी बात नही सिद्ध हुई। और, साथ ही यह भी दोष है कि यदि वे बीज सयोगमात्रकी अपेक्षा रखकर ही अकुरको उत्पन्न कर देते हैं तो जब वे बीज जिस ही प्रहरमें डाले गए उस ही प्रहरमें उनसे अकुर आदिक क्यो नही उत्पन्न हो जाते ? क्योंकि बीज सयोगकी अपेक्षा रखकर अकुरको उत्पन्न करने वाले कहे गए हैं। तो बीजोको खेतमे डालते ही उनमे तुरन्त अकुर आ जाने चाहिये, क्योंकि सारे कारण तो जुटा दिए गए। खाद, मिट्टी, पानी आदिक सभी साधनों का सयोग कर दिया गया है। अब सयोग नामका पदार्थ उन बीजोसे तुरन्त ही

अकुरोको क्यो नही उत्पन्न कर देता ? और, सयोग होते ही पहिले ही दिन जब अकुर नही उत्पन्न हो पा रहे तो पीछे भी अकुर मत उत्पन्न हो, क्योकि सयोगकी बात जब भी थी अब भी है। सयोग होनेपर कार्य नही हो सक रहा, तब पीछे भी कार्य न होवे।

बीजमे अकुरोत्पादिनी योग्यता आनेपर अकुरोत्पत्ति माननेपर सिद्धान्तकी सुस्थता -- यदि यह कहोगे कि सयोग होनेके बाद जब बीजमे उस प्रकार की योग्यता आती है तब उनमेसे अकुरोकी उत्पत्ति होती है। तब तो यह बात हुई ना कि बीजोमे जब उस प्रकारका विशेष परिणाम आता है तब अकुरोकी उत्पत्ति होती है। तो विशिष्ट परिणामकी अपेक्षा रखकर बीज अकुरको उत्पन्न कर दें इसमे कोई अयुक्त बात नही है, लेकिन दुनियामे एक सयोग नामका पदार्थ है और वह दार्थ बीज आदिकमे अकुर आदिक कार्योंको उत्पन्न कर दिया करे यह बात अयुक्त होती है। तो जैसे सयोग नामक पदार्थान्तर भी कुछ नही है इसी प्रकार समवाय नामक पदार्थान्तर भी कुछ नही है। तब यह सिद्ध हुआ कि सब पदार्थ हैं तो गुण पर्यायमे हैं। उनकी इन विशेषताओंको निरखते हैं तो गुण और पर्याय रूपसे बोध होता है। समवाय नाम का कोई पदार्थ नही है।

द्रव्योके विशेषणभावके कारण सयोगकी अध्यक्षसे प्रतीति होनेकी आशका और उसका समाधान – शकाकार कहता है कि सयोगवान द्रव्योमे विशेषणभावके कारण प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही यह सयोग जान लिया जाता है, वह इस प्रकार है कि जैसे किसी मनुष्यसे किसी मनुष्यने कहा कि सयुक्त द्रव्यको लावो तो ऐसा कहनेपर जिन ही द्रव्योमे सयोग पाया गया है उन ही को लाता है द्रव्य मात्र को नही लाता। जैसे किसीने कहा कि ताला सहित सदूक लावो, तो न केवल ताला लायगा न सदूक लायगा किन्तु ताला और सदूकका जिसमे सयोग पाया जा रहा है उस सयुक्त द्रव्यको लायगा। तो इससे सिद्ध है कि सयोगका भी प्रत्यक्ष हो रहा है। अन्यथा जिसको कहा कि ताला सयुक्त सदूक लावो तो वह केवल ताला या केवल सदूक ही क्यो लाता ? ताला और सदूक जैसे प्रत्यक्ष सिद्ध है इसी प्रकार उसकी दृष्टिमे उनका सयोग भी प्रत्यक्ष सिद्ध है तब सयोग नामका पदार्थ कैसे न रहा ? समाधानमे कहते हैं कि जो यह कहा शकाकारने कि दो द्रव्योके विशेषणभावके कारण अध्यक्षसे ही सयोग जान लिया जाता है यह बात अयुक्त है, क्योकि द्रव्योंसे भिन्न सयोग कुछ भी ज्ञानीके प्रत्यक्षमें नही आ रहा ? जिससे कि सयोगके देखनेसे वह विशिष्ट द्रव्य को लाये। दृष्टान्तमे ताला सयुक्त सदूकको लाया तो वहाँ ज्ञानीकी दृष्टिमे सयोग नही आया, तब क्या आया ? वे दोनो द्रव्य ही आये। और, किस प्रकारके वे दोनो द्रव्य आये कि पहिले तो था अन्तर सहित अवस्थामें, ताला कहीं था, सदूक कहीं रखा थी, तो अन्तर सहित अवस्थाका परित्याग करके अन्तर रहित अवस्थारूपसे उत्पन्न, निष्पन्न

उन दोनो द्रव्योको संयुक्त शब्दसे कहा जाता है। संयोग नामक कोई उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त स्वतंत्र पदार्थ कही रहता हो और उसका सम्बन्ध होनेपर फिर पदार्थ संयुक्त कहलाता हो ऐसी बात नही। वह पदार्थ ही स्वय अन्तर सहित अवस्थाके त्याग से जो अन्तर रहित अवस्थामे आया है बस ऐसी अवस्था युक्त द्रव्यको संयुक्त द्रव्य कहते हैं, क्योंकि संयोग शब्द अवस्था विशेषमें उच्चरित किया जाता है। किसीने कहा संयोग, तो सुनने वालेके चित्तमे पदार्थोंकी अवस्था विशेष ज्ञानमें आ जाती है। तो इस कारण जहाँपर उस प्रकारकी वस्तु जो कि संयोग शब्दके विषयभेदसे प्राप्त हुई है उसे देखता है तो उसको ही लाता है अन्यको नहीं। जैसे—जिसने कहा कि ताला सहित संदूक लावो तो जसा वह ताला वाला संदूक दिखता है ताला और संदूकका अन्तर नही रहा, ऐसा उन दोनो पदार्थोंको देखता है तो उन दोनोको ले देता है, अन्यको नही लाता। इसमे संयोग नामक अलग पदार्थकी बात कहाँ रही?

शंकाकार द्वारा संयोगके कारण ही संयुक्त बुद्धिकी निष्पत्तिका कथन—शंकाकार कहता है कि जैसे यह बुद्धि उत्पन्न होती है देवदत्त कुण्डली है, कुण्डल पहिने था तो उसके सम्बन्धमे जो यह बुद्धि उत्पन्न हुई, देवदत्त कुण्डली है तो यह बतलावो कि ऐसी बुद्धि किस कारणसे हुई है? केवल पुरुषके कारणसे यह बुद्धि नही हुई क्यो कि पुरुष तो सदा विद्यमान रहता हैं, अर्थात् कुण्डल और पुरुषके संयोगसे पहिले भी रह रहा था, इसका संयोग विघट जाय उसके बाद भी रह लेगा तो केवल पुरुषके कारण यह बुद्धि हुई होती तो इस बुद्धिको भी सर्वदा रहना चाहिये था। सो सर्वदा यह सम्बन्ध बुद्धि है नही सो केवल पुरुषके कारण कुण्डली देवदत्त, इस प्रकारकी बुद्धि नहीं हुई है। केवल कुण्डली मात्रके कारण भी 'कुण्डली देवदत्त" इस प्रकारकी बुद्धि नही होती, क्योंकि कुण्डल उस संयोगसे पहिले अलग पडा रहता है और संयोग मिटने के बाद भी कुण्डल अलग पडा रहेगा तो ये दोनो केवल चिरकाल रहते हैं यदि उन पदार्थोंके कारण देवदत्त कुण्डली है इस प्रकारकी बुद्धि बनती तो यह बुद्धि सदा रहना चाहिये, किन्तु ऐसा है नही। इससे सिद्ध है कि कुण्डलके कारण देवदत्त कुण्डल है इस प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न नही होती। तब फिर समझ लीजिए! अपने आपके उस निरन्तरावस्था सम्बन्ध उन दोनोंके कारण यह बुद्धि उत्पन्न हुई है कि देवदत्त कुण्डली है।

संयोगकी विधिनिषेधके व्यवहार द्वारा संयोगको उपलब्ध सत्त्व सिद्ध करनेका शंकाकारका वक्तव्य—और, भी समझिये! जो ही वस्तु किसीके द्वारा कहीं पर उपलब्ध सत्त्व हुई है उसकी ही अन्य जगह विधि प्रतिषेधरूपमेसे लोकव्यवहारकी प्रवृत्ति देखी जाती है। किसी भी चीजका निषेध तब किया जा सकता है और विधान भी तब किया जा सकता है जब किसीका किसी जगह उपलब्धसत्त्व नजर आया हो। अर्थात् वह है इस प्रकारसे किसीको कभी देखा हो उसके ही बारेमे तो विधि और निषेधके व्यवहारकी प्रवृत्ति बनेगी। यदि मान लें कि संयोग कभी भी उपलब्ध नही

होता तो फिर उसकी विधि निषेधका व्यवहार कैसे बनेगा ? देवदत्त कुण्डली है, अथवा यह देवदत्त पहिले अकुण्डली था और अब कुण्डली हुआ अथवा देवदत्त कुण्डली था और अब अकुण्डली बन गया है तो देखिये—सयोगके विधानकी बात सयोगके निषेधकी बात जो व्यवहारमें कही जा रही है उससे भी यह सिद्ध होता है कि सयोग नामक पदार्थ अवश्य है, और, कभी किसीने देखा ही है, तभी तो उसके बारेमें विधि और निषेधका व्यवहार किया जा रहा है। जब कहा कि देवदत्त कुण्डली है तो इस कहनेमे किसका निषेध किया गया ? देवदत्तका निषेध नही किया गया, कुण्डलका भी निषेध नही किया गया, क्योंकि कुण्डल तो सत् है, उसका निषेध कहाँ कर सकते हैं ? चाहे देवदत्तसे भिडा हुआ रहे चाहे अलग कुछ भी हो। कुण्डलकी दशा वह तो सत् है। उसका तो प्रतिषेध किया नही जा सकता, इसी प्रकार देवदत्तका भी प्रतिषेध नही हो सकता। चाहे वह कुण्डल पहिने हो अथवा न पहिने हो वह तो सदा ही है, तो इन दोनोका निषेध नही किया गया है। देवदत्त कुण्डली है यह कह कह फिर किसका निषेध किया जायगा ? तो देखो ! जिसका निषेध किया जायगा वह भी तो कोई सत् है। तो सयोग सत् सिद्ध हो गया। और, जब कहा जायगा कि देवदत्त कुण्डली है तो यहाँ विधिका वचन बोला गया है, कोई बात बतायी गई है, तो इस विधि वाक्यमें भी न तो देवदत्तकी विधि बतायी गई है क्योंकि वह तो सिद्ध ही है। उनके बतानेका क्या प्रसग है ? जब परिशेषन्यायसे यह सिद्ध हुआ कि सयोगकी ही विधि कही गई है तब यह सिद्ध हुआ ना कि जो बात किसीके द्वारा कभी सत्त्वरूपसे देखी गई है उस ही चीजका किसी जगह किसी समय विधान करनेका व्यवहार किया जाता है। तो सयोगका जो विधान और निषेध करनेका व्यवहार देखा जा रहा है उससे सिद्ध है कि संयोग नामक पदार्थ वास्तविक उपलब्ध सत्त्व है।

सयोगसद्भाव सन्देहक प्रथम अनुमानका निराकरण— उक्त शकाके समाधानमे कहते हैं कि कुण्डली देवदत्त है आदिक कहकर इस बुद्धिका कारणभूत, सयोग बताया गया वह भी कथन कथनमात्र है, क्योंकि जिस प्रकार देवदत्त और कुण्डलीमें विशिष्ट अवस्थाओंकी प्राप्तिरूप सयोग सदा नहीं होता है उसी प्रकार "देवदत्त कुण्डली" इस प्रकारकी बुद्धि भी सदा नहीं होती, क्योंकि वह बुद्धि भी अवस्था विशेष कारणक है वह भी कैसे उस अवस्था विशेषके अभावमें हो सकती है ? और भी ! सुनिये कुण्डली देवदत्त है इस प्रकारकी जो बुद्धि उत्पन्न हुई है वह सान्तर अवस्थाका त्याग करके अन्तररहित अवस्थामे आये हुए देवदत्त और कुण्डल इन दोनोंको देख करके कहा गया है। कहीं सयोग नामका अलग पदार्थ हो और उसके कारण देवदत्त कुण्डली है इस प्रकारकी बुद्धि की जाय सो बात नहीं है। ये दोनों ही पदार्थ जब अन्तररहित रूपसे देखे गए तो यह व्यवहार चलता है कि देवदत्त कुण्डली है।

सयोगपदार्थ सद्भावसदेहक द्वितीय अनुमानका निराकरण—अब शका-

कारने दूसरी बात जो यह कही है कि जब संयोगका, विधि और प्रतिषेधरूप व्यवहार पाया जाता है तो इससे सिद्ध है कि संयोग कहीं न कहीं किसीको उपलब्ध सत्त्व होता ही है। सो वहां भी यह समझिये कि जो विधि प्रतिषेध किया गया है देवदत्त कुण्डली है, यह कहकर जो विधि की गई है देवदत्त अकुण्डली है यह कहकर जो निषेध किया गया है सो यह विधि प्रतिषेध भी केवल देवदत्तमे या कुण्डलका नही किया गया है, वहां भी अवस्था विशेषका ही विधान और निषेध किया गया है। इस कारण यह दोष नहीं दे सकते कि देखो ! न तो केवल देवदत्तका विधान है न केवल कुण्डलका विधान है तो परिशेषन्यायके संयोगका विधान रहा। इसी तरह देवदत्त अकुण्डली है, ऐसा कहकर यह नहीं कह सकते कि यहा न देवदत्तका निषेध है, न कुण्डलका निषेध है, किन्तु संयोगका निषेध है। संयोग नामक कोई पदार्थ नहीं, अवस्था विशेष परिणत देवदत्त व कुण्डलका ही विधान है और अवस्थाविशेषपरिणत अथवा उस विशिष्ट दशा से अपरिणत देवदत्त कुण्डलका ही निषेध है। जब अन्तर सहित अवस्थामें देवदत्त और कुण्डल था तब तो अन्तररहित अवस्थाके रूपसे उनका निषेध किया गया है और ऐसा विधान भी है जब देवदत्त और कुण्डल अन्तररहित अवस्थामे आये तो अन्तर सहित अवस्था विशेष परिणत वस्तुका ही विधान और निषेध किया जाता है। अब इसी कारण यह सिद्ध हुआ कि अनेक वस्तुवोंके सन्निकर्ष होनेपर जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह विशेषवाद परिकल्पित संयोगविषयक नहीं है क्योंकि संयोग नामका कोई पदार्थ नही। वहाँ उस–उस अवस्थासे युक्त वस्तुओंका ही विधान और निषेध किया गया है, जैसे कि विरले अलग–अलगरूपसे अवस्थित अनेक तंतु विषयक ज्ञान हुआ करते हैं इसी प्रकार संयुक्त प्रत्यय भी विरल अवस्थाको छोडकर अन्तर रहित अवस्थामे आये हुए अनेक तंतुवोंके विषयमें होता है। इससे यह सिद्ध है कि न तो इन्द्रियज ज्ञानके प्रसंगमें, सन्निकर्षकी बातचीतके संदर्भमे संयोग नामक पदार्थ है और न यह देवदत्त कुण्डली है अकुण्डली है आदिक व्यवहारके सन्दर्भमें भी संयोग नामक कोई पदार्थ है। विशिष्ट अवस्थासे युक्त पदार्थोंका ही व्यवहार चलता है।

विशेषविरुद्धअनुमान द्वारा समवाय पदार्थकी असिद्धि—और, भी देखिये ! शंकाकारने जो यह अनुमान बनाया था कि "इह इद" यह ज्ञान सम्बंधका कार्य है, याने समवायपूर्वक नही है क्योंकि अबाधित "इह ज्ञान" होनेसे। यह अनुमान तो विशेष विरुद्ध अनुमानसे बाधित है। यह भी तो कहा जा सकता है कि विवादास्पद "इह इद" यह ज्ञान समवाय पूर्वक नहीं है क्योंकि अबाधित यह ज्ञान रूप होने से। जैसे कि कुण्डमे दधि इह प्रकारका ज्ञान। कुण्डमें दधि इस ज्ञानमें भी तो इह इद की मुद्रा लगी है, और देखो ! वह ज्ञान समवायपूर्वक नही है, तो इसी प्रकार तंतुवो में पट है आदिकमें भी जो इह इद ज्ञान है वह भी समवायपूर्वक नहीं है। तो, इस प्रकार यह विशेष विरुद्ध अनुमान होता है जिससे समवायकी सिद्धि नही होती है। विशेष विरुद्ध अनुमानका अर्थ यह है कि तुम सिद्ध करना चाहते थे इहेद प्रत्ययको

विशेषण समवायपूर्वक और इस ही हेतुसे सिद्ध होता है, समवायपूर्वक। यद्यपि अनुमानमें स्पष्ट शब्द यह न था कि समवायपूर्वक, था यह कि सम्बधका कार्य है, पर प्रयोजन तो यह था कि समवायपूर्वक होता है सो अब देखो ! विशेषण समवायपूर्वकपनेके विरुद्ध यहाँ इसमें समवायपूर्वक सिद्ध किया जा रहा है और हेतु वही का वही है।

विशेष विरुद्धानुमान द्वारा सकलानुमानोच्छेदनकी शका—शकाकार कहता है कि उक्त प्रकारसे विशेषविरुद्ध अनुमान बनाना तो समस्त अनुमानोंका नष्ट करने वाला हो जायगा। सो जो सही अनुमान भी हैं वे भी सिद्ध न हो सकेंगे। जैसे अनुमान किया कि पर्वत अग्नि वाला है धूम वाला होनेसे। अनुमान सच है लेकिन हम उसका उच्छेद कर देंगे। एक अनुमान इस तरह भी हम बोल सकेंगे कि पर्वत रहने वाली अग्निसे अग्निमान नहीं है धूमवान होनेसे रसोईघरकी तरह। जैसे रसोईघरमें हेतु धूमवान तो पाया गया पर पर्वतमें रहने वाली अग्निसे अग्निमान होना नहीं पाया गया तो यों विशेष विरुद्धानुमानकी पद्धति समस्त अनुमानोका उच्छेदक हो जायगी। तब अनुमानवादियोंको तो ऐसी बात कमसे कम न कहना चाहिये।

विशेषविरुद्धानुमानको सफलानुमानोच्छेदक कहनेकी शकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि जो यह कहा कि विशेष विरुद्ध अनुमान समस्त अनुमानोका उच्छेदक हो जायगा इसलिए विशेष विरुद्ध अनुमानकी बात ही न करना चाहिए। तो जरा यह बतलाओ कि विशेषविरुद्ध अनुमान क्यों न कहना चाहिये? क्या अनुमानाभासका उच्छेदक है इस कारण न कहना चाहिये या सच्चे अनुमानका उच्छेदक है इस कारण न कहना चाहिये? यदि कहो कि अनुमानाभासका उच्छेदक होनेके कारण विशेषविरुद्धानुमान न कहा जाना चाहिए तो यह बात कैसे अयुक्त कह रहे हो? भला किसी अनुमानका उच्छेद प्रत्यक्ष आदिकके द्वारा भी हो रहा हो, जिस अनुमानमें हेतु कालात्ययपदिष्ट प्रत्यक्षवाधित आदिक दोषोसे दूषित हो रहा हो उस अनुमानके भी उच्छेदक कोई प्रमाण न कहे तो यह कैसे युक्त हो पाता है? इस तरहकी अनीतिसे तो अतिप्रसग आ जायगा। जैसे कालात्ययापदिष्ट हेत्वाभास उच्छेदके योग्य है अनुमानाभासका खण्डन कर देनेके योग्य है और अब आप उस पर कुछ जबान ही नहीं चलना चाहते। तो उसकी तरह प्रत्यक्ष आदिकका भी उच्छेद होनेका प्रसग आ जायगा। किसीने कुछ अनुमान कहा और वह बिल्कुल झूठ है, प्रत्यक्षवाधित है और उसपर कुछ बोलनेकी इजाजत न रखे, चुप रहे तो इसका अर्थ यह बन बैठेगा कि जो प्रत्यक्षसिद्ध बात है वह झूठ है और इन अनुमानाभासोंकी बात सत्य है। यों अतिप्रसग आ जायगा। तो अनुमानाभासका उच्छेद होनेसे विशेष विरुद्ध अनुमान नहीं कहना चाहते, यह बात अयुक्त है। यदि कहो कि सही अनुमानका उच्छेदक होनेसे विरुद्ध अनुमान नहीं कहना चाहिए तो सुनो? जो सम्यक् अनुमान है

उसका खण्डन तो विशेष विरुद्धानुमान हजार भी लगावो, तो भी नहीं हो सकता। उसका कोई खण्डन ही क्या करेगा?

असिद्धादि अनेक दोषोंसे दूषित अनुमानपर ही विशेषविरुद्धानुमानकी संगतता – और, फिर बात एक यह है कि विशेष विरुद्धानुमानकी बात तो शास्त्रोक्त अन्य अनेक दोष आनेके कारण कही गई है। विशेष विरुद्धानुमान इतने शब्द सुनकर भी निर्णय कर देना कि इसे न कहना चाहिए, सो यह बात युक्त नहीं है, जरा कुछ समझो! "विशेष विरोधक अनुमानपना" इन शब्दोंमे तो आभासके प्रकरणमे कोई बात बताई ही नहीं गई। जो असिद्ध हो, विरुद्ध हो, अनैकान्तिक हो अनेकों दोषोंसे दूषित हो तभी तो वहाँ विशेष विरुद्धानुमान बनता है। तो असिद्ध अनैकान्तिक विरुद्ध आदिक अनेक दोष बताये ही गए हैं और उसीका स्पष्टीकरण करनेके लिये विशेष विरुद्धानुमानकी बात कही है। सो जो भी अनुमान दुष्ट हो—पक्षाभास, साध्याभास, हेत्वाभास आदिक दोषोंसे दूषित हो उस अनुमानका उच्छेद करनेके लिये तो बात कहना ही चाहिये। पर वह ही अनुमान साध्यकी सिद्धिका घात करता है जो कि दुष्ट हो, दूषित हो उसको न कहना चाहिये, याने विशेषविरुद्धानुमान तो कहना योग्य है, पर जो अनुमान दूषित है उसको न कहना चाहिए। जैसे कोई पुरुष कह बैठे कि यह प्रदेश इस जगहकी अग्निसे अग्निमान नहीं है धूमवाला होनेसे रसोईघरकी तरह। जैसे रसोई घर धूमवाला है तो वह यहाँकी अग्निसे अग्निवाला तो नहीं। यह अनुमान दूषित है क्योंकि जरा प्रत्यक्षसे आगे चलकर देख लो तो वहाकी रहने वाली अग्निसे अग्निमान प्रदेश पाया जाता है। तो जो प्रत्यक्षसे दूषित है, विरुद्ध है, ऐसा दूषित अनुमान न बोला जाना चाहिए, पर दूषित अनुमानके खिलाफ अनुमान कोई बोले तो वह तो युक्त ही है और वह झूठे अनुमानका उच्छेदक है। जैसे कोई यहींके किसी कमरेमे यह अनुमान लगाये कि यह स्थान वहाकी अग्निसे अग्निमान नहीं है, धूमवाला होनेसे। तो इसका निर्णय हम तुरन्त ही जाकर कमरा देखकर कर सकते हैं ना, कि देखो! पाई गई यहाँकी अग्निसे अग्निमान यह जगह, पर ऐसी बात समवायमें तो नहीं लग सकती समवायको सिद्ध करनेका कोई अनुमान बनाया जा रहा हो और उसे कोई न माने तो जाकरके कोई दिखा देवे—देखो! यह तो है समवाय। समवाय जब प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे सिद्ध ही नहीं हो रहा तो समवायके निषेध करने वाले अनुमानको प्रत्यक्ष बाधित बताना यह कैसे सम्भव है? जो जिसका विषय नहीं है वह उसका बाधक भी नहीं हो सकता अन्यथा खरगोशके सींग, आकाशके फूल ये सब भी बाधक बन बैठेंगे? इससे जो विशेष विरुद्धानुमानकी बात कही वह युक्त है, कोई नई बात नहीं है, जो अनेक दोषोंसे दूषित करके खण्डित कर दिया गया है उसे ही निष्कर्ष रूपमें कहा गया है कि विवादास्पद 'इह इद' ऐसा यह ज्ञान समवायपूर्वक नहीं है क्योंकि अबाध्यमान इह प्रत्यय रूप होनेसे।

शङ्काकार द्वारा समवायके एकत्वकी सिद्धि—अब शङ्काकार कहता है कि समवाय तो एक है, यह संयोगकी तरह बहुत नाना है। तो उसे किसी जगह दिखा भी दें कि देखो यह है समवाय, पर संयोगकी तरह समवायमें नानापन नहीं है ही नहीं समवाय एक ही पदार्थ है सर्वगत है, इसमें संयोगकी तरह नानापन नहीं आ सकता, क्योंकि 'इह' इस प्रकारके प्रत्ययकी अविशेषता होनेसे, विशेष लिङ्गका अभाव होनेसे तथा सत् प्रत्ययकी अविशेषता होनेसे भी विशेष लिंगका अभाव होता है। यहाँ दो हेतु दिए गए हैं—इह ऐसा प्रत्यय सर्वत्र होता है, जहाँ-जहाँ समवाय हुआ करता है। तो यह कोई दूसरी बात तो नहीं आई, इह मुद्रा एक ही रही। तो जब इह प्रत्ययकी अविशेषता रही तो विशेष लिंग तो कुछ न रहा, और सत् प्रत्ययकी भी अविशेषता है समवाय स्वयं सत् रूप है, समवायको सत्ताका सम्बन्ध करके सत् नहीं बनाया गया है। द्रव्य, गुण, कर्म ये तीन ही पदार्थ ऐसे हैं जिनमें सत्ताका समवाय करके उन्हें सत् किया गया है। तो ऐसी समवायमें सत् प्रत्ययके साथ अविशेषता है तो उसमें अब विशेष लिङ्ग नहीं हो सकता और विशेषलिंग हुए बिना नानापनका प्रतिभास नहीं होता। जहाँ भी नानापनका बोध होता है वहाँ विशेष चिन्ह जाना जा रहा है। पर समवायके सम्बन्धमें कोई विशेष लिङ्ग नहीं मिलता इस कारण समवाय एक ही है। जैसे कि सत्तामें सत् प्रत्ययकी अविशेषता है और इसी कारण विशेष लिङ्गका अभाव भी है। तब सत्ता नाना तो न कहलायी। इस अनुमानमें हेतु तो मूलमें एक ही दिया जा रहा है कि समवाय नाना नहीं किन्तु एक है। क्योंकि इसमें विशेषलिंगका अभाव है। जब तुम्हारा भेदक चिन्ह ही नहीं नजर आता समवायके सम्बन्धमें तो यह नाना कैसे हो सकता है। तो विशेष लिंगका अभाव दो कारणोंसे प्रसिद्ध है। एक तो समवायमें 'इह" इस तरहका ज्ञान सबमें चल रहा है? कोई ढंग ही दूसरा नहीं है। आत्मामें ज्ञान है, पृथ्वीमें गंध है जहाँ जहाँ भी समवाय है वहाँ वहाँ मुद्रा एक ही है। दूसरी किस्मकी बात ही नहीं है। तो विशेष लिंग कहाँसे हो? और, समवाय स्वयं ही सत् है तो सत् प्रत्ययकी भी समानता है। तो जैसे सत्तामें सत् प्रत्यय की अविशेषता है तो वह नाना नहीं है। इसी प्रकार समवायमें भी सत् प्रत्ययकी अविशेषता है इस कारण कोई विशेष चिन्ह नहीं अतएव समवाय नाना नहीं है।

सम्बन्धत्व हेतुसे समवायके नानात्वकी सिद्धिके अनवकाशका शंकाकार द्वारा कथन—यहाँ कोई यदि यह कहे कि समवायका विशेषलिंग सम्बन्धत्व है और उससे यह सिद्ध हो जायगा कि समवाय नाना है। सम्बन्ध रूप होनेसे संयोग सम्बन्ध रूप है तो नाना है ना, इसी प्रकार समवाय भी सम्बन्धरूप है इस कारण नाना हो जायगा। यह बात यों नहीं कह सकते कि सम्बन्धपनेकी बात तो अन्यथा भी सिद्ध हो जाती है अर्थात् सम्बन्ध होनेके कारण नाना हो यह नियम नहीं है। बल्कि संयोगमें भी जो नानापन विदित होता है वह सम्बन्धत्वके कारण नहीं विदित होता है, संयोगमें नानापनकी सिद्धि सम्बन्धत्वके कारण नहीं की जाती है किन्तु

प्रत्यक्षसे ही जब जिस आश्रयमें समवाय पूर्वक रहने वाले संयोगके क्रमसे उपलब्धि पायी जा रही है तो इस क्रमोपलब्धिसे संयोगका नानापन सिद्ध किया जाता है। तो सम्बन्ध हेतु देकर समवायको नाना सिद्ध करना युक्त नहीं है।

समवायमें अनुगत प्रत्ययकी उपलब्धि होनेसे समवायके एकत्वका शंकाकार द्वारा समर्थन—एक बात यह भी है कि समवायको अनेक माननेपर फिर समवायमें अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति नहीं हो सकती अर्थात् यहाँ भी समवाय, यहाँ भी समवाय, आत्मामें ज्ञानका है समवाय, वह भी समवाय है। जलमें रूपका भी है, समवाय, वह भी समवाय है। वायुमें स्पर्श है वहाँ भी समवाय है। तो समवायमें जो अनुगत प्रत्यय चल रहा है, सबमें समवाय है, ऐसा जो एक अनुगत ज्ञान चल रहा है। यदि समवायको अनेक मान लिया जाय तो यह अनुगत ज्ञान नहीं बन सकता। कोई यह कहे कि देखो! संयोगके अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति तो हो गयी, यह भी संयोग, नाना संयोगमें संयोगका अनुगत ज्ञान बन जाता है यों ही समवायमें बन जायगा। सो यह बात यों नहीं कह सकते कि संयोगमें तो संयोगत्वके बलपर संयोग नाना होनेपर भी अनुगत ज्ञान बन जाता है याने संयोग तो है नाना, पर सब संयोगमें संयोगत्व धर्म है। तो उस संयोगत्वके समवायसे सब संयोगोंमें अनुगत संयोग, संयोग ऐसे ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। जैसे मनुष्य नाना है, पर उन सबमें यह मनुष्य है। यह मनुष्य है। यह मनुष्य है ऐसे मनुष्यत्वके अनुगत ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। पर, समवायमें तो यह बात नहीं बनती। इस कारण समवायको अनेक माननेपर यह दोष आता है कि फिर उसमें अनुगत ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती।

शंकाकार द्वारा समवायमें स्वतः एकत्वकी सिद्धि—शंकाकार कह रहा है कि यदि कोई ऐसा संदेह करे कि समवायके नाना होनेपर भी समवायमें भी समवायत्वके बलसे अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति हो जायगी उस संदेहको दूर करनेके लिये शंकाकार कह रहा है कि यह बात समवायमें सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि समवायत्वका समवायमें समवायका अभाव है। यदि समवायमें भी समवायत्वका समवाय मान लिया जाय तो अनवस्था दोष होगा फिर उस समवायत्वके समवायके लिये अन्य समवाय मानना होगा। वहाँ भी समवायत्वके समवायमें अन्य समवाय मानना होगा उसके लिए फिर अन्य समवाय मानना होगा। इस तरह कहीं अवस्था न रह सकेगी। यहाँ कोई यह न सोचे कि फिर तो संयोगके लिये भी अपर संयोग पूर्वकता मान लेनेपर अनवस्था हो जाना चाहिए। उनकी अनवस्था क्यों नहीं होती? बात यों है कि संयोग तो है गुण अतएव संयोगकी वृत्ति द्रव्यमें रहती है और फिर वह संयोग द्रव्यमें रहता है सो समवाय सम्बन्धसे रहता है और उस संयोगमें संयोगत्व समवेत है उसके लिये संयोगान्तरकी अपेक्षा नहीं रहती।

समवायको एक माननेपर दिये जा सकने वाले द्रव्यत्ववत् गुणत्वकी

अभिव्यञ्जकताके दोषका शंकाकार द्वारा निराकरण— यहाँ कोई यह कहे कि जिस समवायसे द्रव्यमें द्रव्यत्व समवेत है, उस ही समवायसे गुणमें गुणत्व भी समवेत है। क्योंकि समवाय तो सारे विश्वमें एक माना गया है। और फिर उससे आत्मामें समवेत द्रव्य द्रव्यत्वका जैसे अभिव्यञ्जक हो जाता है उसी प्रकार द्रव्य गुणत्वका अभिव्यञ्जक क्यों नहीं होता क्योंकि एक समवायमें समवेतपना दोनोंमें बराबर है। अर्थात् द्रव्यमें द्रव्यत्व जिस समवायसे समवेत है उसीसे गुणमें गुणत्व समवेत है क्योंकि समवाय सारे विश्वमें एक ही है। तब फिर जैसे आत्मामें समवेत द्रव्यत्वका द्रव्य अभिव्यञ्जक होता है उसी प्रकार गुणत्वका भी अभिव्यञ्जक क्यों नहीं हो जाता, क्योंकि समवाय तो सारा एक है और उस ही एक समवायसे ये सब समवेत हो रहे हैं। द्रव्यत्वका गुणत्वका सबका समवाय करने वाला पदार्थ तो एक ही है। शंकाकार उत्तर दे रहा है कि यह बात भी नहीं कही जा सकती है कि आधार शक्ति नियामक है। द्रव्यस्वरूप जो आधार शक्ति है वह द्रव्यत्वका नियामक है याने द्रव्यत्वके समवाय होनेसे द्रव्य द्रव्यत्वका अभिव्यञ्जक होगा। द्रव्योंमें द्रव्यत्वके आधारकी शक्ति है और गुणमें गुणत्वादिकके आधारकी शक्ति है। अतएव चूंकि आधार शक्ति जुदी-जुदी है अतएव वह अपने-अपने आधेयकी नियामक हो जाती है। कोई यह भी नहीं कह सकता कि जब समवायमें अनुगत प्रत्यय हो रहा है, सबमें समवाय इस प्रकारका एक सामान्य बोध हो रहा है तो सामान्यसे समवायका अभेद हो जाय यह बात नहीं कही जा सकती। कारण यह है कि सामान्यका और समवायका लक्षण भिन्न भिन्न है। सामान्यका तो लक्षण है अबाधित अनुगत ज्ञानका जो कारण है वह है सामान्य। और, समवायका लक्षण है—अयुत सिद्ध आधार्य आधारभूत पदार्थोंमें इह इद ज्ञानका कारणभूत जो भी सम्बन्ध है वह समवाय है। यों सामान्य और समवायका लक्षण भिन्न होनेसे ये दोनों एक नहीं हो सकते। सामान्य नामक पदार्थ भिन्न है और समवाय नामक पदार्थ भिन्न है। यो समवायकी एकता सिद्ध होती है और समवायकी परमार्थ पदार्थता सिद्ध होती है।

अनुमान प्रमाणसे समवायके अनेकत्वकी सिद्धि—अब समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका यह कहना कि समवाय एक है संयोगकी तरह नाना नहीं है, यह कथन गलत है, क्योंकि समवायके एकत्वमें अनुमानसे बाधा आती है। प्रथम तो समवाय नामका कोई पदार्थ नहीं है पर जैसा लक्षण कहा है उसके आधारसे कल्पना भी कर ली जाय समवायकी, तो जो परिकल्पित समवाय है वह अनेक है, एक नहीं है। समवायकी अनेकताको सिद्ध करने वाला यह अनुमान है कि समवाय अनेक हैं, क्योंकि भिन्न-भिन्न देश, काल, आकाररूप पदार्थोंमें सम्बन्ध बुद्धिका कारण होनेसे। जो विभिन्न देश काल आदिकमें सम्बन्ध बुद्धिका कारणभूत होता है वे सब अनेक ही होते हैं, जैसे कि संयोग, देखो! संयोग भिन्न देश, काल, आकाररूप पदार्थोंमें सम्बन्ध बुद्धिका कारणभूत है, अतएव समवाय भी अनेक हैं। समवायकी अनेकता अनेक दृष्टा-

न्तोसे प्रसिद्ध है । देखो ! दण्ड और पुरुषका सयोग हो रहा ना, और कहीं चटाई और भींटका सयोग हो रहा है । तो देखो ! दण्ड पुरुषका सयोग दण्ड पुरुषमें है और चटाई भींटका सयोग चटाई भींटमे है तो सयोगमे भेद हुआ कि नही ? यह सयोग घना है, यह सयोग शिथिल है, इस तरहके ज्ञानभेदसे सयोगका भेद माननेपर यह समवाय शाश्वत है, यह समवाय कादाचित्क है यों समवायमें भी भेद सिद्ध हो जाता है । जैसे परमाणु और परमाणुके रूपमे समवाय शाश्वत है और ततु पटमे समवाय कादाचित्क है । तो इस तरहके ज्ञानभेदसे समवायका भी भेद मान लीजिए । यदि कोई कहे कि समवाय भी पदार्थ नित्य है, कोई कादाचित्क है इस कारणसे समवायमे भी नित्यत्व और कादाचित्कत्व ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । तो कहते हैं कि इसी ढगसे संयोगियों में भी घनापन और शिथिलपन होनेके कारण सयोगमे भी घना और शिथिल संयोग ज्ञानकी उत्पत्ति मान लीजिए । तब सयोगको स्वय नाना मत मानो । क्योंकि समवायकी तरह सयोगमें भी सयोगी पदार्थके भेदसे भेद माना जा सकता है । तो यों अगर समवायमे कुछ जोड करोगे, समवायमें अपना मंतव्य सिद्ध करनेकी कोशिश करोगे तो सयोगके बारेमें बनी बनाई बात बिगड जायगी । एक सूत जोडेगे तो दूसरा सूत टूट जायगा ।

अन्य अनुमान प्रमाणसे भी समवायके नानात्वकी सिद्धि—और भी देखिये ! इस तरह भी समवायके अनेकपनेकी सिद्धि है कि समवाय नाना हैं, क्योंकि अयुतसिद्ध अवयवी द्रव्यके आश्रित होनेसे सख्याकी तरह । जैसे—सख्या अवयवी द्रव्यके आश्रित है तो भी नाना है इसी प्रकार समवाय भी अवयवी द्रव्यके आश्रित है, इस कारण वह भी नाना है, यह बात असिद्ध नही है क्योंकि समवायसे यदि आश्रित नही मानते तो आपके ही सिद्धान्तमें विरोध आता है । कहा है विशेषवादके सिद्धान्तमें कि नित्य द्रव्यको छोड़कर बाकी सभी छहो द्रव्यमे आश्रितपना है । अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये सभी आश्रय किया करते हैं । इनमें आश्रयपना है । तो मानना होगा कि समवाय अवयवी द्रव्यके आश्रित हुआ करता है । यदि कहोगे कि परमार्थसे समवायमें आश्रितपना नही है जिससे कि समवाय अनेक बन जाय, समवायमे जो आश्रितपना है वह उपचारसे है, और उपचारका कारण यह है कि समवायी पदार्थ के होनेपर समवायका ज्ञान होता है । समवाय सम्बन्ध जिन दो तत्त्वोमें जुडा करता है उन दो तत्त्वोके होनेपर ही, उन दो तत्त्वोकी समझ आनेपर ही समवायका ज्ञान होता है । वस्तुतः समवायको परके आश्रित माननेपर यह आपत्ति आयगी कि अपने आश्रय का विनाश होनेपर समवायका भी विनाश होनेका प्रसग आ जायगा गुण आदिकका तरह । समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है क्योंकि विशेषका परित्याग होने से आश्रितत्व सामान्यको ही हेतु कहा गया है । अर्थात् गुण गुणीके आश्रित है, अवयव अवयवीके आश्रित है इस प्रकारके विशेष आश्रयका तो परित्याग कर दीजिए याने ज्ञान मत दीजिये केवल एक आश्रय सामान्यकी ही बात चित्तमे रखिये तो ऐसे आश्रित-

त्व सामान्यको यहाँ हेतु कहा है और इसी कारण आश्रयका विनाश होनेपर भी अर्थात् समवायी पदार्थोंके विनष्ट होनेपर भी आश्रितत्व सामान्यका विनाश नहीं होगा, क्यों कि आश्रितत्व सामान्य तो सदा है समवायमें और, फिर यदि विशेषके आश्रयसे ही आश्रितत्वकी मान्यता देते हो तो दिशा आदिकमें भी आश्रितपनेकी आपत्ति आती है। देखो ! मूर्त पदार्थ जो उपलब्धि लक्षण प्राप्त हैं पर्वत नदी वगैरह, उन मूर्त द्रव्योंमें यह इससे पूर्वमें है इत्यादि प्रत्ययरूप दिशाओंके लिङ्गका और यह इससे अपर है इत्यादि प्रत्ययरूप काललिङ्गका भी सद्भाव उन मूल द्रव्योंके आश्रयसे कि यह पर है यह अपर है यह पूर्वमें है यह पश्चिममें है आदिक ज्ञान होता है सो देखो ! विशेषके आश्रयका सम्बन्ध होनेसे ही आश्रितपना यदि माना जाता है, तो दिशा और कालमें भी आश्रय विशेषके कारण आश्रितपनेकी आपत्ति आ जायगी और इस तरह यदि दिशा, काल आदिकको भी आश्रित मान लिया जाता है तो आपका ही यह सिद्धांत कि नित्य द्रव्य को छोड़कर छहों पदार्थोंमें आश्रितपना है सो इसका विरोध हो जायगा, क्योंकि आपके तो दिशा, काल जैसे नित्य पदार्थोंमें भी आश्रितपनेकी बात आने लगी है। और भी देखिये ! विशेष आश्रयसे ही आश्रितत्व माननेपर सामान्य भी, अनाश्रित बन बैठेगा, क्योंकि सामान्य भी तो गौ, अश्व आदिक विशेषोंमें रह रहा है और उन गौ, अश्व आदिकका विनाश हो जाय तो सामान्य भी नष्ट हो गया, उसमें भी अनाश्रितता आ गयी। लेकिन आश्रयका विनाश होनेपर भी सामान्यका विनाश तो नहीं माना है समवायकी तरह। इस प्रकार समवायकी अनेकताकी सिद्धि हो ही जाती है, क्योंकि वह अवयवी द्रव्यके आश्रित है।

अन्य अनुमान प्रमाणसे भी समवायके अनेकत्वकी सिद्धि—अथवा मान भी लिया जाय समवाय आश्रित है तो ऐसे समवायका अनेक होना अनिवार्य है, और समवायकी अनेकताको सिद्ध करने वाला एक अन्य अनुमान प्रमाण भी है कि समवाय अनेक हैं अनाश्रित होनेसे परमाणुकी तरह। अनुमानमें कहे गए हेतुका आकाश आदिकके साथ व्यभिचार नहीं बताया जा सकता, क्योंकि आकाश आदिक भी कथंचित् नाना है। जैसे आकाश यद्यपि एक द्रव्यकी अपेक्षा एक है लेकिन वह व्यापक है, अनन्त प्रदेशी है तो प्रदेशभेदकी अपेक्षा उसमें कथचित् नानापन भी साधा जा सकता तब तो समवाय नाना सिद्ध हो गए। तब यह कहना अयुक्त बात है कि इह इस प्रकार के ज्ञानकी अविशेषता होनेसे और विशेष-लिङ्गका अभाव होनेसे समवाय एक है। विशेष लिंगका अभाव होनेसे समवाय एक है ? विशेष लिंगके अभावका साधक कोई प्रमाण नहीं है और अभी अभी बहुतसे चिन्ह बताये जायेंगे और बताये गए हैं उनसे यह सिद्ध होता कि समवायके विशेष लिंग हैं। जिस धर्मको जिस कल्पनाको समवायवादी समवाय कहता है उसके समर्थनेके अनेक चिन्ह हैं। तो विशेष लिंग हो जानेके कारण भी समवायमें नानापना सिद्ध है। अब यह भी सोचिये कि समवायको एक बतानेके लिए शंकाकारने जो हेतु दिया था कि "इह" इस प्रकारके ज्ञानकी अविशेषता

है समवायमे, सभी द्रव्योमें मैं मानो ही है, इह इस प्रकारका ज्ञान होता ही है इस हेतु से समवाय एक है ऐसा कहनेमे जो इह इस ज्ञानकी अविशेषता बताई गई वह भी असिद्ध है। देखो ! इस आत्मामें ज्ञान है, इस पटमें रूपादिक है इस प्रकार इह प्रत्यय मे भी विशेषतायें देखी जा रही हैं और प्रत्ययकी विशेषताके मायने है क्या, कि विशेषणके साथ उनका सम्बन्ध जुड जाना। आत्मामें ज्ञान है तो देखो ! वहां इह सकेत दूसरा है। पटमें रूपादिक हैं तो देखो, इसमे इहका सकेत दूसरा है तो विशेषणोका जो सम्बन्ध है वही ज्ञानकी विशिष्टताको बतला रहा है। तो इह इस प्रकारके ज्ञानमें भी बहुत बहुत विशेष है, इस कारण वे सब हेतु समवायको एक सिद्ध न कर सकेंगे, ऐसा भी नही कहा जा सकता कि चू कि समवायोमे अनुगत ज्ञानकी प्रतीति हो रही है सो समवायकी एकता सिद्ध हो जाती है। शकाकारने ऐसा कहा था कि, चू कि समवायोंमे अनुगत प्रत्यय हो रहा है, यह भी समवाय है, यह भी समवाय है और ऐसे प्रसगके कारण समवायमें एकपना सिद्ध हो जाता है। यह यों नही कहा जा सकता कि अनुगत प्रत्ययकी प्रतीति होनेसे एक सिद्ध हो यह नियम नही है। देखो ! गोत्व, घटत्व, अश्वत्व आदिक सामान्योमें यह भी सामान्य है यह भी सामान्य है यो तथा छहो पदार्थोंमें यह भी पदार्थ है, यह भी पदार्थ है यो अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति प्रतीत हो रही किन्तु अनुगत एकत्व कुछ भी नही है याने अनुगत एकत्वका अभाव है। देखो—सामान्य अनेक हैं ना—गोत्व सामान्य और सबमें सामान्य सामान्यकी प्रतीति चल रही है और उनमें एकता है नही तो अनुगत प्रत्ययकी प्रतीति होनेके कारण एकताकी सिद्धि हो जाय सो बात नही।

समवायके एकत्वको बताने वाले अनुमानके दृष्टान्तमें साध्यविकलता एव साधनविकलता—अब और भी अन्य दोष समवायके एकत्वसाधक अनुमानमें देखिये ! शकाकारने इस अनुमानमे जो दृष्टान्त दिया है कि सत्ताकी तरह। जैसे सत् में अनुगत प्रत्यय होनेके कारण सत्ता जैसे एक है, इसी प्रकार समवायमें यह भी समवाय, यह भी समवाय यों अविशेष प्रत्यय होनेके कारण समवाय भी एक है, समवाय की एकताके समर्थनमें, अनुगत प्रत्ययके हेतुके समर्थनमें जो सत्ताका दृष्टान्त दिया वह भी साध्यविकल है व साधनविकल है। इसमे साध्य तो बताया गया था एक होना और साधन बताया गया था प्रत्ययकी अविशेषता। तो सत्ताके सम्बन्धमें दोनो ही बातें सिद्ध नही हो रही। 'सत् प्रत्ययकी अविशेषता है" सत्तामे यह भी सिद्ध नही हो रहा क्योंकि सत्तामें सर्वथा एकत्व मान लेनेपर पट है, इस प्रकारके ज्ञानकी उत्पत्तिमें, सर्वप्रकारसे अविशिष्ट सत्ताकी ही प्रतीति रहना चाहिए और फिर कहीं भी सत्ताका सदेह न रहना चाहिये। इससे मालूम होता है कि सत्ता सर्वथा एकरूप नही है। जितने पदार्थ हैं उतने रूपसे ही सत्ताका ज्ञान हो रहा है। यदि सत्ताकी सर्वथा एक रूपसे ही प्रतीति की जाना मान लिया जाय तब फिर जो विशेष्य अर्थ हैं, जिनको कि सत् कहा जा रहा है उन विशेष अर्थोंकी प्रतीति न होगी क्योंकि सत् सामान्यकी प्रतीति-

हो रही । विशेष्यको फिर छोड दिया गया । तब फिर किसी भी जगह सत्ताके सम्बन्ध मे कोई भी विशेषण बन बैठे । घट पट वगैरह ये विशेषण सब व्यर्थ हो जायेंगे, क्यो कि सत्ताका सर्वथा एक रूपसे प्रतीति होना मान लिया ना, फिर विशेषण सहित सत्त्व का याने भावान्तर सत्त्वका तो कोई जिकर ही नही रहा । सर्वथा यदि सत्ता एक हो तो घट पट आदिक सबका लोप हो जायगा, अथवा किस ही पदार्थमें किस ही पदार्थ को कह दिया जायगा । सत्ता तो एक ही है ना ? सो इस प्रकार सत्ताका जो दृष्टान्त दिया है उसमे एकपना नही पाया जा रहा याने साध्य भी नही है । यों दृष्टान्त याने सत्त्व साध्यविकल हुआ । अब उसकी साधन विकलता देखिये ! सत् प्रत्ययकी अविशेषता यह हेतु ही तो दिया गया था समवायका एकत्व सिद्ध करनेके लिये । सो यह हेतु दृष्टान्तमे याने सत्त्वमें नही पाया जा रहा । जितने पदार्थ हैं, जितने सत् हैं उन सब विशेषणोमे सत्की प्रतीति हो रही है । पदार्थोंको छोडकर सत्त्व एक अलग क्या है जिसका कि सम्बन्ध हो और, फिर सत् कहलाये ? तो समवायको एक सिद्ध करनेके लिए जो सत्ताका दृष्टान्त दिया है वह दृष्टान्त साध्य विकल तथा साधन विकल होने से अयुक्त है । न सत्ता एक है, न समवाय एक है, और सत्ता समवाय वस्तुत कुछ पदार्थ ही नही है । जो पदार्थ हैं उनको ही साधारण धर्म और असाधारण धर्मकी दृष्टिसे हम उसमें व्यवहार किया करते हैं सो इन्हींको तिर्यक और ऊर्ध्वताके रूपमें निरखनेपर गुण कर्म सामान्य विशेष प्रतीत होते हैं । अब एक ही अखण्ड पदार्थको बुद्धि भेदसे उनके धर्मोंमें भेद डालकर उनको स्वतन्त्र सत् मान लेना और ऐसी गल्ती करनेके बाद फिर जब उनका परस्परमें जुडाव करनेकी समस्या आती है तो उस समस्या को सुलझानेके लिए एक कल्पित समवाय पदार्थ माननेका इतना जो श्रम किया जा रहा है वह सब व्यर्थका श्रम है । बडे विवेकसे सब पदार्थोंको जो कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त हो अपने आपमें परिपूर्ण स्वतन्त्र निरखते जावो ।

निर्मोहिताके निष्पादक ज्ञानमे ज्ञानत्वका यथार्थ व्यपदेश—देखिये ! समस्त ज्ञानोंका प्रयोजन यही है ना कि मोह हटे । जिस मोह अधकारमे रहनेसे यह जीव दु खी हो रहा है यह मोह अन्धकार दूर हो इसके लिये सम्यग्ज्ञान है । धर्म पालने है तदाचरण है । तो मोह मेटनेका मूल प्रयोग तो सम्यग्ज्ञान है, सो इसको भी समझ लीजिये कि हम इन प्रत्येक उत्पादव्यय ध्रौव्यमय पदार्थोंको निराला, स्वतन्त्र परिपूर्ण निरखते हैं तो इस निरखनमें मोहका अवकाश नही रहता । समस्त पदार्थोंमे जो व्यवहारमें आये हैं, परिचयमे आ रहे हैं वे पदार्थ दो हैं जीव और पुद्गल । तो जीव और पुद्गलमें भेद डालनेकी बात करनी है । जीव और पुद्गल ये भिन्न भिन्न स्वतन्त्र पदार्थ हैं । यह निरखनेके लिये आत्मसत्त्व और इन पुद्गलोका सत्त्व यही तो समझना है । समझ लिया, तो बाह्यमें पुद्गल अणु हैं, ये रूप, रस, गध, स्पर्शात्मक हैं । इनमें परिणमनेका उनका अपना काम है । मैं अपने ही चेतनस सत् हू, अपनेमें अपने आपसे परिणमता रहता हू इतनी ही बात तो निरखना है । सो जो

वास्तविक सत् है उसको निरखिये और मोहका विनाश कीजिये अब पदार्थोंमे, उन की छटनीमे उधेड़बुन करना कि जो अखण्ड है उसमे भी धर्मोंको भिन्न मानकर स्वतंत्र पदार्थ मानकर उनका भेद न करना और उनका सम्बन्ध बनाना । इस व्यर्थके श्रममे कोई लाभ नही है । सीधा मानना चाहिये कि हमारे व्यवहारिक प्रसगमे जीव और पुद्गल दो जातिके पदार्थ हैं और वे जीव अनन्त हैं । पुद्गल भी अनन्त हैं । उन सब में कुछ भी एक अन्य समस्त जीव पुद्गलोसे निराला है, यों भिन्न निरखनेपर मोहका आश्रय नही रहता । और, इस प्रकार मुक्तिके प्रयोजनकी सिद्धि होती है । सो परिकल्पित समवायके माननेसे प्रयोजन नहीं, किन्तु वस्तुको ही स्वयं साधारण, असाधारण धर्मात्मक मानो, उसीको कहा गया है कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थको निरखो ।

समवायकी सिद्धिके लिये शंकाकारका पुनः अन्य एक अनुमान—शकाकार कहता है कि एक इस अनुमानसे समवायकी सिद्धि हो जाती है, वह अनुमान यह कि समवायी द्रव्य है इस प्रकारका जो ज्ञान है वह विशेषणपूर्वक होता है क्योंकि विशेष प्रत्ययपना होनेसे दंडी आदिकके ज्ञानकी तरह । जैसे किसी पुरुषने ज्ञान किया कि यह दडी पुरुष है तो इस ज्ञानमें दण्ड विशेषण साथ लगा हुआ है अर्थात् दण्डके सम्बन्धसे यह पुरुष दडी कहलाता है । इसी प्रकार जब यह ज्ञान होता है कि यह समवायी द्रव्य है तो उससे ही यह सिद्ध है कि इसमे समवाय रहता है तभी तो यह समवायी कहलाता है और इस तरहके परिचयसे समवाय पदार्थकी सिद्धि हो जाती है । इस अनुमानमें यद्यपि साध्य इतना ही कहा गया है कि विशेषणपूर्वक है 'समवायी द्रव्य है' इस प्रकारका ज्ञान विशेषणपूर्वक है । तो विशेषणपूर्वक ऐसा कहनेमे किन्ही अन्य विशेषणोका सम्बन्ध सम्भव नही है । जैसे कि तादात्म्य सयोग वाच्य वाचक आदिक सम्बन्ध है, उनका विशेषणपना नही लेना है तो फिर क्या लेना है ? समवाय का ही अनुराग लेना है अर्थात् विशेषणपूर्वक है इसका अर्थ यह लेना है कि समवाय पूर्वक है । तो यहाँ समवाय ही विशेषण है तब समवायी द्रव्य है इस प्रकारका ज्ञान विशेषण पूर्वक है, इसका अर्थ हुआ कि समवायपूर्वक है । यदि समवाय विशेषण नही होता, तो उन पदार्थोंको समवायी द्रव्य है ऐसा कैसे कहा जा सकता है ? यहाँ कोई यदि यह कहे कि जिसने सकेत नही जाना, समवायको नही जाना उसके तो समवाय इस प्रकारके प्रतिभासका अभाव हो जायगा अर्थात् समवायके अपरिचयमें किसी पदार्थ को समवायी ऐसा भी तो नही कह सकते, फिर समवायमें विशेषणपना कैसे आयगा ? इसके प्रत्याक्षेपमें यह कह सकते हैं कि दड आदिकमे भी तो यह बात समान है । जिसने दडको नही जाना वह दड ही क्या समझेगा ? कोई दड इस शब्दको न जानता हो, और उसके सामने दड कहा जाय तो वह तो इसका अर्थ न समझ पायगा अथवा दंड को और कुछ कहता हो कोई तो दड कहनेसे वह दडको तो न समझ पायगा । तो दड का सकेत जब किसीको ज्ञात नही है तो उसको 'दडी' ऐसा प्रतिभास हो न सकेगा । तो दड भी विशेषण न रह सकेगा और फिर 'दडी' इस प्रकारका ज्ञान भी न हो

सकेगा। वहाँ यदि यह कहोगे कि दड आदिकका शब्द योजनाके भावमें हो कि यह यह पुरुष दडा वाला है तो लोग देखेंगे ना उस पुरुषका कि इसके हाथमें यह है, सो इसको कहा जा रहा है दडे वाला। लो, इस वस्तुसे यह दडा वाला कहलाता है। लो इस वस्तुका नाम दडा है। इस तरह लोगोंको दड विशेषणकी प्रतीति हो जायगी। तो प्रत्याक्षेपमें यह भी कह सकोगे कि ये ततु पट आदिकसे सम्बन्धित हैं, इस तरह कहनेमें सम्बन्धमात्रको तो समझ ही जायेंगे कि सम्बन्धकी बात कह रहे हैं। अब आगे चलिये जिसने दण्ड सकेतको जान लिया है वह 'दण्डी' ऐसा कहनेमें दण्ड विशेषको भी जान जाता है। इसी प्रकार अब समवायको भी विशेषणपनेसे शब्द योजनामें डालेंगे तो समवायका भी परिचय हो जायगा। तो इस अनुमानसे समवायकी सिद्धि होती है और उस अनुमानमें कोई दोष भी नही आता। क्या है वह? समवायी द्रव्य है, इस प्रकारका ज्ञान विशेषणपूर्वक है विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे दण्डी आदिक प्रत्ययकी तरह, इसका निष्कर्ष यह निकला कि चूकि समवायी द्रव्य है, विशेष्य उनका हो रहा है। तो अपने आप आ गया कि समवाय विशेषण अवश्य होना है जिसके कारण यह द्रव्य समवायी कहलाता है।

शकाकारोक्त समवायिसाधक अनुमानके हेतुकी असिद्धता—अब उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि शकाकारने जो यह कहा है कि समवायी द्रव्य है आदिक ज्ञान विशेषणपूर्वक होता है विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे। सो यह सब गहरे अज्ञानका ही विलास है जिससे ऐसा असगत कहा जा रहा है। अरे इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है कि विशेष प्रत्ययरूप होनेसे यह तो विशेषणासिद्ध है। हेतु दिया गया है यह कि यह समवायी द्रव्य विशेष्यरूप है ऐसा ज्ञान हो रहा है तो समवायी ऐसा ज्ञान कब हो सके जब पहिले यह विदित हो कि समवाय होता है और उसका इसमे अनुराग लगा है, विशेषण है सम्बन्ध लगा है। तो समवायके अनुरागकी जब प्रतीति ही नहीं है, जब समवायका स्वरूप ही सिद्ध नहीं है फिर यो कहना कि समवायी द्रव्य विशेष्य प्रत्यय रूप है, यह तो अपने घरमें बैठकर अपनी ही प्रशसा करने जैसी बात है। उसीका ही तो प्रसग चल रहा कि समवाय नामक पदार्थ नहीं है। और शकाकार यहा यों सिद्ध करना चाहता है कि समवायी द्रव्य है यह ज्ञान समवाय पूर्वक होता है यह कितनी असगत बात है। जब समवायरूप सम्बन्धकी सिद्धि नही है तो समवायी विशेष्य है यह ज्ञान आ कहासे जायगा? और। मान लोगे कि समवाय सम्बन्धकी प्रतीति हो रही है तो फिर अनुमान करना अनर्थक हो गया। ऐसा कौन तो पुरुष है जो समवायसे अनुरक्त द्रव्यका यदि अनुराग है तो अनुमान अनर्थक है और समवायका यदि अनुराग प्रतीत नहीं हो रहा है तो हेतु विशेषणासिद्ध है।

असत् समवायसे समवायीको विशेष्य मान पर खरविषाणमे विशेषणविशेष्यपनेका प्रसग—यदि यह कहो कि समवाय सम्बन्ध न होनेपर भी उस सम-

वायमें इस समवायी द्रव्यमें हम विशेषपना ला देते हैं याने हम समवायीको विशेष कहने लगेंगे। न भी हो समवाय सम्बन्ध। तो उत्तरमे बात यह है कि फिर तो गधेके सींगके साथ भी विशेषणपना लग जाना चाहिये, क्योंकि अब तो समवाय सम्बन्धके अनुराग बिना भी समवायी द्रव्यका विशेषपनो ला दिया है। तो असत् पदार्थ भी विशेष्य बन जाय विशेषण बन जाय। शंकाकार कहता है कि सम्बन्धसे अनुरक्त द्रव्यादिक तो प्रतिभात सब लोगोको हो रहे हैं, जैसे—पट है, तो ततुवोमें ही अनुरक्त है वह पट, अलग कहाँ है, ऐसा लोगोको प्रतिभात तो हो रहा है। समाधानमें कहते हैं—हाँ, हो रहा है प्रतिभात, सत्य है। मगर इसमे समवाय क्या आ पड़ा? जिस सम्बन्धसे अनुरक्त ये द्रव्यादिक प्रतिभात होते हैं वह सम्बन्ध कोई समवाय नहीं है, क्योंकि तादात्म्य सम्बन्धसे भी अनुराग बन जाता है, विशेषण बन जाता है, सम्बन्ध बनता है। ततु और पटमे कोई अलग पदार्थ नही है ततुवोका ही रूप पट कहलाता है। तो उसमें तादात्म्य सम्बन्ध है। तो अनुराग विशेषण सम्बन्ध तो तादात्म्यका भी सम्भव हो सकता है जैसे कि संयोगका। दो द्रव्योमें जो अन्तर रहित अवस्था है उसको सयोग कहते हैं और सयोगसे सम्बन्धकी प्रतीति हो रही है। तो सम्बन्धसे अनुरक्त द्रव्यादिक प्रतिभात होते हैं तो हो, मगर समवाय नामक पदार्थोंमें इससे सिद्धि नहीं होती?

समवाय और समवायीकी अप्रतीति—देखो! न समवाय नामक पदार्थकी सिद्धि है और न किसी प्रकार समवाय विशेषण बनेगा, न समवायी विशेष्य बनेगा, फिर भी अगर समवायके माननेमे आग्रह ही करो कि वह तो समवाय विशेषणपूर्वक ही है तो फिर खरविषाणका आग्रह क्यों नही हो जाता? जो चीज असत् है उसे विशेष्य विशेषण क्यों नही मान लेते? कोई यो क्यो नही मान बैठना कि यह पट खरविषाणी है अर्थात् यह कपड़ा गधेके सीगसे बना हुआ है? 'खरविषाणी पट:' ऐसा ज्ञान विशेषणपूर्वक है क्योंकि विशेष्यरूप प्रत्यय होनेसे। यदि शकाकार यह कहे कि इस अनुमानमें तो आश्रयासिद्धता दोष है मायने खरविषाण कुछ है ही नहीं फिर भी कहते कि यह पट खरविषाण पूर्वक है, यह तो प्रत्यक्ष आश्रयासिद्ध नामका दोष है। तो समाधान भी इसी प्रकारका है कि समवायी द्रव्य है इस प्रकारका ज्ञान विशेषणपूर्वक है, विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे। इसमे भी विशेष प्रत्ययमें आश्रयासिद्धता दोष है। समवायी द्रव्य कोई है ही नहीं। और, कोई पुरुष ऐसा अनुभव भी नहीं करता कि यह पट समवायी है। इस ढगसे किसी मनुष्यका ज्ञान भी नहीं हुआ करता, ऐसी बुद्धि ही नहीं बना करती। तो समवाय नामका कोई पदार्थ नही और न समवायी द्रव्य है ऐसा विशेष्यज्ञान भी किसीको हुआ करता है।

अप्रतिपन्न समय व प्रतिपन्न समयके भेदकी बातमे अतिप्रसङ्ग—इस विषयमें शंकाकार जो यह कह रहा है कि जब तक समवाय इस शब्दसे संकेतको नही जाना तब तक तो लोगोको सदन्य मात्र ही प्रतिभासमें आता है, और जब जान गए

कि यह समवाय है और इस सश्लेषमे समवाय नामका सांकेतिक शब्द है, तो जब सम्बंध का सकेत ज्ञात हो गया जिस किसीको तो उसके लिए फिर समवायी यह भी प्रतिभास-मीन हो जाता है, यह कहना बिलकुल असगत है। इस तरह तो ज्ञानाद्वैत आदिक भी प्रतिभासमान होते हैं, ऐसा भी कह सकते, जिसे कि शकाकार मान ही नही सकता। उसकि सिद्धान्तमे जिस सिद्धान्तका सहारा लेकर जिन्दा चल रहा है उस सिद्धान्तमें ज्ञानाद्वैतको माना ही नहीं। कह सकते हैं हम उस जगह कि जिसने सकेत नही समझा है उस पुरुषकी तो शब्द योजना रहित वस्तुमात्र प्रतिभासमें आती है, और जब सकेत समझ लिया तो संकेतके वशसे यह सारा विश्व ज्ञानाद्वैत रूप प्रतिभासमें आता है। यदि कहो कि वह ज्ञानाद्वैतवादी तो अपने शास्त्रसे उत्पन्न हुए संस्कारकी वजहसे विज्ञानाद्वैत है, ऐसे प्रकारका प्रतिभास किया करता है वह तो अप्रमाण है, तो भाई यही बात है तुम्हारे समवायके लिए भी कि तुम भी अपने शास्त्रसे उत्पन्न हुए संस्कार की वजहसे समवाय है, समवायी है, इस प्रकारका प्रलाप किया करते हो। समवाय और समवायी सम्बन्धमें अपने शास्त्रमें लिखा है इस सस्कारके बिना और कुछ भी कारण नही है। कोई भी पुरुष यह समवाय है यह समवायी है, इस प्रकारके ज्ञानका अनुभव नही करता। अब रह गयी दो बातें विशेषवादका शास्त्र और विज्ञानाद्वैतवादका शास्त्र। उनमें यह कहना कि मेरा शास्त्र प्रमाण है, दूसरेका शास्त्र अप्रमाण है, ऐस कथन तो विद्वानोंकी सभामे शोभा नही देता। यो न समवाय पदार्थकी सिद्धि है और न समवायी विशेषणकी सिद्धि है।

समवाय साधक अनुमानके हेतुमें समवाय प्रत्ययके साथ अनैकान्तिक दोष—शकाकारने जो यह अनुमान किया है कि सावयवी द्रव्य है, इस प्रकारका जो प्रत्यय है वह विशेषण पूर्वक है विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे जो हेतु दिया गया है कि विशेष प्रत्ययरूप होनेसे, और साध्य बताया है कि विशेषण पूर्वक होता है, किन्तु समवाय है, इस प्रकारका जो ज्ञान होता है वह विशेष्य प्रत्ययरूप तो हो गया मानों, पर विशेषण पूर्वक नहीं है, क्योंकि समवायका विशेषण और क्या माना जायगा ? जो विशेष्य प्रत्यय होता है वह विशेषणकी अपेक्षा नही रखता, एक यह भी बात है, और फिर समवाय है इस प्रकारके ज्ञानके लिए विशेषण कुछ है भी नही, समवायत्व समवायके लिए माना नही गया है इस कारण समवाय है इस प्रकारके ज्ञानके साथ विशेषप्रत्ययत्वात् इस हेतुमें अनेकान्तिक दोष आता है। शकाकार कहता है कि यहां तो हम समवायीका विशेषण समवाय कह रहे हैं, उसपर ध्यान देना चाहिये। समवायका पक्ष मानकर हम उसमें कुछ घटानेकी बात नही कह रहे इस लिए अनेकान्तिक दोष न होगा। यहाँ जो समवायी पदार्थ हैं, ततु पट आदिक हैं तो उनको विशेषण पूर्वक सिद्ध कर रहे हैं। उत्तरमें कहते हैं कि भले ही ततु पट आदिकको विशेषणपना बन जाय वहाँ पर जहाँ कि ऐसा प्रतिभास हो कि समवायियोंका समवाय है, लेकिन जहाँ समवाय है इतना ही मात्र अनुभव होता हो, इतना ही परिचय किया जा रहा हो वहाँ पर

क्या विशेषण होगा इस पर भी तो विचार करो ! आपने तो एक व्याप्ति बना दी कि जो विशेष्य प्रत्यय होता है वह विशेषण पूर्वक होता है । तो समवाय यह विशेष्य प्रत्यय है ना, संज्ञावाचक नाम है ना ? उसका अब क्या विशेषण दोगे ? समवायियों का समवाय है, इस ज्ञानमें विचारणीयताकी बात अलग है, वह प्रसंग दूसरा है, और, जब समवाय है इतना ही प्रत्यय है तो वहां तुम केवल समवाय है इतना ही परिचय कर रहे हो अब वहाँ क्या विशेषण घटेगा सो विचारिये !

समवायको विशेष्य न माननेपर शंकाकारको अनेक अनिष्ठापत्तियां — शंकाकार कहता है कि ऐसा ज्ञान विशेष्य ज्ञान ही नहीं है क्योंकि उसका कोई विशेषण नहीं, फिर अनेकांतिकताकी बात ही कैसे घटेगी ? उत्तरमें कहते हैं कि तब तो फिर समवायोसे भिन्न जब कोई विशेष्य इस समवाय प्रकरणमे सम्भव न हुआ तो विशेषण ज्ञान भी कुछ मत रहो । यानें समवाय है इस विशेष्य ज्ञानको तो मान नहीं रहे और समवायी है, इसको विशेष ज्ञान कहते हो और समवायको विशेषण बनाते हो फिर समवायका ज्ञान करना ऐसे विशेषण बात बनाते हो तो जरा सोचो तो सही जब पहिलेसे ही विशेषणका अभाव है याने समवाय ही नहीं है, समवायियोसे न्यारा अलग । तब फिर समवायके प्रकरणमे जो विशेष्य बताया है ततु पट आदिक सो समवायी यह शब्द कहना ही अयुक्त हो गया । तब विशेष्य ज्ञान भी कुछ न रहा । न विशेषण ज्ञान रहा । सो जब दोनो ही न रहे तो अब चर्चा ही किसकी करते ? और फिर पट है इस प्रकारका ज्ञान विशेष्य कैसे हो सकेगा क्योंकि विशेषणके अभाव की समानता यहाँ भी है । पटमे क्या विशेषण लगा है । जिससे कोई पट विशेष्य कहलाये ? फिर तो कही भी न कोई विशेष्य रहा न विशेषण तब विशेष्य विशेषण की बात ही करना फिजूल है । शंकाकार कहता है कि पट है इस ज्ञानमे जो कारण बना है, वह है पटत्व । पटत्व विशेषण । तो भाई पटमें तो पटत्व विशेषण लगा लेकिन अब समवाय है इस प्रकारके ज्ञानमें क्या विशेषण लगावोगे ? पटके पटत्वकी तरह समवायके समवायत्वका विशेषण बनाओगे । लेकिन समवायत्व तो हो नही सकता । एकत्व नही माना है । निष्कर्ष यह निकला कि समवायी द्रव्य है इस प्रकारके ज्ञानका समवायपूर्वक सिद्ध करना और उसके लिए विशेष्य प्रत्यय रूपताका हेतु देना यह सब अर्थहीन प्रलाप है । समवाय नामका कोई पदार्थ नही और फिर उसका किसी जगह सम्बन्ध हो इसकी तो कहानी ही क्या कहें । पदार्थ जैसा है अखण्ड उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक वैसा ही मानना चाहिए और उसमे जो उसकी अभिन्न शक्तियां ऐसी नजर आयें जो तत्सदृश अन्य पदार्थोंमे भी घटित हों, वह सो कहलाता है सामान्य धर्म । और जो अन्यमें घटित न हो वह कहलाता है विशेष धर्म और, वह अखण्ड द्रव्य निरन्तर परिणमता ही है । सो परिणमन हुए कर्म और उसकी जो आधार शक्ति है वह है गुण । ये सब जुदे जुदे कहाँ हैं ? और, फिर ऐसे अखण्ड अभिन्न तदात्मक पदार्थमें समवायके कहनेका भी अवकाश कहाँ है ?

समवायको विशेषण सिद्ध करनेकी शंकाकारकी चर्चा—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जिस सत्के द्वारा विशिष्ट ज्ञान होता है वह विशेषण होता है, जैसे नील कमल कहा तो उस नीलापनेसे विशिष्ट कमल है ऐसा ज्ञान होता है ना, तो कमलका नील विशेषण बन गया। तो इसी प्रकार इन समवायोंसे विशिष्ट समवायी है, यहाँ ऐसा समवायी द्रव्यका जो ज्ञान होता है उस ज्ञानमें समवाय विशेषण कहलायेगा और फिर यदि यह पूछा कि समवाय है इस प्रकारके ज्ञानमें विशेषण क्या कहलायेगा ? तो उसकी बात सुनो ! समवायत्व सामान्य तो माना नहीं गया, इस कारण ये स्वप्न तो मनमें लाना हीं न चाहिए कि समवायका समवायत्व विशेषण है और समवायत्वके समवायसे समवाय समवाय कहलाता है। तब बात है क्या कि समवाय प्रतिभासमान होता है। समवाय है इस प्रकारके ज्ञानमें तंतु और पटादिक समवायी द्रव्य वे भी प्रतिभासमान नहीं हो रहे, क्योंकि समवाय है इतना ही तो ज्ञान किया जा रहा है। तो समवाय है इस ज्ञानमें न तो समवायत्व विशेषण बना और जिन दो पदार्थोंका समवाय बन रहा है न वे दो पदार्थ विशेषण बने तब क्या विशेषण रहा ? अदृष्ट पुण्य पाप ! अर्थात् समवाय है, इस प्रकारका जो ज्ञान बन रहा है सो इस ज्ञाताके ऐसे ही पुण्यका उदय है, अदृष्टका उदय है, जिसके कारण यह ज्ञान बन रहा है, क्योंकि जितने ज्ञान बना करते हैं वे सब अदृष्टके कारण बना करते हैं। यहाँ तो ज्ञानकी ही बात समझायी जा रही ना, तो समवाय है इस प्रकारके ज्ञानके उत्पादमें अदृष्टका ही विशेषणपना प्राप्त होता है।

समवायको विशेषण माननेकी शंकाकारकी चर्चाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह सब कथन असंगत है, क्योंकि विशेषणका पहिले अर्थ निर्णीत कर लीजिए जैसे सत्के द्वारा विशेष्यज्ञान उत्पन्न होता है कि यह विशेष्य है। जिस सत्के द्वारा यह ज्ञान उत्पन्न होता है क्या वह विशेषण है, याने जिस सत्के कारण विशेष्य ज्ञान बना, क्या वह सत् विशेषण है, यह आपका अभिप्राय है या जिसका सम्बन्ध प्रतिभासमान हो रहा है, द्रव्यमें। विशेष्यमें जिसको कल्पित किया गया है उसमें जिसका सम्बन्ध प्रतिभासमान होता है क्या वह विशेषण है ? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि यह कहा कि जिस सत्के कारण विशेषज्ञान उत्पन्न होता है वह सत् विशेषण है। तो देखो ! ज्ञानकी उत्पत्तिमें नेत्र प्रकाश आदिक भी कारण पड़ते हैं। नेत्र प्रकाश सत्के द्वारा भी विशेष्यज्ञान उत्पन्न हो रहा है तब तो नेत्र प्रकाश आदिकका भी विशेषणपना मानना अनिवार्य हो जायगा। पर किसी भी द्रव्यको निरखकर जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानकके क्या ये नेत्र आलोक विशेषण बन जाते हैं ? नहीं। उन्हें करण कह लीजिये, यह बात एक अलग प्रकरणकी है। इससे यह विकल्प ठीक न उतरा कि जिस सत्के द्वारा विशेष्य ज्ञान उत्पन्न होता है वह विशेषण कहलाता है। अब दूसरे विकल्पकी बात सुनो—जिसका सम्बन्ध है वह विशेषण है। यही तो है ना दूसरा विकल्प ? तो यह विकल्प मानोगे यदि कि जिसे

का सम्बन्ध है वह विशेषण है तो दण्डी इस ज्ञानमे दण्ड शब्दके उल्लेखके द्वारा क्या विशेषण जाना गया ? दण्ड । तो इसी प्रकार यह बतलादो कि समवाय है इस प्रकार के ज्ञानमे जो आप अदृष्टका अनुराग मान रहे हो तो उसमे क्या जाना गया । जबर्दस्ती कुछ कहना यह आपके घरकी बात है । मगर कोई भी पुरुष अदृष्ट शब्दकी रचना के द्वारा समवाय है इस प्रकारके ज्ञानमे अदृष्टका सम्बन्ध नही समझ रहा है और अदृष्टका सम्बन्ध मानना नही बन रहा । अन्यथा किसी भी फिर अदृष्टको ही विशेषण मान लो । समवाय है इस प्रकारके ज्ञानके लिए ही अदृष्टको विशेषण क्यो मान रहे ? दण्डी है, पट है आदिक समस्त ज्ञानोमे भी अदृष्टको ही विशेषण मानिये ! फिर तंतु पट आदिक अनेक द्रव्योमे विशेषण भावकी कल्पना करनेसे क्या प्रयोजन रहा ? इस प्रकार आपके विशेषण भावकी उपपत्ति नही बनती । तो यह अनुमान आपका दूषित हो गया कि समवायी द्रव्य है इस प्रकारका ज्ञान विशेषणपूर्वक है, विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे । वह ज्ञान समवायपूर्वक है ही नही, समवाय कोई पदार्थ नही है ।

अनिष्पन्न या निष्पन्न समवायियोमे समवाय सम्बन्धकी असिद्धि— विशेषवादमे जो समवाय सम्बन्ध माना जा रहा है उसके बारेमे विशेषवादी बतायें कि यह सम्बन्ध, समवायनामक सम्बन्ध अनिष्पन्न सम्बन्धियोमे होता है या निष्पन्न सम्बन्धियोमे होता है ? यदि कहो कि अनिष्पन्न सम्बन्धियोमे समवाय सम्बन्ध होता है तो यह बात तो सुनते ही असगत लग रही है । जब उसका सम्बन्धी है ही नही, उनका उत्पाद ही नही होता तब फिर सम्बन्धियोमें समवाय सम्बन्ध कैसे लग जायगा । यदि कहो कि निष्पन्नोमे समवाय सम्बन्ध लगता है तो जो पदार्थ निष्पन्न हैं, उत्पन्न हो चुके हैं, स्वय हैं परिपूर्ण हैं, उनमे तो सयोग सम्बन्ध ही लग सकेगा । समवाय सबध की उन्हे आवश्यकता ही क्या है ? पदार्थ तो स्वय अपने स्वरूपमे निष्पन्न है । तो न तो अनिष्पन्नके विकल्पमे समवायकी प्रतिष्ठा रहती है और न निष्पन्नके विकल्पमे समवायकी प्रतिष्ठा रहती है ।

समवायियोसे असम्बद्धत्व व सम्बद्धत्व दोनो विकल्पोमे समवायत्व की असिद्धि— अच्छा अब यह बतलावो कि समवाय समवायियोसे असम्बद्ध है या सम्बद्ध है ? यदि मानोगे कि समवायी पदार्थोसे समवाय असम्बद्ध है याने समवायी दो पदार्थोमे जैसे द्रव्य, गुण, आत्मा, बुद्धि, कुछ भी ले लो, उन दो पदार्थोसे समवाय सम्बन्ध नही है तो असम्बन्ध होनेपर अर्थात् समवायोमें समवायका सम्बन्ध न रहनेपर समवायी पदार्थोका समवाय है, इस प्रकारका व्यपदेश नही बन सकता है । यदि कहो कि समवायी पदार्थोसे समवाय सम्बद्ध है तो यह बतलावो कि उन समवायी पदार्थोमे यह समवाय स्वतन्त्र ही सम्बद्ध हो गया या किसी परसे सम्बद्ध हुआ है ? जैसे घट और रूप, घटने रूपका समवाय माना जा रहा है तो घट और रूपमें समवायका जो सम्बन्ध बना है सो क्या यह सम्बन्ध स्वतः बना है या किसी अन्य समवाय आदिकके

कारण बना है ? यदि कहो कि समवायियोंमें समवायका सम्बन्ध स्वत बना है तो जब सम्बन्ध स्वत बनने लगा तो संयोग आदिकका भी सम्बन्ध स्वत ही क्या न मान लिया जाय ? विशेषवादने संयोगका सम्बन्ध पदार्थोंमें समवाय सम्बन्धसे माना है। तो जब समवाय सम्बन्ध समवायियोंमे स्वत ही बन जाता है तो यों संयोग सम्बन्ध उन दो द्रव्योंमें स्वत ही क्यों नही बन जाता ? बन जाना चाहिए। सो विशेषवादमें मानना इष्ट नही है। यदि कहो कि समवायी पदार्थोंमें समवायका सम्बन्ध परसे होता है तो इसमे अनवस्था दोष आता है। समवायी दो पदार्थोंमें समवायका सम्बन्ध हुआ समवायसे, अब उस दूसरे समवायका उनमे सम्बन्ध हुआ तीसरे समवायसे, तीसरे समवायका उन सबमे सम्बन्ध करनेके चतुर्थ समवायकी कल्पना की जाय फिर उस समवायका जो निकट समवाय और समवायीमें सम्बन्ध बनाया जायगा वह बनेगा अन्य समवायसे। तो इस प्रकार समवायियोंकी कल्पना बनाते जायेंगे। अनवस्था दोष हो जायगा। कहीं निर्णय हो न हो सकेगा।

गुणोमे आधेयत्व न होनेसे समवायकी असिद्धि—अब और अन्य बात यह देखिये ! कि द्रव्यमे गुण आधेय है ऐसा ही तो कहना है और, द्रव्यमे गुणका इसी बुनियादपर समवाय मानते हैं। गुणमें द्रव्यका समवाय तो नही कहते। आधारका आधेयका समवाय बता रहे हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि गुण आदिक जिनका कि समवाय सम्बन्ध कराया जायगा वे सब आधेय होना चाहिए लेकिन गुण आदिकमें आधेयपना सम्भव नही है, क्योंकि वह निष्क्रिय है, गुण मे क्रिया तो है नही। यदि क्रिया होती और फिर क्रिया का रुकावट करने वाला कोई बनता तभी तो आधार और आधेयपनेकी बात बनती। जैसे—पानीकी क्रिया हो रही है और घटमे पानीको डाला तो पानीकी जो क्रिया है, वेग है उसका प्रतिबन्ध कर दिया ना घटकी तलीने, तभी घट आधार कहलाता और जल आधेय कहलाता। लेकिन गुणोमे जब क्रिया ही नही होती तो वे आधेय नही कहला सकते। क्रिया हो और वे द्रव्यके पास पहुँचे और द्रव्य उन्हें रुकावट करदे, उसके आगे उन्हे न जान दे तब तो द्रव्यमें गुणमें आधार आधेयपनेकी बात बन सकती है और जब गुणोमें आधेयताकी बात न रही तो फिरके गुण, द्रव्यमें समवाय करनेकी बात क्या रही ?

स्वरूपसश्लेषमे समवायत्वकी असिद्धि— अब सर्व ओरसे विचार करनेपर यह प्रमाणित होता है कि स्वरूपका याने स्वभावका परस्परमें सम्बन्ध नही होता। याने समवायका सीधा अर्थ आप क्या लोगे ? या तो यह कहोगे कि स्वरूपका सश्लेष हो गया है दो पदार्थोंके स्वभाव थे उन स्वभावोंका आपसमें मिलन हो गया है इस ही का नाम समवाय है अथवा यह कहोगे कि दो पदार्थ थे स्वतन्त्र-स्वतन्त्र, अब वे दोनों परतन्त्र हो गए। अब अपनी स्वतन्त्रता नही रख रहे, तो ऐसे दो प्रकारके सम्बन्ध की कल्पना करनेपर स्वरूप सश्लेष समवाय तो अब यहाँ घट नही पा रहा, क्योंकि

स्वरूपसंश्लेषमें न कुछ आधार है न कुछ आधेय है। वह संश्लेष अनिष्पन्नमें हुआ कि निष्पन्नमें हुआ? अनेक विकल्पोंके कारण किसी भी विकल्पमें घटित नहीं हो पा रहा। तो जब स्वरूप संश्लेष नामका समवाय नहीं बना, है ही नहीं क्यों नहीं है कि स्वरूप संश्लेष अगर हो गया तो समझिये कि उनमें एकत्व आ गया। उनके सम्बन्धकी कोई बात तो न रही। सम्बन्ध तो तब माना जाता जब कि स्वरूप तो दो रहते और फिर उनका सम्पर्क रहता। चाहे घन सम्पर्क रहता चाहे शिथिल सम्पर्क रहता। तो स्वरूप संश्लेष नामका तो समवाय कहला ही नहीं सकता है। वह तो एकत्व कहलायेगा। सम्बन्ध न कहलाये।।

पारतन्त्र्यरूप समवायकी असिद्धि— अब यदि परतन्त्रताको समवाय मानते हो, जैसे आत्मामें बुद्धिका समवाय हो गया तो आत्माका जैसा स्वयंका सहज स्वरूप है वह नहीं प्रकट हो पा रहा। बुद्धिका समवाय जुट गया और बुद्धि गुण भी अपने आप स्वतन्त्र-स्वतन्त्र रहकर जिस स्वरूपको रख सकता है, उसे नहीं रख पा रहा, तो यों परतन्त्रता है, इस ही का नाम अगर समवाय कहते हो तो यह भी घटित नहीं होता, क्योंकि यह पारतन्त्र्य अनिष्पन्नोंमें कहोगे या निष्पन्नोंमें? अनिष्पन्न पदार्थोंमें तो आधारता ही स्वयं सिद्ध नहीं होता, जब दोनों पदार्थ अभी अनिष्पन्न हैं। समवाय जुटे तब निष्पन्न होंगे, तो उनमें परतन्त्रता कैसे आयी जिससे कि समवाय सम्बन्ध मान लिया जाय। तो न स्वरूप संश्लेष नामका सम्बन्ध समवाय बन पाता और न पारतन्त्र्यका नाम समवाय बन पाता। और, यदि कहो कि वह स्वतन्त्रतासे निष्पन्न है जिसमें कि परतन्त्रतारूप समवाय मानेंगे, तो भाई तुम यह कैसी बेतुकी बात कहते हो? जो स्वतन्त्रतासे निष्पन्न हो गए, अपने स्वरूपमें परिपूर्ण निष्पन्न हैं, उनमें परतन्त्रताकी बात क्या कह सकते हो? इससे समवाय पदार्थोंकी कुछ सिद्धि नहीं हो सकती?

स्वकारणसत्ता सम्बन्धको ही समवाय व निष्पन्नत्व माननेका शंकाकारका आशय—शंकाकार कहता है कि हम ऐसा नहीं मानते कि निष्पन्नमें समवाय होता है या अनिष्पन्नमें समवाय होता है, समवाय तो स्वकारण सत्ता सम्बन्धरूप है अर्थात् अपने कारणोंमें, अपने कारणोंकी सत्ताका सम्बन्ध कराना यही समवाय है और इस कारण सत्ता सम्बन्धको ही निष्पत्ति कहना है ऐसा नहीं है कि निष्पत्ति कोई अन्य बात हो और समवाय कोई अन्य बात हो। स्वकारण सत्ता सम्बन्ध ही समवाय कहलाता। अतएव उनमें पूर्वापरता कह नहीं सकते कि पहिले पदार्थ उत्पन्न होते हैं या पदार्थका समवाय होता है। ये दोनों ही एक हैं। काम एक हुआ स्वकारण सत्ता सम्बन्ध। अब इनमें पूर्वापर क्या प्रश्न करना कि निष्पत्ति पहिले है कि समवाय पहिले है? यह प्रश्न भी नहीं उठता। और, जब स्वकारण सत्ता सम्बन्धको ही निष्पत्ति मान ली गई है तो यही हुआ समवाय। अब यह विकल्प उठाना कि स्वरूप संश्लेषका नाम समवाय है क्या या पारतंत्र्यका नाम समवाय है? यह

बात अयुक्त है क्योंकि समवायका सम्बन्धान्तरसे सम्बन्ध नही माना जा सकता । जिससे कि अववस्था दोष आये, क्योंकि सम्बन्धमे सम्बन्धके समान ही लक्षण वाला अन्य सम्बन्धसे सम्बन्ध बताया जाय ऐसा तो कही नही देखा गया है जैसे सयोगी पदार्थके साथ सयोगका समवाय हुआ है हो गया । अब उसके लिए अन्य सम्बन्ध ढूढा जाता हो सो बात तो नही है । तो समवाय भी एक सम्बन्ध है । उस समवाय सम्बन्धका सम्बन्ध बतानेके लिए अन्य सम्बन्धोकी कल्पना नही की जा सकती ।

अग्निमे उष्णतावत् समवायमें स्वत सम्बन्धत्व माननेका शकाकार का कथन—यहाँ कोई यदि यह पूछे कि फिर इस समवायका सम्बन्ध कैसे हो गया समवायियोके साथ तो जैसे अग्निमे उष्णताका सम्बन्ध कैसे हो गया, इसको कोई भी बताये । वहाँ तो यही मानोगे ना कि अग्नि में उष्णताका सम्बन्ध स्वत ही है । तो जैसे अग्निमे उष्णताका सम्बन्ध स्वत ही है इसी प्रकार समवायका समवायियोंमें सम्बन्ध स्वत हो है, क्योंकि सम्बन्धरूप होनेसे । सयोग आदिकका सम्बन्ध स्वत नहीं मान सकते । सयोगका द्रव्योंके साथ सम्बन्ध करानेमें तो समवायकी आवश्यकता पडती है । क्योंकि सबकी जुदी जुदी प्रकृतियाँ होती हैं सयोगकी प्रकृति सयोग जैसी है, समवायकी प्रकृति समवाय जैसी है । जो एकका स्वभाव है वह अन्यका भी हो जाय ऐसा तो नियम नहीं है ना ? यदि यो नियम बन बैठे कि जो एकका स्वभाव है उष्णता और हम कहेंगे कि अग्निका स्वभाव जलका बन जाय, क्योंकि अब तो तुमने यह प्रसग छेड दिया कि एकका स्वभाव अन्यका भी स्वभाव बन सकता है । तो अग्निमें उष्णत के देखे जानेस जल आदिकमे भी उष्णताका स्वभाव मान लिया जाना चाहिए । इस तरह समवायके सम्बन्धमें बहुत सी पर्यायें जोडना कि यह अनिष्पन्नमे होता है कि निष्पन्नमे ? समवायका सम्बन्ध समवायियोमे किस तरह होता है, ये सब विकल्प केवल प्रलापभर है, सम्बन्धरूप है । सम्बन्धका सम्बन्ध होनमे अन्य सम्बन्धकी अपेक्षा नही होती । इस कारण यह बात प्रमाणसिद्ध हो गयी कि समवाय नामका पदार्थ है और उस समवायका समवायी दो पदार्थोंमे सम्बन्ध होता है और उस समवायका उन दो समवायोमे सम्बन्ध स्वत ही होता है । कोई समवायान्तर नहीं माना गया या अन्य समवाय नहीं माने गए । समवाय एक ही है । सो समवायका समवायी पदार्थोंके साथ सम्बन्ध स्वत ही होता है और स्व कारण सत्ता सम्बन्ध ही समवाय कहलाता है । और स्व कारण-सत्ता सम्बन्धको ही निष्पत्ति कहते हैं । यह सब एक साथ चल रहा है, उसमे पूर्वापरताका प्रश्न नही उठता है । यों अन्तिम पदार्थ जो समवाय नामका विशेषवादमें माना है वह बिल्कुल प्रसिद्ध होता है । इस सम्बन्धमें विकल्प उठाकर समवाय पदार्थोंके अस्तित्वका ही निराकरण कर देना युक्त नही है ।

शकाकारके स्वकारणसत्ता समवायकी असगतता—शकाकारके उक्त

कथनका अब समाधान दिया जाता है। शंकाकारने मूल बातको टालनेके लिए, अनिष्पन्न पदार्थोंमें समवाय होता है या निष्पन्न पदार्थोंमें समवाय होता है इन विकल्पोंका उत्तर टालनेके लिये जो यह कहा है कि अब स्व कारणमें सत्ताके सम्बन्धका ही नाम आत्मलाभ है निष्पन्नरूपपना है और वही समवाय कहलाता है आदिक जो बात कही है वह संगत नहीं होती, क्योंकि यदि स्वकारणमें सत्ताके समवायका ही नाम आत्म लाभ किया जाय अर्थात् कार्यरूप वस्तुके स्वरूपका उद्भव माना जाय तब फिर कार्य सदा नित्य रहेंगे। उसका कारण यह है कि सत्ता भी सदैव है और समवाय भी सदैव है। इन दोनों नित्योंके सम्बन्धसे कार्यका उद्भव हुआ है तो ये दोनों नित्य सदैव सम्बद्ध रह जायेंगे, फिर कार्यका कभी भी विनाश नहीं हो सकता, किन्तु ऐसा तो है नहीं, और न विशेषवादने स्वयं माना है। वे भी मानते हैं कि कार्यरूप द्रव्य विनाशीक होता है, किन्तु स्वकारण सत्ता सम्बन्धको समवाय व निष्पन्नरूप माननेपर कार्य अविनाशीक हो जायगा।

असत् पदार्थोंमें सत्तासमवायकी असिद्धि और विडम्बना—और, भी सुनो! यह जो सत्ताका समवाय बता रहे हो, स्वकारणमें सही, जहाँ भी सत्ताका सम्बन्ध बता रहे हो वह सत्ता समवाय क्या सत् पदार्थोंमें होता या असत् पदार्थोंमें होता। असत् पदार्थोंमें सत्तासमवायकी बात तो कह ही नहीं सकते। यदि असत्में सत्ताका समवाय होने लगे तो आकाशकुसुममें, खरविषाणमें भी सत्ताका समवाय हो जायगा। और फिर वह कार्य बन जायगा। इस कारण असत् पदार्थोंमें सत्ताका समवाय होता है, यह तो नहीं कह सकते। शंकाकार कहता है कि आकाशकुसुम खरविषाण आदिक तो अत्यन्त असत् हैं, इस कारण उन अत्यन्त असत् पदार्थोंमें सत्ताके समवायका प्रसंग नहीं आ सकता। इस कथनपर शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि फिर गुण गुणी आदिकमें जो अत्यन्त असत्त्वका अभाव माना है अर्थात् ये गुण गुणी द्रव्य गुण आदिक ये अत्यन्त असत् नहीं हैं यो इनमें अत्यन्त असत्त्वका अभाव कैसे आ गया गगन कुसुममें तो अत्यन्त असत्त्व है और इन द्रव्य गुणोंमें अत्यन्त असत्त्व नहीं है सो यह कैसे बात आयी? यदि कहो कि गुण गुणी द्रव्य गुण कर्ममें अत्यन्त असत्त्वका अभाव इस कारण है कि उनमें समवाय सम्बन्ध लगता है। तो समाधानमें कहते हैं कि ऐसा कहनेसे तो इतरेतराश्रयका दोष आता है। जब समवाय सिद्ध हो ले तब तो गुण गुणी आदिकमें अत्यन्त असत्त्वका अभाव सिद्ध होगा। और, जब गुण गुणी आदिकमें अत्यन्त असत्त्वका अभाव सिद्ध हो ले तब समवायकी बात बनेगी। इस कारण अत्यन्त असत् पदार्थोंमें सत्ताका समवाय तो मानना अयुक्त है।

सत् पदार्थोंमें सत्तासमवायकी अनर्थकता व असिद्धि—यदि कहो कि सत् पदार्थोंमें सत्ताका समवाय होता है तो यह बतलावो कि समवाय होनेसे पहिले वह पदार्थ सत् है ऐसा कबूलकर रहे हो तो समवायसे पहिले उन पदार्थोंका सत्त्व कैसे

आया ? क्या अन्य समवायसे आया अथवा स्वत ही आया ? यदि कहोगे कि समवाय से पहिले पदार्थोंमें जो सत्त्व आया है वह अन्य समवायसे आया है तो सुनो ! यह बात तो तुम्हारे ही सिद्धान्तसे असत्य है। विशेषवादमें तो समवायको एक ही माना है। समवायान्तर कहाँसे आ गया ? समवाय अनेक तो नहीं है और कदाचित् मान लिया जाय कि समवाय अनेक हैं और इसी कारण सत्ता समवायसे पहिले भी सत् पदार्थ जो हैं उनमे सत्त्व अन्य समवायसे आया तो इससे पहिले जो सत् हैं, जिनमे समवायान्तर लगाकर सत्त्व बनाया है उन पूर्व अर्थोंमे सत्त्व कैसे आया ? वहाँ भी कहना पड़ेगा कि समवायान्तरसे आया। अब इस तरह अनवस्था दोष आयगा। अत यह नही कह सकते कि सत् पदार्थोंमे सत्ताका समवाय होता है और समवाय होनेसे पहिले जो भी सत् हैं उनमे सत्त्व समवायान्तरसे ही है। अब यदि कहोगे कि सत् पदार्थोंमे सत्त्व स्वय ही है। जिन सतोंमें सत्ताका समवाय किया जा रहा है समवायसे पहिले वे सत् स्वत ही सत् हैं ऐसा मान लेनेपर फिर समवायोकी कल्पना करना अनर्थक है। लो ये पदार्थ तो पहिलेसे ही स्वय सत् है।

सत्तासमवायसे पहिले पदार्थोंमे सत्त्व व असत्त्व दोनोंके निषेधमें विरोध— शकाकार कहता है कि समवायसे पहिले उन पदार्थोंमें न तो सत्त्व है, न असत्त्व है क्योंकि सत्ताके समवायसे ही सत्त्व माना गया है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात असगत है। दो ही तो धर्म हैं मुकाबलेमें विचार करनेके लिए—सत्व और असत्व और, ये दोनो धर्म हैं परस्पर व्यवच्छेदरूप। अर्थात् जहाँ सत्व है वहाँ असत्त्व नही, जहाँ असत्त्व है वहाँ सत्त्व नही। इस तरह एकका निषेध करनेपर दूसरेका विधान हो जाना अनिवार्य है, क्योंकि दोनो धर्म परस्पर व्यवच्छेदरूप हैं। तो जब इनमें यह बात है कि एकका निषेध करेंगे तो दूसरेकी विधि बन जायगी, ऐसी स्थितिमें दोनोका निषेध करनेका विरोध है, तब यह कहना कि समवायसे पहिले उन पदार्थोंमे न सत्त्व है न असत्त्व है, यह बात घटित नही होती। एकका निषेध होगा तो दूसरेकी विधि माननी ही पडेगी।

अनुपकारी सत्ता और समवायमे परस्पर सम्बन्धकी असिद्धि—और भी समझिये कि इन सत् पदार्थोंमें, इन समवायी पदार्थोंमें सत्ताका समवाय किस लिए किया जाता है ? सम्बन्ध जितने भी होते हैं परस्परमें वे सम्बन्ध उपकारियोमे होते हैं अनुपकारियोंमें नही होते हैं। वे सब सम्बन्ध तब ही तो बनाते हैं जब परस्परमें एक दूसरेका उपकार समझते हैं। चाहे वह भूलरूप ही क्यों न हो लेकिन उपकार समझे बिना उपकार हुए बिना परस्परमे सम्बन्ध नहीं बनता। तो ये सत्ता और समवाय तो अनुपकारी हैं। कौन किसका क्या उपकार करता है ? सत् तो पहिलेसे ही सत् है समवायने सत्का क्या उपकार किया ? समवाय जो हो सो हो, वह परिकल्पित चीज है। उसके सत्ताका क्या उपकार बनता है ? तो अनुपकारी सत्ता और समवायका परस्पर

सम्बन्ध भी नही बनता । यदि अनुपकारी पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध बनने लगे तो इस मे अतिप्रसग दोष आयगा फिर तो जिस चाहे पदार्थका जो बिना जोड मेलके भी हो, उनका भी सम्बन्ध मान लिया जायगा । इससे यह कहना कि स्वकारणमे सत्ताका समवाय होना ही कार्यस्वरूपका उद्भव है, यह कहना नही बनता ।

तत्त्वज्ञानका रूप और प्रयोजन – प्रसगमे यह समझना चाहिए कि विश्वमे जितने भी पदार्थ है वे सब परिपूर्ण स्वत सत् हैं, निरपेक्ष अखण्ड सत् हैं । उन सत् सत् पदार्थोंके सम्बन्धमे यदि कुछ कह सकते हो तो व्यक्त दशाकी बात कह सकते हो। वर्तमानमे किस द्रव्यका क्या परिणमन है, यह बात तो तकी जा सकती है । सो वह सत् पदार्थका व्यक्त रूप है । अखण्ड सत्मे पर्याय अलग पडी हो । पर्यायके आधारभूत शक्ति (गुण) अलग रहती हो और फिर उनमें भी सामान्य विशेष जुदे जुदे रहते हो और फिर इन जुदे जुदे रहने वाले तत्वोका मेल करानेके लिए कोई समवाय पदार्थ हो दुनियामे, यह सब मनगढत मनोरथ है । पदार्थ तो सभी अपने आपमें परिपूर्ण स्वत सिद्ध स्वय सत् हैं । फिर समवायकी कल्पना करना व्यर्थ है । पदार्थ है और परिणमत हैं और परिणमते हैं । दो बातें समझमे आती हैं । इनसे अधिक समझनेके लिए फिर विशेष भेद व्यवहारका आश्रय लेना होता है । तत्त्व जुदे-जुदे नही हैं । और परिणमते हैं । इतना ही मात्र वस्तुगत स्वरूप है । अब उस है को समझनेके लिये और भेद किये जाते हैं । जो भेद परिणमनके भेदका सहयोग लेकर हो उनसे समझकी बातें आती हैं अनेक, लेकिन वे सब उस द्रव्यकी विशेषतायें हैं । कहीं वे गुण, कर्म सामान्य, विशेष जुदे-जुदे पदार्थ नही हो जाते । इस कारण व्यर्थ तत्त्वके भेदके भ्रमणमें न उलझकर सही प्रदेशवान पदार्थोंको मानकर उन्हें स्वतत्र निरखनेका और उनमे परस्परकी असम्बद्धता देखकर मोहका परित्याग करना, बस इसी लिए तो तत्वज्ञान है । तत्वको कहनेके लिए ही, तत्वमे काट छाट भेद बढानेके लिए ही, तत्वज्ञान नही होता ज्ञान वही कहलाता है जो अहितका परिहार कराये और हितमे लगाये । तो प्रत्येक तत्वज्ञानकी हम इस ढगसे प्राप्ति करें कि जिसके प्रसादसे हम अहितसे दूर हो और हितमे लगें । इसके लिए यही तो बात चाहिए कि प्रथम तो हम देहमें और आत्मामे भेदविज्ञान करें और फिर आत्मामें ही विभाव और स्वभावमे भेद विज्ञान करें । उन विभावोको समझनेके लिए निमित्त आश्रय आदिक अनेक बातें समझनी पडती हैं फिर भी विभाव आदिक आत्माके परिणमन रूप हैं और उन कालमें अभेद हैं लेकिन वे भी भिन्न माने जाते हैं स्वभावके मुकाबले अर्थात् वे अनादि अनन्त भाव नहीं हैं । इन सब परभावोसे दूर होकर निज शाश्वत स्वभावमे रत होनेके लिए तत्वज्ञान होता है ।

विशेषवादोक्त सत्त्वलक्षणमें अव्याप्ति दोष—शकाकारने सत्त्वका लक्षण किया है सत्ता समवाय । सत्ताके समवायका होना सो सत्त्व है । यह लक्षण अव्यापी दोषसे दूषित है याने जितने भी पदार्थ हैं सबका यह लक्षण जानना चाहिए कि सत्ता

का समवाय है तब वह सत् है, लेकिन सत्ता समवाय और अन्त्यविशेष इनमे तो सत्ता का लक्षण सम्भव नही है, क्योंकि इनमें सत्ताका समवाय नही है। विशेषवादमें ऐसा माना है कि तीन पदार्थोंमें सत् सत् ऐसा व्यपदेश जो कराये उसे सत्ता कहते हैं, तो इसमें भाव यह निकला कि द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन पदार्थोंमे तो सत्ताका समवाय होनेसे इनका सत्त्व कहलाता है और शेषमे जो तीन पदार्थ रह गए सामान्य, जिसे पर-सामान्यकी दृष्टिसे सत् कह लीजिये, सत्ता ही कह लीजिए, इसके अतिरिक्त अनेक अपर सामान्य, समवाय और अन्त्य विशेष या सामान्य, विशेष, समवाय इन तीनमें सत्ताका समवाय नही होता, किन्तु ये तीन पदार्थ तो स्वय ही सत् हैं। अब देख लीजिए। सत्त्वका लक्षण तो यह किया गया कि सत्ताके समवायको सत्त्व कहते हैं, पर सामान्य विशेष, समवाय ये तीन पदार्थ सत्ताके समवायके बिना भी सत् मान लिए गए हैं तो यह लक्षण छहो पदार्थोंमें घटित नही हुआ इस कारण सत्त्वका लक्षण अव्यापी है।

विशेषवादोक्त सत्त्व लक्षणमे अतिव्याप्तिदोष—अब इसमें दूसर भी दोष देखिये! सत्त्वका लक्षण अतिव्यापी है। लक्षणको छोडकर अलक्षणमे भी पहुँचे इसको अतिव्यापी कहते हैं। तो सत्त्वका लक्षण सत्में जाय और सब सत्में जायें तब तो ठीक था ऐसा न हो तो अव्याप्तिदोष आ जाता है। और जो सत् नही है असत् जैसे की आकाशके फूल, खरविषाण इनमें भी सत्ताका लक्षण है इसलिए अतिव्याप्ति दोष है याने सत्ता है सब जगह व समवाय है सर्वत्र सो सत्ताका समवाय आकाशका फूल, खरविषाण, इनमें भी पहुच जायगा। शकाकार कहता है कि खरविषाण आदिक का तो सत्व ही नही है इस कारण सत्ताका समवाय नही होता। तो उत्तरमें कहना है कि इसमें तो अन्योन्याश्रय दोष आता है। जब खरविषाण आदिकका असत्व सिद्ध हो ले तब यह सिद्ध होगा कि इसमे सत्ताके समवायका विरह है। अब जब इसमें सत्ताके समवायका विरह सिद्ध हो ले तब यह सिद्ध होगा कि इसका असत्व है, खरविषाण आदिकका सत्व नहीं है।

सत् समवाय और सत्त्व भिन्न भिन्न पदार्थ होनेसे परस्पर एक दूसरे का स्वरूप बननेकी असगतता--अब तीसरी बात सुनो! सत्ताके समवायको सत्वका लक्षण कहा है। सो यह कहनेमे भी असगत लग रहा है। सत्ता एक पदार्थ है, समवाय एक पदार्थ है, सत्व एक धर्म है। ये सारी बातें भिन्न-भिन्न चीजें हैं। भिन्न पदार्थ भिन्न पदार्थका स्वरूप नही बना करता। अगर कोई भिन्न पदार्थ किसी भिन्न पदार्थका स्वरूप बन जाय तो घटका स्वरूप पट बन जाय, पटका स्वरूप घट बन जाय, यों अतिप्रसग आता है और फिर भिन्न स्वरूप किसी भिन्न पदार्थका बन जाय तब फिर दूसरा पदार्थ या कोई पदार्थ रहेंगे ही नही, पदार्थोंकी हानि हो जायगी, अथवा एकका स्वरूप दूसरेका बन जाय तो उनमें फिर भिन्नता न रहेगी। इस कारण भी सत्ताके समवायको सत्व कहते हैं, यह बात युक्त नही बैठती।

सत् और समवायमे सत्त्वकी उपपत्तिके कारणकी पृच्छा— अब और भी सुनो ! सत्ताके समवायसे पदार्थोंका सत्व माना है तो यह बतलावो कि सत्ता और समवायका सत्व कैसे हो गया ? अब यहाँ तीन बातें आयीं ना—पदार्थ, सत्ता और समवाय। जैसे आत्मा नामक द्रव्यका अस्तित्व जानना है तो आत्मा द्रव्य है और आत्मामे सत्ताका समवाय हुआ तब आत्मामें सत्व पाया। अब यहाँ तीन पदार्थ हो गए—आत्मा सत्ता और समवाय। तो यहाँ यह बतलावो कि सत्ता और समवायमें सत्व कहाँसे आ गया ? सत्ता और समवायमें सम्बन्ध यदि नहीं है और फिर भी सत्व माना जाय याने सत्ता और समवायमें किसी सत्ता आदिकका सम्बन्ध नही बताया जाता और फिर भी सत्व कहलायेंगे तो इसमें अतिप्रसग दोष होगा। फिर तो क्या है ? खरविषाण आदिक भी सत्व कहलाने लगे। न हो सत्ता और समवायका सम्बन्ध और फिर भी यह सत्व कहलाये, सत्तामे और समवायमे स्वय कुछ नहीं है और फिर भी सत्व कहलाता है तो इसका अर्थ यह निकला कि सत्ता और समवायके सम्बन्ध बिना भी कोई सत् कहला सकता है। तो खरविषाणमे सत्ता और समवायका सम्बन्ध नहीं है तो न होने दो, सम्बन्ध न होकर भी यह सत् कहला जायगा। तो यहा पूछा जा रहा है कि सत् और समवायमे सत्व कैसे आया ?

सत् और समवायमे सत्त्वकी अनुपपत्ति— यदि कहो कि सत्ता समवायान्तरसे याने अन्य सत्ताका समवाय हुआ इससे सत्तामे सत्व आया और समवायमे अन्य सत्वका समवाय हुआ इसलिए समवायमे सत्व आया। ऐसा कहनेपर अनवस्था दोष हो जायगा। फिर तो अनेक सत्ता और अनेक समवाय मानते रहने पडेंगे। यदि कहो कि सत्ता और समवायमें सत्व स्वत ही आ गया तब तो समस्त पदार्थोंका ही सत्व सत्ता ही क्यो न मान ली जाय ? सत्ता और समवायसे फिर क्या प्रयोजन रहा ? इस प्रकार सत् कोई अलग पदार्थ है और सत् समवायका सम्बन्ध होनेसे फिर कोई पदार्थ सत् कहलाये यह व्यवस्था वस्तुस्वरूपके विरुद्ध है। शकाकारने जो यह कहा था कि समवायमे सत्व स्वत. ही बन जायगा। जैसे कि अग्निमें उष्णता स्वत. ही बनी हुई है। यह कथन भी कोरा प्रलाप है। और भाई प्रत्यक्ष सिद्ध पदार्थ स्वभावमे तो स्वभावोके द्वारा उत्तर दिया जा सकता है। अग्नि और उष्णता इन दोनोंका प्रत्यक्ष हो रहा है। वहा तो हम यह कह सकते हैं कि अग्निमें उष्णता स्वत: पायी जा रही है, उसमे सम्बन्ध जोडनेका विकल्प नही करना पडता ? लेकिन समवाय और समवायी ये कुछ प्रत्यक्षसिद्ध तो नही हैं। ततु पट ये प्रत्यक्ष सिद्ध हैं, किन्तु इन्हे समवायी कहना यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध नही है। वह जैसा है सो है। समवायी कहा दिखता है और, इसी तरह ततु और पटका समवाय भी नही प्रत्यक्ष सिद्ध है। समवायका कहां प्रत्यक्ष हो रहा है ? तो जो प्रत्यक्ष सिद्ध नही है उनमे प्रत्यक्ष सिद्ध अग्नि उष्णताका दृष्टान्त दोगे तो वह कैसे सिद्ध बनेगा। सो वहाँ यह भी नही कहा जा सकता कि समवायमे तो स्वतः सम्बन्धपना है और सयोग आदिकमें समवायके कारण सम्बन्ध-

धना है। ये भी कुछ प्रत्यक्षसे प्रतिट नही हो रहे। क्योंकि समवायका स्वरूप प्रत्यक्षके विषयभूत नही है। तब समवाय और सत्ता कोई पदार्थ ही नही है। पदार्थके विशेष धर्मको निराकार करना भी आरोपी बात है तो उनकी प्रत्यक्षता आदि कहीं?

समवायके स्वतः सम्बन्धरूपत्वकी अनुमान विरुद्धता— और, भी सुनो शंकाकारने जो यह कहा है कि समवायमें सम्बन्धपना स्वतः हुआ करता है यह बात अनुमान विरुद्ध है। कैसे अनुमानसे समवायमें स्वतः सम्बन्धका निराकरण होता है सो सुनो! समवाय किसी अन्य सम्बन्धके साथ सम्बध्यमान होता हुआ स्वतः सम्बद्ध नही होता क्योंकि सम्बध्यमान होनेसे रूप आदिककी तरह। जैसे रूप घटके साथ सम्बद्ध होता है तो सम्बध्यमान है ना रूप आदिक, तो उनका सम्बन्ध स्वतः नही होता, किन्तु रूप आदिकमें होता है। विशेषवादकी मान्यताको लेकर यह अनुमान किया गया है ताकि उनका गलत मन्तव्य खण्डित हो जाय। तो इस अनुमानसे विरोध होनेके कारण भी समवायमें स्वतः सम्बन्धपना है यह बात सिद्ध नही होती जो जो सम्बध्यमान होते है वे वे स्वतः सम्बद्ध नहीं हुआ करते। जैसे रूप आदिक सम्बध्यमान हैं घटमें तो रूप आदिक स्वतः ही घटमें सम्बद्ध नही होते, किन्तु समवाय सम्बन्धके कारण सम्बद्ध होते है। तो इसी प्रकार जब समवाय भी सम्बध्यमान है तो यह भी स्वतः सम्बद्ध न हो सकेगा। किसी अन्यसे सम्बद्ध मानना होगा। इस अनुमानसे भी समवायके स्वतः सम्बन्धपनेका निराकरण हो जायगा। अब यदि शंकाकार यह कहे कि जैसे अग्निमें उष्णता है और परके लिये भी उष्णता करता है तो अग्निको उष्णताका सम्बन्ध स्व और परके लिए है। ऐसे ही समवाय और समवायी दोनोंमे सम्बन्धका कारण है। इसी प्रकार जैसे दीपकका जो प्रकाश है वह भी स्व और पर दोनोंके प्रकाशका कारण है ऐसे ही समवाय अपने व समवायी दोनोंके सम्बन्धका कारण है गङ्गाका जल जैसे पवित्र माना जाता है तो वह भी स्वयं पवित्र है और दूसरोंकी पवित्रताका कारण है इसी प्रकार समवाय भी चूंकि सम्बन्धरूप है इस लिये स्वमें भी सम्बन्धका कारण है और परके भी सम्बन्धका कारण है। याने समवायमें स्वतः सम्बन्धपना है और वह द्रव्य गुण कर्म आदिकमें परस्पर मे समवाय सम्बन्ध कर देता है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो इस ही दृष्टान्तके आधारपर यह क्यों नहीं नही मान लिया जाता कि ज्ञान स्व और परके प्रकाशका कारण है। अर्थात् ज्ञान स्वपर व्यवसायी है। जैसे कि अग्नि स्व पर उष्णताका कारण है, दीपक स्व पर प्रकाशका कारण है। इस ही प्रकार ज्ञान स्व परके ज्ञानका कारण है। ऐसा मान लेना चाहिए। और, यदि इस प्रकार मान लेते हैं विशेषवादी तो उनका यह सिद्धान्त कि ज्ञान ज्ञानान्तरके द्वारा वेद्य है प्रमेय होनेसे यह खण्डित हो जाता है। देखो! अब यह ज्ञान स्व पर प्रकाश हेतु बन गया। तब ज्ञानने अपने आपको जान लिया और दूसरेको जना दिया। तो अब ज्ञानान्तरके द्वारा वेद्य हो, इसकी आवश्यकता कहां रही? इससे सिद्ध है कि समवाय स्वतः सम्बन्धरूप नही है।

समवायकी व समवायके स्वत सम्बन्धरूपताकी असिद्धि– शंकाकार कहता है कि समवाय सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा नही रखता, क्योकि यह स्वतः सम्बन्धरूप है। जो पदार्थ सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा रखा करता है वह स्वत सम्बन्ध नही कहलाता। जैसे घट पट आदिक ये सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा रखते हैं, क्योकि स्वत सम्बन्धरूप नही हैं। लेकिन समवाय तो स्वत सबधरूप है। इस कारण सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा नही रखता। समाधानमे कहते हैं कि यह कहना केवल अपने मनकी कल्पनामात्र है, क्योकि इसमे हेतु असिद्ध है। जब समवायका स्वरूप ही सिद्ध नही है तो उसमे यह सिद्ध करना कि समवायमें स्वत· सम्बन्धपना है, कैसे युक्त हो सकता है ? और फिर इस हेतुका सयोगके साथ अनेकान्त दोष है। देखो सयोग भी सम्बन्ध है। लेकिन यह सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा रखता है। जब समवायका सहयोग मिलता है तो सयोग द्रव्यमे जुडता है। सयोगादिक स्वत असम्बन्ध स्वभावरूप होनेपर भी किसी पर सम्बन्धसे जुट जाय यह तर्क भी तो युक्त नही है। और, घट आदिक पदार्थ सबधी होनेके कारण इनमे परसे भी सबधपना नही बन सकता। इस कारण यह कहना कि समवाय स्वत सबधरूप है यह बात अयुक्त है। अब समवायमें अन्य सम्बध जोडते भी नही बनता। बात तो यह है कि जब कोई बात है ही नही, समवाय पदार्थ है ही नही फिर उसके बारेमे कुछ विशेषता बताये कोई तो उसकी पूर्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार समवायमें स्वत· सम्बन्ध होना सिद्ध न हुआ।

सयोग और समवायान्तरसे भी समवायीमें समवायके सम्बन्धकी अनुपपत्ति—अब यदि कहोगे कि समवायियोमे समवायका सम्बन्ध परसे होता है तो वह पर क्या चीज है जिससे कि समवायमे समवायका सम्बन्ध होता है ? क्या वह सयोग है अथवा समवायान्तर है या विशेषण भाव है अथवा अदृष्ट है ? इन चारमेसे कौनसा कारण है जिससे कि समवायोमें समवायका सम्बन्ध होता है। सयोगसे तो समवायोमें समवायका सम्बन्ध कह नही सकते, क्योकि सयोग तो गुणरूप है और जो गुण होगा वह द्रव्यके आश्रय रहा करता है। समवाय तो द्रव्य नही है, समवाय तो स्वतन्त्र पदार्थ माना है फिर समवाय और समवायीमें सयोग किसी भी प्रकार हो नही सकता। इससे सयोगसे समवायीमें समवाय सम्बन्ध हो जायगा, यह पक्ष निराकृत हुआ। अब यदि कहते हो कि समवायान्तरसे सम्बन्ध हो जायगा समवायियोका समवायमें तो वह भी युक्त नही है, क्योकि समवाय तो एकत्वरूप माना गया है विशेषवादमे। और फिर कदाचित् मान लो कि समवायान्तरसे समवायमे समवायका सम्बन्ध हो जाता है तो इसमें अनवस्था दोष आयगा। तब द्वितीय पक्ष भी निराकृत हुआ।

विशेषणभावसे भी समवायीमे समवायके सम्बन्धकी अनुपपत्ति—अब यदि कहोगे कि विशेषणभावसे समवायमे समवायका सम्बन्ध हो जायगा तो वह भी अयुक्त है। विशेषभावसे समवायीमे समवायका सम्बन्ध कहना बेतुकी बात है,

क्योंकि सम्बन्धान्तरसे सम्बद्ध पदार्थोंमे ही विशेषणभावकी प्रवृत्ति देखी गयी है याने किसी पदार्थको विशेषण कहना किसी पदार्थको विशेष्य कहना यह तब ही बन सकता है जब अपने–अपने कारणसे या सम्बन्धान्तरसे सम्बद्ध होकर वे दानो ही पदार्थ पहिले निष्पन्न हुए हो तब तो उनमे विशेष्य विशेषण भावकी प्रतिपत्ति बन सकती है। जैसे कहा कि यह दण्डविशिष्ट पुरुष है तो दण्डमें दण्डत्वके समवायसे पहिले दण्ड पहिले निष्पन्न है और वह पुरुष भी अपने कारणसे निष्पन्न है तो अपने–अपने सम्बन्धान्तरसे सम्बद्ध उन दोनो पदार्थोंमे पुरुष विशेष्य है, दण्ड विशेषण है, यह कहा जा सकता है और यदि इस तरह न माने अपने–अपने सम्बन्धसे सम्बद्ध होकर निष्पन्न रहकर विशेष्य विशेषण भाव बनता है यह न मानें। बिना ही सम्बन्धके बन जाय तो सब कुछ सबके विशेषण और विशेष्य हो जायगा और फिर समवाय आदिकका सम्बन्ध मानना अनर्थक हो जायगा, क्योंकि देखो! अब सम्बन्धके बिना भी गुण गुणी आदि भावोके विशेषणकी प्रतीति हो गई। यहाँ प्रसग यह है कि गुण गुणी पहिलेसे निष्पन्न हो तब तो उनमे विशेषण विशेष्य भाव बना सकते हो और विशेषण विशेष्य भाव जब बने तब उससे समवाय सम्बन्ध माना जायगा। तो जब वे गुणगुणी हो निष्पन्न हैं पहिलेसे और उनमे विशेष्य विशेषण भाव भी बन गया है तो अब समवाय सम्बन्ध करनेकी आवश्यकता क्या रही? और भी दोष यह है कि समवायीका विशेषण नही बन सकता, क्योंकि अत्यन्त भिन्न होनेके कारण समवाय अपनेमे है समवायी अपनेमे है। कैसे कह दिया जाय कि यह इसका विशेषण है? उसका वह धम है नही आकाश की तरह। कोई यह कहे कि असत् धर्मपना उसका रहा आये याने दूसरेका वह दूसरा धम कोई धम भी नही है, यह भी रहा आये, समवाय समवायीका धम नही है यह भी रहा आये और समवायियोंका विशेषणपना भी रहा आये तो क्या आपत्ति है? सो उस आपत्तिके परिहारके लिए कहते हैं कि भाई ये दो द्रव्य सयुक्त हैं, ऐसे ज्ञानम सयोगी धर्मपनेको छोडकर सयोगके और कुछ उस पदार्थका विशेषणरूपपना नही देखा गया है। इन पदार्थोंका सयोग विशेषण है, यह नही देखा गया किन्तु उस प्रकारकी परिस्थिति इन सयोगी पदार्थोकी अवस्था है यह देखा गया है। और, समवाय समवायियों का सम्बन्धान्तरसे दूसरे सम्बन्धसे सम्बद्ध हो जाना यह भी बनता क्योंकि विशेषणवादमे ऐसा माना ही नही गया है। तो यो विशेषणभावके बलपर समवाय समवायियो में सम्बद्ध रहे, यह सिद्ध नही हो पाता।

पदार्थोंकी परस्पर भिन्नता होनेसे स्वय निष्पन्न पदार्थोंमे समवायकी अप्रयोजकता—और, भी सुनो! जो भी विशेषण भाव दिया है जैसे यहाँ समवाय को विशेषण माना है तो वह समवायियोसे अत्यन्त भिन्न है क्योंकि समवायी भी पहिलेसे स्वय निष्पन्न पदार्थ हैं। द्रव्य गुण आदिक और समवाय भी स्वय पदार्थ है। तो जब ये दोनों अत्यन्त भिन्न हो गए तो उनमे यह नियम कैसे बनेगा कि समवाय विशेषण है, समवायी विशेष्य है? यदि कहो कि समवायसे बन जायगा यह सम्बन्ध

तो इसमे इतरेतराश्रय दोष आता है, किस प्रकार कि जब समवायका नियम सिद्ध हो ले, समवाय सिद्ध हो ले तब तो उसमे विशेषताभावके नियमकी सिद्धि होगी। और जब विशेषण भावका नियम सिद्ध होले तब फिर समवायमें नियमकी सिद्धि होगी। समवायियोंमे समवायका विशेषण कहेंगे, यह बात कहना और विशेषण भाव होनेसे इन समवायियोंका यह समवाय है, यह नियम बनना ऐसे ये दो नियम परस्पर आश्रित हो गए।

विशेषणभावसे समवायका समवायी सिद्ध करनेमे विशेषणभावका भिन्नता अभिन्नताके विकल्पमे निराकरण—अब यह बतलावो कि यह जो विशेषणभाव कहा जा रहा है सामान्यतया विशेषणभाव। किसी विशिष्ट नामके विशेषण भावकी अपेक्षासे नहीं कह रहे विशेषणभाव नामक सम्बन्ध हो, वह ६ पदार्थोंसे भिन्न है या अभिन्न द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये ६ पदार्थ विशेषणवादमे माने गए। अब नई चीज कह रहे हैं शंकाकार, विशेषणभाव नामका कुछ भी तत्व माने इन ६ पदार्थोसे भिन्न है, अथवा अभिन्न ? यदि कहोगे कि विशेषण भाव ६ पदार्थोंसे भिन्न है तो वह भावरूप है या अभावरूप ६ पदार्थोंसे भिन्न जो कुछ विशेषणभाव हैं वह सद्भावरूप है अथवा अभावरूप है ? यदि कहोगे कि सद्भावरूप है तब तो ऐसा नियम बनाना कि पदार्थ ६ ही होते हैं इसमे विरोध आ जायगा। लो अब उन ६ पदार्थोंके अलावा विशेषणभाव नामक भी पदार्थ निकल आया। और, यह कह नहीं सकते कि विशेषणभाव अभावरूप है। क्योंकि ऐसा माना ही नही गया है तब विशेषणभावकी सिद्धि नही होती।

विशेषणभावका छह पदार्थोंमे अनन्तर्भाव—यदि यह कहोगे कि विशेषण भाव इन ६ पदार्थोंमें गर्भित हो जाता है। अलगसे कुछ नही है तो बतलावो वह विशेषणभाव द्रव्य तो है नही, क्योंकि विशेषणभावमे अन्य किस गुणका समावेश है ? जो गुणोका आधार हो वही तो द्रव्य है। द्रव्यमें गुणोका आश्रितपना हुआ करताहै। विशेषणभाव यदि द्रव्य नामक पदार्थ मान लिया जाय तब तो उसमे गुण बतलावो किन नवीन गुणोका समावेश है। तो गुणोके द्वारा आश्रितपना न होनेके कारण ये द्रव्य नही है। अथवा मानलो द्रव्य हो जायें विशेषणभाव तो गुणोंके आश्रितपनेका सर्वत्र अभाव हो जायगा। फिर नियम न रहेगा कि गुण द्रव्याश्रित होता है। इस कारण विशेषणभाव गुण नामका भी पदार्थ नही है। क्योंकि यदि गुण होता तो बतलावो यह विशेषणभाव किसके आश्रय रह रहा है ? गुण तो उसे कहते हैं कि जो द्रव्यके आश्रय रहा करते हो ? विशेषणभावको कर्म नामक पदार्थ नही कह सकते क्योंकि कर्मके आश्रितपनेके अभावका प्रसग हो जायगा। विशेषणभावमें सामान्य नामक पदार्थ भी नहीं कह सकते, क्योंकि समवायसे सामान्यकी उपपत्ति नही है। समवाय तीन पदार्थोंमे हुआ करता है, द्रव्य, गुण, और कर्म।

अब विशेषणभावको यदि सामान्य मान लिया जाय तो मान लो सामान्य, पर अब समवायमें विशेषण विशेष्य भाव न आ पायगा । विशेषणभावको विशेष नामका पदार्थ भी नही मान सकते, क्योंकि कहा गया है कि विशेष नित्य द्रव्यके आश्रित होता है । वैशेषिक सिद्धान्त है यह कि नित्य द्रव्यमें रहने वाले विशष हुआ करते हैं । अनित्य द्रव्यमें विशेषण भावकी उपलब्धि होनेसे समवायमे अभावका प्रसग हो जायगा एक साथ अनेक समवायियोका विशेषण होनेपर फिर सो समवाय अनेक बन जायेंगे । विशेषणभाव यदि समवायीके विशेषण हैं तो जितने समवायी हैं उतने ही समवाय माने जायेंगे । यहांपर भी जो पदार्थ एक साथ अनेक पदार्थोंका विशेषण होता है वह अनेक माना गया है, देखा गया है । जैसे दड कुण्डल आदिक अनेक पदार्थ विशेषण एक साथ हैं और अनेक विशेष्य हैं । तो उसी प्रकार एक साथ अनेक पदार्थों का विशेषण यदि समवाय बन गया, जैसे कि इस प्रसगमे मानना पड रहा है । तो इसका निष्कर्ष यह है कि फिर समवाय अनेक हो गया । यहां यह व्याप्ति बनी कि एक साथ अनेक पदार्थोंका जो विशेषण होता है वह अनेक होता है तो इस प्रकार तो अब लो समवाय भी एक साथ अनेक पदार्थोंका विशेषण बन गया ना ! सभीमे एक साथ समवाय है अनेक पदार्थोंका तब समवाय अनेक मानने पड़ेंगे । यहाँ कोई यह सन्देह न करे कि फिर सत्व आदिकके साथ अनेकान्त हो जायगा कि देखो सत्व तो एक है मगर एक साथ अनेक पदार्थोंमें रह रहा है। ऐसा सदेह यो न करना चाहिये कि सत्वमें भी अनेक स्वभाव पडे हुए हैं । जैसे—पट सत् है, घट सत् है। जितने पदार्थोंमें सत्वका सम्बन्ध है उतने ही सत्व विशेषण हैं । अनेक स्वभावता पूर्वक सत्व देखा जाता है । इस कारण यह कहना अयुक्त है कि विशेषण भावसे समवाय समवायियोंमे सम्बद्ध हो जाता है इस तरह तीसरे विकल्पका भी निराकरण किया गया ।

सम्बन्धरूपत्वरहित अदृष्टसे समवायके सम्बन्धकी सिद्धिका अभाव—समवायीमे समवायका सम्बन्ध परसे होता है तो उस सम्बन्धमें पूछा जा रहा था कि समवायीका सम्बन्ध सयोगसे होता या समवायान्तरसे होता या विशेषण भावसे होता अथवा अदृष्टसे होता ? इन चार विकल्पोमेंसे आदिके तीन विकल्पोका तो निराकरण कर दिया, अब चतुर्थ विकल्पकी चर्चा चल रही है । समवायीमें समवायका सम्बन्ध अदृष्टसे भी नही हो सकता, क्योंकि अदृष्ट सम्बन्धरूप नही है । अदृष्ट है, पुन्य पाप कर्म है मगर वह सम्बन्धस्वरूप तो नहीं जिसके द्वारा समवायका सम्बन्ध कर दिया जा सके । सम्बन्ध होता है दो पदार्थोंमें ऐसा विशेषवादने स्वय माना है, मगर अदृष्ट तो द्विष्ट है ही नही, अदृष्ट आत्मामें रहता है । वह अन्य समवाय समवायियोंमें कैसे रह सकता है जैसे घटमें रूपका समवाय अदृष्टके कारण हो गया क्या ? ऐसे ही आत्मामें बुद्धिका समवाय है तो क्या समवायका सम्बन्ध समवायीमें अदृष्टके कारण हो गया ? अदृष्ट तो आत्मामे रहने वाला एक गुण है । वह तो आत्मामे ही रहेगा । दुनिया

भरके समवायी पदार्थोंमे समवाय सम्बन्धको जोडता फिरे, यह अदृष्ट कैसे हो सकता है। और, कदाचित् मानलो कि अदृष्टके द्वारा समवायी और समवायमे सम्बन्ध जुट गया तो वह भी एक सम्बन्धरूप बन गया। तब सम्बन्ध ६ हुआ करते हैं इस सिद्धान्तका घात हो गया। सयोग, समवाय, सयुक्त समवाय, सयुक्त समवेत समवाय, वाच्य वाचक भाव, विशेष्य विशेषण भाव। इनके अतिरिक्त अब यह आ गया अदृष्ट, सो सम्बन्ध ६ प्रकारके हैं इस विशेषवादके सिद्धान्तका भी अब घात हो गया। अदृष्ट की सबधहेतुकताके सम्बन्धमें दूसरी बात यह है कि यदि अदृष्टके द्वारा समवाय सम्बन्धित होता है याने समवायी पदार्थमे समवायका सम्बन्ध अदृष्टके द्वारा किया जाता है तो फिर गुण गुणी आदिक भी अदृष्टके द्वारा सम्बद्ध हो जायें। गुणीमे गुण का सम्बन्ध अदृष्टके कारण हो जाय, इसमे क्या आपत्ति आये? और, तब फिर समवाय आदिककी कल्पना करना भी व्यर्थ है, क्योकि अब अदृष्टके द्वारा गुण गुणीका भी सम्बन्ध बन गया, सर्व सम्बन्ध बन जायगा। फिर समवाय पदार्थकी कल्पना निरर्थक है।

असम्बद्ध अथवा सम्बद्ध दोनो विकल्पोमे भी अदृष्ट द्वारा समवायियो मे समवायके सम्बधकी असिद्धि—अब यह बात बतलावो कि जिस अदृष्टके द्वारा आप समवाय और समवायोमे सम्बन्ध करा देना चाहते है वह अदृष्ट क्या असम्बद्ध होकर समवायके सम्बन्धका कारण होता है या सम्बद्ध होकर समवायके सम्बन्धका कारण बनता है? याने अदृष्ट सबसे निराला रहकर ही समवाय और समवायमे सम्बध बता देता है यह भाव है क्या आपका या अदृष्ट भी खुद सम्बद्ध होकर उन समवाय समवायियोमे घुल मिलकर उनके सम्बन्धका कारण बनता है, यह आपका भाव है? यदि कहो कि असम्बद्ध होकर ही अदृष्ट समवायके सम्बन्धका कारण बनता है तो इसमे तो अतिप्रसग आयगा। अनेक पदार्थ स्वतत्र हैं, परिपूर्ण हैं असम्बद्ध हैं, फिर तो कोई भी किसीके सम्बन्धका कारण बन बैठेगा। यदि कहो कि सम्बद्ध होकर ही अदृष्ट समवायके सम्बन्धका कारण होता है तब यह बतलाओ कि अदृष्टका सम्बन्ध कैसे हुआ समवायके साथ? क्या समवायसे हुआ अथवा किसी अन्यसे हुआ? यदि अदृष्टका उन समवाय समवायियोमे सम्बन्ध समवायसे मानते हो तो इसमे इतरेतराश्रय दोष आता है। जब समवायकी सिद्धि हो चुके तब तो समवायके साथ अदृष्टका सम्बन्धपना सिद्ध हो और जब समवायके साथ अदृष्टका सम्बन्धपना सिद्ध हो ले तब यह कहा जा सकेगा कि सम्बद्ध अदृष्ट समवायका कारण होता है। तो अन्योन्याश्रय दोष होनेसे अदृष्ट सम्बद्ध होकर समवायके सम्बन्धका कारण होता है, यह विकल्प सही नही उतरता। यदि कहो कि अदृष्ट अन्यसे सम्बद्ध होकर समवायके सम्बन्धका कारण बन जाता है तो यह बात यो अयुक्त है कि ऐसा विशेषवादमें माना ही नही गया। समवायको स्वत. सम्बद्ध माना है। इस प्रकार यह सिद्ध नही होता है कि समवाय सम्बद्ध होकर या अदृष्टके द्वारा सम्बन्ध पा कर समवायीमें अपना अड्डा जमाता है यह भी नही कह सकते कि

समवाय असम्बद्ध होकर काम करने लगेगा क्योंकि जो असम्बद्ध हो उसमें सम्बन्ध रूपता किसी तरह आ ही नहीं सकती जैसे घट पट आदिक पदार्थ हैं, ये असम्बद्ध हैं। सम्बन्ध स्वरूपता इनमें फिर नहीं आ सकती। यदि कहो कि असम्बद्धमें भी सम्बन्ध रूपता सम्बन्ध बुद्धिके हेतुपनेसे आ जायगा अर्थात् सम्बन्धबुद्धि जो हो रहा है उस हेतुसे असम्बद्धमें सम्बद्धरूपता सिद्ध हो जायगी। उत्तरमें कहते हैं कि तथा मानने पर महेश्वर आदिकोंमें भी सम्बन्धरूपताका प्रसंग आ जायगा, क्योंकि विशेषवादमें जब समस्त जगतको महेश्वर कर्तृक माना है तो सम्बन्धबुद्धिके भी महेश्वर हेतु बनेंगे। जो सारे जगतको रच देता है वह पुरुषोंकी बुद्धि को न रच सकेगा क्या? तो सम्बन्धबुद्धि के हेतु इस दृष्टिसे महेश्वर भी बन गये और जो सम्बन्धबुद्धिका हेतु होता है वह सम्बद्ध रूप होता है यह बात इस प्रसंगमें विशेषवादी स्वयं कह रहा है। तो यों महेश्वर आदिकमें भी सम्बन्धरूपताका प्रसंग आ जायगा।

असम्बद्ध अदृष्टसे समवायीमें समवायके सम्बन्धबुद्धि निबन्धनताका अभाव—एक स्पष्ट बात यह भी है कि असम्बद्ध होकर कोई समवायी पदार्थ उस सम्बन्धबुद्धिका कारण कैसे बन जायगा? अलग-अलग हैं पदार्थ। समवाय अलग है, असम्बद्ध है, तो वह किसी दूसरेके सम्बन्धबुद्धिका कारण कैसे बन जायगा? जैसे अगुलियाँ अलग-अलग हैं, घटसे जुदी हैं तो जब घटसे अगुलियोंका संयोग ही नहीं है, असम्बद्ध है तो सम्बन्धबुद्धिका कारण तो नहीं बन गया। इस बातकी सिद्धिका अनुमान प्रयोग भी है—इस आत्मामें ज्ञान है, इस प्रकारकी जो सम्बन्धबुद्धि हो रही है वह सम्बन्धीसे सम्बद्ध सम्बन्धपूर्वक नहीं होती है, क्योंकि सम्बन्धबुद्धि होनेसे। जैसे दण्ड व पुरुषकी सम्बन्धबुद्धि। दण्ड व पुरुषमें सम्बन्धबुद्धि हो रही है ना? तो वह दण्ड व पुरुष, ये दो हुए, तो ये इन सम्बन्धियोंसे असम्बद्ध रहे ऐसे कि सम्बन्धके कारण सम्बन्धबुद्धि होती हो सो नहीं, इस अनुमानसे भी इस मंतव्यका विरोध हो जाता है। तो यों अनेक प्रकारसे विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि समवाय नाम का तो कुछ पदार्थ है ही नहीं। और कल्पनासे भी मान लो है समवाय, तो समवायका समवायीमें समवाय होता है, गुण गुणियोंमें समवाय होता है, यह भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि वे सब एकरूप हैं। गुण गुणीसे पृथक नहीं है। जो भी अखण्ड द्रव्य है उसकी ही विशेषता गुण है।

समवायी अथवा असमवायीमें समवायकी परिकल्पनाकी असिद्धि—अब और भी बात पूछ रहे हैं कि यह समवाय समवायीमें माना जा रहा है या असमवायीमें? समवाय तो कहलाता है वह अभिन्न तत्त्व जिसमें जो स्वतः मौजूद है अथवा कहो उपादान, और उसका कर्म। असमवायी वह कहलाता है जो समवायी नहीं है, उपादान नहीं है। तो यहाँ यह बतलावें विशेषवादी कि समवाय जो माना गया है सो वह समवायीमें ही माना है या असमवायमें? यदि कहो कि समवाय

सम्बन्ध असमवायीमे हो जाता है तब तो घट पट इनमे भी समवाय सम्बन्ध लग जाना चाहिए क्योकि घटका पट समवायी नही पटका घट समवायी नही। समवायीका शीघ्र अर्थ समझना हो तो उपादानके रूपमे समझलें। जैसे पटका उपादान तन्तु है तो ततुमे पटका समवाय मान लिया। पर घट और पट ये दोनो एक दूसरेके उपादान नही हैं क्या घटसे पट बनता है या पटसे घट बनता है? तो ऐसे अत्यन्त भिन्न घट पट जैसे अर्थोंमें भी समवायका प्रसग हो जायगा, क्योकि अब तो असमवायीमे भी समवायकी कल्पना करने लगे। यदि कहो कि समवाय सम्बन्ध समवायीमे भी होता है तो यह बतलावो कि उन दोनोका समवायीपना कहासे आया क्या समवायसे आया या स्वत आया? जैसे ततु और पट इनमे समवाय मानते हैं ना, तो समवायी हुए वे ततु पट, अब इनमे जो समवाय सम्बन्ध बनानेके लिए समवायीपना माना गया और समवायीमें मानते हो समवाय सम्बन्ध तो बताओ कि ये समवायी कैसे बन गए? यदि कहो कि समवायसे बन गए तो इसमे इतरेतराश्रय दोष आता है। जब समवायपना उन दोनोका सिद्ध हो ले जिनमे कि समवाय सम्बन्ध थापना है तब तो समवायीका भाव याने, समवायित्व सिद्ध हो अथवा समवायी सिद्ध हो और जब समवायी सिद्ध हो तब समवायियोमे समवाय सिद्ध हो। इस कारण समवायसे समवायियोमे समवायका सम्बन्ध हो जाय यह बात नियमित नही घटती।

समवाय द्वारा समवायियोमे समवायित्वकी अभिन्न अथवा दोनों रूपसे किये जानेकी असिद्धि—और, फिर यह बतलावो कि उस समवायके द्वारा समवायियोमें जो समवायित्व पैदा किया गया है वह भिन्न किया गया या अभिन्न? याने समवायियोमे समवायित्व है, यह किया है समवायने, तो वह अभिन्न किया गया या भिन्न किया गया? यदि कहो कि अभिन्न किया गया तो आकाश आदिकमे भी समवायित्वकी बात बननेका प्रसग आयगा याने शब्द और आकाश इन दोनोसे समवायियोसे अभिन्न रहने वाला समवायित्व समवायके द्वारा बन जायगा। यदि कहो कि समवायके द्वारा समवायियोमे भिन्न समवायित्व किया जा रहा है तो जब भिन्न ही है समवायियोंका समवायित्व तो फिर सबध बन ही नहीं सकता। भिन्न भिन्न दो पदार्थोंका सबन्ध बननेका क्या प्रश्न है? यदि कहो कि अन्य सबधकी कल्पना कर लेंगे उन समवायी और समवायित्वके सबधके लिए अन्य सबधकी कल्पना कर लेंगे तो अनवस्था दोष होता है। अब उसमे समवायित्वकी कल्पना करनेके लिए सबधान्तर मानना पडेगा। और यदि कहो कि उस ही समवायसे समवायियोंमें समवायित्वके सबधत्वको बना देंगे तो इसमे इतरेतराश्रय दोष होगा कि समवायियोका समवायित्व नियम सिद्ध हो तब तो समवाय नियमकी सिद्धि होगी। और जब समवाय नियमकी सिद्धि होगी तब यह उसका ही समवायित्व है यह सिद्ध बन पायगा। इससे समवायियोका समवायित्व न तो भिन्न रूपसे समवायमे कर पाया और न अभिन्न रूपसे कर पाया। तो यों समवायसे समवायका समवायित्व न बन सका। अब यदि यह कहोगे

कि समवायमे जो समवायित्व पाया जा रहा है वह स्वत ही है तब तो ठीक है। यों ही सर्व पदार्थोंमे जो कुछ धर्म पाये जा रहे हैं वे भी स्वत हैं। तब समवाय नामक सम्बन्धकी कल्पना करनेसे कोई लाभ नहीं है। सब पदार्थ हैं अपने स्वभावरूप हैं, उनको समझनेके लिए भेदबुद्धिमे गुण और पर्यायोंकी कल्पना की जाती हैं। जब कुछ न्यारे न रहे धर्म धर्मी, तो फिर समवाय सम्बन्धकी कल्पनासे लाभ ही क्या है? सभी पदार्थ स्वत सिद्ध निष्पन्न हैं।

संयोग पदार्थकी सिद्धि न होनेसे शकाकारके आक्षेपका अनवकाश— शकाकार कहता है कि समवायके निराकरणमें जो युक्तियाँ दी हैं कि समवायके द्वारा समवायियोका समवायित्व अभिन्न किया गया है या भिन्न किया गया है? और, ऐसा विकल्प उठाकर उनपर आक्षेप किया है। तो ऐसी बात तो हम संयोगसे भी कह सकते हैं कि संयोगके द्वारा संयुक्त पदार्थोंमें जो संयुक्तत्व किया गया है वह, उससे भिन्न है अथवा अभिन्न है? और, भिन्न अभिन्न विकल्प उठाकर उस ही प्रकार यहाँ आक्षेप भी किया जा सकता है तो यह तो शब्द जालसे मुह बन्द करनेकी बात हुई। समाधानमे कहते हैं कि यह भी कथन अयुक्त है क्योंकि संयोग भी पदार्थ नहीं संश्लिष्ट रूपसे उपपन्न वस्तुके स्वरूपको छोडकर अन्य कुछ संयोग नहीं होगा। जब संयोग नामका पदार्थ ही नहीं है तो उसकी विधि करना उसके बारेमे आक्षेप, प्रत्याक्षेप करना ये सब अनुचित बातें हैं। यदि कोई भिन्न संयोग नामका पदार्थ तुम मानोगे, आग्रह करोगे तो संयोगियोंके समवायमे भी ये सारे आक्षेप बराबर समान हो सकते हैं कि संयोगियोंमें जो संयुक्तत्व किया जाता है संयोगके द्वारा वह अभिन्न है अथवा भिन्न है? जो कुछ भी आक्षेप है जैसे अभिन्न होनेपर आकाश आदिकमें भी संयोग बन बैठे, भिन्न होनेपर सम्बन्धत्वकी उत्पत्ति नहीं होती। सम्बन्धान्तर माननेपर अनवस्था दोष होगा। संयोगसे संयोगका नियम करनेपर अन्योन्याश्रय होगा। वे सारेके सारे आक्षेप बराबर संयोगमें भी लग सकेंगे। लेकिन संयोग नामका कुछ पदार्थ ही नहीं तो उसके बारेमें बात करनेसे लाभ क्या?

निष्क्रियत्व होनेपर भी गुणत्वादिकोमे आधेयत्वका शकाकार द्वारा कथन - शकाकार कहता है कि समवायका निषेध करनेके लिए जो यह बात कही गई है कि संयोग समवाय आदिक तो आधेय भी नहीं हो सकते क्योंकि वे निष्क्रिय हैं। आधार आधेयपना तो वहाँ बने कि आधेय चीजमें क्रिया हो और वह अपने वेगसे चले और उसका प्रतिषेध करने वाला कोई पदार्थ हो तो वह आधार बन जायगा। लेकिन जब समवाय आदिक निष्क्रिय हैं तो उनका आधेयपना ही कैसे सम्भव है? और, फिर यों कहना कि समवायीमें समवाय है यह कैसे ठीक है? यह आक्षेप देना ठीक नहीं है, क्योंकि गुण आदिक संयोगी द्रव्यसे विलक्षण हुआ करते हैं, द्रव्यमें क्रिया होती है, संयोगी द्रव्य क्रिया करने लगे पर गुण आदिक तो संयोगी द्रव्यसे विलक्षण महिमा

रखते हैं, किस प्रकार कि सयोगी द्रव्यके तो सक्रिय होनेसे आधार आधेयभावकी प्रत्यक्षसे प्रतीति होती है। जैसे पानी डाला, घट भर गया तो पानी आधेय हैं और घट आधार है। तो सयोगी पदार्थोंमे आधार आधेय भावके प्रत्यक्षसे जानकारी सक्रिय होने के कारण हो रही है लेकिन गुणोंके निष्क्रिय होनेपर भी आधार आधेयभावकी प्रत्यक्ष से प्रतीति होती है, क्योंकि सयोगी द्रव्यसे गुण विलक्षण हैं और यह अपने जुदे जुदे पदार्थकी प्रकृति है इस कारण यह आक्षेप देना कि समवाय आधेय हुआ ही नहीं करता, क्योंकि निष्क्रिय है यह आक्षेप युक्त नहीं है।

गुणादिकोंकी आधेयताकी शकाके समाधानमे तीन विकल्पोंके रूपमे पृच्छा - समाधानमे कहते हैं कि शंकाकारका यह कहना कि गुणत्व आदिकमे सयोगी द्रव्यसे विलक्षणता है इस कारण सयोगी द्रव्य सक्रिय होनेसे आधार आधेय भाव युक्त रहे, लेकिन गुण तो निष्क्रिय होनेपर भी आधार आधेयभावसे युक्त होते हैं यह कहना असगत है, क्योंकि बताओ गुणोंके निष्क्रिय होनेपर भी गुणोंमें जो आधेयपना आता है वह किस कारणसे आता है ? क्या अल्प परिमाण होनेसे आता है ? या द्रव्य अथवा आधार आदिकका कार्य होनेसे आता है, या आधेयरूपसे वे प्रतिभास होते हैं इस कारणसे उनमे आधेय पना आता है ? इन तीन विकल्पोंमेसे कौनसा इष्ट है ? इन तीनों विकल्पोंका तात्पर्य यह है कि गुणोंका परिमाण अल्प है, द्रव्यका परिमाण अधिक है इस लिए अधिकमें छोटेका आधेयपना बन जायगा। बडीमे छोटी चीज समाती भी है। आकाशमे पृथ्वी है ऐसा लोग कहते ही हैं, घडेमे पानी है। तो अल्प परिमाण होनेसे क्या गुणोंमें आधेयता मानते हो अथवा द्रव्यका कार्य है गुण इसलिए आधेय मानते हो ? जैसे अग्निका कार्य है धूम। तब धूम तो आधेय हो गया और अग्नि आधार हो गयी। ऐसा सब लोग निर्विवाद कहते हैं। तो क्या यह आपका भाव है कि गुण जो है वह गुणीका कार्य है इस कारण गुणी आधार है और गुण आधेय है। उनमें यह समवाय समवायीका कार्य है इसलिए समवायी आधार हो जाय और समवाय आधेय हो जाय, क्या यह मतलब है ? अथवा यह तात्पर्य है कि गुण तो स्पष्ट आधेयरूपसे प्रतिभासमे आ ही रहे ? इन तीन विकल्पोंमेंसे कौनसा विकल्प विशेषवादी स्वीकार करते हैं ?

अल्पपरिमाणत्व अथवा तत्कार्यत्व हेतुसे समवायके आधेयत्वकी सिद्धिका अभाव—उक्त तीन विकल्पोंमेसे यदि पहिला पक्ष स्वीकार करोगे कि अल्प परिमाण होनेसे गुणोंमें आधेयपना आता है तो यह प्रथम पक्ष अयुक्त है क्योंकि आपका यह नियम सर्वत्र घटित नहीं हो सकता कि महापरिमाण वाली चीज तो आधार होती है और अल्प परिमाण वाली चीज आधेय होती है देखो! व्यक्तिरूप गाय है और एक गोत्व सामान्य है बतलाओ व्यक्तिरूप गायका परिमाण बडा है या गोत्व सामान्यका परिमाण बडा है ? सामान्यका परिमाण बडा माना गया है। जो बहुत

जगह रहे उसे महापरिमाण कहते हैं। तो अब गोत्वमें गाय है ऐसा कोई नहीं कहता और गायमें गोत्व है ऐसा दुनिया कहती है-- जैसे मनुष्य और मनुष्यत्व । मनुष्य तो हुए व्यक्तिरूप और मनुष्यत्व हुआ सामान्य। तो महापरिमाण किसका है मनुष्यत्वका जो सब मनुष्योम रहे ऐसा जो मनुष्यत्व है वह तो महापरिमाण वाला हुआ। लेकिन मनुष्यमें मनुष्य है आधार और मनुष्यत्व है आधेय, तो देखा ! यहा महापरिमाण गुण वाला सामान्य अब आधेय न बन सकेगा। उसमें अनाधेयताका दोष आ जायगा, इस कारण। यह पक्ष तो नही कह सकते कि अल्प परिमाण होनेसे गुणोमें आधेयता है। महापरिमाण वाला भी आधेय कहा गया है और इसी कारण दूसरा विकल्प भी नहीं कह सकते कि समवायीका कार्य होनेसे समवाय आधेय है या द्रव्यका कार्य होनेसे गुण आधेय है या आधारका काय होनेसे आधेय कहलाता है। यह यो नही कह सकते कि देखो ! सामान्य तो आधेय है और व्यक्तिका काय नही है। सामान्य तो व्यापक है और अकृत है। तो कायपनेकी बात यहाँ तो घटित न हुई। कार्य न होकर भी सामान्य आधेय है। तो समवायमें आधेयता कैसे सिद्ध हो सकेगी । समवायकी भी बात सुन लो ! ततुमें पटका समवाय है तो ततु तो अल्प परिमाण वाली चीज है, पट भी अल्प परिमाण वाली चीज है। और समवाय सारे विश्वमे व्यापक और एक चीज है। तो ऐसे परिमाण वाला समवाय आधेय न बन सकेगा। चले तो थे छवे होनेको और दूवे ही रह जावोगे। और, इसी प्रकार ततु और पटका कार्य नहीं है समवाय, इस कारण भी समवायको आधेय नहीं कह सकते। यो अल्पपरिमाण होनेसे और आधारका कार्य होनेसे आधेय कहलाता हो, यह विकल्प सगत नही होता है।

आधेयतया प्रतिभासरूप होनेसे गुणोमे आधेयता मानने रूप तृतीय विकल्पका निराकरण—अब शकाकार कहता है कि गुणत्व आदिककी आधेयता तृतीय विकल्पसे मान लीजिये अर्थात् ये सब आधेयरूपसे प्रतिभात होते हैं इस कारण ये गुण आदिक स्पष्ट आधेय हैं। समाधानमे कहते हैं कि यह तीसरा विकल्प भी बिना विचार किए हीं सुन्दर लग रहा है। इसपर विचार करिये तो पता पडेगा कि उन गुण आदिकका आधाररूपसे प्रतिभास नही होता। ये गुण द्रव्यमे आधेयरूपसे नहीं रहते, इसका प्रमाण यह है कि रूप आदिक गुण अपने आधारभूत घट पट आदिकमें भीतर और बाहर रह करते हैं। आधेय तो वह होता है जिसका बाहर ही सत्त्व हो। भीतर सत्त्व न हो। जैसे कि घडेमें बेर रखे हैं तो बेरका सत्व घडेकी जो मिट्टी है उसके भीतर तो नहीं पडा है उसके ऊपर ही ऊपर सत्त्व है। तो आधेय वही होता जिसका बाहर ही बाहर सत्त्व है। लेकिन रूप आदिक गुणोकी तो अन्तरङ्गमे और बहिरङ्गमें सर्वत्र वृत्ति है। जैसे घडेका रूप घडेके बाहर भी दिखता, घडेकी पपडीके अन्दर भी है। हर हालतमें है। तो जो अन्तरङ्ग बहिरङ्ग सब जगह सत्त्वरूपसे है उसको आधेय नही कह सकते। घडेमें रूप है ऐसा कहना और घडेमें चना है ऐसा कहना, इनमें कुछ अन्तर नहीं है क्या ? चने तो बाहर ही

बाहर सत्त्वसे है और रूप घडेके रग–रगमे, अणु–अणुमे अन्दर बाहर सर्वत्र सत्त्व-रूपसे है। जो केवल बाहर ही बाहर सत्त्वरूपसे हो वह आधेय हुआ करता है। देखो! कुण्ड आदिक अधिकरणोमे बेर आदिक कुण्डके अन्त नही होते। आधारभूत पदार्थसे बाहर ही सत्तासे रहते हैं, है उनका सम्पर्क। पर, इस तरह गुण आदिकमे आधेयपनेका प्रतिभास नही हो रहा।

अन्य युतसिद्धत्वके कारण ही उपरितनमात्रका प्रतिभास होनेसे गुणोमे आधेयत्वके प्रतिषेधकी अशक्यताकी शका—शकाकार कहता है कि रूप आदिक गुणोमे आधेयता होनेपर भी युतसिद्धिका अभाव है, इस कारणसे उपरितत रूपसे प्रतिभासमान हो, यह बात नही बन पाती। याने आधेयताका लक्षण तो हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि जो आधारभूत पदार्थके ऊपर ही ऊपर प्रतिभासमान हो सो आधेय है लेकिन यह रूप द्रव्यसे युतसिद्ध नही है। जैसे कि घडेमे बेर यह युत-सिद्ध है। घडा पृथक् सिद्ध है, बेर बिल्कुल पृथक् सिद्ध है। इनका एक क्षेत्रा-वगाह नही, वे एक हीमे समाये हुए नही, अथवा तखतपर चटाई। तो यहा आधेय तो हुई चटाई, आधार हुआ तखत। तो आधेय चटाई भी तखतके बाहर ही बाहर है। तखतका निजका जैसा रूप है वह तो बाहर ही बाहर नही अन्त बाहर सर्वत्र है। तो इसमे यह अन्तर क्यो पड गया? यो कि रूप और घट ये युतसिद्ध नही। तखत और रूप ये युतसिद्ध नही, और चटाई तखत ये युतसिद्ध हैं, तो जो पृथकसिद्ध हो उनमे तो यह बात प्रतिभासमे आ जाती है कि आधेय बाहर ही बाहर लोटता रहता है, लेकिन जो युतसिद्ध हैं वे आधेय होकर भी उनमे इस तरहका प्रति-भास नही हो पाता कि ये बाहर ही बाहर रहा करें। इस कारण बाहर ही प्रतिभास का अभाव है ऐसा हेतु देकर गुणोकी आधेयताका निराकरण नही कर सकते।

अनेक युक्तियोसे गुणोमे अनाधेयत्वकी सिद्धि—उक्त शकाके समाधानमे कहते हैं कि यह बात ठीक नही जचती, क्योकि बाहर ही बाहर प्रतीतिमे आये, इसका कारण युतसिद्धपना नही है अर्थात् जो युतसिद्ध हो उनमे ही यह बात बनेगी कि वे बाहर ही बाहर प्रतिभासमे आयें कि जैसे कि घडे और बेरका दृष्टान्त दिया कि युतसिद्ध हैं और इसी कारण ये घट मिट्टीके ऊपर ही ऊपर रहते हैं। तो इस तरह व्याप्ति सर्वत्र नही बन सकती है और इसी कारण ऊपर ही ऊपर प्रतिभासमे आया हुआ वस्तु आधेय है इसका कारण युतसिद्धपना नही है। अन्यथा अर्थात् यह हठ यदि कर ली जाय कि युतसिद्धपना होनेके ही कारण बाहर ही बाहर वस्तुकी प्रतीति होती है आधेयकी, तो बतलावो कि क्षीरमें नीर मिला दिया। दूध और पानी आपसमे मिला दिये गए तो अब क्षीरमें नीर मिलाया ना। दूध रखा था बर्तनमें और उसमें मिला दिया पानी तो इनमें आधार रहा दूध और आधेय रहा पानी। लेकिन वहां क्या ऐसा प्रतिभासमें आ रहा है कि पानी दूधके ऊपर ही ऊपर प्रतिभासमें आया

और नीचे अच्छे ढगसे दूध ही दूध रहे । तो देखो ! युतसिद्ध हैं दोनो । पानी पानी है दूध–दूध है लेकिन पृथक् सिद्ध होनेपर भी अब दूधमें पानी मिला दिया जाय तो पानीकी उपरितन रूपसे प्रतीति नही हो रही है । या पहिले किसी बर्तनमें थोडा सा पानी पडा हो और उसमे फिर दूध डाल दें तो वहां आधार हो गया पानी और आधेय हो गया दूध । याने पानीमें दूध मिलाया, लेकिन पानी व दूध युतसिद्ध होनेपर भी दूध पानीके ऊपर ही ऊपर तैर रहा हो, ऐसी प्रतीति तो नही हो रही । इससे यह कहकर आक्षपसे बच जानेकी कोशिश विफल हो जाती है । क्या कहकर कि जो युत सिद्ध होता है उसकी ही ऊपर ऊपर प्रतीति होती है, लेकिन घट और रूप ये युत सिद्ध नही हैं इस कारण इनकी अत, और बहिरङ्ग प्रतीति होती है। तो अत बहि-रङ्ग प्रतीति होनेसे यह निर्णय हुआ कि वह आधेय नही है । बात यह है कि वस्तुका ही ऐसा स्वरूप है जो वस्तुमे वह मिला हुआ ही है, तो इस तरह समवायके सम्बन्धमें बहुत विचार करनेके बाद यही प्रमाण प्रसिद्ध निर्णय है कि समवाय नामका कोई पदार्थ नही है ।

समवाय पदार्थकी असिद्धि व सामान्यविशेषात्मकताके विरुद्ध अभिमत षट पदार्थ सख्याका विघात—यहा तक जो वर्णन हुआ है उस वर्णनसे यह निर्णय किया गया कि विशेषवादमे माने हुए जो पदार्थकी सख्या है द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय, विचार करनेपर इन पदार्थोंके स्वरूपकी व्यवस्था नही बनती । फिर यह निश्चय अवधारण कैसे घटित किया जा सकता है कि पदार्थ ६ ही होते हैं जिनको पदार्थ कहा गया है उन पदार्थोंकी सिद्धि नही हो रही और जिनकी कुछ सिद्धि भी है तो उनके भेद लक्षण आदिक सब अटपट किये जा रहे हैं तो यह अवधारण कैसे घटित हो सकता कि पदार्थ ६ ही होते हैं । देखो—समवाय नामका कोई पदार्थ नही है । जिसके प्रदेश हो जिसमें परिणमन हो, जिसकी एकत्व व्यक्त हो, नित्यानित्यात्मक हो, बने, बिगडे, बना रहे, ऐसी तीन बातें जिसमें हो, पदार्थ तो वही हो सकता है । और फिर समवायको सर्वव्यापी एक कहना और हर समवा-वायियोमें समवायसे भिन्न-भिन्न धर्मका सम्बन्ध कराना ये सब बातें अनुपयुक्त हैं । इसी प्रकार सामान्य और विशेष नामका भी कोई पदार्थ नही है । सामान्य धर्म समझ मे आ रहा है । विशेषधर्म भी बुद्धिमें आता है लेकिन सामान्य और विशेष तो सद्-भूत पदार्थके ही धर्म हैं । ये स्वय पदार्थ हो गए हो ऐसी बात नही है । इसी प्रकार कर्म, क्रिया, परिणति, पर्यायकी भी बात है । ये भी कोई पदार्थ नही हैं । किन्तु पदार्थोंकी एक स्थिति है । इसी प्रकार गुण भी कोई पदार्थ नही हुआ करते । गुण तो द्रव्यके अभिन्न स्वरूप हैं । जो कुछ पदार्थका अभिन्न स्वरूप है उस ही स्वरूपसे जब समझा जा रहा तो भेदबुद्धि करके उनका विस्तार बनाकर समझाया करते हैं । तो गुण भी कोई पदार्थ नही है । पदार्थ रहा केवल द्रव्य । तब द्रव्य कहो, पदार्थ कहो, एक ही पर्यायवाची शब्द हुए । अब द्रव्योंमें अर्थक्रियाकी पद्धतिसे भेद किया

जाना चाहिए, तभी द्रव्यके सही प्रकार ज्ञात हो सकते हैं। इस पद्धतिसे विशेषवादमें कुछ भेद भी किया, लेकिन उनमेंसे अनेक भेद तो एक दूसरे समानजातीय मिलनके कारण किसी जातिमे गर्भित हो जाते हैं। और, कुछ पदार्थ उन द्रव्योंके प्रकारमे आ ही नही पाये। तो यो द्रव्योंके भी प्रकार सख्या नही बनती। यो विशेषवादमे कल्पित द्रव्य गुण कर्म, सामान्य, विशेष समवाय इन छहो पदार्थोंके स्वरूपकी व्यवस्था नही बन पाती और फिर जब स्वरूपकी व्यवस्था नही है तो उनमें सख्या की सिद्धि करना कैसे सम्भव है ?

प्रमेय और उसके प्रकारोकी पद्धति—आत्महितके लिए प्रमाण और प्रमेय स्वरूपकी व्यवस्था बनाना, समझ करना बहुत आवश्यक है। इसलिए इसका प्रकरण और प्रमेयसे चला। प्रमाण है ज्ञानात्मक और प्रमेय है ज्ञेयस्वरूप। तो प्रमाण भी निर्दोष बुद्धिमे रहना चाहिए और प्रमेय भी निर्दोष रूपमे बुद्धिमे आना चाहिए। यदि प्रमाण प्रमेयका स्वरूप ज्ञानमे रहता है तो उस जीवको लोकमे कही भी सकट नही और नि सकट अविकारी निज सहज स्वरूपमात्र अतस्तत्त्वके अभ्यास बलसे रहे सहे सकटोका मूलसे विनाश हो जाता है। तो प्रमेयका स्वरूप केवल इतना कहनेसे ही पर्याप्त आ जाता है कि प्रमेय सामान्य विशेषात्मक होता है। अब उस सामान्य विशेषात्मक पदार्थमे अर्थ क्रियाकी जातिके भेदसे प्रकार बनाना ये तो है तथ्यभूत पदार्थके प्रकार, लेकिन इस पद्धतिको छोडकर इन्द्रियजन्य बुद्धिमे जो कुछ समझमें आया उसको ही प्रतिपादन करना इस नीतिमें कुछ पदार्थ अधिक सख्यामें आ जायेंगे और कुछ पदार्थ मूलसे ही छूट जायेंगे। तो सामान्य विशेषात्मक प्रत्येक पदार्थको मानकर फिर उसमे अर्थ क्रियाकी पद्धतिसे भेद बनायें तो पदार्थके भेद सही सिद्ध होंगे, और वे भेद सिद्ध होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन ६ जातियोके रूपमें। इसके विरुद्ध केवल सामान्य मात्र, केवल विशेषमात्र, केवल गुण मात्र, केवल क्रियामात्र अथवा समवाय ही और शब्द, सूत्र, द्रव्य यह सब स्वरूप व्यवस्था नही हो सकती अतएव विशेषवाद सम्मत ६ जातिके पदार्थोंकी व्यवस्था एव सख्या सिद्धिका नियम सही नही बनता।

यौगाभिमत सोलह पदार्थोका विशेषवादमे वर्णन न होनेसे उनकी पदार्थ सख्याका विघात—विशेषवादमे ६ प्रकारके पदार्थ माने गए हैं, लेकिन विशेषवादी यह बताये कि नैयायिकके द्वारा माने गए १६ पदार्थोको आप क्या कहेंगे ? तब तो ६ पदार्थोंमे अधिक पदार्थ मानने पडे ना ? नैयायिक सिद्धान्तमे १६ पदार्थ माने गए है प्रमाण, प्रमेय, सशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क निर्णय, वाद, जल्प, वितडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह। इन सबके स्वरूप भी अपने ढगमे न्यारे न्यारे है। प्रमाण नाम है दृढ बोधका, जिससे कि वस्तुके स्वरूपकी व्यवस्था प्रबल पद्धतिसे बनायी जाती है, उस प्रमाणका कहाँ अन्तर्भाव करोगे ? इसके स्वरूप जुदे

जुदे हैं। प्रमाण बुद्धिमें शामिल नहीं हो सकता। वैशेषिकोंने बुद्धि नामका गुण माना है। तो बुद्धि तो एक सामान्य प्रतिभासका नाम है। बुद्धि प्रमाण भी हो सकता है। अप्रमाण भी हो सकता है तो प्रमाण बुद्धिसे निराली बात है। प्रमेय मायने ज्ञेय। जो प्रमाणके द्वारा जाना जाय। प्रमेयत्व धर्म करके युक्त प्रमेयत्वसे समवेत प्रमेयसे कहाँ अन्तर्भाव कर सकेंगे ? ऐसा है कि ऐसा है ऐसी चलित प्रतिपत्तिरूप बुद्धिका नाम संशय है। इस संशयका ६ पदार्थोंके प्रकारोंमें कहीं भी जिकर नहीं है। प्रयोजन—एक उद्देश्य, कुछ गर्ज इसका भी कहीं उल्लेख नहीं किया गया। दृष्टान्त किसी पदार्थको सिद्ध करनेके लिए जो उदाहरण दिया जाता है उस दृष्टान्तका भी कहीं जिक्र नहीं है। अवयव जिसके समूहका अवयवी बनता है, अवयवके ढंगसे अवयवत्वके रूपसे कहीं भी इसका वर्णन विशेषवादमें नहीं है। तर्क—जिससे विचार चलते हैं उन तर्कका भी कहीं जिक्र नहीं है। निर्णय—ऊहापोह करनेके बाद किसी एक निर्णयपर जिसकी जो विधि है, जिसे लोग निर्णय कहते हैं उसका किसमें अन्तर्भाव है ? कहीं भी नहीं। वाद कोई वक्तव्य दिया जाता, समर्थ वचन, सभामें श्रोताओंपर अपने मंतव्यकी छाप देनेके लिए जो कुछ कथन चलता है उस वादका भी कहीं जिक्र नहीं। जल्प किसी बातको सिद्ध न होने देनेके लिए जो वार्तालाप होता है वह जल्प है। इसका कहाँ वर्णन है ? इसी प्रकार वितंडा—जो कि किसीके बताये हुए सिद्धान्तका निवारण करनेके लिए अथवा अपने तत्त्वके विकल्पकी रक्षाके लिए जो वक्तव्य होता है वह वितंडा है। जल्प और वितंडामें यह अन्तर है कि जल्पमें तो अपने मंतव्यकी रक्षाके लिए प्रहार किया जाता है। इस तरहके वचनालापका ध्येय होता है और वितंडामें अपने रक्षणके लिए एक आवरण किया जाता है। अपने तत्त्वमें कोई बाधा न दे सके, उसके लिए जो प्रलाप किया जाता है वह वितंडा है, इसका भी कहाँ वर्णन है। हेत्वाभास जो हेतु सदोष हो, जिसमें निर्दोषता नहीं है उसका कहाँ वर्णन है। छल पदार्थ—कोई कुछ कह रहा हो, उसे हटानेके लिए, उसकी बातका कोई दूसरा ही अर्थ लगाकर उसे शर्मिन्दा करना यह सब नैयायकके छल पदार्थ हैं इनका कहाँ वर्णन है ? इसी प्रकार सिद्धान्तमें दूसरेके वक्तव्यमें उसका मिला हुआ अपना विरुद्ध वचन कहकर दूसरेकी बातको दूषित करना जाति है इसका भी कहाँ वर्णन है ? और, जिस किसी भी प्रकारसे किसी भी वादमें जीत न सके तो वहाँ कुछ विसम्वाद मचा देना, विवाद कर देना यह निग्रह स्थान है। इसका कहाँ वर्णन है। तो नैयायिकों द्वारा माने गए ये १६ पदार्थ हैं। ये तो ६ पदार्थसे अधिक हो गए, तब फिर ६ पदार्थोंकी संख्या क्या रही ?

यौगाभिमत सोलह पदार्थोंकी विशेषवादाभिमत छह पदार्थोंमें अनन्तर्भाव— शंकाकार कहता है कि उन १६ पदार्थोंको हम ६ पदार्थोंमें ही अन्तर्भूत कर देंगे, इस कारणसे अधिक पदार्थोंकी व्यवस्था न बनानी पड़ेगी। उत्तरमें कहते हैं कि एक तो अन्तर्भाव होता नहीं, जैसे कि विशेषवादमें ६ पदार्थ माने हैं और मानो अन्तर्भाव करने लगे तो द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन छहोंके छहों पदार्थों

का एक प्रमाण और दूसरा प्रमेय इन दो पदार्थोंमें ही अन्तर्भाव कर बैठेंगे तब फिर छह पदार्थोंकी व्यवस्था भी नहीं बन सकती, क्योंकि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय ये सबके सब प्रमेय हैं। उनमें जो एकबुद्धि नामक गुण या जो भी निर्णय कर सकने वाला गुण माना है उसे प्रमाणका रूप दे देने तो यों छहोंके छहों पदार्थोंका अन्तर्भाव हो जाता है फिर तो ६ पदार्थ न बने। शंकाकार कहता है कि यद्यपि उन ६ पदार्थोंका प्रमाण और प्रमेय इस प्रकारकी दो संख्याके पदार्थोंमें ही अन्तर्भाव हो सकता है, तो भी उनके भीतरके और विभिन्न लक्षण हैं तथा प्रयोजन हैं। जिन की वजहसे द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय यों ६ पदार्थोंकी व्यवस्था बन जायगी। तो समाधानमें कहते हैं कि इसी प्रकार अवान्तर भिन्न लक्षणकी वजहसे प्रयोजनके वश प्रमाण प्रमेय आदिक १६ पदार्थोंकी व्यवस्था भी क्यों नहीं मान लेते? क्योंकि विभिन्न लक्षण है। प्रयोजन भी उनका निराला है इसलिए १६ पदार्थोंकी व्यवस्था भी बन जाय। जैसे कि इन्हीं कारणोंसे आप छह पदार्थोंकी व्यवस्था बना रहे हैं। जब लक्षण और विभिन्न लक्षणपना बराबर है तो ६ पदार्थोंकी व्यवस्था तो बने और प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंकी व्यवस्था न बनाई जाय इसमें कौन सा हेतु है?

यौगाभिमत सोलह पदार्थोंकी भी वस्तुत असिद्धि — भैया! उक्त बात विशेषवादके मुकाबलेमें कही गई है। वस्तुत देखो तो जिस प्रकार विशेषवाद समस्त ६ पदार्थोंकी व्यवस्था नहीं है इसी प्रकार नैयायिकके मतके प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंकी भी व्यवस्था नहीं बनती। और, इन प्रमाण प्रमेय आदिक पदार्थोंका उनके योग्य भिन्न-भिन्न प्रकरणोंमें निराकरण भी किया गया है। तो यह सामान्य विशेषात्मक प्रमेयके विरोधमें उपस्थित की गई ६ पदार्थोंकी व्यवस्था न बन सकी। इसका उत्तर कुछ शंकाकारने अन्तर्भावके रूपमें दिया सो उन छह पदार्थों प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंका अन्तर्भाव भी कर लो खींचतानकर, फिर भी कुछ पदार्थ ऐसे छूट जाते हैं जो प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंमें भी नहीं हैं। उनसे भी अलग, जैसे कि १६ पदार्थ माने हैं। जितना जो कुछ अटपट ध्यानमें आया वही मान लिया गया। कोई क्रमिक बुद्धि तो नहीं कि किसी पद्धतिमें चलकर ये १६ पदार्थ माने गये हैं। तो अब देखो! विपर्यय और अनध्यवसाय इन दो का अस्तित्व कहाँ कहा गया? १६ पदार्थोंकी संख्यामें भी अलग विपर्यय और अनध्यवसाय है। विपर्यय उसे कहते हैं कि वस्तुका स्वरूप तो है और भाँति और अन्य प्रकारसे उस स्वरूपको रखा जाय। और, अनध्यवसाय उसे कहते हैं कि किसी पदार्थको एक सरसरी निगाहसे प्रति साधारणरूपसे कुछ जाननेको थे कि आगे कुछ भी न बढ़ सके, उस समयमें कुछ भी निश्चय न कर सके तो इन दो ज्ञानोंका कहाँ अन्तर्भाव है? तो प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंकी भी व्यवस्था युक्तियुक्त नहीं है और द्रव्य, गुण, कर्म आदिक रूपसे भी ६ पदार्थोंकी व्यवस्था युक्तिसंगत नहीं है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थकी सिद्धि होनेसे विपरीत पद्धतिसे पदार्थ माननेका निराकरण—उक्त विचार विमर्शके बाद मानना ही होगा कि प्रमाणका विषयभूत सामान्य-विशेषात्मक होता है। तो सामान्य विशेषात्मक सत् इतना तो सामान्यरूपसे कहा गया है कि प्रमाणका विषय है यह और उसके प्रकारोमे अर्थक्रिया की पद्धतिसे जाति बनाकर पदार्थके प्रकार होते हैं इस तरह—जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल। नैयायिक द्वारा माने गए १६ पदार्थ और वैशेषिक द्वारा माने गए ६ पदार्थ वे सबके सब इन ६ द्रव्योंमें अन्तर्भूत हो जाते हैं। जो १६ पदार्थों से चैतन्यस्वरूप है, चैतन्य परिणतियां हैं चैतन्य गुण हैं वे सब तो जीव द्रव्यमें अन्तर्भूत हो जायेंगे। प्रमाण, संशय, प्रयोजन, सिद्धान्त तर्क, निर्णय आदिक जो ज्ञानकी परिणतियां हैं वे सब जीव द्रव्यमे अन्तर्भूत हैं। और, प्रमेय अवयव जीवमे भी अन्तर्भूत है और पुद्गलमें भी अन्तर्भूत है। इसके अतिरिक्त काल द्रव्य जिसे किसी रूपमे विशेषवादमे माना है वह और धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्यका तो तो किसीने कुछ जिक्र ही नही किया है। तो यो पदार्थोंकी व्यवस्था सामान्यरूपसे सामान्य विशेषात्मक सत् हैं। यो बनता है। और, विस्ताररूपमे प्रयोगरूपमे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश। काल इन ६ जातियोंमें बनता है।

धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्यकी सिद्धि होनेसे विशेषवादाभिमत षट् पदार्थोंकी व्यवस्थाकी असिद्धि—पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है। इसके विरोधमें विशेषवादने जो द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन ६ पदार्थोंकी व्यवस्था बतायी, उसमें उन्हींके ही सजातीय नैयायिक द्वारा अभिमत १६ पदार्थोंका कही समावेश नही हो पाता और उसके अतिरिक्त धर्म और अधम द्रव्यका भी उन ६ पदार्थोंमेंसे किसीमे भी अन्तर्भाव नहीं होता। धर्म द्रव्य और अधम द्रव्य हैं इनकी सिद्धि प्रमाणसे होती है। कोई वहा यह सन्देह न करे कि धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य क्या वस्तु हैं? देखो वह अनुमानसे सिद्ध है। वह अनुमान इस प्रकार है कि ये समस्त जीव पुद्गलके आश्रय रहने वालेली गतिया किसी साधारण बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखकर होती हैं, क्योंकि एक साथ होने वाले गति होनेसे। जैसे कि एक तालाबके आश्रय रहने वाले अनेक मछलियोंकी गतिका बाह्य निमित्त है जल, इसी प्रकार जीव पुद्गल आदिक सभी पदार्थोंका जो एक साथ गमन देखा जा रहा है उस गमन हेतुसे यह सिद्ध होता है कि कोई इस विश्वमें साधारण बाह्य निमित्त अवश्य है जिसकी अपेक्षासे ये जीव पुद्गल आदिक एक साथ गमन किया करते हैं। जीव और पुद्गलमे स्थितियां भी साधारण बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती हैं क्योंकि अनेक पदार्थोंकी एक साथ स्थिति होती है। जैसे कि एक कलशमे रहने वाले अनेक बेर जैसे स्थित हैं तो उनका बाह्य निमित्त वह एक कलश है इसी प्रकार समस्त जीव पुद्गलकी जो स्थितियां होती हैं उनका कारण कोई एक साधारण बाह्य निमित्त है। और धम द्रव्यका जो कुछ साधारण बाह्य निमित्त है, उसका नाम कुछ रखलो मगर

अन्वर्थ रूपसे और प्रसिद्ध रूपसे नाम है धर्मद्रव्य। इसी प्रकार जीव पुद्गलकी स्थितियोका बाह्य निमित्त है, उसका कुछ भी नाम रख दो, लेकिन उसका नाम प्रसिद्ध है-अधर्म द्रव्यके बिना जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका कार्य होना असम्भव है।

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यकी स्पष्ट प्रसिद्धि धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यकी सिद्धि के उक्त कथनका तात्पर्य यह हुआ कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नामका पदार्थ विशेषवादी सम्मत द्रव्यमें गुण, कर्म, समान्य, विशेष, समवाय आदि किसीमे अन्तर्भूत नही है, अत उनसे पृथक पदार्थ है। तब ६ पदार्थ हैं उक्त प्रकारसे यह बात सगत नही बैठती है। देखो! इस सारे विश्वमें एक धर्म द्रव्य है जो कि जीव, पुद्गलके चलनेमें सहायक होता है। धर्म द्रव्य किसीको जबरदस्ती नही चलाता है किन्तु जीव पुद्गल, चलें तो उनके चलनेमें सहायक होता है। जैसे कि मछलियाँ चलें तो उनके चलनेमें जल सहायक है जल मछलियोको चलनेकी प्रेरणा नही करता, किन्तु वे मछलियाँ ही स्वय जब चलनेका यत्न करती हैं तो उसमें जल सहायक है, और यह बात प्रत्यक्ष दिखती है कि जलसे बाहर आ जानेपर मछलियां चल नहीं सकती हैं। तो जैसे मछलियोके चलनेमे जल सहायक है इसी प्रकार समस्त जीव पुद्गलोके और मछलियोके चलनेमे भी धर्म द्रव्य सहायक है। कोई एक साधारण बाह्य निमित्त होता है गतियोंमें इसी प्रकार जब जीव, पुद्गल, चल करके ठहरते हैं तो उनके ठहरनेमें निमित्त होता है अधर्म द्रव्य। जैसे कि कोई पथिक चलते हुए किसी वृक्षके नीचे ठहर जाता है छाया का प्रयोजन पाकर लेकिन उस पथिकको वृक्ष जबरदस्ती ठहराता नही है। पथिक ही स्वय इच्छा और यत्न करके ठहरना चाहे तो उसके ठहरनेमें वृक्षकी छाया निमित्त है, आश्रयभूत है। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य जीव पुद्गलको जबरदस्ती ठहराता नही है किन्तु चलते हुए जीव पुद्गल स्वय ही ठहरना चाहे तो वहा अधर्म द्रव्य सहायक होता है।

धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्यका विशेष परिचय- धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्तिक हैं, अचेतन हैं और समस्त लोकाकाशमें तिलमें तेलकी तरह व्याप्त हैं। अतएव जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतने प्रदेश वाले हैं ये धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य। सब द्रव्योमें जैसे ६ साधारण गुण होते हैं— अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अलघुगुरुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व ये छह साधारण गुण इन दो द्रव्योमे भी हैं। ये अलघुगुरुत्व गुणके कारण निरन्तर षड्गुण हानिवृद्धिरूप परिणमते रहते हैं। इनका परिणमन स्वाभाविक है और इसी कारण इनका परिणमन विज्ञात नही होता। अमूर्त पदार्थका स्वरूप सूक्ष्म है और परिणमन भी सूक्ष्म है। इस कारण अमूर्तका परिणमन साबित नही होता। केवल एक जीव द्रव्यका परिणमन और उसमें भी निजका परिणमन निज होनेके कारण और खुद है ज्ञानस्वरूप अतएव अपने आपका परिणमन विज्ञात होजाता है। लेकिन परजीवका परिणमन जीवको ज्ञात नही हो पाता। अपने समान हैं ये सब जीव और उस प्रकारके परिणमनका खुदका अनुभव किया है इस समानताके कारण

दूसरे जीवोका भी परिणमन समझ लिया जाता है लेकिन धर्म द्रव्य अधम द्रव्य एक तो पर पदार्थ हैं और फिर अचेतन हैं, अमूर्त हैं, स्वभाव परिणमन वाले हैं इस कारण इनका परिणमन प्रत्यक्ष गोचर नही है। वीतराग सर्वज्ञ केवल ज्ञानी परमात्माओके द्वारा जाने गए हैं। तो इन धर्म द्रव्य और अधम द्रव्योंको मिला करके पदार्थोकी सख्या पूर्ण कर पायेंगे।

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य सहित चार अन्य पदार्थोंकी झलक—अब धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यको मान लेनेपर जब निरखते हैं तो गुण तो शक्तिरूप है और शक्ति है द्रव्यकी अभिन्न शक्ति अतएव गुण अलग पदार्थ न रहा। कर्म परिणमते हैं और परिणमते हैं पदार्थके परिणमनके समय पदार्थमें तादात्म्यरूप इस कारणसे वह भी अलग पदार्थ न रहा। और सामान्य साधारण धर्मको नाम है और वह है पदार्थोंका ही, अतएव सामान्य कोई अलग पदार्थ न रहा। विशेष भी पदार्थका असाधारण धर्म है, वह भी पदार्थ अलग न रहा और समवाय कोई पदार्थ है ही नही। काम भी नही। तो अब विशेषवादसम्मत ६ पदार्थोंमेंसे रह गया एक द्रव्य। अब द्रव्योकी जो ९ सख्यायें बतायी हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। इनमेंसे आकाश और काल तो स्वतत्र ऐसे ही द्रव्य हैं। कुछ थोडासा उसके स्वरूपमें यथार्थताभर समझना है। आकाश और कालको छोडकर द्रव्यके और जितने भेद किए गए हैं वे भेद जीव और पुद्गलमे गर्भित होते हैं। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि वायु ये शरीर पुद्गलमें गर्भित होते है, आत्मा जीव कहलाता है, दिशा कोई पदार्थ नही, मन द्रव्यमन हो तो पुद्गलमें गर्भित है, भावमन हो तो वह जीवकी परिणति है। इस प्रकार जीव, पुद्गल, आकाश, काल ये चार पदार्थ तो विशेषवादमें माने गये पदार्थ समूहमेंसे निकलते हैं, उनमें धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यका कोई जिक्र नही है। तो धर्म और अधर्म ये सामिल कर देनेसे फिर पदार्थके ये ६ प्रकार हो जाते हैं -जीव, पुद्गल, आकाश, काल, धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य।

गति स्थितिमे परस्पर निमित्तत्वका अभाव यहाँ शकाकार कहता है कि जीव और पुद्गलकी गति और स्थितिमें कारणभूत पदार्थ जो धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य माने हैं वे असगत हैं क्योकि गति और स्थितिरूप परिणमनने वाले पदार्थ ही परस्पर एक दूसरेके कारण बन जाते हैं। जैसे— ठहरना तब बनता है जब कोई चीज चल रही हो। तो देखो ठहरनेमे चलना निमित्त हुआ अथवा कोई स्थिर पदार्थका आवरण आ गया या अन्य कोई कारण आ गए उससे ठहरना बन गया। चलना बनना कब है ? जो न चलता हो स्थित हो उस पदार्थमे क्रिया हुई कि चलना हो गया। तो चलना और ठहरना इस रूप परिणमने वाले पदार्थ ही परस्परमें एक दूसरे की गति स्थितिके कारण होते हैं। अलगसे धर्मद्रव्य अथवा अधर्मद्रव्य माननेकी आवश्यकता नहीं है। उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना असगत है। इस कथनमें तो अन्यो-

न्याश्रय दोष आता है शंकाकार जो यह कह रहा है कि चलने और ठहरनेके परि-णमन वाले पदार्थ ही परस्पर एक दूसरेमे कारण होते हैं तो यहा जब तिष्ठने वाले पदार्थोंके कारण जाने वाले पदार्थोंकी गति सिद्ध होले तब तो जाने वाले पदार्थोंकी गतिसे पदार्थोंकी स्थिति सिद्ध होगी। और, जब ठहरने वाले पदार्थोंकी स्थिति सिद्ध हो ले तब जाने वाले पदार्थोंकी गतिकी सिद्धि होगी। इस प्रकार दोनोकी सिद्धि अन्योन्याश्रित हो गयी। और अन्योन्याश्रित होनेका अर्थ यह है कि दोनोकी ही सिद्धि नही हो सकती है इस कारण समस्त पदार्थोंकी गति स्थितिका कारणभूत कोई साधारण बाह्य निमित्त अवश्य माना जाना चाहिये। और, जो साधारण बाह्य निमित्त है वही है धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य।

लोकाकारकी सिद्धिसे भी धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यकी प्रसिद्धि — एक सामूहिक रूपसे भी बात सोच सकते हैं कि ये पदार्थ जो चल रहे हैं इनके चलनेकी सीमा ही होगी। अन्यथा कोई पदार्थ अनन्त योजना तक भी चलता जायगा और फिर विश्व किसे कह सकेंगे ? लोक कहते किसे हैं ? जहा समस्त पदार्थोंका समूह पाया जाय उसका नाम लोक है। लोक है ऐसा कहनेसे यही तो सिद्ध होता है ना, कि उसके बाहर आकाश ही आकाश है और कुछ नही है। तो इस तरह समस्त पदार्थोंकी गति एक जगह परिसमाप्त हो जाती है जिससे कि लोकका आकार बनता है। उससे आगे पदार्थ क्यो नही जा पाते ? उसका हेतु क्या होगा ? यही कैसे होगा, कि समस्त पदार्थोंकी गतिका अथवा बाह्य निमित्त नही है अलोकमे इसलिए सब पदार्थोंकी गति लोक तक ही समाप्त होती है। तो लोककी रचनासे विश्वकी रचनासे इसके आकारसे भी यह ध्वनित होता है कि जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका हेतु-भूत उनमे बाह्य निमित्त कुछ अवश्य है।

गति व स्थितिमे स्व-स्व प्रतिनियत कारणके निमित्तत्वका भी अभाव शंकाकार कहता है कि चलो, न सही ठहरने वालेकी स्थितिका निमित्त गति परिणामी पदार्थ और न सही चलने वालेकी गतिका निमित्त स्थिति परिणामी पदार्थ लेकिन उनमे निमित्त कुछ नही है और फिर समस्त पदार्थोंकी गति और स्थितिया जो होती हैं वे प्रतिनियत अपने अपने कारणपूर्वक होती हैं। जो पदार्थ चलते हैं उन पदार्थोंका जो प्रतिनियत कारण है उस कारणसे उनकी गति है। जो पदार्थ ठहरते हैं, ठहरने वाले पदार्थोंका जो निजी कारण है उस निज कारण पूर्वक पदार्थकी स्थिति होती है। समाधानमें कहते हैं कि ऐसा मानते हो तो यह बतलावो कि जिस समय किसी नर्तकी का परिणमन हो रहा है वह समस्त प्रेक्षक जनोको नाना प्रकारके हर्ष, काम, क्लेश आदिककी उत्पत्तिमे निमित्त हो रहा है। वह उनमे निमित्त है ना ? वह कैसे हुआ है ? यहां इस बातपर समाधान दिया जा रहा है कि शंकाकारने यह कहा कि जो पदार्थ चलते हैं, जो पदार्थ ठहरते हैं उनका ही प्रतिनियत निजी कारण है जिस

कारण पूर्वक गति और स्थिति बनती है, उनमे बाह्य निमित्त कुछ नही होता। तो यहाँ यह समझते हैं कि यहाँ भी अनेक कार्योंमें कोई साधारण बाह्य निमित्त हुआ करता हैं। जैसे किसी सभामें नाटक हो रहा है, कोई नर्तकी अपना परिणमन कर रही है। अब उस नाटकको देखने वाले लोग अनेक प्रकारकी योग्यताके हैं। कोई उसी परिणमनको देखकर हर्ष करता है तो कोई विषाद करता है। तो कोई वासनासे वासित होता है तो कोई वैराग्यमे बढता है। सब प्रेक्षक जनोकी जो ये नाना प्रकार की परिणतियाँ हुई उन परिणतियोमे वह नर्तकीका परिणमन हुआ या नही ? बाह्य निमित्त तो यो कहलाया कि प्रेक्षक जनके आत्मासे वह भिन्न आत्मा है अतएव हुआ बाह्य निमित्त और साधारण यो कहलाया कि समस्त प्रेक्षक जिनके कि किसी न किसी प्रकारके परिणमनमें वह निमित्त हुआ इस कारण वह साधारण निमित्त है। तो साधारण निमित्त तो मानना ही पडेगा। साधारण निमित्त रहित होकर कुछ भी क्रिया नहीं होती अनेकोकी युगपत् गति स्थिति चूकि अनेक भिन्न परिणमन रूप कार्य हैं तो उसका साधारण कोई बाह्य निमित्त है।

गति व स्थितिमे कालके निमित्तत्वका भी अभाव—यहाँ यह भी नही कह सकते कि जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका साधारण बाह्य निमित्त काल हो जायगा। समय रूप परिणमन है उसने यह परिणमन कर दिया, यह यो नही कह सकते कि काल द्रव्यके निमित्तसे होने वाले परिणमन रूप कार्यमें और गति स्थिति रूप कार्यमें इन दोनोमे अन्तर है। यह एक समानजातीय नही है। तो काल द्रव्य भी निमित्त नही है। अन्य कोई साधारण निमित्त नही होता सो भी बात नही है। जीव पुद्गलकी गति स्थितिका साधारण निमित्त कोई अवश्य है और वे हैं धर्मद्रव्य अधर्म द्रव्य। यदि साधारण निमित्त रहित होकर कार्य माने ही नियत कारणसे कार्य करने लगे तो यह बतला दीजिए कि सभासदोके हर्ष विषाद आदिक नाना परिणमनोका वहाँ कारण अन्य कोई बाह्य पडा है, नर्तकी परिणमन सो वह कैसे हो गया ? यदि कहो कि वह सहकारी मात्र हैं नर्तकीका परिणमन, उसका साधारण निमित्त पड गया तो समाधानमे कहते हैं कि यही बात तो इस प्रसगमें है। समस्त पदार्थोंकी गति और स्थितियाँ जो एक साथ हो रही हैं उनका सहकारी मात्र धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य है और वह है साधारण निमित्त। सभी जीव पुद्गलकी गतिमें वह स्थितिमें वह स्थितिमें वह कारण है, तब फिर धर्म द्रव्य और अधर्मद्रव्यको गति स्थितिमे साधारण निमित्त क्यों नही मान लिया जाता है ? वे अवश्य हैं और इस तरह धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्यकी सिद्धि है। उसका विशेषवाद सम्मत पदार्थमें कोई जिक्र ही नहीं है। अत. वे द्रव्य गुण आदिक ६ पदार्थ असगत हैं। मूलमें यदि यह कहा जाय कि सामान्य विशेषात्मक जो हो सो पदार्थ है और उसके विस्तारमे अर्थक्रियाकी पद्धतिसे जाति बनाकर कहा जाय तो यों सिद्ध होगा कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ जातिके पदार्थ हैं।

गति व स्थितिमे पृथ्वी आकाश आदिके साधारण निमित्तत्वका अभाव—शकाकार कहता है कि जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका कारण साधारण निमित्त पृथ्वी आदिक ही है। इसमे धर्म अधर्म द्रव्यकी कल्पना न करना चाहिए। समाधानमे कहते है कि यह कहना असगत है। यदि गतिका साधारण निमित्त पृथ्वी आदिक ही है तो गगनमे रहने वाले पदार्थ जो चलते हैं और ठहरते हैं उनमें तो पृथ्वी आदिकके निमित्तकी सम्भावना नही है। जैसे पक्षी आकाशमे उडते हैं अथवा कोई चीज आकाशमें स्थिर है। बहुतसे चन्द्र तारे ही स्थिर हैं तो उन पदार्थोंकी गति और स्थितिका कारण साधारण निमित्त पृथ्वी आदिक कहाँ है। शकाकार कहता है कि तब फिर आकाश साधारण निमित्त हो जायगा गति और स्थितिका, क्योंकि आकाश तो सर्वत्र मौजूद है। तब कही भी यह नही कह सकते कि देखो इसकी गति स्थितिके लिए आकाश है नहीं और गति स्थिति होने लगे। समाधानमे कहते हैं कि यह कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि आकाशको तो अवगाहमे कारण है ऐसा बताया है। अवगाह निमित्तत्व हैं आकाशमे, गति निमित्तत्व और स्थिति निमित्तत्व आकाशमें नहीं है। आकाशका असाधारण लक्षण अवगाह बताया गया है।

गति स्थितिमे आकाशका निमित्तत्व माननेपर कार्योंमे आकाशके निमित्तत्वका प्रसग—यदि कहो कि एक आकाश ही अनेक कार्योंका निमित्त बन जायगा पदार्थोंके अवगाहका भी निमित्त आकाश है और पदार्थोंकी गति और स्थिति का भी निमित्त आकाश है। यदि आकाशको ही सब कार्योंका निमित्त मान लोगे तब अन्य अनेक सर्वगत पदार्थोंकी कल्पना करना अनर्थक हो जायगा। विशेषवादमे आत्मा काल, दिशा, समवाय आदिक अनेक पदार्थ सर्वगत माने हैं, तो जब आकाश सब जगह है तो आकाशसे ही वे सब काय हो जायें जिन कार्योंके होनेके लिए अनेक सर्वगत पदार्थ मानने पड रहे हैं। समवायसे जो कुछ कार्य होता है वह भी आकाशसे हो जाय, दिशा और कालसे जो कुछ कार्य होना है वह भी आकाशमे हो जाय। जब एक पदार्थ को अवगाहमे निमित्त, गतिमे निमित्त, स्थितिमे निमित्त, यो अनेक कार्योंमें निमित्त मान लोगे तब तो एक आकाश पदार्थ ही पर्याप्त है सब कार्योंके लिए। कालका क्या कार्य है? द्रव्योका परिणमना, पदार्थोंकी अदल बदल करना अथवा यह छोटा है, यह बडा है, ऐसा परत्व और अपरत्वका ज्ञानका हेतु बनना। इस कार्यको आकाश ही करदे, क्योंकि आकाश सब जगह है। कही भी यह प्रश्न नही हो सकता कि इस कार्य के होते समय आकाश तो था ही नही। आत्माका कार्य क्या है? चैतन्य। जो भी कार्य माना है उसे भी आकाश ही करदे। दिशाओका कार्य क्या माना? यह इससे पूर्व है, यह इससे पश्चिममे है, इस प्रकारके प्रत्ययका हेतु बनना यह है दिशावोंका काम। सो दिशायें जैसे सर्वव्यापक हैं इसी प्रकार आकाश सर्वव्यापक है। तो वे सब काम आकाश द्वारा क्यो नही हो जायेंगे? जब एक आकाशको अवगाह गति, स्थिति, सबमे निमित्त मान लिया गया तब अन्य पदार्थोंके कार्यको भी आकाश ही कर देगा।

सामान्यका कार्य क्या है ? अनेक पदार्थोंमें अनुगत प्रत्यय करा देना । सो सामान्य जैसे सर्वत्र है, एक है इसी प्रकार आकाश सर्वत्र है। वही अनुगत प्रत्यय होनेका कारण बन जाय । कोई कहे कि कुछ कुछ बात फबती नही, युक्त नही जचती है कि एक पदार्थ अनेकका कार्य करदे । तो क्यों नही जचती ? जचाओ क्योंकि आकाशको जब अवगाहमें, गतिमे, स्थितिमे इन सबमें कारण मान लिया । समवायका क्या कार्य है ? द्रव्य गुणमें सम्बन्ध करा देना, कर्ममे सम्बन्ध करा देना । इन कार्योंको आकाश ही करदे । आकाश सर्वत्र है और एक पदार्थका अब अनेक कार्योंमें निमित्त मानना स्वीकार भी कर लिया है । इसके अतिरिक्त और जितने भी व्यवहार होते हैं—एक साथ हुआ, क्रमसे हुआ, जितने भी बुद्धि सकल्प होते हैं सारे विश्वभरके कार्य एक आकाश द्वारा मान लीजिए । यह इससे पूर्वमें है यह इससे पश्चिममें है आदिक प्रत्यय और अन्वयज्ञान तथा इसमे यह है इस प्रकारका ज्ञान ये सारे ही कार्य जो कि काल, आत्मा, दिया, सामान्य, समवाय इनका कार्य माना गया है, उन सबका आकाश ही एक निमित्त बन जायगा, क्योंकि आकाश सब जगह सब समय बराबर मौजूद है । तो जैसे ये बातें इष्ट नही हैं विशेषवादमें कि आकाश कालका कार्य करदे आत्मा, दिशा, सामान्य, समवाय आदिकका कार्य करदे तब ऐसा यहाँ भी न मान लेना चाहिए कि एक आकाश अवगाहका भी कार्य करदे और जीव पुद्गलकी गति स्थितिका भी कार्य करदे यह बात सम्भव नही है ।

कार्यविशेषसे निमित्त भेद मानकर अन्य पदार्थोंकी शकाकार द्वारा सिद्धि—शकाकार कहता है कि कार्य विशेषसे काल आत्मा आदिकके निमित्त भेदकी व्यवस्था की जा रही है । आकाशका कार्य अवगाह है सो तो ठीक है, मगर बुद्धि होना यह आत्माका विशेष कार्य है । किसीको भी नही जचता कि ज्ञान करना यह भी आकाशका कार्य है । यह क्रमसे काम हुआ, यह एक साथ काम हुआ, यह इससे छोटा है, यह इससे बड़ा है, इस प्रकारका जो कालका ज्ञान होता है उसका हेतु काल है । वह कालका विशेष कार्य है । यह इससे पूर्वमें है यह इससे पश्चिममें है, यह आकाशकी अपेक्षा विशेषकार्य है । बहुतसे व्यक्तियोंमें अनुगत ज्ञान होना, मनुष्यमे मनुष्यत्व, मनुष्यत्व मनुष्यत्व सब मनुष्योंमें है इस प्रकारका अनुगत ज्ञान होना यह सामान्यका विशेष कार्य है । यह आकाश द्वारा सम्भव नही है । इसमें यह है, आत्मामें ज्ञान है, घटमें रूप है, इस प्रकारका जो अयुतसिद्ध इह इद सम्बधका बोध होता है वह सम्बधन समवायका कार्य है । तो जब कार्य विशेष है तो कार्य विशेषके भेदसे काल आदिक निमित्तोमें भी भेदकी व्यवस्था बन जाती है । यह आक्षेप देना अयुक्त है कि आकाश ही इन सब पदार्थोंका कार्य करदे ।

कार्यविशेषसे ही धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्यकी सिद्धि— उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि बस इस ही कारणसे याने कार्य विशेषसे निमित्त भेदकी व्यवस्था

बनाई जाती है, इस ही कारणसे धर्मादिक निमित्त भेदकी व्यवस्था भी बन जाय, क्यों कि आपके उक्त कथनमे कि आत्मा, काल, दिशा आदिकके कार्य विशेष हैं इस लिए उनका भी निमित्त है। आकाश द्वारा उन कार्योंको नही कराया जा सकता, तो यही बात धर्म आदिकमें भी है कार्य विशेष है गति और स्थिति जो कि अवगाहसे अन्य प्रकारका काय है। तो जैसे कार्यविशेषसे काल आदिकके निमित्त भेदकी व्यवस्था बन जाती है। अत ऐसे ही गति स्थितिरूप कार्यभेद है अत. यह सिद्ध हो जाता है कि उनका निमित्त है धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य और ये वास्तविक पदार्थ हैं इन पदार्थोंके सद्भावमे कोई आशका नहीं है। अब यह अनुमान पूर्णतया निर्दोष सिद्ध होता है कि ये एक साथ होने वाली गतियाँ किसी साधारण बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती हैं। अर्थात् इन सब गतियोमे साधारण निमित्त धर्म द्रव्य है। क्योकि एक साथ गतियाँ हो रही ना ! जो कार्य एक साथ हो रहे हैं उन सब कार्योंका कोई एक साधारण बाह्य निमित्त होता है और इस तरह समस्त जीव पुद्गलकी जो स्थितियां हैं वे भी किसी साधारण बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती हैं, क्योंकि स्थितिरूप परिणमन भी एक साथ देखा जा रहा है। यो विशेषवाद सम्मत ६ पदार्थोंसे अधिक, योगाभिमत १६ पदार्थोंसे अधिक ये धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य भी हैं जिनपर किसीने भी दृष्टिपात नही किया है। जब समस्त द्रव्योका परिचय ही नही है तब फिर पदार्थोंकी संख्या नियत करना यह कैसे निर्दोष हो सकता है ? धर्म द्रव्य है और अधर्म द्रव्य है।

सिद्धजीवोकी अवस्थितिसे भी धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यकी सिद्धि— जीव जब समस्त कर्मोंसे विमुक्त हो जाता है, शरीर और कर्मसे रहित हो जाता है तब उसकी गति ऊर्द्ध गति होती है। स्वभावसे वह ऊर्द्ध दिशाको हीगमन करता है। जब धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य नही मानते तो उस ऊर्द्ध गमनमे कहीं फिर रुकावट न आयगी ! क्योकि अब तो यह मान लिया कि कोई गतिका साधारण बाह्य निमित्त नही है। पदार्थ अपने आपकी ओरसे ही बिना किसी साधारण बाह्य निमित्तके यदि परिणमन कर ही रहा है तो फिर सारे परिणमन एक साथ और बिना निरोधके हो जाना चाहिए, पर ऐसा तो नही हुआ। उसका यही प्रमाण है कि यह विश्व सद्भूत है। अब तक मौजूद है। तो यह बात यह है कि जब कोई आत्मा शरीरसे कर्मसे विकारसे अत्यन्त मुक्त हो जाता है तो ऊर्द्धगमन स्वभावके कारण यह आत्मा ऊपर ही एक ही समयमे एकदम चला जाता है। और जहाँ तक धर्म द्रव्य नामक साधारण बाह्य निमित्त है वहाँ तक यह चला जाता है और जहाँ साधारण बाह्य निमित्त धर्मद्रव्य न रहा उसके आगे मुक्त आत्माकी गति नही होती है। यद्यपि गति क्रियामे उपादान स्वय गति क्रिया परिणत पदार्थ है तो भी उसमे साधारण बाह्य निमित्त धर्मद्रव्य है। जो जो बातें नहीं हुई और हो रही हैं, विशेषताको लिए हुए हैं उस विशेषतामे कुछ न कुछ बाह्य निमित्त होता है। तो मुक्त आत्माकी गतिमे भी जो साधारण बाह्य निमित्त है वह है धर्म द्रव्य। और इस ही प्रकार समस्त जीव पुद्गल

की गतिमें जो निमित्त है वह है धर्म द्रव्य । इस प्रकार सबके अवस्थानका भी निमित्त है अधर्म द्रव्य । धर्म अधम द्रव्यको उदासीन निमित्त कहा गया है। चलो कोई, उसमें निमित्त है धर्मद्रव्य ठहरे कोई, तो उसमे निमित्त है अधम द्रव्य । उदासीन निमित्त यह भी कहलाता है कि इसमें क्रिया नही है । इसमे प्रयोगविधि नही है इसलिए यह उदासीन निमित्त कहलाता है । वस्तुत तो सभी निमित्त उदासीन ही होते हैं । जब कोई अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उपादानमे नहीं रख सकता तो सभी ही उदासीन निमित्त हैं । लेकिन उन उदासीन निमित्तोंमे कुछ तो मिलता है निष्क्रिय और कुछ मिलता है क्रियावान । जैसे कुम्हारका व्यापार घट बननेमें निमित्त है । वह प्रयोगरूप है । तो चाहे प्रयोगरूप हो, अप्रयोगरूप हो, सभी निमित्त उदासीन होते हैं । ये धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य भी समस्त जीव पुद्गलकी गति और स्थितिमें उदासीन साधारण बाह्य निमित्त हैं ।

अदृष्टका गतिऔर स्थितिमे साधारण निमित्तत्वका अभाव —शकाकार कहता है कि जीव पुद्गलमें जो गति स्थिति होती है उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कारण माननेकी आवश्यकता नही है । गति और स्थिति भी अदृष्टके निमित्त स हो जायगी अर्थात् भाग्य जैसा है वैसी पदार्थोंकी गति और स्थिति होती है । इससे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य माननेकी जरूरत नही है । उत्तरमे कहते हैं कि यह बात ठीक नही है, क्योकि जीवमे-तो भाग्य है, जीवके साथ तो कर्म लगा है, तो कुछ सम्भव मान सकते हैं कि भाग्यकी वजहसे जीवोकी गति और स्थिति होती है, सो भी वह असाधारण निमित्तकी बात है साधारण निमित्तकी नही, लेकिन पुद्गलमे तो भाग्य नही है । पुद्गल कहते हैं उसे जो रूप, रस, गंध, स्पर्शवान हैं । तो रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले अचेतन पदार्थ उनकी गति स्थिति फिर कैसे होगी ? क्योकि भाग्य तो उन के है नही, इस कारण यह नही कह सकते कि भाग्यकी वजहसे गति और स्थिति होती है । जीव और पुद्गल जब गमन करते है अथवा ठहरते हैं तो उनमें साधारण बाह्य निमित्त धर्म द्रव्य और अधर्म-द्रव्य होते हैं ।

पुद्गलकी गति-स्थितिके लिये जीवके अदृष्टमे साधारण निमित्तत्वका अभाव शकाकार कहता है कि पुद्गलमें चेतनता तो नही है फिर भी उनकी गति और स्थिति इस तरह हो जायगी, किस तरह कि जो जिस आत्माके द्वारा उपभोग्य है, पुद्गल उनकी गति स्थिति उन आत्माओंके भाग्यसे हो जायगी । पुद्गलमें चेतनता नहीं है, पुद्गलमें भाग्य भी नही लगा रहता है तो क्या हुआ । शकाकार कह रहा है कि जितनी भी गति और स्थिति होती है तो पुद्गलमें जो गति स्थिति होगी तो गति होकर स्थिति होकर वे पुद्गल जिसके भोगनेमें आयेंगे उस जीवके भाग्यसे गति और

स्थिति हो जायगी । फिर धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य माननेकी जरूरत ही क्या है ? उत्तर देते हैं कि ठीक है । वह तो असाधारण निमित्त है जिन जीवोके भोगमे आने वाली वस्तुकी पुद्गलकी उनके भाग्यके कारण गति स्थिति हो रही तो जीवोका भाग्य विशेष निमित्त है साधारण निमित्त नही कहलाया । क्योंकि गति और स्थितियो का जो हेतु बताया है प्रतिनियत आत्माके भाग्यको तो उस जीवके भाग्यसे खास खास ही चीजें तो आ सकेंगी, सबके निकट सब तो नही आ सकती । तो जीव और पुद्गल की गतिका सामान्य निमित्त नही हुआ । जैसे किसी मनुष्यने कोई चीज उठाकर फेंक दी तो उसकी गतिका निमित्त मनुष्य हो गया । हो गया मगर वह विशिष्ट निमित्त है । साधारण निमित्त नही है । फिर और पुद्गलकी गति तो नहीं हो रही । सो अनिष्ट नहीं है आपकी बात हमे, जीवोके भाग्यसे भी पुद्गलकी गति और स्थिति होती है सही है वह बात मगर वह साधारण निमित्त नहीं हो सकता । साधारण निमित्त तो जीव पुद्गलकी गति स्थितिका धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य ही हो सकता है । जैसे गतिका कारण पृथ्वी ही है जमीन न हो तो उसपर मनुष्य कैसे चले ? तो गमनका कारण जमीन है, स्थितिका कारण जमीन है लेकिन वह है असाधारण निमित्त साधारण निमित्त न रहा तो ऐसे असाधारणपनेकी बात हम अदृष्टमे भी लगा देंगे । ठीक है, हो जायगा । मगर साधारण कारण तो गति स्थितिका धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य ही हो सकता है । इससे सिद्ध हुआ कि जब गति स्थिति रूप कार्य विशेष हो रहा है जीव पुद्गलमे तो उनका निमित्तभूत, साधारण निमित्त धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य अवश्य हैं । तो जब धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सिद्धि हो गयी तब सामान्य विशेषात्मक स्वरूपके विरोधमें जो द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य रूपसे जो पदार्थकी भेद-व्यवस्था की है वह भेद व्यवस्था ठीक नही होती ?

प्रमेयस्वरूपपर विचार—इस परिच्छेदके प्रसगमें प्रमेयके स्वरूपपर विचार चल रहा है । प्रमेय अर्थात् प्रमाणका विषयभूत पदार्थ । प्रमेय कहो अथवा ज्ञेय कहो एक ही बात है । ज्ञानमे जो विषय आता है वह सब सामान्य विशेषात्मक होता है । सामान्यविशेषात्मक होनेके लिये साधारण धर्म और असाधारण धर्मका निरखना पडता है । जो साधारण धर्म होता है वह तो उसमे भी और अन्यमें भी सबमें पाया जाता है । और, जो असाधारण धर्म होता है वह उसमें ही पाया जाता अन्यमे नही पाया जाता । ऐसा वस्तुमे स्वरूप है । उस स्वरूपको हम जानकर समझकर परख निरख करके विश्लेषण करते हैं, पर वस्तु तो यथार्थमें जैसी है तैसी ही है । पदार्थ स्वय अपने आप अपनी सत्ता लिए हुए जैसे हैं तैसे ही होते हैं । अभेद हैं अखण्ड हैं, निर्विकल्प हैं और प्रतिसमय अपनी पर्याय अवस्था बताने वाले हैं । तो यो कहो कि हम पदार्थोंमें दो बातें निरखते हैं मूलमे—सत्त्व और परिणमन । पदार्थ है और उस की यह एक अवस्था है । अब उस पदार्थको समझनेके लिए जब हम भेद व्यवहार

करते हैं तो वहा हमारे पर्याय सामान्य विशेष ये सब ज्ञानमें आते हैं । ज्ञानमें आये लेकिन ये स्वतन्त्र सद्भूत पदार्थ नही हैं । देखो भैया द्रव्य स्वय सद्भूत है उसे तो कह देते हैं विशेषवादमे कि द्रव्य स्वय सत् नही है किन्तु सत्ताका समवाय होता है तब द्रव्य सत् कहलाता है । गुण और कर्म तो अलगसे कुछ सत् है ही नही । उनमें भी विशेषवादने यह कहा है कि गुण और कर्ममें भी सत्ताका समवाय होता है तब वे पदार्थ कहलाते हैं । लेकिन सामान्य विशेष और समवाय इनको स्वय सत्रूप कहा है । इनमें सत्ताके समवायकी भी जरूरत नहीं है । तो कितना विलक्षण अन्तर हो गया कि जो स्वयकुछ है ही नही उसे तो कहते हैं स्वय सत् है । इसमें सत्ताका सम्बन्ध करानेकी भी जरूरत नहीं है । और, जो पदार्थ स्वय सत् है उसे कहा गया है कि यह सत्ताके सम्बन्धसे सत् है, यह स्वय सत् नही है ।

उत्पादव्ययध्रौव्यत्वमयी सत्ताकी निरखसे सकल समस्याओंका समाधान—सत्ताका लक्षण उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त मान करके चला जाय तो बहुत सी शकायें अपने आप समाधानको प्राप्त हो जाती हैं । सत् वह कहलाता है जिसमें उत्पादव्ययध्रौव्य हो । उत्पादव्ययध्रौव्य या कोई भिन्न भिन्न तत्त्व नहीं हैं । किन्तु एक ही पदार्थमें जो कुछ बात बनती है उसको ही लक्ष्य कर करके यह ३ का अध्ययन कराया गया है । जैसे मिट्टीका घडा था और फूट गया, उसकी खपरिया बन गई तो खपरियोंका उत्पाद हुआ, घडेका व्यय हुआ और मिट्टीका ध्रौव्य हुआ तो यहा यह निरख लीजिए कि ये तीन उत्पादव्ययध्रौव्य एक साथ हुए, न कि क्रमसे । ऐसा नहीं होता कि पहिले घटका व्यय होले तभी तो खपरियाँ बनेगी अथवा पहिले घटकी खपरिया बनले तब ही तो घटका व्यय होगा, ऐसा नहीं है । जो कुछ बात एक समयमें है उस ही को तीन रूपोमे निरखा गया है । देखो खपरियोंकी दृष्टिसे तो उत्पाद है । घटकी दृष्टिसे व्यय है और मृत्तिकाकी दृष्टिसे ध्रौव्य है । तो ये उत्पादव्ययध्रौव्य पदार्थके निजी स्वरूप ही गए । अब जिसमें उत्पादव्ययध्रौव्य पाया जाय उसके मायने है पदार्थ ।

जीव और पुद्गलमे उत्पादव्ययध्रौव्यमयी सत्ताका दिग्दर्शन—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये ६ जातिके पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्य वाले हैं, जीव अनन्तानन्त हैं । सभी जीव अपनी-अपनी योग्यतानुकूल नवीन-नवीन अवस्थाओंसे परिणमते हैं और पुरानी अवस्थाओंको विलीन करते हैं । जीव वहीका वही रहता है । यद्यपि जीवका परिणमन अशुद्ध अवस्थामे कर्मोदयको निमित्त पाकर होता है और विकृत हो जाता है, लेकिन वह विभाव परिणमन कर्मसे आया हो सो बात नही है । वे जीव ही स्वय अपने आप अपनी योग्यताके कारण बाह्यमें कर्मविपाकका

निमित्त पाकर उस उस विकाररूप परिणम गये। जब कोई जीव शुद्ध होता है तो वही जीव अपने आपकी योग्यताके अनुकूल स्वय शुद्धरूप परिणम गया। जीवमें व सभी द्रव्योंमें स्वय परिणमनेकी शक्ति है और वह निरन्तर नवीन अवस्थासे परिणमता पुरानी अवस्थाको विलीन करता। द्रव्य वहीका वही है। पुद्गलमें भी यह बात है—रूप, रस, गध, स्पर्श वाले पुद्गल अनेक सूक्ष्म स्कध हैं, अनेक विपुल स्कध हैं, परमाणु तो सदा सूक्ष्म कहलाता है। इन सबमें भी निरन्तर उत्पाद व्यय और ध्रौव्य है, जो कि प्रकट दिखता है, जैसे कि अभी घटके दृष्टान्तमें कहा गया है।

धर्म अधर्म, आकाश व काल द्रव्यमें त्रितयमयी सत्ताका दिग्दर्शन—धर्म द्रव्य यह भी अपनी षड्गुण हानि वृद्धिसे निरन्तर परिणमता रहता है, यह अमूर्त द्रव्य है, पर द्रव्य है। इसका परिणमन आगम गम्य है। हम आप इसके परिणमनको नहीं समझ सकते। अथवा केवल ज्ञानगम्य है। इसी प्रकार अधर्म द्रव्यका परिणमन भी सूक्ष्म है, अमूर्त है, भिन्न द्रव्य है, वह भी आगमगम्य है। आकाश द्रव्यका कोम अंदाजा तो कर लेते हैं कि जो यह पोल है, जिसमें हम समाये हुए हैं, चीजें रखी जाती हैं, वह आकाश द्रव्य है। लेकिन आकाश द्रव्य भी अमूर्त है, पर है। उसमें निजमें क्या निरन्तर परिणमन होता रहता है इसको भी हम नहीं समझ पाते, वह भी आगमगम्य है। काल द्रव्य—लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवस्थित है और वह अपने आपमें समयरूप परिणमन करता रहता है। एक समयमें क्या होता है इस को हम परिवर्तन शब्दसे नहीं कह सकते। परिवर्तन होता है मुकाबलेमें। दो समयके परिणमनमें हम परिवर्तनका व्यपदेश कर सकते हैं। एक ही समयमें किए हुए पदार्थ में उसको वर्तना शब्दसे कहा गया है। अपने सत्त्वमें रहना, इतनेमें एक समयका कार्य है। सो प्रत्येक लोकाकाशके प्रदेशपर जो एक एक कालाणु अवस्थित है उसमें जो समय नामका परिणमन होता रहता है वह समय परिणमन जब बहुत समयका सम्बन्ध जोडकर कहा जाता है तो वह व्यवहारके योग्य होता है। इसी कारण आवली, पल, घडी, घटा साल, पल्य, सागर इन सबको व्यवहारकाल कहा गया है।

सर्व पदार्थोंमे सामान्यविशेषात्मकताकी सिद्धि—छहों जातिके पदार्थों में उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता पायी जा रही है। अब उन्हींको हम सामान्य विशेषात्मक ढगसे देखें तो सामान्य तत्त्व हुआ [illegible] खाकर। इस ही सत्त्वको अथवा [illegible] के लक्षणको कहा गया है—गुण पर्याय वाला हो सो द्रव्य है। उसमे भी गुणकी समता तो है ध्रौव्यसे और पर्यायकी समता है उत्पादव्ययसे। यो प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीन तत्त्वो स्वरूप है। और, इसी लिए वे सत् हैं। इस प्रकार का सत्त्व समवायमें कहाँ? उत्पाद हो, व्यय हो फिर भी रहें ऐसी कोई चीज हो तब

तो सद्भूत है । धर्म बिना धर्मी कहाँ ? विशेष धर्म हो अथवा सामान्य धर्म हो, वह है क्या ? वस्तुकी जो शाश्वत शक्ति है धर्म है वह तो वस्तुकी अभिन्न शक्ति हुई और जो मिटने वाली बदलने वाली जरूरी बात है वह परिणमन हुआ । तो यों पदार्थोंमें ये सब कल्पनासे जानी गई चीजें हैं । गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय सद्भूत नहीं हैं । जो सद्भूत है उसे पदार्थ कहते हैं । तो पदार्थ ये ही ६ जातिके सही सिद्ध हुए । अब उनका मूल लेकरके विस्तार बढ़ता जाय तो भेद प्रभेद भी युक्त होंगे ? यों प्रमाणका विषय पूछा गया था । उसके उत्तरमें यह सिद्ध किया गया कि सामान्यविशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाणका विषयभूत होता है ।